मालवीय जी : हमारे राजनीतिक आन्दोलन के अगुआ *

प्रधानमंत्री पंडित जवाहर लाल नेहरू

मालवीयजी का जन्म-दिवस हमारे देश के लिए एक शुभ दिन है। हमलोगों के लिए विशेष कर जो प्रयाग नगर के निवासी हैं। आज एक पिछला गुजरा हुआ जमाना मेरी आँखों के सामने आता है, खास कर वह जमाना जब मैं थोड़ी-बहुत पढ़ाई करके इलाहाबाद वापिस आया था। यों तो बहुत बचपन से, अब तो ठीक याद भी नहीं कि कब से, मालवीयजी को दूर से मैं देखता रहा हूँ, वैसे ही जैसे बच्चे देखते हैं बड़ों को। वह मुझसे प्रेम करते थे और मैं उनका आदर करता था। फिर एक जमाना गुजरा और मैं बाहर रहा। भारत वापिस आया तो बहुत बातों में लग गया। राजनीतिक बातों में भी लगा। उस समय जवानी का जोर था, जोश था। मुझे याद है कि उन दिनों मैं यहाँ भारतीय भवन में अक्सर उनके पास जाता था। मेरे में शंकाएँ थी, परेशानी थी कि क्यों कुछ नहीं होता, लोग ढीले क्यों पड़ जाते हैं। मैं उनसे पूछता था, और वे मुझे समझाते थे, कुछ समझ में भी आता था, फिर भी दिमाग परेशान रहता था। यह परेशानी आम तौर से थी। हिन्दुस्तान की हालात कुछ ठीक नहीं मालूम होती थी। ठीक थी भी नहीं। विशेषकर मुझे वे दिन याद हैं जब मैं शुरु-शुरु में उनके पास जाता था- कभी अकेला, कभी किसी और के साथ। उनसे यहाँ का कुछ राजनीतिक हाल जानने की कोशिश करता था। फिर मैं स्वयं इन बातों में पड़ा और उनसे मिलने के अनेक अवसर मिले। फिर दुनिया की पहली बड़ी लड़ाई का जमाना आया। हमारे यहाँ का राजनीतिक काम और ठंडा हो गया; क्योंकि दुनिया की लड़ाई चल रही थी। कुछ ध्यान उधर जाता था कि दुनिया का अब क्या होगा? इस लड़ाई के दौरान फिर कुछ नयी-नयी बातें हुई और फिर से हल्के-हल्के हिन्दुस्तान की उठान और हवा बदलने लगी। शायद बाज लोगों को याद हो वह जमाना, जब लोकमान्य तिलक ने एक होमरुल लीग शुरु की थी और एक श्रीमती एनी बेसेन्ट ने। हमारी संस्था कांग्रेस भी, जिसके सबसे पुराने और बड़े नेता मालवीयजी थे, कुछ जागने लगी थी।

लड़ाई खत्म हुई और दूसरी बातें सामने आयीं। थोड़े ही दिन बाद पंजाब का हत्याकाण्ड हुआ। मार्शल-ला वगैरा का जमाना और उसमें मालवीयजी का एक बहुत बड़ा हिस्सा रहा- यानी उसकी तहकीकात में, जाँच-पड़ताल में और उनकी सहायता करने में। उस समय उनके साथ मुझे बहुत काम करने का मौका मिला। लाहौर में, पंजाब में, अमृतसर में और कुछ शिमला में भी; जहाँ उस समय पुरानी इम्पीरियल कौन्सिल की मीटिंग होती थी। मालवीयजी को तो दूर से बहुत दिनों से जानता था। यहाँ पास से बहुत कुछ जानने का मौका मिला। उन्होंने हमेशा बहुत मुहब्बत और प्रेम से मुझे बातें बतलायी,

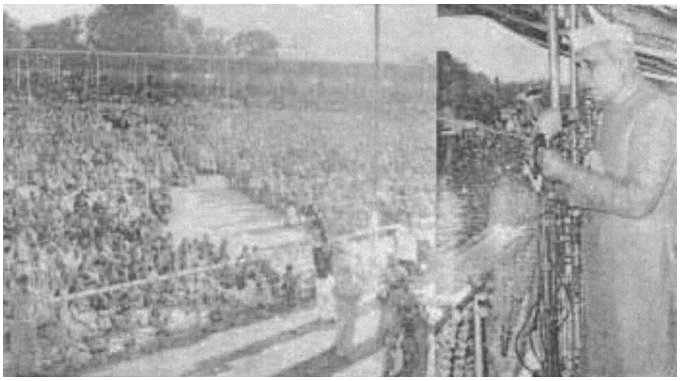

महामना मालवीय जन्मशताब्दी समारोह समिति के अध्यक्ष एवं प्रधानमंत्री पण्डित जवाहर लाल नेहरू, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में समारोह के उद्घाटन के अवसर पर महती जनसभा को सम्बोधित करते हुए।

समझायीं। कभी-कभी मैं उनसे बहस करने की भी जुर्रत की, उसको भी उन्होंने प्रेम से समझाने की कोशिश की। कभी-कभी मैं उनसे पूरी तरह से सहमत नहीं हो पाता था, लेकिन उनका समझाने का तरीका मीठा था। उनका तरीका ही मीठा था और प्रेम करने का। उसका एक जबरदस्त असर होता था, चाहे कोई उनकी किसी बात से सहमत हो या न हो। उसके बाद असहयोग आन्दोलन शुरु हुआ और तरह-तरह की बातें भी। गाँधी जी मैदान में आये। लेकिन इस सारे जमाने में भी मालवीयजी का असर महज इलाहाबाद पर ही नहीं, सारे भारत की राजनीति पर बहुत जबरदस्त रहा।

कभी-कभी हम, उस समय के नौजवान, बावजूद उनके प्रति अपनी मुहब्बत के, उनसे कुछ शिकायत करते थे। शिकायत यही कि हमारी राय में उस वक्त वह धीमे चलते थे। यह तो हमारी, क्या कहूँ, अपनी जवानी का एक जोश था कि हम समझते थे कि जो हमारी बात को पूरी तरह से मंजूर न करे, वह धीमा है। खैर, कांग्रेस जब से शुरु हुई, वे हमारी राजनीतिक आन्दोलन की एक खास निशानी रहे हैं। उसे शुरु करने में, बनाने में मालवीयजी का एक बहुत बड़ा हिस्सा रहा है। इसमें कोई शक नहीं कि समय की हवा देख कर भारतीय राजनीति में मालवीयजी अगुआ भी रहे और एक कड़ी भी रहे जोड़ने की—उन लोगों को, जो कांग्रेस में आगे-पीछे गिने जाते थे, यानी गरम और नरम दल वालों को। उनका स्वभाव ही बहुत विरोध करने का नहीं था। यह तो एक बहुत ऊँचे दर्जे की बात है कि वे अपनी राय पक्की रखते हुए भी मिलकर रहते थे और दूसरों को मिलाने की कोशिश करते थे।

फिर वह जमाना आया जब उनसे अक्सर ही मेरा मिलना-जुलना होता रहा। इस तरह की सब तस्वीरें आज हमारे सामने आती हैं और

---

* 1961 में महामना की जन्म शताब्दी के अवसर पर प्रयाग में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री, पंडित जवाहर लाल नेहरु ने मालवीय जी को यह श्रद्धांजलि अर्पित की थी। —सम्पादक, प्रज्ञा।

मैं देखता हूँ कि इन सब वर्षों में उनका कितना बड़ा हाथ रहा अपनी राजनीति को ढालने में। यह तो हुई हमारी राजनीति की बात, जो अपने में खुद ही बड़ी बात है। दूसरी बड़ी बात थी उनका हमारी पुरानी संस्कृति के प्रति खास झुकाव। उसको बढ़ाने की वे हर वक्त कोशिश करते थे और उसकी निशानियाँ तो आपको हर जगह मिलेंगी। उस समय की हालत कुछ ऐसी थी। वे जो बातें कहते थे, वे मेरी राय में बहुत सही थीं लेकिन, उनपर बहसें हुईं और वह बहस अब तक जारी है, कभी भाषा के मामले में कभी कुछ और मामलों में। लेकिन मालवीयजी किसी भाषा के विरोधी नहीं थे। वे चाहते थे कि हिन्दी और संस्कृत की यहाँ तरक्की हो भारत में, और यह एक बहुत ठीक बात थी। वे जो बात करने की कोशिश करते थे, बिना किसी का विरोध किये हुए। विरोध करने का सवाल ही नहीं है। विद्या और इल्म का विरोध नहीं होता, बल्कि वह तो एक धन-दौलत है जो हमको बड़ा बनाती है और जितनी ही वह अधिक हो उतना ही अच्छा। अपने देश की तो अवश्य और दूसरे देशों की भई वह हो तो और भी अच्छा। इससे हम बढ़ते हैं।

उस समय के हमारे जो राजनीतिक नेता थे वे तरह-तरह के थे। यह जमाना ऐसा था कि हमारे देश में काफी बड़े आदमी हुए। एक खास जमाना था जब बहुत बड़े आदमी हुए सारे देश के हिस्सों में। उनमें से अधिकतर कांग्रेस की ओर खिंचे। कुछ बाहर भी रहे। हर तरह के लोग थे और वे एक-से नहीं थे। अलग-अलग उनकी बातें थी, अलग-अलग मजमून थे। लेकिन उस समय के उन बड़े नेताओं में प्राचीन संस्कृति की ओर सबसे अधिक ध्यान मालवीयजी का रहा। यह एक अच्छी बात थी। यों भी अच्छी होती, लेकिन उस समय की स्थिति-विशेष में तो वह बहुत ही अच्छी थी, क्योंकि देश कुछ भटक रहा था। भटक गया था। पहली बात तो यह कि हमारे लोगों में, बड़े-छोटे सभी में, अंग्रेजी पढ़े-लिखे लोगों की एक नयी जाति-सी कायम हो गयी थी। कायम तो नहीं हुई थी, हो रही थी। हालांकि राजनीतिक जीवन में हम अंग्रेजी हुकूमत का मुकाबला करते थे, वह रोज-बरोज सख्त होता जाता था। लेकिन अंग्रेजी संस्कृति का, संस्कृति क्या अंग्रेजियत का उस जमाने के हमारे नेताओं पर ज्यादा असर था। यह आश्चर्य की बात नहीं है। ऐसा तो होना ही था। और देशों में भी ऐसा ही हुआ। खास अंग्रेजी ही नहीं, सारे योरप में एक नया ढंग निकला था और उसके पीछे था नया जमाना इण्डस्ट्रीज का, कारखाने का, विज्ञान का। और इसके जो नतीजे हुए, वे तो एक अच्छी चीज हुई थी और उसे अपनाने की हम कोशिश करते थे। लेकिन इसके अलावा भी ऊपरी चीजें हैं। थोड़े बड़े आदमी बड़ी बातों को देखते थे। और लोग तो छोटी बातों को ही देखते थे।

मैं अंग्रेजियत की बात कह रहा हूँ। तो मालवीयजी ने कोई विरोध इन बातों का भी नहीं किया था, हाँ अपना सारा वजन उन्होंने हिन्दुस्तानियत पर, भारतीयता पर डाला और तराजू के पलड़े को कुछ बराबर करने पर। उस समय भी बहुत सारे लोग थे, बड़े विद्वान् लोग थे, संस्कृति के बड़े पण्डित लोग भी थे, पर जहाँ तक मेरा विचार है, राजनीतिक नेताओं में, बड़े नेताओं में मालवीयजी ही शायद इस मामले में सबसे आगे थे। वे रोकते थे अंग्रेजियत की बाढ़ को, पर विरोध करके नहीं बल्कि अपने काम से, अपने विचारों से और कोशिश करते थे अपनी संस्कृति को बढ़ाने की।

इस सिलसिले में उनका सबसे बड़ा काम हुआ हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना। यह बड़ी भारी बात थी। विश्वविद्यालय के सामने उद्देश्य था, लक्ष्य था, आजकल के जमाने के विज्ञान और विज्ञान की औलाद यानी टेक्नालाजी, इण्डस्ट्री वगैरह को पुरानी भारतीय संस्कृति के साथ जोड़ना। एक माने में यह सबसे बड़ा काम था भारत के लिए। अब भी है, क्योंकि यह एक-दो रोज का काम तो नहीं है। एक तरफ पुरानी भारतीय संस्कृति है जिसको हमें अच्छी तरह समझना चाहिए। आखिर हम लोग उसी में ढले हैं और भारत इन सैकड़ों-हजारों बरसों से उसके साये में पला है। उसका असर हमारे रगोरेशे में है। उसमें कुछ खराबियाँ पैदा हुईं। पुरानी संस्कृति में नहीं, उसके बदलते हुए ढंग में। सब पुराने लोगों में, सभी पुरानी कौमों में ये बातें आ जाती हैं। उसमें भी खराबियाँ आयीं, लेकिन जो चीज असली उसमें थी, वह खरा सोना था। वह तो बेश-कीमती था, और भारत के लिए उसे भूल जाना एक तरह से अपने को भूल जाना है, क्योंकि उसी मिट्टी में हम पैदा हुआ और उसी से बने। उसे भूल जाय तो हमारी कोई जड़ ही नहीं रहती, जो बहुत आवश्यक बात है। लेकिन उसी के साथ उतनी ही आवश्यक बात यह है कि हम आजकल की दुनिया को समझें।

आजकल की दुनिया विज्ञान की है, अगर हम उसको नहीं समझते तो हम पिछड़ जाते हैं। उसको न समझने से हमारी आजादी चली गयी। आज हमारे सामने सबसे बड़ा प्रश्न यह है कि हम उसको समझ कर अपने देश की आर्थिक स्थिति को बढ़ायें, और उसे और अच्छा करें। तो, यदि आप इन दोनों पहलुओं को देखें, तो हमें दोनों की ही आवश्यकता महसूस होगी। हमारे देश के लिए दोनों ही आवश्यक हैं। एक उसमें खाली हो और दूसरा न हो तो हम नहीं चल सकते, बढ़ सकते। अगर पहली बात न हो। यानी हम अपना पुराना जमाना भूल जायें, तो जैसा मैंने आपसे कहा, हम बेजड़ के हो जाते हैं, हम एक नकली लोग रह जाते हैं। नकल करके कोई कौम बहुत बढ़ती नहीं, और बातों को हर कौम को सीखना है, जरूर समझना है, जोरों से सीखना है। कौमों के दरख्त कलम करके बहुत नहीं बढ़ते, साथ ही अगर हम खाली इसी बात पर विचार करें और आजकल की दुनिया, आजकल के विज्ञान वगैरह को न समझें, तो हम आज की दुनिया में खप नहीं सकते, दुर्बल रहते हैं, और कमजोर हो जाते हैं, अपनी आजादी को कायम नहीं रख सकते, अपने को खुशहाल नहीं बना सकते और हमारी आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं होती, क्योंकि दुनिया है विज्ञान की, और विज्ञान सारे ज्ञान का एक हिस्सा है। विज्ञान ने आदमी को बड़ी-बड़ी शक्तियाँ दी हैं—दी क्या हैं, ये शक्तियाँ तो प्रकृति की

हैं, लेकिन विज्ञान प्रकृति को अपनाता है और इससे उसकी ताकत बढ़ जाती है। इसलिए दोनों ही पहलू भारत को आगे बढ़ाने के लिए आवश्यक हैं। अगर इनमें से एक भी निकल जाता है तो यह एक पहिये की गाड़ी-जैसा हो जाता है।

मालवीयजी के सामने दोनों बातें थीं। बनारस विश्वविद्यालय के सामने उन्होंने दोनों लक्ष्य रखे, वही सवाल हम सबके सामने आज भी है। इन दोनों पहियों पर हिन्दुस्तान की गाड़ी तेजी से आगे चली। आज के नौजवान शिकायत करते हैं धीमी चाल की, जैसे हम नौजवान शिकायत करते थे कि ये पुराने लोग ढीले-ढाले हैं। उनमें उतना जोश नहीं है, उतनी हिम्मत नहीं है जितनी हम में हैं। हर जमाने में अपनी जवानी में लोग ऐसा ही समझते हैं। अगर आप उन लोगों का व्याख्यान पढ़ें जिन्होंने कांग्रेस शुरू की थी—चाहे दादा भाई नौरोजी के या और जो बड़े आदमी हुए या मालवीयजी के, तो कुछ आश्चर्य होता है कि कैसी धीमी आवाज से भाषण दिया करते थे ये लोग। पर लोग भूल जाते हैं कि वह समय क्या था, आबोहवा क्या थी, जिसको बदलने की कोशिश हो रही है। एक समय जो क्रान्ति हो, क्रान्ति के पीछे आवाज हो, कुछ दिनों बात वह क्रान्ति मामूली बात हो जाती है और आवाज धीमी लगने लगती है। उसकी जाँच करने के लिए हमें देखना होता है कि उस समय की हालत क्या थी, तभी हम सही अन्दाजा कर सकते हैं।

आजकल के समय का अन्दाजा करके दस-बीस-पचास बरस पुरानी बात से, इसके कोई मानी नहीं है, बात हमारी समझ में नहीं आयेगी। इस नक्शे को देखें फिर आप महसूस करें कि मालवीयजी ने कैसा नेतृत्व किया देश का, उनकी लीडरशिप कैसी थी, कैसे वे अगुवा थे हमारे राजनीतिक आन्दोलन के। उस वक्त हम शिकायत करते थे कि वे ढीले पड़ जाते थे, अब लोग मेरी निस्बत शिकायत करते हैं कि मैं ढीला पड़ जाता हूँ। अब तो मुझे खुद अनुभव हुआ है इस बात का, और अब मेरा अनुभव सही है। हो सकता है मेरे बारे में शिकायत सही हो। अपने को अन्दाज करना मुश्किल है, लेकिन मेरा मतलब यह है कि अगर मुमकिन हो तो आप जरा समझें उस जमाने की हवा को, अपने सामने उस जमाने के भारत का एक चित्र लायें और फिर समझें कि उसमें क्यों हो सकता था, और क्या हुआ? तब हमारे पुराने जो नेता थे, जिन्होंने इस देश की राजनीति को ढाला, कांग्रेस को बनाया, जैसा कुछ वह बाद में बनी, इसका अन्दाज कर सकते हैं और उनका आदर कर सकते हैं। मेरा विचार है कि कांग्रेस के पुराने नेताओं को, जिनमें बहुत ही बड़ों में पूज्य मालवीयजी थे, दुनियाँ के किसी गज से भी आप नापें, बहुत बड़ा पायेंगे।

वे बहुत बड़े आदमी थे जिन्होंने हिन्दुस्तान को ऐसे मौके से निकाला, वे बहुत बड़े थे, लियाकत थे, विचारों में, अपने बलिदान की शक्ति में। अलावा, इन सब बातों के इस बात में भी कि उन्होंने दूरान्वेशी से देखा, उन्होंने बनाया ही, बिगाड़ा नहीं बहुत सारे क्रान्तिकारी लोग बिगाड़ने की तरफ ज्यादा ध्यान देते हैं। उनके सामने अटकाव आते हैं जिनको हटाने, बिगाड़ने की ओर उनका ध्यान इतना हो जाता है कि बनाने की ओर उनका ध्यान कम हो जाता है—और हम मिसाल इसकी देख सकते हैं। और देशों में भी चाहें एशिया में या अफ्रीका में, हम देख रहे हैं कि बनाना ज्यादा कठिन काम होता है। बिगाड़ना भी कठिन काम होता है, फिर भी आसान होता है।

हमारे जो बड़े नेता थे, उनका ध्यान हमेशा बनाने की तरफ भी जाता था, खाली बिगाड़ने की तरफ नहीं। उनकी कोशिश यह होती थी कि जहाँ तक हो सके, सहूलियत से काम लिया जाय, यानी बहुत तोड़-फोड़ न हो, एक जमाने में दूसरे जमाने में। तो इसकी तो मालवीयजी एक खास मिसाल थे, वे बढ़ते ते, बदलने की कोशिश करते थे। वे एक महान् क्रान्तिकारी थे, इसमें कोई शक नहीं। लेकिन उनके सामने हमेशा बनाने की बात रहती थी, बनाने के सिलसिले में चीजें टूट भी जाती थीं और वे हटा दी जाती थीं। वे इससे घबराते नहीं थे—किसी चीज के टूटने में या झाड़ू देकर साफ कर देने में, लेकिन उनका खास ध्यान हमेशा बनाने की ओर रहा। खाली यही नहीं कि संस्थाएँ बनायी हों, बहुत सारी बनायीं उन्होंने, बल्कि उन्होंने भारत के लोगों को बनाया। वे चाहते थे कि भारत के लोगों में हिम्मत पैदा हो, उनका सिर उन्नत हो, उनमें अपने ऊपर भरोसा हो।

गाँधी जी ने कहा था कि चरखा चलाओ। अब बड़े-बड़े यूनिवर्सिटी के पण्डित उसका विरोध करें, कहें कि वैज्ञानिक जमाने में चर्खा चलाना क्या बात है, उनका अर्थशास्त्र से क्या ताल्लुक है—लेकिन आर्थिक नतीजा उसका चाहे जो भी हो, उसका नतीजा था और है। वह एक चीज थी आदमी बनाने की। आदमियों को काम दे दिया, जिसमें वो भी समझें कि हम भी इस महान् कार्य में भारत की आजादी के आन्दोलन में, भाग ले रहे हैं। और इससे भी लाभ होता था। समय को देखकर भी आप कह सकते हैं कि क्या चीज आगे ले जाती है? ऐसी कोई चीज जो आगे ले जाये, मगर जिसका सम्बन्ध टूट जाये आजकल के जमीने से, तो यह एक अलग चीज हो जाती है। उसका कोई ताल्लुक नहीं रहता आज के जमाने से। और अगर सम्बन्ध ऐसा हो कि आपका आगे बढ़ना रुक जाता है, तो उसका कोई नतीजा नहीं। आप कहाँ ले जा रहे हैं जनता को, यहाँ खास बात है? इसलिए लीडर को आगे भी बढ़ना है और अपना सम्बन्ध भी कायम रखना है। और लोगों को अपने साथ ले जाना है कदम-ब-कदम, कदम मिलाकर।

लीडर अगर बहुत आगे बढ़ जाये तो और लोग पीछे रह जायेंगे। उससे कोई लाभ कौम का, जनता का, नहीं होगा। इस तरह से आप जज कर सकते हैं जमाने को, उसके लीडर को। तो अगर हम इस गज से नापें और देखें कि कैसा सम्बन्ध रहा पूज्य मालवीयजी का अपने जमाने से और पुराने जमाने से, तब आप अन्दाजा लगा सकेंगे कि वे कितने महान् थे, कितने बड़े थे। और मालवीयजी तो आगे भी देखते थे, और लोगों को आगे ले जाते थे। इसमें कोई शक नहीं कि वे बहुत ही बड़े महापुरुष थे हमारे देश के। सारे देश को उनका गर्व है, लेकिन

जो इलाहाबाद के रहनेवाले हैं उनको तो खास गर्व होना चाहिए इस बात का कि ऐसा बड़ा आदमी पैदा हुआ, हमारे इस शहर में। और उनकी याद में श्रद्धांजलि पेश करनी चाहिए। सबसे बड़ी याद तो उनका बनारस का विश्वविद्यालय है। इससे बड़ी याद किसी की क्या हो सकती है? यह तो खास उन्हीं की चीज है। लेकिन पिछले सारे सत्तर बरस से ऊपर के हमारे राजनीतिक इतिहास में, भारत के इतिहास में, उनका नाम एक-एक चमकते हुए सितारे की तरह रोशन है। शुरु से ही कांग्रेस के और कितने भी और मैदानों में उन्होंने रौशन हिस्सा लिया और उसको चमकाया, आगे बढ़ाया।

एक हमारे आजकल के नौजवान हैं जो एक दूसरी दुनिया में हैं; जिनकी शायद समझ में ही नहीं आता, यह पूरी तौर से कि हमारी आजादी की लड़ाई में क्या हुआ, क्या नहीं हुआ? हाँ, कुछ कहानी सुनते हैं, किताबों में से कुछ थोड़ा-सा पढ़ भी लेते हैं लेकिन पूरी तरह से अनुभव नहीं कर पाते, वैसा जैसा वह जिसने आँख से देखा और जिन्होंने उस तजुरबे को हासिल किया। अच्छा हो अगर वे लोग कुछ ऐसे महापुरुषों को, जो हमारे बुजुर्ग हुए और जिनके बाद हम आये हैं, कुछ समझने की कोशिश करें कि वे क्या थे, क्या-क्या उन्होंने किया अपने जमाने में, कैसे उन्होंने हिन्दुस्तान को और यहाँ की जनता को, जो एक बड़े गढ़े में पड़ गयी थी, उसमें से निकाला?

हम बड़े-बड़े आर्थिक सवालों पर विचार करते हैं, पंचवर्षीय योजनाएँ बनाते हैं और क्या-क्या करते हैं, लेकिन आखिर में एक देश बढ़ता है इतना रुपये-पैसे से नहीं, रुपया पैसा भी काम आता है और उसकी जरूरत होती है, जितना इन्सानों से, कैसे किसिम-किसिम के लोग हैं वहाँ, किस क्वालिटी के लोग हैं, इससे बढ़ता है। और आप देखेंगे कि जो बहुत बड़े आदमी हमारे यहाँ हुए हैं, उनके सामने यह प्रश्न रहा है कि लोगों को कैसे उठाना है? एक मानी में लोग उठते हैं। उनके उठने का एक बड़ा तरीका है शिक्षा का, शिक्षा स्कूल, कालेज, यूनिवर्सिटी वगैरह की। वह तो है, लेकिन एक तरह की शिक्षा और होती है, स्कूल कालेज के अलावा। जो शिक्षा हम लोगों ने पायी, मेरे जमाने में लोगों ने पायी।

हमने राष्ट्रीय आन्दोलन में बड़ी जबर्दस्त शिक्षा पायी, क्योंकि वह चीज सीखने की थी। उसका पहला लक्ष्य यही नहीं था कि अंग्रेजों को, अंग्रेजी हुकूमत को हटायें यहाँ से यह उसका नतीजा था, और यह नतीजा मन में था, छिपा नहीं था, लेकिन असल चीज यह थी कि कैसे हिन्दुस्तान के रहने वालों को, विशेषकर दबे हुए लोगों को ऊपर उठाया जाय? मालवीयजी और गाँधीजी का ध्यान जाता था, हमेशा जाता था किसानों की तरफ, और उनकी तरफ जो सबसे नीचे के तबके के लोग हैं। कैसे इन लोगों का सिर ऊँचा हो, अपने पर भरोसा हो, मिलकर सहयोग से काम करें, सब लोगों का इस ओर ध्यान विशेषकर जाता था। क्योंकि, जैसा ये लोग कहते थे कि अगर हिन्दुस्तान में स्वराज्य आ गया और लोग तैयार न हुए तो वह निकल भी जायगा, रहेगा नहीं, लोग तैयार हैं तो स्वराज्य आ ही जायगा और कायम भी रहेगा।

तो इन सब लोगों के काम, गाँधीजी के या मालवीयजी के, भविष्य को देखते हुए थे। सब लोगों को बढ़ाना, ऊँचा करना, मजबूत करना उनको आपस में मिलकर काम करना सिखाना, इस तरह के एक ईंट, एक पत्थर लेकर इन महापुरुषों ने हमारे भारत के भविष्य को उज्ज्वल बनाने की कोशिश की, और बहुत-कुछ बनाया। उन्होंने बनाया था हम लोगों को जो दूसरी पीढ़ी के थे कि हम कुछ ज्यादा जोर दिखा सकें, लेकिन असल में तो काम उनका था। हमको मौका दिया कि हम कुछ कर सकें अपने जमाने में, जैसे कि अब के जो नौजवान हैं उनका आता है, वक्त आ गया है। ओर वे भी बहुत-कुछ करेंगे, उनके पीछे ये सब इमारतें बनी हुई हैं जिसे कि वे और आगे बढ़ायेंगे, खाली साफ मैदान में तो किसी जाति को काम करने को मिलता नहीं। हमारे पीछे जो हजारों बरस हैं, वो तो हैं, लेकिन हजारों बरस में अच्छा भी है, बुरा भी है। लेकिन इस वक्त तो 40-45 बरस का काम हमारे पीछे है, जिसने जो कुछ भारत इस वक्त है, उसे बनाया है। नये-नये सवाल उठते जाते हैं, जो उस तजुर्बे से लाभ उठा सकते हैं आज के लोग। और फिर अपनी अक्ल से और आजकल के जमाने को देखकर, उसको बढ़ा सकते हैं। यह कहानी तो कभी किसी देश की खत्म नहीं होती। उसका कोई अन्त नहीं है। वह तो बढ़ता ही जाता है, रोज-रोज, हमेशा के लिए।

ऐसे मौके पर जब हम याद करते हैं एक महापुरुष को, तो उसकी जीवनी से हम लाभ उठायें, सीखें। बहुत-कुछ हम सीख सकते हैं एक मानी में। दुनिया का इतिहास क्या है? बहुत बातें हैं दुनिया के इतिहास में, पर एक मानी में कहा जाय तो दुनिया का इतिहास दुनिया के जो बहुत ऊँचे तबके के लोग हैं उनकी जीवनियाँ हैं, वही इतिहास है। एक मानी में यह सही बात है। और बातें भी हैं, लेकिन असल में शायद सबसे जरूर बात यही है।

हमारे सामने जो कई ऐसी मिसालें हैं जिनसे हम सीख सकते हैं—आजकल के लोग, आजकल के नौजवान बहुत-कुछ सीख सकते हैं मालवीयजी के जीवन से। उनके सामने जो लक्ष्य था, जैसे उन्होंने काम किया और सफलता पायी इन सबसे। हम मूर्त्तियाँ खड़ी करें, संस्थाएँ बनायें, यह तो ठीक है, लेकिन आखिर में सबक सीखें उनकी जिन्दगी से, उनके काम से और सीखकर उसी रास्ते पर चलें, आजकल के जमाने में उसको लगाकर चलें और आगे बढ़ें, तो यही उनका सबसे बड़ा स्मारक हो सकता है। यह अच्छा है कि समय आया उनकी शताब्दी मनाने का काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पुराने और नये लोग सब फिर सोचें, विचार करें और सीखें कि वे क्या-क्या बातें थीं, जिनसे मालवीयजी इतने ऊँचे महापुरुष हुए, कैसे उन्होंने भारत की आजादी के रास्ते में, अपनी संस्कृति का आदर करने के रास्ते में, सबको बढ़ाया और यह कि उनके बतलाये रास्ते पर चलकर भारत की सेवा हम किस तरह करें और आगे बढ़ें?

◆

महामना का पावन विद्यामंदिर और उसका वर्तमान परिदृश्य*

डॉ. लालजी सिंह, कुलपति **

आज स्वतंत्रता दिवस के इस अवसर पर मैं अपने और विश्वविद्यालय परिवार की ओर से सभी को हार्दिक शुभकामनायें प्रेषित करता हूँ। आज के इस पुनीत अवसर पर हमें स्वतंत्रता की महान धरोहर को संजोने वाली विभूतियों का स्मरण एवं नमन करने का सौभाग्य मिलता है, जिन्होंने अपने त्याग एवं बलिदान से विश्व के इस महानतम एवं विशालतम जनतंत्र के निर्माण की परिकल्पना की एवं उसे मूर्त स्वरूप दिया। इस पुनीत अवसर पर स्वतंत्रता संग्राम के वीर सेनानियों व शहीदों का नमन एवं उनकी कुर्बानियों का स्मरण करते हुए मैं उनके प्रति अपनी भावभीनी श्रद्धांजलि अर्पित करता हूँ। मैं उन राष्ट्र नायकों को भी नमन करता हूँ जिनके तप एवं प्रयास से हमारे देश की लोकतांत्रिक गरिमा आज भी कायम है।

इस पावन अवसर पर हमें पूज्य मालवीय जी के देश प्रेम की स्मृति सहज ही होती है। राष्ट्र की स्वतंत्रता एवं निर्माण में अपना अप्रतिम योगदान देने वाले इस विश्वविद्यालय के संस्थापक एवं स्वतंत्रता संग्राम सेनानी महामना पंडित मदनमोहन मालवीय को भी नमन करते हुए श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ। भारत के पहले राष्ट्रपति डॉ0 राजेन्द्र प्रसाद ने अपने संस्मरणों में यह लिखा कि ''ऐसे कम ही लोग होंगे, जिनके दिल में भारतीय स्वतंत्रता के लिए ऐसी अनूठी लौ जलती थी जैसी मालवीय जी के दिल में।'' देश की स्वतंत्रता, राष्ट्र के गौरव की वृद्धि तथा जनता का सर्वांगीण विकास एवं उत्कर्ष उनकी देश सेवा के मुख्य लक्ष्य थे। इन्हीं उद्देश्यों की पूर्त्ति के लिए महामना द्वारा स्थापित इस विद्यामंदिर का भारतीय स्वतंत्रता संग्राम में अप्रतिम योगदान रहा है।

भारत के स्वंत्रता संग्राम के इतिहास में महामना एवं उनकी तपोभूमि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के योगदान को पढ़ते ही महामना के प्रति मन अपार श्रद्धा से भर जाता है। पूज्य महामना के राष्ट्र निर्माण में अद्वितीय योगदान के प्रति श्रद्धावान हो कर आज पूरा देश सन् 2012 को उनकी 150वीं जन्म जयंती वर्ष के रूप में मना रहा है।

महामना का यह सपना था कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के अध्यापक एवं विद्यार्थी भारत के सर्वांगीण विकास के लिए आगे आएँ। आज जिस गति से भारत विकास कर रहा है, निःसन्देह एक दिन एक महाशक्ति के रूप में वह अपनी पहचान स्थापित करेगा; परन्तु इस सपने को साकार करने के लिए देश को अपने सामने उपस्थित बेरोजगारी, आतंकवाद, काला धन, भ्रष्टाचार, नक्सलवाद जैसी अनेक विकराल समस्याओं से उबरना होगा।

हम लोगों को इससे निराश नहीं होना है, बल्कि विश्व के सबसे बड़े लोकतांत्रिक देश को इन समस्याओं से उबारने के लिए ठोस प्रयास करना होगा। विविधता में एकता ही हमारी ताकत है। खान-पान, रहन-सहन, भाषा-बोली अलग-अलग होने के बावजूद भी हमारी जड़ें इतनी मजबूत हैं कि हमारी राष्ट्रीयता पर कोई आँच नहीं आएगी।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को इस दिशा में पहल करनी होगी, प्रतिनिधित्व करना होगा, जिससे कि गरीब से गरीब लोगों का विकास हो सके और देश विकास के उच्चतम शिखर पर पहुँचे।

इक्कीसवीं शताब्दी ज्ञान की शताब्दी है। कला, मानविकी, चिकित्सा, शिक्षा, कृषि शिक्षा के विकास के साथ-साथ देश ने अंतरिक्ष और प्रौद्योगिकी के क्षेत्र में विश्व स्तर पर अपनी अलग पहचान बनायी है। परन्तु ज्ञान, विज्ञान और तकनीकी विकास दलित, पिछड़े और गरीबों के उत्थान के लिए होना चाहिए। इससे देश के किसान और मजदूर तथा महिलाओं और बच्चों की मदद हो सकती है।

भारत में उच्च शिक्षा के विकास में महामना एवं उनकी कर्मस्थली काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का बहुत बड़ा योगदान रहा है। स्वतंत्र भारत के विकास में महामना का यह शिक्षा मन्दिर आज भी अपना योगदान दे रहा है। अपने स्थापना काल से लगातार इस विश्वविद्यालय के कर्मठ एवं मेधावी पूर्व छात्रों, अध्यापकों एवं कुलपतियों ने विभिन्न उच्च पदों पर रहते हुए राष्ट्र निर्माण में अमूल्य योगदान किया है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के उच्च शिक्षा एवं राष्ट्र निर्माण में इसी योगदान को भारत सरकार ने स्वीकार करते हुए इसे राष्ट्रीय महत्व के संस्थानों (Institution of National Importance) की सूची में सम्मिलित किया है।

राष्ट्रीय महत्व के संस्थान होने के नाते राष्ट्र निर्माण के प्रति हमारा दायित्व और भी बढ़ जाता है। आज भारत में उच्च शिक्षा एक संक्रमण काल से गुजर रही है। एक ओर जहाँ गरीब तथा मध्यमवर्ग से आने वाले बहुसंख्य प्रतिभावान युवाओं को वर्तमान उच्च शिक्षा के संस्थानों में शिक्षा प्रदान करने की समस्या है, वहीं दूसरी ओर भारत की उच्च शिक्षा नीति में प्रस्तावित संशोधन द्वारा भविष्य में स्थापित होने वाले विदेशी विश्वविद्यालयों से प्रतिस्पर्धा करने एवं शिक्षा की गुणवत्ता में व्यापक सुधार करने की गम्भीर चुनौती भी हमारे सामने है। वर्तमान में उच्च शिक्षा की माँग व आपूर्ति में विशाल अन्तर को देखते हुए क्षमता वृद्धि का प्रयास निःसन्देह आवश्यक है, परन्तु उससे अधिक आवश्यक है, उच्च शिक्षा की गुणवत्ता में सुधार करके इसे विश्वस्तरीय बनाना। आज के बदलते वैश्विक परिदृश्य में उच्च शिक्षा की नयी चुनौतियों को समझते हुए भारतीय विश्वविद्यालयों एवं राष्ट्रीय महत्व के उच्च शिक्षण संस्थानों को आगे आकर समवेत और साझा प्रयास करने की जरूरत है।

सर्वविद्या की राजधानी और भारत के श्रेष्ठ विश्वविद्यालयों में से एक इस राष्ट्रीय महत्व के संस्थान—काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से राष्ट्र

---

* यह लेख मूलतः कुलपति जी के सम्बोधन (भाषण) पर आधारित है, जो स्वतंत्रता दिवस 15 अगस्त 2012 के पुनीत अवसर पर दिया गया था। —सम्पादक, 'प्रज्ञा' जर्नल।

** कुलपति, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

की अनेक अपेक्षाएँ हैं। इसीलिए विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इस विश्वविद्यालय को University with Potential for Excellence का दर्जा भी दिया है। उच्च शिक्षा की उभरती चुनौतियों का सामना और भावी समस्याओं का समाधान करने के लिए हमारे विश्वविद्यालय को आगे आना ही होगा। अतः आज आवश्यकता इस बात की है कि हमारे प्रबुद्ध शिक्षक, हमारे वैज्ञानिक और हमारे चिंतक यह विश्लेषण करें कि उच्च शिक्षा की इन चुनौतियों का सामना करने के लिए हम अपने अनुसंधान एवं शैक्षणिक कार्यक्रमों को कैसे और किस तरह परिमार्जित, संवर्धित और सुदृढ़ कर सकते हैं?

भूमण्डलीकरण एवं ज्ञान आधारित अर्थव्यस्थआ के दौर में उच्च शिक्षा की गुणवत्ता को वैश्विक मानकों के अनुरूप बनाने की एक बड़ी चुनौती हमारे सामने है और यह तभी सम्भव है जब हम उच्च शिक्षा की सामाजिक उपयोगिता में वृद्धि करते हुए कौशल आधारित समाजोपयोगी ज्ञानार्जन की ओर ले जायें। इसके लिए हमें औद्योगिक व शैक्षिक समुदाय के मध्य एक बेहतर तारतम्य स्थापित करने की आवश्यकता है। हम अपने पाठ्यक्रमों को इस तरह से परिमार्जित करें जो आज के औद्योगिक जगत के अनुरूप कौशल निर्माण में सक्षम हो। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का नव-उच्चीकृत भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान हमारे अन्य विभागों के साथ मिल कर इस दिशा में पहल करेगा, ऐसी हमारी अपेक्षा है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि आप सबके सम्यक और समवेत प्रयास से हमारा विश्वविद्यालय निःसन्देह उच्च शिक्षा की इन चुनौतियों का सामना करने में न केवल सफल होगा, वरन् अन्य भारतीय विश्वविद्यालयों के लिए एक मानदण्ड भी प्रस्तुत करेगा।

उच्च शिक्षा को जनोपयोगी एवं समाजोपयोगी बनाने के लिए आप सबके सम्मिलित प्रयास से विश्वविद्यालय ने Institute of Translational Research का प्रस्ताव विकसित किया है। विश्वविद्यालय का यह संस्थान विज्ञान और प्रौद्यागिकी के क्षेत्र में आधुनिक शोध को प्रयोगशाला से बाहर ला कर जनोपयोगी बनाने का कार्य करेगा जिसके माध्यम से बीमारियों के उत्पन्न होने से पूर्व ही उनका परिपूर्ण निदान एवं समुचित रोकथाम सम्भव हो सकेगा।

इसी प्रकार राजीव गाँधी दक्षिणी परिसर में Institute of Tribal and Genomic Medicine के स्थापना का भी विश्वविद्यालय प्रयास कर रहा है, जो न केवल वैज्ञानिकता की कसौटी पर कसे हुए गुणवत्ता युक्त पारम्परिक औषधियों के विकास का मार्ग प्रशस्त करेगा वरन् मॉलीक्युलर बायलाजी (Molecular Biology) की सहयता से कम मूल्य के वैज्ञानिक रूप से प्रमाणित आयुर्वेदिक औषधियों को विश्व समुदाय के समक्ष प्रस्तुत करने में सक्षम होगा। संक्रामक रोगों की रोकथाम संबंधी शोध के लिए दक्षिणी परिसर में एक Biological Containment Level Four Facility भी उपलब्ध कराने के लिए एक प्रस्ताव वित्तीय सहायता के लिए भेजा जा चुका है।

जनसामान्य को उच्च शिक्षा के अवसर प्रदान करने के लिए मिर्जापुर स्थित दक्षिणी परिसर को मुख्य परिसर की तरह सुदृढ़ करने की आवश्यकता है। मुझे यह बताते हुए हर्ष हो रहा है कि आप सबके सहयोग एवं सद्प्रयास से हम लोग दक्षिणी परिसर में आवासीय सुविधाओं को बढ़ाने के साथ-साथ शैक्षणिक कार्यक्रमों को भी संवर्धित एवं विकसित करने में सफल रहे हैं। इस सत्र से बी0 एस-सी0 एग्रीकल्चर का पाठ्यक्रम दक्षिणी परिसर में प्रारम्भ करने के साथ-साथ दो अतिरिक्त छात्रावासों का निर्माण भी किया जा रहा है। Faculty of Veterinary Science की स्थापना के लिए भी ठोस कदम लिए जा चुके हैं और सत्र 2013-14 में यह मूर्त रूप में आपके सामने होगा। इस परिसर में शुद्ध जल की उपलब्धता को सुनिश्चित करने के लिए स्थापित जल संशोधन प्लांट भी शीघ्र ही प्रारम्भ हो जाएगा।

यह विश्वविद्यालय अपने स्थापना काल से ही उच्च शिक्षा की सामाजिक उपादेयता के लिए कृतसंकल्प रहा है और आंचलिक स्तर के सामाजिक सरोकार से भी जुड़ा रहा है। इस दिशा में महिलाओं को उच्च शिक्षा के बेहतर अवसर प्रदान करने के लिए रायबरेली में महिला महाविद्यालय का एक दूसरा परिसर स्थापित करने की योजना है। सर सुन्दर लाल चिकित्सालय के माध्यम से हम उत्तर प्रदेश के साथ ही इससे जुड़े अन्य प्रांतों के मध्यवर्गीय एवं गरीब जनता के लिए कम मूल्य पर उच्च कोटि की चिकित्सकीय सुविधा प्रदान कर रहे हैं। परन्तु इस चिकित्सालय से जितनी चिकित्सकीय सुविधा की माँग है उसके सापेक्ष संसाधनों की कमी है। माँग और आपूर्त्ति के इस अन्तर को कम करने के लिए विश्वविद्यालय ने सायंकालीन पेड क्लिनिक को प्रारम्भ कर दिया गया है। प्रधानमंत्री स्वास्थ्य सुरक्षा योजना के अन्तर्गत बहुविषयी विभागों वाले Trauma Centre की स्थापना की गयी है और इसे शीघ्र ही प्रारम्भ किया जाएगा।

मैं अपने विद्यार्थियों से विशेष रूप से कहना चाहूँगा कि वह आज के बदलते वैश्विक परिवेश एवं चुनौतियों को समझें। भूमण्डलीकरण के इस दौर में वैश्विक परिवेश जिस गति से परिवर्तित हो रहा है, हमारे देश के विद्यार्थी अद्भुत प्रतिभावान होते हुये भी इन चुनौतियों का सामना करने में कठिनाई महसूस कर रहे हैं। अतः आप सभी इस विश्वविद्यालय के विद्वान एवं निपुण अध्यापकों के मार्गदर्शन में इन चुनौतियों का सामना करने के लिए स्वयं को आवश्यक कौशलों से युक्त करने का प्रयास करें। मेरे युवा साथियों! आप सभी से हमें बहुत आशायें हैं एवं आपकी योग्यता एवं कर्मठता पर मुझे पूर्ण विश्वास है। मैं चाहता हूँ कि इस विश्वविद्यालय के अध्ययनरत विद्यार्थी जब इस परिसर से बाहर कार्यक्षेत्र में जायें तो महामना के मानस पुत्र के रूप में और इस विश्वविद्यालय के राजदूत के रूप में जायें और नैतिकता एवं मानवीय मूल्यों से ओत-प्रोत अपने व्यक्तित्व तथा कौशल युक्त ज्ञान से समाज के उत्कर्ष एवं कल्याण के लिए कार्य करें।

◆

महामना की अन्तर्दृष्टि

प्रो0 रेवाप्रसाद द्विवेदी *

महामना पं0 मदन मोहन मालवीय जी का स्मरण एक सही सनातनधर्मी का स्मरण है। वे पढ़े-लिखे विद्वान्, वाग्मी और न्यायविद् भी थे, किन्तु सबसे पहले वे धार्मिक थे और धार्मिकों में भी पक्के सनातन वैदिक धर्मी थे। वे तीर्थराज प्रयाग में पैदा हुए, वहीं प्राथमिक से उच्चतम शिक्षा प्राप्त की और वहीं विधिवेत्ता भी बने। अंग्रेजी का बोलबाला तब भी था। उन्होंने इस विदेशी भाषा पर भी उत्तम अधिकार प्राप्त किया, किन्तु, यह भी सत्य है कि वे संस्कृत भाषा में भी विचार व्यक्त कर लिया करते थे। काशी की विद्वत्सभा में पं0 सत्यनारायण शास्त्री (वैद्यराज जी) के समक्ष वे संस्कृत में बोले और हमारे गुरु पं0 महादेव शास्त्री जी ने कहा कि उस संस्कृत भाषण में एक भी अशुद्धि नहीं हुई। स्मरणीय है कि मालवीय जी महाराज श्रीभागवत पर भी उत्तम प्रवचन करते थे। यह गुण उनका आनुवंशिक गुण था, उनके पूज्य पिताजी प्रयाग के त्रिवेणीतट पर श्रीभागवत का प्रवचन करते समय बालक मालवीय जी को अपने पास बिठाए रहते थे। उधर प्रयाग की 200 वर्षों से अधिक प्राचीन संस्कृत पाठशाला में उन्हें विद्यार्थी के रूप में पढ़ने का अवसर मिला ही था। अतः यह मानना स्वाभाविक ही है कि मालवीय जी का अंग्रेजी के ही समान संस्कृत पर भी पूर्ण अधिकार था।

महात्मा गाँधी ने राजनयिक स्वतन्त्रता का बीड़ा उठाया और मालवीय जी ने स्वतन्त्रराष्ट्र के पुनर्निर्माण में कुशल नवयुवकों के निर्माण का। एतदर्थ उन्होंने नए शिक्षा केन्द्र की कल्पना की। एक ब्रह्मचर्याश्रम उन्होंने हरिद्वार में स्थापित किया और अधिक व्यापक शिक्षा की व्यवस्था के लिए एक सोसायटी काशी में स्थापित की। बहुत बड़े अभियान के बाद 1916 में वे काशी विश्वविद्यालय की स्थापना में सफल हुए।

मैं 1950 में मध्यप्रदेश से पहली बार काशी आया था। वहाँ से काशी राजकीय संस्कृत महाविद्यालय बोर्ड की मध्यमापरीक्षा दी थी। मई मास की 8 तारीख को मैंने पहली बार काशी में परीक्षा फल देखा। मैं प्रथम श्रेणी में उत्तीर्ण था।

अब प्रश्न उपस्थित था आगे की पढ़ाई का। उसके लिए शास्त्री कक्षा में नाम लिखाना था। वह संभव था काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ही, क्योंकि मेरे पास मध्यमा उत्तीर्ण होने का कोई पक्का प्रमाण नहीं था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्कृत महाविद्यालय में जो साहित्यविभाग के अध्यक्ष थे, वे मुझे जानते थे अतः उन्होंने मेरे मध्यमा उत्तीर्ण होने के तथ्य को अन्यथा न मानकर मुझे शास्त्री कक्षा के प्रथम वर्ष में प्रवेश दे दिया। मध्यमा का प्रमाणपत्र वहाँ भेज दिया गया, जहाँ से मैंने मध्यमा का आवेदन पत्र भरा था, और वह वहाँ पहुँचकर कहीं गुम गया। मुझे वह देखने को भी नहीं मिला, किन्तु मेरी पढ़ाई बाधित नहीं हुई। यह प्रभाव किस विशेषता का था? यह प्रभाव था काशी का, जिसके लिए मालवीय जी ने अन्य किसी नगर को नहीं, अपितु काशी को विद्यालय का केन्द्र बनाया। लॉ और धर्म में यही अन्तर है। धर्म सहिष्णु होता है और लॉ कठोर अनुशासन। मैं आज भी यह प्रमाणित नहीं कर सकता कि मैं मध्यमा उत्तीर्ण हूँ, किन्तु हूँ मैं स्नातक और आचार्य हिन्दू विश्वविद्यालय का।

काशी को विद्याकेन्द्र बनाने का मुख्य लक्ष्य था, उसके प्रत्येक स्नातक के आचार में सनातन धर्म की प्रतिष्ठा। मालवीय जी के आचारपक्ष में उसकी पूरी प्रतिष्ठा थी। वे सदा सावधान रहे और कहीं भी उसका उल्लंघन नहीं किया। मालवीय जी को मुसलमान-जनता ने खुलकर वोट दिये और उसका कारण बतलाया उनकी अपने धर्माचरण की दृढ़ता। सभा-सोसायटी के बाद जल-जलपान की व्यवस्था आम रिवाज़ है। उसमें भाग मालवीय जी ने नहीं लिया और तर्क यह दिया कि वे धर्म से हैं ब्राह्मण, अतः उसकी व्यवस्था के अनुसार पहले स्नान करेंगे, फिर सन्ध्योपासना करने के बाद अपने हाथ का बना अन्न ग्रहण करेंगे। उनकी इस दृढ़ता को समझदार मुसलमानों ने गुण के रूप में लिया और उन्हें एक आदर्श और विश्वसनीय नेता माना।

काशी में दोनों की विधाएँ पढ़ाई जाती थी, नवीन भी और प्राचीनतम भी। मालवीय जी को गीता का भी अभ्यास था। उसमें इन्हें परा और अपरा कहा गया है। अपरा का अर्थ था आधुनिक विद्याएँ, किन्तु, परा का अर्थ था अध्यात्मविद्या। वह भी उपनिषदों और प्राचीन शास्त्रों में। वे सब हैं लिखित संस्कृत में और संस्कृत का मुख्य केन्द्र था काशी। इस कारण मालवीय जी ने चुना काशी का गंगातट, संस्था बनाई तो पहले पहल बनाया आर्ट्स कॉलेज। तब संस्कृत कॉलेज कमच्छा की रणवीर पाठशाला में चलता था। बाद में विश्वविद्यालय परिसर में उसे चलाया गया आर्ट्स कॉलेज के भवन में, किन्तु प्रातःकाल। बाद में उसे रुइया छात्रावास के ऊपर स्थान दिया गया। अन्त में 1947 में माननीय बिरलाजी के द्वारा निर्मित नवीन भवन में उसे स्थानान्तरित किया गया। उसी के पिछले परिसर में भारत कला भवन का भवन खड़ा किया गया और उसके शेष भवन में बनाए दो शिल्प-केन्द्र विद्यालय। किन्तु, पूरा भवन नंगा था। उसमें न बैठने की व्यवस्था थी, न मनुष्य शरीर के लिए आवश्यक अन्य सुविधाओं की। ये सुविधाएँ सुलभ हुईं अभी अभी। अभी यानी डॉ0 कृष्णकान्त शर्मा

* इमेरिटस प्रोफेसर (संस्कृत), 28, महामनापुरी कालोनी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

के संकायप्रमुखत्व में तब जब कुलपति पद पर कार्यरत थे डॉ0 पंजाब सिंह। किन्तु इस भवन के सभाभवन में ध्वनियंत्र अभी तक सफल नहीं है। दूसरे इस संकाय के ग्रन्थागार को केन्द्रीय ग्रन्थागार में स्थानान्तरित कर दिया गया और कालान्तर में वहाँ से कला संकाय के संस्कृत विभाग में, जिसके कारण अनेक दुर्लभ ग्रन्थ विलुप्त हो गए, पहले वे थे। डॉ0 पंजाब सिंह ने उसे व्यवस्थित करने पर वहाँ के अध्यापकों को लगाया। उन्होंने परिश्रम किया भी, किन्तु ग्रन्थागार अपनी पुरानी गरिमा प्राप्त नहीं कर सका। संस्कृत ग्रन्थागार काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ही चार केन्द्रों में बिखरा हुआ है—

1. रणवीर संस्कृत पाठशाला, कमच्छा
2. संस्कृत संकायभवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय
3. कला संकाय स्थित संस्कृत विभाग और
4. भारत कला भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

इनमें है हस्तलिखित प्राचीन ग्रन्थों का भी दुर्लभ संग्रह। काशी के रईस बाबू हरिश्चन्द्र (भारतेन्दु जी) का विशाल भवन और नागरी प्रचारिणी सभा भी संस्कृत पाण्डुग्रन्थों के केन्द्र थे। संस्कृत विश्वविद्यालय का सरस्वती भवन तो हस्तलिखित ग्रन्थों का विश्व भर में प्रसिद्ध केन्द्र था भी और है भी। इनके अतिरिक्त यहाँ सांगवेद विद्यालय और स्याद्वाद जैन विद्यालय जैसे अन्य केन्द्र भी हैं जिनमें ग्रन्थागार हैं। पार्श्वनाथ विद्यापीठ भी अतिप्राचीन केन्द्र है संस्कृत ग्रन्थों का। कतिपय विशिष्ट विद्वानों के व्यक्तिगत ग्रन्थागार भी काशी की विभूति थे। इनमें काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के हिन्दी विभागाध्यक्ष पं0 केशव प्रसाद जी मिश्र संस्कृत के प्राचीन ज्ञान कोष के समृद्ध और सुलझे पण्डित थे। उनका अपना विशाल संग्रह भारत कला भवन को दिया गया। उधर भारतेन्दु के परिवार ने भी अपना संग्रह कला भवन को प्रदान कर दिया, श्री रायकृष्ण दास जी के माध्यम से। हिन्दू विश्वविद्यालय के कलाभवन के पाण्डुग्रन्थों का ही फल है कि मैं 1970 से 2007 तक कालिदासग्रन्थावली के संपादन कार्य में लगा रहा और उसका व्यवस्थित संस्करण हिन्दी अनुवाद के साथ सुलभ हो सका। इस कार्य का आरम्भ स्वयं पं0 मदनमोहन जी मालवीय की इच्छा से हुआ था सं0 2000 वि0 के आते आते। तब विक्रमादित्य के संवत्सर के 2000 वर्ष पूर्ण होने जा रहे थे, अतः उसकी स्मृति में काशी के पं0 सीताराम जी चतुर्वेदी ने एक 'कालिदासग्रन्थावली' संवत् 2001 में अर्थात् ई0 सं0 1944 में छपाई। मूल्य केवल 5/- रू0 था जबकि ग्रन्थावली की पृष्ठ संख्या 1000 से अधिक थी। इसके कई संस्करण भिन्न भिन्न रूपों में छपते रहे। 1976 में हमारी ग्रन्थावली छपी और उसमें भी मूल्य रखा गया 11.50, जिसपर 15% कमीशन भी था। ई0 सं0 1978 में प्राप्य यह ग्रन्थावली अत्यधिक लोकप्रिय हुई। संस्कृत का पाँचवा विश्व सम्मेलन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ही रखा गया। उस अक्सर पर उपर्युक्त ग्रन्थावली भी केवल 5/- रू0 मूल्य पर सुलभ कराई गई।

कालिदास के संस्करणों की कमियाँ खलती गईं और व्यापक स्तर पर काशी से त्रिवेन्द्रम तथा अहमदाबाद के हस्तलिखित ग्रन्थ देखे जाते रहे। पर्याप्त संशोधन समझ में आए और 1986 में कालिदासग्रन्थावली का द्वितीय अतिविशिष्ट संस्करण छपा जिसमें पाठान्तरों का जखीरा सुलभ था। प्राकृत भी अव्यवस्थित थी। अनुवाद भी अपेक्षित था। विदेश यात्राओं से भी पर्याप्त सहायता मिली, और उज्जैन की कालिदास अकादमी से इसी कालिदासग्रन्थावली का हिन्दी अनुवाद सहित तृतीय संस्करण छपा। उसको आधार बनाकर डॉ0 सदाशिवकुमार द्विवेदी ने कालिदास शब्दानुक्रम कोश का एक प्रोजेक्ट विश्वविद्यालय अनुदान आयोग से प्राप्त किया। उसकी पूर्त्ति इस वर्ष 24 अप्रैल को हुई। पाँच वर्षों में 'कालिदासशब्दानुक्रमकोश' का तैयार होना महामना जी के संकल्प की ही पूर्त्ति थी।

धर्म का वास्तविक स्वरूप–

इस अवधि में विश्व को जो जो मुद्दे विचारार्थ मिले उनमें एक मुद्दा धर्म का भी था। मालवीय जी कांग्रेस के अध्यक्ष अनेक बार बने, परन्तु, धर्मनिरपेक्षता से दूर रहे। वे धर्म शब्द का वास्तविक अर्थ जानते थे। हमने उसका संक्षेप इस प्रकार कर लिया—

धर्म का लक्षण—'यमा धर्मः। धर्म है यम। अर्थात् यमराज ही है धर्मराज। यहाँ यम का अर्थ मृत्यु का देवता नहीं, अपितु योगशास्त्र के अष्टाङ्ग योग का प्रथम अङ्ग था—

यम-नियमाऽऽसन-प्राणायाम-प्रत्याहार-धारणा-ध्यान-समाधयोयोगः॥ (2.29 योगस्. पतञ्जलि)

इनमें यम होते हैं पाँच–**अहिंसा-सत्याऽस्तेय-ब्रह्मचर्या-परिग्रहा यमाः।** (2.29 योगसूत्र)

अर्थात् सभी भूतों के साथ किसी भी प्रकार और किसी भी स्थिति में द्रोह न करना है अहिंसा। सत्य है वही बोलना जो मन में हो अर्थात् छल न करना। अस्तेय का अर्थ किया गया अनधिकृत वस्तु को न छूना। रास्ते में कोई बहुमूल्य वस्तु पड़ी मिले तो उसे भी न छूना। क्यों? इसलिए कि अवश्य ही वह किसी और की वस्तु है, जिसे वह भूल गया है। इसके आगे जो मुख्य तत्त्व है वह है ब्रह्मचर्य। ब्रह्म का मुख्य अर्थ है वीर्य। उसका क्षरण ब्रह्महत्या होगी। अन्त में अपरिग्रह। 'अ'-यानी आवश्यकता भर, परिग्रह यानी संचय। किसी भी वस्तु का आवश्यकता से अधिक संग्रह न करना है अपरिग्रह।

ये ही है विश्वजनीन धर्म। बौद्धों, जैनों और वैदिकों ने इन सिद्धान्तों का समान रूप से पालन किया। यही था विश्वजनीन मानवीय आचार। धर्म को भी 'आचार'-रूप कहा गया। इस आचार के इसी मार्ग पर चलने का परिणाम है कि व्यक्ति से लेकर राष्ट्र तक का अस्तित्व सुरक्षित है। फलतः यम ही है धर्म।

यमों के पालन में कुछ नियमों की भी आवश्यकता पड़ती है। ये भी पाँच हैं—**शौच-संतोष-तपः-स्वाध्याये-श्वरप्रणिधानानि नियमाः।** (2.32 योगसूत्र)

अर्थात् स्नानादि जनित शुचिता, मानसिक संतोष, तप (ग्रीष्म शैत्यादिजनित क्लेश को सहना) स्वाध्याय यानी वेद का जो भाग जिसके लिए निर्धारित है उसका पाठ और यह ध्यान रखना कि कोई ईश्वर नामक महासत्ता भी है जो हमें देख रही है।

उक्त यम और नियम चित्तवृत्तिरूप हैं। मालवीय जी अपने स्नातकों को इन्हीं तत्त्वों में पक्का बनाना चाहते थे। यही थी शिक्षा में उनकी अन्तर्दृष्टि।

उक्त आचार की शिक्षा जिस भाषा में थी वह थी वेद वेदाङ्गों की संस्कृत भाषा। उसका केन्द्र भी काशी ही थी। यहाँ धार्मिक अनुष्ठान का वातावरण भी था। फलतः मालवीय जी महाराज को प्रयाग से काशी आना आवश्यक लगा। उन्हें शत शत प्रणाम।

◆

"मेरा विश्वास है कि मनुष्य जाति के इतिहास में सबसे उत्कृष्ट ज्ञान और अलौकिक शक्ति-सम्पन्न पुरुष भगवान श्रीकृष्ण हुए हैं। मेरा दूसरा विश्वास यह है कि पृथ्वी-मण्डल की प्रचलित भाषाओं में उन भगवान श्रीकृष्ण की कही हुई भगवद्गीता के समान छोटे वपु में इतना विपुल ज्ञानपूर्ण कोई दूसरा ग्रन्थ नहीं है।"

– मदन मोहन मालवीय

(उद्धृत–'कल्याण' भाग-4, अंक-1, संवत् 1986)

परम भागवत मालवीय जी महाराज की स्मृति में

प्रो. महेन्द्र नाथ राय *

इस धरती पर सभी का अवतरण साभिप्राय होता है। जो अपने अवतरण के अभिप्राय के बारे में गंभीरता से सोचते रहते हैं, आत्म-चिंतन करते रहते हैं, वे स्वभावतः महान् अस्तित्व महान् अस्तित्व से जुड़ जाते हैं। परमात्मा की जिस पर विशेष कृपा होती है, वे महान् कार्यों के लिए उसे निमित्त बना लेते हैं। यही नहीं उन कार्यों को संपादित करने के लिए अपने कृपा-पात्र को समुचित अभिनिवेश, योग्यता, सामर्थ्य एवं दृढ़ संकल्पशीलता भी प्रदान करते हैं। महामना ऐसे ही भाग्यशालियों में अग्रगण्य थे। उनकी जड़ें भारतीय संस्कृति और साधना में बड़ी गहरी थीं। उन्हें ज्ञान-समृद्ध एवं समुन्नत पारिवारिक विरासत मिली थी। देश और काल के प्रति वे आरंभ से ही अत्यन्त जागरूक थे। ध्यातव्य है कि महामना के युग में राष्ट्रीय स्वाधीनता आंदोलन की लड़ाई अनेक मोर्चों पर लड़ी जा रही थी। इस आंदोलन के बहुस्तरीय नेतृत्व-वर्ग से महामना के आत्मीय सम्बंध थे और सभी महामना को सम्मान की दृष्टि से देखते थे। भारतीय राजनीति को धार्मिक और आध्यात्मिक मान-मूल्यों से समन्वित करने वाले महात्मा गाँधी हों या आधुनिक भारतीय साहित्य को नवजागरण की चेतना से स्पन्दित करने वाले रवि बाबू हों–सभी महामना के साहचर्य में कुछ क्षण बिताकर आह्लादित होते थे, क्योंकि महामना शैक्षणिक और सांस्कृतिक स्तर पर नये भारत को रच रहे थे, पूर्व और पश्चिम के बीच एक सेतु बना रहे थे, आने वाला भारत जिस पर टिकने जा रहा था। वे नई पीढ़ी के व्यक्तित्व को सर्वोत्तम ढंग से गढ़ने का प्रयत्न कर रहे थे।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय महामना की देशभक्ति का ऐसा जीता-जागता स्वरूप है, ऐसा मूर्तिमान विग्रह है, जिससे जुड़कर अपने-अपने क्षेत्रों में देश-दुनिया के बड़े लोग और बड़े हो जाते हैं, उनका काया-कल्प हो जाता है। इस विश्वविद्यालय का परिवेश इतना अभिमंत्रित है कि यहाँ अपने जीवन का कुछ समय बिताकर लोग कृतार्थता का अनुभव करते हैं। महामना हमेशा से इस विश्वविद्यालय की केन्द्रीय धुरी रहे हैं। इस विश्वविद्यालय की चर्चा के प्रसंग में उनके पावन व्यक्तित्व एवं कृतित्व का स्मरण हो उठना स्वाभाविक है।

महामना का पूरा व्यक्तित्व निसर्गतः एक बड़े लक्ष्य को समर्पित था। उनके जीवन का प्रत्येक क्षण उनके सुविचारित जीवन-दर्शन के क्रम में बीतता था। अपने गन्तव्य को लेकर उन्हें कभी द्विधा न होती। लक्ष्य और दिशा की सुनिश्चितता के समानांतर उनके सभी कर्म साधु ढंग से आत्मविश्वासपूर्वक सम्पन्न होते। उनकी प्रीतिकर अभिव्यक्ति सभी को आह्लादित करती। वे अत्यन्त मधुर बोलते, उनकी वाणी में मधु की मिठास थी, उन्हें सुनने को जनसमुदाय हमेशा उत्कंठित बना रहता। वे मितभाषी थे, नाप-तौल कर सीधे और सरल ढंग से बोलते, हमेशा अर्थ-गर्भ बोलते। शिशु-से सरल उनके व्यक्तित्व में मिथ्याचरण के लिये किसी तरह का अवकाश था ही नहीं। उन्होंने अपने ऊपर कम-से-कम और हमेशा पवित्र कमाई का व्यय किया, अपव्यय से हमेशा दूर रहे। भोग-विलास और स्वेच्छाचार को अपनी शिक्षण-संस्था में उन्होंने हमेशा वर्जित किया। विद्यार्थियों को उन्होंने हमेशा पुत्रवत् माना और उन्हें शारीरिक, मानसिक और आत्मिक रूप से परिपुष्ट बने रहने को प्रेरित किया। उनका व्यक्तित्व स्फटिक की तरह पारदर्शी था। जो भी उनके संसर्ग में आता, उसका बाहर-भीतर आलोकित हो उठता। उनसे किसी का कुछ भी न छिपता। वे हमेशा इस विश्वविद्यालय के प्राणियों के लिए प्रकाश-स्तम्भ बने रहे। उनमें विश्वविद्यालय के अध्यापक, छात्र-छात्राएँ, कर्मचारी, भृत्य और अदने-से-अदने जीव-जंतु तक एक परमवत्सल, परमकारुणिक, परमहितकारी संरक्षक पाते, जो उनके लिए कामधेनु, कल्पतरु एवं चिन्तामणि सदृश होता। उनके दरवाजे से कोई भी रिक्तहस्त न लौटता। वे सबकी सुनते, सबके मन की रखते। यह दूसरी बात है कि उनके सामने जाते ही अनुचित और अवांछित के लिए किसी के मन में अवकाश ही नहीं रह जाता।

मालवीय जी महाराज ने कभी भी देवाधिदेव बाबा विश्वनाथ का अपने जीवन में विस्मरण नहीं किया। वे हमेशा धर्मसमर्थित आध्यात्मिक जीवन जीते हुए परमात्मा का निमित्त बनकर ऐतिहासिक महत्त्व के कार्य करते रहे। वे राष्ट्रीय आन्दोलन की सक्रिय राजनीति में भी रहे, सामाजिक-सांस्कृतिक आंदोलनों में हाथ बँटाते रहे और नई पीढ़ी के मानसिक क्षितिज और तेजस्वी चरित्र को गढ़ते रहे। अकारण नहीं है कि राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय स्तर के बड़े से बड़े विचारक, मनीषी और वैज्ञानिक मालवीय जी के शिक्षा-सत्र में हिस्सा लेकर अपने को गौरवान्वित महसूस करते रहे। ध्यातव्य है कि अस्तिकता इस देश के मनीषियों की सबसे बड़ी शक्ति रही है। इस देश में महान से महान क्रांतियाँ धर्म और अध्यात्म का आश्रय लेकर संभव हुई हैं। मालवीय जी जीवनपर्यन्त महान् अस्तित्व के बोध से जुड़े रहे। उनका विश्वास था कि यह जीवन अंतिम जीवन नहीं है। मनुष्यता की सेवा में उन्हें फिर इस धरती पर आना है। इसलिए वर्तमान जीवन को हमेशा साभिप्राय, स्वच्छ और आलोकित बनाये रखना है। पुनर्जन्म की धारणा स्वयं में अत्यन्त सकारात्मक और प्रकाशधर्मी होती है। चूँकि हमें फिर इस धराधाम पर लौटना है, इसलिए जीवनपर्यन्त यह प्रयास करना है कि अपने आस-पास के वातावरण को हम प्रेम, आत्मीयता, सेवा और सदाचरण की सुगंध से भरा-पूरा छोड़कर यहाँ से विदा लें और फिर जब यहाँ लौटें तो हमारा शुभ और प्रीतिकर कार्य ही हमारा स्वागत करता मिले।

---

* प्रमुख, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

मालवीय जी का व्यक्तित्व हर तरह से भरा-पूरा था। वे भारतीय संस्कृति और साधना का मर्म समझते थे। भारतीय वाङ्मय में उनकी गहरी पैठ थी। गीता, रामायण, श्रीमद्भागवत, वेद, उपनिषद्-सबमें वे पारंगत थे। इनका उन्हें तलस्पर्शी ज्ञान था। संस्कृत, अंग्रेजी और हिन्दी में उनकी बहुत अच्छी गति थी। अपनी वाग्मिता के लिये वे जाने जाते थे। उनका व्यक्तित्व अत्यन्त सरस था। सुन्दर भावपूर्ण संगीत, नृत्य, कला, चित्रकारी आदि उन्हें भावपूर्ण मनःस्थिति में ला देते थे, समाधिस्थ कर देते, सहजता प्रदान करते। उनकी थकान मिटा कर उन्हें पुलकित कर देते। इसीलिये प्रोफेसर नार्लीकर ने लिखा है–

"Pandit ji called me to his residence at about 9 p.m.– Some time in 1938. He was bed-ridden in his inner room. As I entered, the visitors were leaving' the last one, a professor hurrying away. Pandit ji welcomed me and muttered, "No music for conspirators" Then he turned to the visiting musician to proceed with his devotional songs. The Ganhacharya, Shri Tripathi ji and the मृदंगाचार्य (मन्नूमहाराज) were there.[1]

महामना में मातृ-भूमि के प्रति उत्कट अनुराग था। प्रो. वासुदेवशरण अग्रवाल का मानना था–"जो इस देश का विराट् चिंतन है, जो यहाँ का शिष्टाचार प्रधान महान् कर्म है, जो इस देश की उत्कृष्ट संस्कृति है और नाना प्रकार की भाषाओं, धर्मों और जनों से भरी हुई जनपद और काननों वाली भूमि है, उन सबका प्रतीक भक्ति और सेवा का मूर्त रूप ही मालवीय जी का व्यक्तित्व था। उन्होंने हमेशा अंधकार को हटाकर प्रकाश की स्थापना के लिये संघर्ष किया। वे युगपुरुष थे। ज्ञात होता है कि सहस्त्रों वर्ष के अनंतर इस प्रकार का प्रज्ञाशील व्यक्तित्व इस धरती पर सनातन धर्म के क्षेत्र में उत्पन्न हुआ था। लगता था मानो उनके रूप में सनातन धर्म ने ही जन्म ले लिया हो। उन्होंने कितना सोचा, कितना कहा और कितना किया–इसका लेखा-जोखा असंभव-सा है। वे जो कुछ करते-वह साहित्य ही होता था। प्राचीन ऋषियों के समान अर्थ उनकी वाणी का अनुगामी था। प्राचीन साहित्य और धर्म में उनकी अनुपम आस्था थी। वे भागवतमय हो गये थे। भागवत और महाभारत का वे जन्म-भर पारायण करते रहे। कहना न होगा कि कोई भी व्यक्ति जो इस विश्वविद्यालय से संबंधित है, वह सनातन भागवत धर्म के आदर्शों पर चलकर उनके मन के समीप पहुँच सकता है।"[2] महामना की गंगा, गऊ और गायत्री में अद्भुत निष्ठा थी। वे जिस धर्म के अनुयायी थे, उसका मूल ईश्वर था।

मालजीय जी बहुमुखी प्रतिभा से सम्पन्न ऐसे कर्मयोगी थे, जिनका अवदान अनेकस्तरीय था। राजनीति के कुटिल समझे जाने वाले परिवेश को महात्मा गाँधी की तरह ही मालवीय जी ने भी शुचिता और निर्मलता प्रदान की। उन्होंने नई पीढ़ी के मन-मस्तिष्क को अभिनव दंग से रचने के लिए जनता में सत्शिक्षा के सत्र चलाए। उनके हिन्दू विश्वविद्यालय के सदस्य अपनी सांस्कृतिक पहचान रखते थे। महामना के ममतालु व्यक्तित्व की अनेकशः कहानियाँ हैं। उनका अन्तर्जगत् राधाकृष्णमय था। उनकी संतानों के नाम इसका साक्ष्य प्रस्तुत करते हैं। महामना का मन और मानस विराट् था। उन्होंने हमेशा बड़े स्वप्न देखे। विश्वंभर की अपरिमित कृपा पर उनका अनन्य विश्वास था।

सभी को विदित है कि राष्ट्रीय स्वाधीनता की लड़ाई सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक अनेक मोर्चों और स्तरों पर लड़ी गई थी। 19वीं सदी के उत्तरार्द्ध के अनेक समाज-सुधारक, सांस्कृतिक अग्रदूत, राजनेता, अर्थशास्त्री, साहित्यकार, कलाकार अपने-अपने स्तरों पर राष्ट्रीय मुक्ति की यह लड़ाई लड़ रहे थे। सभी पराधीनता से मुक्ति के अभिलाषी थे। साम्राज्यवाद और सामंतवाद के चंगुल से वे मुक्त होना चाहते थे। ध्यातव्य है कि राष्ट्रीय स्वाधीनता के संघर्ष के दिनों में भारत एक भौगोलिक इकाई न होकर भारतमाता के रूप में कल्पित था। इसीलिये ऋषि अरविन्द राष्ट्रीयता और देशप्रेम को आध्यात्मिक भाव-भूमि का दर्जा देते थे। ऐसे ही परिवेश में इस देश को प्रज्ञा और चेतना के स्तर पर संस्कारित करने के लिये महामना ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना का संकल्प लिया, जिसमें पूरब और पश्चिम की सभी विद्याओं, ज्ञान-परंपराओं, तकनीक-प्रविधियों का सामंजस्य हुआ था। महामना के इस विश्वविद्यालय ने राष्ट्र को सभी क्षेत्रों में ऐसे व्यक्तित्व-सम्पन्न मनीषी, विचारक और वैज्ञानिक प्रदान किये, जिन्होंने आधुनिक प्रगतिशील राष्ट्र की रचना की। इस संसार में सभी दानों में विद्या-दान का अभूतपूर्व महत्त्व है, जिससे हमारा अज्ञानरूपी अंधकार सदा-सदा के लिये मिटता है और हमारे ज्ञान-नेत्र खुलते हैं। सभी जानते हैं कि इस संसार का सबसे बड़ा कष्ट अज्ञान के चलते है। महामना ने पूरे विश्व से इसी अज्ञान के उन्मूलन का स्वप्न देखा और उस स्वप्न को सत्य के रूप में चरितार्थ किया।

महामना का सब कुछ महद् था। मन-चित्त, स्वप्न-कल्पना-सब कुछ। वे छोटा सोच ही नहीं सकते। उन्होंने इस विश्वविद्यालय को अपने समय में अपने-अपने क्षेत्रों में पारंगत विद्वान और आचार्य प्रदान किये, जो सदाचार और संयम की प्रतिमूर्ति थे, करुणा और परदुःखकातरता के मूर्तिमान् विग्रह थे, चरित्र के धनी थे और अपने पारस व्यक्तित्व से उन्होंने अपने शिष्यों का बौनापन सदा-सदा के लिये मिटा दिया था। महामना का वही विश्वविद्यालय है जिसके मानमूल्य आज के प्रदूषित वातावरण में संकटापन्न हैं। आज के भौतिक परिवेश में, देहाश्रयी चेतना के युग में आज शिक्षा-जगत् के समक्ष सबसे बड़ी चुनौती व्यक्तित्वसम्पन्न स्नातकों के रचाव की है, जिनमें सदाचरण, मर्यादा, संयम और परदुःखकातरता हो, जिनमें चरित्र का बल हो, जिनमें अपने व्यक्तित्व की टेक हो। कौन नहीं जानता कि यदि शिक्षा-संस्थानों में शिक्षक समर्थ-व्यक्तित्व से सम्पन्न होंगे तो उनके द्वारा शिक्षित और संस्कारित विद्यार्थी भी मन और मस्तिष्क से पूरी तरह वयस्क (मेच्योर्ड) होंगे। ऐसी स्थिति में समाज बहुत सारी तात्कालिक आपदाओं से बच जायेगा। यदि समाज का बहुसंख्यक हिस्सा आहार-विहार, व्यवहार-आचरण, सोच-संवेदना में मर्यादित होगा, उसमें शिष्टता और परिष्कार होगा तो वह

शारीरिक और मानसिक रूप में निरुज और निरामय होगा। ऐसी स्थिति में मनोरोगों में स्वभावतः कमी आ जायेगी। तब शिक्षित स्वस्थ समाज को डॉक्टर, वकील और पुलिस की कम-से-कम आवश्यकता पड़ेगी। जब लोग अपनों को दूसरों की स्थिति में निक्षेपित कर निर्णय लेना शुरू कर देंगे तो स्वाभाविक रूप से लोगों के सोच-विचार और व्यवहार में शिष्टता और सभ्यता स्वयमेव आती चली जायेगी। महामना ऐसी ही मूल्याधारित शिक्षा के हिमायती थे। आकस्मिक रूप से वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में रविवासरीय गीता-व्याख्यान-माला का सत्र आयोजित न कराते, श्रीमद्भागवत का पाठ करने के लिये स्वयं व्यासगद्दी पर विराजमान न होते थे। उनका मानना था कि ईश्वर के ध्यान से मनुष्य में शुद्ध कर्मयोग के संस्कार जन्म लेते हैं। जो भीतर से पवित्र और निर्मल होगा, जिसमें आस्तिकता का बल होगा, वही वैयक्तिक और सामाजिक स्तर पर अपने कर्तव्यों का सही ढंग से निर्वाह भी कर पायेगा।

आज पश्चिम की भौतिक सभ्यता की नकल करते हुए हमारे समाज में उपभोक्तावादी मनोवृत्ति को बढ़ावा मिलता जा रहा है, जिसके चलते हमारे आस-पास लोभ-लालच, क्रूरता-हिंसा बढ़ी है तथा किसी भी तरह से मनचाहे को हासिल कर लेने की मानसिकता बनी है। जो है, लोग उससे संतुष्ट नहीं हैं। अधिक-से-अधिक संग्रह करना चाहते हैं। लोभ-लालच के चलते कदाचार को बढ़ावा मिल रहा है। यही कारण है कि सामाजिक और आर्थिक स्तर पर समाज के कुछ लोग भले अतिशय समृद्ध बने हों, सुविधा-सम्पन्न बने हों, पर नहीं भूलना चाहिए कि उसी के समानांतर अशांति और असंतोष से भी घिर गये हैं।

यह सब अपनी भारतीय संस्कृति और उसकी श्रेष्ठ परंपराओं की अवमानना के चलते ही हमारे जीवन में घटित हो रहा है। त्यागपूर्वक ग्रहण करना हम भूल गये हैं। यह जगत् परमात्मा का है, बल-बुद्धि-विद्या जो कुछ हमारे पास है, वह प्रभु से ही प्राप्त है–इसका कभी भी हमें विस्मरण नहीं होना चाहिए। मालवीय जी महाराज का यह शिक्षा-संस्थान-काशी हिन्दू विश्वविद्यालय इतना पवित्र है कि कहते नहीं बनता। उसके परिसर में महान् आचार्यों की साधनापूत श्वासें रसी-बसी हैं, उनके पावन और मंगलमय विचार आद्यन्त व्याप्त हैं–बस एक बार अपने को खाली कर उन्हें अपने में भर लेने की कला आनी चाहिये। क्या हम इतना भी नहीं कर सकते?

◆

मालवीय जी का व्यक्तित्व *

मुकुट बिहारी लाल

ईश्वरभक्ति और देशभक्ति मालवीय जी के जीवन के दो मूल मन्त्र थे। इन दोनों का उत्कृष्ट संश्लेषण, ईश्वरभक्ति का देशभक्ति में अवतरण, तथा देशभक्ति की ईश्वरभक्ति में परिपक्वता उनके व्यक्तित्व का विशिष्ट सद्गुण था। उनकी धारणा थी कि ''मनुष्य के पशुत्व को ईश्वरत्व में परिणत करना ही धर्म है। मनुष्यत्व का विकास ही ईश्वरत्व और ईश्वर है''[1], और निष्काम भाव से प्राणिमात्र की सेवा ही ईश्वर की सच्ची आराधना है। इन सब की साधना ही उनकी जीवनचर्या थी, इसकी सिद्धि ही उनका जीवनलक्ष्य था। उनका सारा जीवन मनुष्यत्व की भावना से अनुप्राणित, ईश्वरत्व की भावना से ओत-प्रोत था। उनकी देशसेवा निष्काम उपासना की भावना, तथा लोक-कल्याण की कामना से समन्वित और अलंकृत थी। वे निःसन्देह मनुष्यता की उत्कृष्ट अभिव्यक्ति थे।

मालवीय जी उच्चोकटि के तपस्वी थे। सात्विक तप के सब सद्गुण उनमें विद्यमान थे। वे श्रीमद्भागवतगीता में वर्णित कायिक, वाचिक और मानसिक तप के साधक थे। सब प्रकार के द्वन्दों को सहन करते हुए निष्काम भाव से, फल की इच्छा त्याग कर शम-दम से सम्पन्न होकर, श्रद्धा और धैर्य के साथ मन, वाणी और शरीर से प्राणिमात्र की सेवा में सदा संलग्न रहना ही उनकी तपश्चर्या थी। काम-क्रोध-लोभ-मोह से बचना, सदा शुद्ध संकल्पयुक्त रहना, किसी विषय वृत्ति के कारण विक्षिप्त हो जाने पर उस पर विजय प्राप्त करना, व्यवहार काल में छल-कपट, धोखा और फरेब से अपने को दूर रखना उनका मानसिक तप था। असत्य, दुःखदायी, अप्रिय और खोटे शब्दों का त्याग, तथा प्रिय, सत्य मीठे और मधुर शब्दों का प्रयोग उनका वाचिक तप था। दूसरों की सहायता और सेवा करना, देश और जाति के लिए अपने शरीर के दुःख और कष्ट की परवाह न करना उनका शारीरिक तप था।

मालवीय जी धर्मनिष्ठ धर्मज्ञ थे। धर्म में उनकी अचल श्रद्धा थी, धर्म के मूल सिद्धान्तों का उन्हें अच्छा ज्ञान था, वे ही उनके जीवन के आधार थे। वे नित्य विधिपूर्वक पूजा पाठ करते, शास्त्रविहित आचार का पालन करते, श्रीमद्भःगवत तथा श्रीमद्भगवतगीता आदि ग्रन्थों का अध्ययन करते, पारलौकिक विषयों पर भी समय मिलने पर चिन्तन-मनन करते, धर्म का प्रसार करते, तथा सदा लोककल्याण में एवं देश के अभ्युदय में संलग्न रहते। उन्हें स्वर्ग और मोक्ष दोनों पर विश्वास था। पर वे इन दोनों में से किसी की कामना नहीं करते थे। वे तो चाहते थे कि वे तप्त प्राणियों के कष्टों का निवारण करें, सत्य और न्याय को प्रतिष्ठित करें एवं देश की सेवा करें, और इन सबके लिए फिर जन्म लें।

देशभक्त

मालवीयजी उच्च कोटि के देशभक्त थे। वे अनेक प्रकार के दुःखों, संकटों और कष्टों को सहन करते हुए तथा नाना प्रकार के विघ्नों का मुकाबला करते हुए सदा देशसेवा में लग रहते थे। देश की स्वतंत्रता, राष्ट्र के गौरव की वृद्धि तथा जनता का सर्वाङ्गीण उत्कर्ष उनकी देशसेवा के मुख्य लक्ष्य थे। वे सब जातियों, सम्प्रदायों और प्रान्तों के भारतीयों को मिलाकर भारतीय राष्ट्र का निर्माण करना चाहते थे। वे एक ही समय में विभिन्न प्रकार के सेवा-कार्यों में संलग्न रहते थे।

उनका कार्यक्षेत्र निःसन्देह बहुत ही विस्तृत और व्यापक था। समाजसेवा का कौन ऐसा काम होगा जो उन्होंने न किया हो। सनातन धर्म का प्रचार, प्राचीन संस्कृति का समर्थन, हिन्दू हितों की रक्षा, हिन्दी का प्रसार, देश की स्वतंत्रता, गौ की सेवा, सामाजिक कुरीतियों का विरोध, स्वयंसेवकों का संगठन, नाना ज्ञान-विज्ञान की वृद्धि, शिक्षा का विस्तार, मल्लशालाओं का उद्घाटन, दीनों के कष्टों का निवारण, स्त्रियों का उत्कर्ष, हरिजनों का उत्थान, समाज की आर्थिक उन्नति, लोकतांत्रिक मर्यादाओं की प्रतिष्ठा, देशप्रेम पर आश्रित राष्ट्रीय भावना की पुष्टि, प्रगतिशील सिद्धान्तों का प्रतिपादन, देश कालानुकूल संस्कृति का विकास, नवयुग का निर्माण आदि सभी क्षेत्रों में उन्होंने महत्वपूर्ण योगदान किया। दैवी सम्पत्तियों से विभूषित जीवन को उन्होंने समाजसेवा में लगाया, और समाजसेवा द्वारा उन्होंने अपने जीवन को उठाया, अपने व्यक्तित्व का विकास किया।

उनका विचार था कि जो मनुष्य अपने व्यक्तित्व को समाज के पीछे रखता, समाजसेवा करते समय निजी हित की दृष्टि से कोई ऐसा काम नहीं करता जिससे समाज की हानि हो, वह समाज को ऊँचा उठाता है, और समाज की उन्नति के साथ-साथ अपने व्यक्तित्व का विकास करता है। पर जो मनुष्य अपने को समाज के आगे रखता है, अपने निजी हित पर समाज के हित को न्यौछावर करता है, उसका नैतिक पतन होता है, उसका व्यक्तित्व नीचे गिरता है। उनकी धारणा थी कि जो काम ''अविवेक से दूसरों को हानि पहुँचाने, दिल दुखाने, द्वेष और शत्रुता से किया जाता है, वह तामसी है'',[2] ''जो काम अपनी स्तुति, पूजा, प्रतिष्ठा और मान के लिए किया जाता है, वह राजसी है।''[3] इस प्रकार के कामों से, उनके विचार में, लाभ के बजाय हानि होती है, कार्यकत्ताओं में ईर्ष्या और द्वेष उत्पन्न होता है, और कार्य संभलने के बजाय बिगड़ जाता है, उनके नैतिक जीवन का विकास भी अवरुद्ध हो जाता है। पर ईर्ष्या और द्वेष से मुक्त निष्काम भावना से की गयी सेवा कार्यकर्त्ताओं के जीवन को निर्मल करती है, ऊँचा उठाती है, तथा

---

* आभार : यह लेख श्री मुकुट बिहारी लाल की पुस्तक ''महामना मदन मोहन मालवीय : जीवन एवं नेतृत्व'' पेज नं0 577-597 से लिया गया है।

सामाजिक कार्यों की समुचित सफलता में सहायक होती हैं। मालवीय जी निःसन्देह निःस्वार्थ समाजसेवी थे।

सात्त्विक सार्वजनिक जीवन

निष्काम भाव से अनुप्राणित मालवीयजी के कार्य का ढंग भी निराला था। वे सदा सार्वजनिक कामों में लगे रहते, और उन सबको बड़े पैमाने पर करते थे। पर जैसा कि पुरुषोत्तम दास टंडनजी ने बताया, ''यश की उन्हें चाह नहीं थी'', वे ''काम स्वयं करते थे'', पर कीर्त्ति और यश के लिए दूसरों को आगे कर देते थे।[4] वे दूसरों की समाजसेवा का आदर करते, और समाज की सेवा में उनकी हिम्मत बढ़ाते थे। अपने साथियों पर वे सदा विश्वास करते, उनके प्रति सद्भावना रखते, और उनके सहयोग और परामर्श की कद्र करते थे। उनका बहुत-सा समय साथियों के साथ विचार-विमर्श में ही खर्च होता था। वे छोटों की बात को भी धीरज और ध्यान से सुनते, और उनकी बतायी अच्छी बात को खुशी-खुशी ग्रहण करते, और उसके लिए उनकी सराहना करते थे। वे समाज सेवकों के यश से खुश होते थे, और सबके साथ मिलकर काम करते थे। वे सात्त्विक विरोध का आदर करते, पर बेकार के कटाक्ष और तिरस्कार की उपेक्षा करते थे। वे वितंडावाद से कोसों दूर भागते थे। किसी की निन्दा करना या किसी के अपयश का बखान करना वे बुरा समझते थे। वे विपक्षी के सात भी प्रेम, धैर्य और नम्रता से बात करते, विरोधियों के अपशब्द को सुनकर भी उनके लिए कोई बुरी बात कहे बिना विरोध का मुकाबला करते, और यदि कोई दूसरी बुरी बात कहता, तो उसे मना करते थे। इस तरह वे अपनी ओर से वाद-विवाद और विरोध को व्यक्तिगत द्वेष और ईर्ष्या का स्वरूप न देकर मतभेद के स्तर तक सीमित रखते थे। वे वास्तव में विरोध के समय भी मेल का दरवाजा खुला रखते थे। विरोध पक्ष की अच्छी बातों को भी ग्रहण करने को तैयार रहते थे, उसकी समाज-सेवा की भी मुक्त कण्ठ से प्रशंसा करते थे। यदि किसी एक बात में वे किसी का विरोध करते, तो दूसरी बात में उसके साथ मिलकर काम करने में उन्हें कोई हिचक नहीं होती थी। जैसा कि स्वामी श्रद्धानन्द ने अपने एक संस्मरण में कहा है : ''दलबन्दी कर नेता बनने की इच्छा से वे (मालवीय जी) कोसों दूर थे। वह जो कुछ करते, उसमें देशभक्ति और सेवाभाव सर्वोपरि रहता था।''[5] उनकी तबियत ऐसी थी कि जब ''राष्ट्रीयता और राष्ट्रीय विचारों को धक्का लग रहा हो, तब वह उसको बर्दाश्त नहीं कर सकते थे।''[6]

जनसाधारण की सेवा

जमींदार, व्यापारी, राजे-महाराजे सभी मालवीय जी का आदर करते, उन्हें पूजनीय समझते, और उनके निर्माण कार्यों में उनकी सहायता करते थे। वे भी उन सबसे प्रेम से मिलते थे, उनका भला चाहते थे। पर उनका हृदय दीन दुःखी जनता के साथ था। जनता का उत्थान वे राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक समझते थे, और उसके लिए सब कुछ करने को तैयार थे। राजाओं को उनकी यही सलाह थी कि वे अपनी प्रजा की समुचित रक्षा और कल्याण वृद्धि को ही अपना कर्तव्य समझें, कालानुसार अपनी शासन-व्यवस्था में सुधार करके संबैधानिक व्यवस्था प्रतिष्ठित करें, तथा सम्पूर्ण भारत से अपने सम्बन्ध दृढ़ करें। रजवाड़ों में संबैधानिक प्रतिष्ठित करने की चर्चा जब कभी मालवीय जी करते थे, तब ब्रिटेन की शासन-प्रणाली की तरह शासन-व्यवस्था की स्थापना ही उनका लक्ष्य होता था। वे चाहते थे कि राजे-महराजे अपनी इच्छा से अपने अधिकारों को सीमित कर जनता के प्रतिनिधियों को शासन का उत्तरदायित्व हस्तान्तरित कर दें, राजकोष के एक निश्चित सीमित अंश का ही अपने निजी खर्च में प्रयोग करें, जनता के प्रतिनिधियों द्वारा स्वीकृत संविधान द्वारा न्याय का शासन प्रतिष्ठित करें, जनता के मौलिक अधिकारों की रक्षा की समुचित व्यवस्था करें, तथा प्रजा की अभिवृद्धि ही शासन का लक्ष्य निर्धारित करें।

इसी तरह सेठ साहूकारों से घनिष्ठ सम्बन्ध कायम रखते हुए भी उन्हें जनता के हितों तथा सार्वजनिक जीवन की पवित्रता का सदा ध्यान रहता था। इन बातों को ध्यान में रखते हुए जहाँ उन्होंने देश की औद्योगिक उन्नति के लिए देशज उद्योगों के लिए वित्तीय संरक्षण का समर्थन किया, वहाँ मजदूरों के हितों और अधिकारों की समुचित व्यवस्था की माँग को पुष्ट किया, प्रतिज्ञाबद्ध श्रम-प्रणाली का विरोधकिया, इकरारनामे के उल्लंघन पर श्रमिकों तथा कर्जदारों को कैद की सजा देने की व्यवस्था की कड़ी आलोचना की, तथा सन् 1921 में सेठ साहूकारों को चेतावनी दी कि यदि श्रमिक जनता के कल्याण की ओर समुचित ध्यान नहीं दिया गया तो कम्यूनिज्म के प्रभाव को कानून द्वारा नहीं रोका जा सकेगा। जब सन् 1930 में सरकार के दबाव पर बम्बई के औद्योगिकों ने आयात शुल्क विधेयक की उन धाराओं को भी स्वीकार कर लिया उन्हें मालवीयजी राष्ट्र-हित-घातक समझते थे, और उनका ध्यान आकृष्ट किया गया कि बम्बई से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को बहुत आर्थिक सहायता प्राप्त होती है, तब उन्होंने केन्द्रीय असेम्बली में स्पष्ट तौर पर कह दिया कि वे राष्ट्रहित पर सौ विश्वविद्यालय न्यौछावर करने को तैयार हैं, पर राष्ट्र-हित-विरोधी बात को धन के लोभ से स्वीकार करने को तैयार नहीं।[7] इसी तरह जब एक रईस ने उन्हें पचास हजार रुपये की हुंडी भेजकर उनसे अनुरोध किया कि वे सरकार से उसका कोई स्वार्थ सिद्ध करा दें, तब उन्होंने उस हुंडी को लौटाते हुए कहला भेजा कि 'मैं वही करूँगा जो उचित होगा।'[8]

उन्होंने मालगुजारी के स्थायी बन्दोबस्त का समर्थन करने के साथ ही साथ जमींदारों के व्यवहारों पर प्रतिबन्ध लगा कर किसानों के अधिकारों की रक्षा तथा उनके हितों की बुद्धि पर जोर दिया। उनकी धारणा थी कि ''इस देश में हमारी सहानुभूति का किसानों से अधिक कोई हकदार नहीं।''[9]

उन्होंने मांग की कि किसानों पर लगान का बोझ कम किया जाय, लगान की व्यवस्था को भी स्थायी बनाया जाय, और उनकी दयनीय दशा को सुधारने का प्रयत्न किया जाय।[10] 'अभ्युदय' के सम्पादकीय विभाग को उनकी हिदायत थी कि ''उसमें किसानों के हितों की बातें अधिक हों, किसान बड़े ही दुःखी हैं और उनके दुःखों के आगे

जमींदारों का जरा भी लिहाज न करो''।[11] मालवीय जी चाहते थे कि किसानों को कांग्रेस में शामिल होने के लिए प्रेरित किया जाय, उनके प्रतिनिधियों को बिना शुल्क कांग्रेस के अधिवेशनों में शामिल किया जाय, उनमें राजनीतिक चेतना पैदा की जाय। जैसा कि जवाहरलाल नेहरू ने अपने भाषण में बताया, ''मालवीय जी और गांधी जी का ध्यान हमेशा जाता था किसानों की तरफ, और उनकी तरफ जो सबसे नीचे तबके लोग हैं—क्योंकि जैसा ये लोग कहते थे कि अगर हिन्दुस्तान में स्वराज्य आ गया और लोग तैयार न हुए तो वह निकल भी जायगा, रहेगा नहीं। लोग तैयार हैं तो स्वराज्य आ ही जायगा और कायम भी रहेगा।''[12] जनजीवन का उत्थान, पीड़ितों के कष्टों का निवारण, जनता के अधिकारों की रक्षा और वृद्धि मालवीयजी के सार्वजनिक कार्यों का अवश्य ही एक प्रमुख लक्ष्य था।

करुणा और सौहार्द

करुणा और सौहार्द मालवीय जी के जीवन के जौहर थे। अपने भृत्यों और पार्श्ववर्त्तियों के प्रति भी उनका व्यवहार कोमल, मधुर और अनुग्रहपूर्ण होता था। वे बहुत कष्ट सहते हुए भी अपने नौकरों के आराम का ध्यान रखते, तथा अपने कारण उन्हें कष्ट नहीं होने देते थे। इस सम्बन्ध में पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने बताया कि एक बार पटना के प्रसिद्ध वृजबिहारी चौबेजी ने मालवीय जी को एक काढ़ा पीने की सलाह दी। उसे तैयार करके ठीक समय पर पिलाने के लिए नौकर को प्रातःकाल चार बजे उठना पड़ता था। उसे इतना कष्ट देना अनुचित समझ मालवीय जी ने काढ़ा पीना ही बन्द कर दिया। जब दस-पन्द्रह दिन के बाद नौकर को कारण का पता चला, तब उसने उसका प्रबन्ध किया। रामनरेश जी के एक प्रश्न के उत्तर में मालवीयजी ने उनसे कहा कि ''रामनरेश जी, हम तो गरीब आदमी है। इससे गरीब के प्रति हमारी सहानुभूति स्वाभाविक है। नौकरों को मैं कुटुम्ब से भिन्न नहीं समझता। मेरे यहाँ नौकर के साथ जैसा व्यवहार होता है, वैसा धनी परिवारों में भी नहीं होता''।[13] रामनरेशजी ने स्वयं लिखा है : ''मुझे घूमने का तो बहुत मौका मिला है और मेरा परिचय राजा से लेकर साधारण गृहस्थ तक प्रायः हरेक श्रेणी और हरेक सुरुचि के लोगों से है, पर नौकरों के प्रति जैसी आत्मीयता मैंने मालवीय जी में देखी, वैसी यहाँ के पहले कहीं देखी नहीं थी। प्रायः अधिकांश मालिक अपने नौकरों के प्रति उदासीन और कहीं-कहीं क्रूर दिखाई पड़े और कहीं तो नौकर ही मालिक बन बैठे हैं। पर यहाँ स्वामी और नौकर का अद्भुत ही रूप देखा।''[14]

मालवीय जी के सुपुत्र गोविन्द जी ने एक बार डॉ0 आनन्द कृष्ण को एक साधारण पड़ोसी के प्रति मालवीय जी के सौहार्द और करुणा की एक अद्भुत् बात बतायी। गोविन्द जी ने बताया कि जब मालवीय जी भारती भवन में रहकर ही वकालत करते थे, तब एक सज्जन जो बगल में रहते थे अपना मकान बेचने के लिए मालवीय जी के पास आये। पर उन्होंने मकान खरीदने के बजाय उसे कुछ रुपये उधार दे दिये। व्यापार में अधिक घाटा हो जाने के कारण उस पड़ोसी को अपना मकान मालवीयजी के हाथ बेचना ही पड़ा। फिर भी मालवीय जी ने उस मकान पर अपना अधिकार न जमा कर उसे उसके पुराने मालिक के कब्जे में रहने दिया। पर पड़ोसी को यह बात ठीक नहीं लगी। उसने मकान खाली करके मालवीय जी को उसका कब्जा देने की ठान ली। उसके आग्रह पर कब्जे की तिथि निश्चित हो गयी। तब मालवीय जी की धर्मपत्नी मकान देखने गयीं। वहाँ उन्होंने देखा कि एक स्त्री सामान बाँधती जा रही है, साथ-साथ रोती भी जा रही है। रोने का कारण पूछने पर उसने बताया कि ''बहिन, अपना घर है, छोड़ते दुःख होता है''। जब धर्मपत्नी जी ने मालवीय जी से इसकी चर्चा की, तब उन्होंने मकान के पुराने मालिक को बुलाकर कहा कि तुम्हारा मकान तुम्हारे पास ही रहेगा। इस पर उसने इनकार किया, पर मालवीय जी टस से मस नहीं हुए और मकान उसके पास ही बना रहा।

मालवीय जी की करुणा नौकरों और पड़ोसियों तक ही सीमित नहीं थी। सभी गरीब समान रूप से उसके अधिकारी थे। उनके घर पर दीन-दुःखियों की भीड़-सी लगी रहती थी। उन सबके लिए उनका दरबार सदा खुला रहता था। उन्हें उनके पास आने से कौन रोक सकता था? यदि उनका कोई पुत्र रोकने का प्रयत्न करता, तो वे कहते कि जब तक वे इस घर में हैं, तब तक तो दीन-दुःखी इस घर में आयेंगे ही। यदि बाबू शिवप्रसाद गुप्त कमरे पर पहरा लगा देते या स्वयं पहरा देने लगते, तो मालवीय जी पेड़ के नीचे जाकर बैठ जाते, और वहाँ सबसे मिलने लगते। आखिर इन सब पहरेदारों को हार माननी पड़ती। ऐसा लगता था मानों उन्होंने गजेन्द्रमोक्ष की कथा को अपने जीवन में पूरे तौर पर चरितार्थ कर लिया था। यदि उनके सामने कोई असह्य संकट उपस्थित होता, तो वह गजेन्द्र की तरह विलाप करते हुए उससे छुटकारे के लिए भगवान् से प्रार्थना करते, और वे स्वयं कृष्ण की तरह दुःखियों के कष्टों को दूर करने के लिए दौड़ते फिरते। उनका सारा जीवन इस प्रकार की घटनाओं से भरा पड़ा है।

बाबू पुरषोत्तमदास टंडन ने अपने संस्मरण में लिखा है कि ''प्रयाग में गंगा तट पर माघ का मेला था। कड़ाके की सर्दी थी। रात का समय था। पानी बरसने वाला था जिसके कारण बहुत से साधनहीन यात्रियों को बड़ा कष्ट होने की सम्भावना थी। बस, मालवीयजी टण्डनजी को लेकर टाल पर पहुँचे, लकड़ियाँ खरीदीं, कुछ उन्होंने अपने कन्धे पर रखीं और अपने दूसरे साथियों की सहायता से बहुत-सी लकड़ियाँ मेले में ले जाकर वे ''साधुओं के यहाँ, गरीबों के यहाँ, जिनके पास सहारा नहीं था, उनको बाँटने लगे।''[15] इसी तरह एक दूसरे अवसर पर माघ मेले में आग लगती दिखाई दी। वह तुरंत ही धोती पहने ही आग बुझाने दौड़ पड़े। इस भावना से अनुप्राणित मालवीय जी सन् 1919 में पंजाब हत्याकाण्ड के तुरंत बाद पंजाब गये और वहाँ उन्होंने कई मास दुःखी जनता की सेवा की, उन्हें ढाडस बँधाया, साहस प्रदान किया।

स्वामी श्रद्धानन्दजी ने अपने संस्मरण में लिखा कि सन् 1919 में अमृतसर कांग्रेस के अवसर पर एक दिन इतनी वर्षा हुई कि

प्रतिनिधियों को तम्बुओं में नहीं टिकाया जा सका। उनका प्रबन्ध नगर-निवासियों के घरों में करना पड़ा, ''रेलवे पर हमारे विनम्र और सीधे सादे नेता पण्डित मदन मोहन मालवीय बराबर बने रहे, भूखप्यास की चिन्ता न कर एक घोड़ा की तरह उस समय तक काम करते रहे, जब तक कि अन्तिम मेहमान भी अपने नियत स्थल पर रवाना नहीं हो गया।''[16]

मालवीय जी ''अद्वितीय वक्ता'' थे। उनके भाषणों में जैसा कि सच्चिदानन्द सिन्हा ने बताया : ''अनमोल दानशक्ति के साथ-साथ प्रभावकारी माधुर्य और गम्भीरता का अनुपम सम्मिश्रण रहता था।''[17] वे सदा व्यक्तिगत कटाक्ष से निर्मुक्त तथा युक्तियुक्त विचारों, सद्भावनाओं और सदादर्शों से परिपूर्ण होते थे। ऐतिहासिक तथ्यों और प्रमाणों से परिपुष्ट, तथा साहस और सौजन्य, विवेक और मनुष्यता, करुणा और शौर्य, एवं युक्तियुक्त तर्क और भाषा की पवित्रता से अलंकृत उनके बहुत से भाषण वाग्मिता के उच्च उदाहरण थे। अंग-विक्षेप के बिना घंटों धारा-प्रवाह के साथ भावनाओं से परिपूर्ण प्रभावशाली भाषण देते रहना मालवीय जी की वाग्मिता का विलक्षण गुण था। उनकी आकर्षक आकृति, उनका शील और सुमधुर स्वर उनकी निर्भीकता और स्पष्टवादिता, उनका देशप्रेम, सत्य के प्रति उनकी दृढ़ निष्ठा, एवं उनकी निष्कपट भावुकता सोने पर सुहागे का काम करती थीं, उनकी वाक्पटुता लोगों को चमत्कृत कर देती थीं। उन्होंने अपने लम्बे सार्वजनिक जीवन में अपनी वाक्शक्ति को कभी भी अपने सार्वजनिक प्रतिद्वन्द्वियों की वैयक्तिक निन्दा में नहीं लगाया। प्रभावशाली व्याख्यान द्वारा प्रतिद्वन्द्वी के यश और कीर्त्ति को मिट्टी में मिला देने की बात उन्होंने कभी सोची ही नहीं। हानिकर नीतियों और कार्यों की निर्भीक और कड़ी आलोचना के साथ ही साथ सबके प्रति सद्भावना तथा सौहार्दवृद्धि की कामना उनका वाग्मिता का लक्षण था। ''उनके मुख से दूसरों के लिए सदा मिठास टपकती थी।''[18] सन् 1886 में पच्चीस वर्ष की आयु में कांग्रेस के दूसरे अधिवेशन में प्रतिनिधि-प्रथा के पक्ष में दिया गया उनका भाषण निःसन्देह उच्चकोटि की वाग्मिता का उच्चतम उदाहरण है। इसी तरह जैसा कि डॉ0 सच्चिदानन्द सिन्हा ने कहा है, ''पंजाब हत्याकाण्ड के सम्बन्ध में दिये गये मालवीय जी के भाषण वास्तव में बहुत ही उच्चकोटि की विवेचना शक्ति के उत्कृष्ट उदाहरण हैं।''[19] श्री एन0 सी0 केलकर ने जो मालवीय जी के साथ सन् 1924 से सन् 1930 तक केन्द्रीय असेम्बली के सदस्य थे, ठीक ही कहा है कि ''वाग्मिता और वाक्पटुता में वह (मालवीय जी) कभी-कभी उस ऊँचाई पर पहुँच जाते थे जिसकी असेम्बली का कोई दूसरा सदस्य आकांक्षा भी नहीं कर सकता था।''[20] फिर भी यद्यपि जनता उनके लम्बे भाषणों को भी बहुत उत्सुकता से सुनती थी, सुविज्ञ राजनीतिज्ञों की सभा में सुपरिचित बातों का विस्तृत विश्लेषण उनकी वाक्पटुता की गम्भीरता को कम कर देता था।

सद्भावना

लोक-सेवा में संलग्न सहयोगियों के प्रति सद्भावना तथा विश्वासपूर्ण व्यवहार उनके चरित्र का विशिष्ट सद्गुण था। वे सदा प्रतिष्ठा का ध्यान रखते थे और उनके व्यवहार या व्यक्तित्व की कड़ी आलोचना उन्हें व्यथित करती थी। वे गोपनीय विचार-विमर्श को गुप्त रखना मानव का पुनीत कर्त्तव्य, तथा विश्वासघात उसका घोर अपराध मानते थे। यों तो उनका सारा सार्वजनिक जीवन ही इस सद्भावना और विश्वासपूर्ण व्यवहार का उच्चतम उदाहरण है, पर कुछ परिस्थितियों और अवसरों पर उनके व्यवहार उसकी उच्चता और श्रेष्ठता के निःसन्देह अत्युत्तम दृष्टान्त हैं। वंगभंग के जमाने में हिन्दू बोर्डिंग हाउस के बहुत से प्रबन्धक एक विद्यार्थी के उग्र राष्ट्रवादी व्यवहार से इतने असन्तुष्ट थे कि वे उसे बोर्डिंग हाउस से जहाँ वह रहता था निकाल देना चाहते थे। मालवीय जी इसे ठीक नहीं समझते थे। पर बहुमत से बात तय हो गयी, और वह विद्यार्थी बोर्डिंग हाउस से निष्कासित कर दिया गया। मालवीयजी को यह बात इतनी बुरी लगी कि उन्होंने कहा कि ऐसे विद्यार्थियों के लिए उन्हें एक विश्वविद्यालय बनाना होगा। पर उस समय भी जबकि वह विद्यार्थी और उसके समर्थक इस निष्कासन के लिए मालवीयजी को ही मुख्य रूप से दोषी बताते थे, उन्होंने ''अंतरंग सभा की बात को नहीं खोला, और सारी बदनामी अपने ऊपर ओढ़ ली।''[21]

जब सन् 1910 में गोखले साहब ने प्रेस विधेयक का समर्थन और मालवीयजी ने इसका विरोध किया, और इस कारण समाचारपत्रों ने मालवीयजी की बहुत प्रशंसा और गोखले साहब की भर्त्सना की, तब मालवीयजी ''बहुत दुःखी थी।'' उन्होंने बहुत ही ''वेदना'' के साथ मुंशी ईश्वरशरण से कहा : ''गोखले कायर है और मैं बहादुर हूँ—यह कहा जा रहा है। कितने परिताप की बात है! यह हृदय-विदारक बात है।''[22] इसी तरह जब सन् 1922 में देश के बहुत से नेता गाँधीजी की आलोचना कर रहे थे कि उन्होंने सरकार से समझौता नहीं किया, मालवीयजी चुप रहे और जब बात बढ़ जाने पर उन्होंने वक्तव्य दिया तब अपने प्रयास की विफलता का रोना रोने के बजाय और उसके लिए गाँधीजी को दोषी ठहराने के बजाय उनकी कठिनाइयों की ओर ही संकेत किया।

मालवीयजी का सारा जीवन संघर्ष करते गुजरा। पर उन्होंने कभी किसी का अनहित नहीं चाहा। एक बार उनके सम्बन्धी ब्रजमोहनजी व्यास से उनसे कहा कि महाकवि माघ ने राजनीति की व्याख्या की है कि ''अपना उदय और शत्रु का नाश''। यह सुनकर मालवीयजी की मुस्कान घृणा में परिवर्तित हो गयी, वह बोले, ''छिः, टुच्ची राजनीति है। दूसरों का भी अपने साथ-साथ अभ्युदय हो, यही सच्ची श्लाघनीय राजनीति है।''[23] एक दूसरे अवसर पर उन्होंने व्यासजी ही को उपदेश दिया ''अभ्युदय की ही कामना करना, किसी को नीचा दिखलाने की नहीं।''[24]

निर्माण ही मालवीयजी के संघर्ष और क्रियाकलापों का उद्देश्य था। जैसा कि प्रधानमंत्री जवाहरलाल नेहरू ने कहा है : ''वे महान्

क्रान्तिकारी थे, इसमें कोई शक नहीं। लेकिन उनके सामने हमेशा बनाने की बात रहती थी, बनाने के सिलसिले में चीजें टूट भी जाती थीं, और वे हटा दी जाती थीं। वे इसमें घबड़ाते नहीं थे—किसी के टूटने में या झाड़ू देकर साफ कर देने में। लेकिन उनका खास ध्यान हमेशा बनाने की ओर रहा। खाली यही नहीं कि संस्थाएँ बनायी हों, बहुत सारी बनायीं उन्होंने, बल्कि उन्होंने भारत के लोगों को बनाया। वे चाहते थे कि लोगों में हिम्मत पैदा हो, उनका सिर ऊँचा हो, उनमें अपने ऊपर भरोसा हो।''[25]

प्राणिमात्र के प्रति प्रेम

मानवता के प्रतीक मालवीय जी का प्रेम मानवसमाज तक ही सीमित नहीं था। वह प्राणिमात्र के लिए था। गोसेवा में उन्हें विशेष आनन्द आता था। उन्होंने आजीवन गौ की सेवा की, उसके कल्याण के लिए प्रयत्न किया। पर उनका प्रेम गौ तक ही सीमित नहीं था। कुत्ते आदि जीवों पर भी उनकी दया बनी रहती थी। शिवराम जी वैद्य ने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि जब मालवीयजी नवयुवक थे, तब उन्होंने जख्म के दुःख से तड़पते सड़क पर पड़े एक कुत्ते की वेदना से दुःखी हो उस कुत्ते की सेवा की, स्वयं उसके जख्म पर दवा लगायी। इस पुस्तक के लेखक को भी एक बार मालवीयजी की समदर्शिता देखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ। अपने से थोड़ी दूर पर शीतल छाया में बैठे एक कुत्ते को देखकर वे प्रेम और आनन्द में मग्न हो कहने लगे कि ''इसमें जो आत्मा है, वही मुझमें है। जिस प्रकार मुझे इस स्थान पर बैठे शीतल वायु सेवन करने में आनन्द आ रहा है, इस कुत्ते को भी आ रहा है।''

मालवीयजी जीवमात्र से कितना स्नेह करते थे, उससे समता का अनुभव करते थे, इसका पता इस रोचक घटना से भी अच्छे तौर पर लगता है जिसे उन्होंने स्वयं पण्डित रामनरेश त्रिपाठी को सुनाई थी। त्रिपाठीजी लिखते हैं कि मालवीयजी ने उसने कहा—''बिछौने पर एक चीटी चढ़ आयी थी, उसे पकड़ कर मैं उसे नीचे उतार देना चाहता था, पर वह हाथ आती ही न थी। इधर पकड़ने जाता तो उधर भाग जाती। अपने बचाव के लिए उसका प्रत्येक बार प्रयत्न बड़ा ही प्रिय लग रहा था। एक चींटी में भी जीवन-रक्षा का वैसा ही उद्योग है, जैसा प्रत्येक प्राणी में है। सब में समान जीव है। जब कोई चींटी को लापरवाही से मार देता है, तब मुझे बड़ा कष्ट होता है।''[26]

शील

मालवीयजी सात्त्विक कर्ता, तथा उच्च कोटि के नेता थे। उनकी सेवाएँ विस्तृत, व्यापक और महान् थीं। पर उनका बहुगुण-सम्पन्न व्यक्तित्व उन सबसे कहीं अधिक महान् था। उनकी मनुष्यता, शिष्टता, सज्जनता बेजोड़ थी। वे प्रेम, शान्ति, दया, उदारता, विनय, क्षमा और करुणा के अवतार थे। वे संयमी, निर्भीक और गम्भीर थे, उत्साही, साहसी, और सहनशील थे। उनका जीवन अहंकार, दम्भ, पैशुन आदि दुर्गुणों से निर्मुक्त था। वे मृदुता, मुदिता तथा मैत्री की भावना से सम्पन्न थे। उनका सौजन्य स्नेह से परिपूर्ण था, उनकी विद्वता विनय से सम्पन्न थी। वे गुणग्राहक थे। राष्ट्रीय कर्त्तव्य का निर्वाह, मानव व्यक्तित्व का समान, लोककल्याण की कामना उनके सद्गुण थे। उनका शौर्य और साहस मनुष्यता से अलंकृत था। सत्कार्यों में सहयोग, सौभ्यता, भावों की संशुद्धि, सिद्धान्तों और जीवनादर्शों की रक्षा उनके शील के अन्य सद्गुण थे। सभा में राष्ट्रकल्याण की पुष्टि, लोकन्याय का अनुसरण, सदादर्शों से सम्पन्न युक्तियुक्त भाषण, मतभेदों में तितिक्षा, सदा भ्रदता का पालन उनका लोकशील था।

मालवीयजी शील के बहुत पक्के थे। उसका उन्हें सदा ध्यान रहता था। जब कभी उनसे उल्लंघन हो जाता, तब उन्हें उसका बहुत सन्ताप होता, और वे संबंधित व्यक्ति से तुरन्त क्षमा प्रार्थना करते। वे अपनी गलतियों को याद रखते, और पाँचवें छठे वर्ष हरिद्वार जाकर विधिवत् सर्व-प्रायश्चित करते, और इस तरह अपने जीवन को निर्मल बनाये रखने का सदा प्रयत्न करते रहते थे।

मालवीयजी का सार्वजनिक सौजन्य बहुत ही उत्कृष्ट था। उनकी स्वच्छता और श्रेष्ठता, उनकी सरलता और विनम्रता, उनकी कोमलता और भद्रता, उनके शिष्टाचार और आतिथ्य सत्कार ने उन सबको, जिन्हें उनसे सम्पर्क में आने का सौभाग्य प्राप्त हुआ, अपना प्रिय बना लिया था। वे सदा बड़ों का आदर करते, हाथ जोड़ कर उनका स्वागत करते, तथा वयोवृद्ध विद्वानों और संबंधियों की यथावत प्रणाम-वन्दना करते थे। उनका सबके साथ आत्मीयता का व्यवहार था। वे जिससे पहली बार मिलते उससे भी ऐसी बातें करते मानों वह चिरपरिचित हैं, उसे भी परकीय होने का अनुभव नहीं होने देते। घर में कोई अतिथि टिका होता तो जब तक वह भोजन नहीं कर लेता, चाहे वह साधारण श्रेणी का ही क्यों न हो, तब तक वे स्वयं भोजन नहीं करते थे। अतिथि के आराम की क्या व्यवस्था है इस बात की जाँच वे कई बार नौकरों से करते रहते थे।

वे बचपन के अपने साथियों और सहपाठियों से, फिर वे चाहे किसी श्रेणी के हों, कृष्ण-सुदामा की तरह स्नेह और आत्मीयता से बातचीत करते थे। श्री सन्त शरण मेहरोत्रा ने बहुत ही मार्मिक ढंग से एक कुंबी जाति के सहपाठी से मालवीयजी के मिलने का एक संस्मरण का वर्णन किया है। उन्होंने लिखा है कि एक दिन सन् 1942 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की रजत जयन्ती के उत्सव के पहले वे मालवीयजी के दर्शन करने गये, तब ''एक बूढ़ा ग्रामीण, जिसकी कमर प्रायः झुक गयी थी, लाठी टेकता दरवाजे पर आया। अपनी पगड़ी उतार कर उसने साष्टांग दंडवत किया, तब मालवीयजी की दृष्टि भी उस पर पड़ी। दृष्टि पड़ते ही जो दृश्य देखा गया वह स्वर्गीय था। दोनों के ही नेत्रों से प्रेमाश्रु गिर रहे थे, और किसी से बोला नहीं जाता था। कुछ समय बात स्वस्थ होने पर कुशल क्षेम, उलहने आरम्भ हुए। 'एतने दिन कहाँ रहल? काहें नाहीं खबर लेहल? तोहई काहे नाहीं खोज लेहल?' आदि आदि। आँसू बह रहे हैं, बोला जाता नहीं, कण्ठ भरा आता है। बोलने की इच्छा भी दोनों ओर बड़ी प्रबल! बात बात में यह तय हुआ कि गले लगकर जैसे हम लोग गाया करते थे, आज गावें। मालवीय जी से तो गद्गद

कण्ठ से बोला ही नहीं जाता था। उन्होंने इशारा किया कि 'गाओ'। वह उनके पैर पकड़ कर गाने लगा। मुँह में दाँत नहीं, पर उसने प्रेम का वातावरण उपस्थित कर दिया। महात्मा जी (गाँधी जी) के पास जाने का प्रस्ताव हुआ। इस सबके बाद वे महाशय वहीं अतिथि हुए।''[27]

मालवीयजी मतभेद को व्यक्तिगत विद्वेष या शत्रुता का स्वरूप देना अनुचित ही नहीं, मूर्खता समझाते थे। इस द्वेषरहित भावना के कारण जैसा कि मुंशी ईश्वर शरण ने कहा, मालवीयजी ने ''कभी कोई शत्रु बनाया ही नहीं।'' जो उनसे रुष्ट होता, उससे भी वे भद्रता का व्यवहार करते, और अन्त में वह भी उनका गुणगान करने लगता था। कहा जाता है कि सर राजेन्द्र मुखर्जी को जब यह पता चला कि मालवीयजी इंडस्ट्रियल कमीशन (औद्योगिक आयोग) की रिपोर्ट पर एक असहमति नोट लिखना चाहते हैं, तब उन्होंने मालवीयजी को बहुत बुरा-भला कहा। मालवीयजी चुप रहे। कुछ समय के बाद एक दिन वे सर राजेन्द्र मुखर्जी के घर गये। उन्हें देखकर मुखर्जी साहब ने चकित होकर पूछा : ''आप मेरे घर कैसे आये, मैंने तो आपको बुरा-भला कहा था?'' यह सुनकर मालवीयजी ने कहा—''देश के काम में हम सब एक हैं। इसके बाद सर राजेन्द्र ने उन्हें उनके कामों में काफी सहायता दी।''[28] वास्तव में ''वे लोग भी जो सार्वजनिक प्रश्नों पर उनसे (मालवीयजी से) मतभेद रखते थे उनके व्यक्तिगत गुणों के साक्षी थे, और उनके आत्मत्याग तथा देशहित के प्रति उनकी निष्ठा के लिए उनसे प्यार और उनका आदर'' करते थे।[29] यद्यपि कुछ सरकारी अफसर उनसे क्षुब्ध हो उन्हें 'घास में छिपा साँप' समझते थे, पर बहुत से उच्चस्तरीय अधिकारी उनकी 'मधुर विवेकशीलता' के कायल थे। उनकी सच्चाई पर विश्वास करते थे, स्वीकार करते थे कि 'निर्दोष जीवन के श्वेत पुष्प' विभूषित मालवीयजी को न डराया जा सकता है, और न प्रलोभनों द्वारा तोड़ा जा सकता है, पर उनके सौजन्य और सद्भावना पर विश्वास किया जा सकता है। इन सब बातों को देखते हुए पंडित हृदयनाथ कुजरू ने कहा कि मालवीयजी ने कभी किसी के लिए ''भूल कर कटुशब्द का प्रयोग नहीं किया'', और ''वह अजात-शत्रु'' थे।[30]

विनोद, साहित्य, संगीत

मालवीय जी विनोदप्रिय थे। उन्हें संस्कृत, हिन्दी, उर्दू और अंग्रेजी के बहुत से पद याद थे, जिन्हें वे प्रसंगानुसार अपने भाषणों और लेखों में उद्धृत करते रहते थे। कभी-कभी अपने विचारों और आन्तरिक भावों को व्यक्त करने के लिए वे बात-चीत में भी सहज रूप से कुछ पद सुना देते थे। ये सभी पद शिक्षाप्रद होते थे, ऊँचे धार्मिक सिद्धान्तों, नैतिक आदर्शों, सामाजिक विचारों या भगवद्शक्ति की भावना से विभूषित होते थे। पर मनु और व्यास तथा तुलसी, मीरा और सूरदास आदि के पदों के साथ बिहारी और कालिदास आदि के उच्च कोटि के साहित्यिक दोहे और छन्द भी उन्हें याद थे, जिन्हें वे प्रौढ़ और वृद्ध अवस्था में भी थोटी-सी अन्तरंग साहित्य गोष्ठी में सुना देते थे।

उन्हें ग्रामगीत भी बहुत पसन्द थे। कुछ गीत उन्होंने याद भी कर रखे थे। इन ग्रामगीतों को सुनने-सुनाने में वे बहुत आनन्द का अनुभव करते थे। पंडित रामनरेश जी त्रिपाठी तो, जिन्होंने ग्रामगीतों का अच्छा संग्रह किया था, मालवीय जी से जब मिलते तब वे उनसे उन्हें सुनते थे।

पंडित बलदेव उपाध्यायजी ने अपने एक संस्मरण में लिखा है कि एक बार एकान्त में मालवीयजी की पंडित बटुकनाथजी से साहित्य की चर्चा चल गयी, तब मालवीयजी ने उन्हें बहुत शृङ्गारिक पद्य समुचित अभिनय के साथ कह सुनाये। एक बार काशी विश्वविद्यालय में पण्डित प्रमथनाथ तर्कभूषण की अध्यक्षता में कविवर कालिदास पर संगोष्ठी हुई थी, जिसमें कुछ विद्वानों ने उनके काव्य पर कुछ शंकाएं उपस्थित की थीं, जिनका समाधान मालवीयजी ने बहुत उत्तम ढंग से कालिदास के ग्रन्थों के उवतरणों द्वारा किया था।

पर मालवीयजी अश्लील शृङ्गार के प्रति रुचि को बुरा समझते थे। उन्होंने इसके विरोध में 14 वर्ष की आयु में लिखा था—

यह रस ऐसो है बुरो, मत को देत बिगारि।
याते पास न आवहु, जेते अहौ अनारि॥

विद्यार्थी जीवन में उन्हें कविता करने का भी शौक था, और उन्होंने उस समय कुछ ऐसी रचनाएँ की थीं, जिन्हें वे कभी-कभी बुढ़ापे में भी नवयुवकों के विनोद के लिए श्रावण मास में अपने अंतरंग कक्ष में आठ-दस पुराने छात्रों की छोटी-मोटी अन्तरंग गोष्ठियों में सुना दिया करते थे। अपने धार्मिक और सामाजिक विचारों के प्रसार के निमित्त इस वयोवृद्ध नेता ने सरल संस्कृत में कुछ श्लोकों और हिन्दी में कुछ छन्दों की भी रचना की थी।

मालवीयजी का स्वर मधुर, सुरीला, सुरम्य और संगीतात्मक था, तथा उनकी प्रकृति कलात्मक थी। अपने पिता की तरह वे भी बचपन से ही संगीत में विशेष अभिरुचि रखते थे। विद्यार्थी-जीवन-काल में ही वे बहुत भावात्मक ढंग से बहुत सुरीले स्वर में सूर और मीरा के पदों को गाने-बजाने लगे थे। इस जमाने में ही उन्होंने सितार बजाने का काफी अभ्यास कर लिया था। पर संगीत में पूरी सुविज्ञता प्राप्त करने के लिए जितने अभ्यास का आवश्यकता होती है, उतनी उन्हें कहाँ फुर्सत थी? फिर भी कम से कम कंठ संगीत में उन्होंने इतनी निपुणता अवश्य प्राप्त कर ली थी कि विभिन्न रागों में गायकों और संगीतज्ञों की परीक्षा लेते हुए उसकी त्रुटियाँ सुधारी जा सकें। पण्डित रामनरेश त्रिपाठी ने अपने संस्मरण में लिखा है कि एक बार मालवीयजी ने एक गायक से मालकोश, भीमपलासी, केदारा और बिहाग गाने को कहा और अन्त में सोहनी में कुछ गाने को कहा, पर जब वे गायक महाशय इस अन्तिम राग को ठीक तौर पर नहीं गा सके, तब मालवीय जी अपनी अस्सी वर्ष का आयु में स्वयं एक सोहनी, जो उन्हें याद भी, गाने लगे। उसके पद इस प्रकार थे—

नींद तोहे बेचोंगी, जो कोउ गाहक होय।
आय रे ललना, फिर गये अंगना, मैं पापिनि रही सोय।
जो कोउ गाहक होय।

पण्डित रामनरेश त्रिपाठी अपने संस्मरण में यह भी लिखते हैं कि जब एक बार वह स्वयं मालवीयजी को कुछ ग्रामगीत गा कर सुना रहे थे, तब एक गीत को सुनकर वे उठ बैठे और यह कहकर कि—रामनरेश जी, यह मल्हार है, इस तरह गाया जाता है—स्वयं गाने लगे, और उन्होंने उसे उसी ''स्वर'' में गाया जिस स्वर में सुलतानपुर जिले के गाँव पापर की एक जीर्ण शीर्ण बुढ़िया, भवाई के मेले में जाती हुई गा रही थी।[31]

इस मल्हार गीत के पद निम्नलिखित थे—

धीरे बहु नदिया तैं धीरे बहु सैयाँ मोरा उतरइंगे पार।
धीरे बहु नदिया।
काहेन की तोरी नैया रि काहे की करुवारि।
को तेरा नैया खेवैया रे को धन उतरहू पार॥
धरमै कै मोरी नैया रे सत कै लगी करुवारि।
सैयाँ मोरा नैया खेवैया रे, हम धन उतरव पार॥
धीरे बहु नदिया तैं धीरे बहु॥

वाद्य संगीत औ कंठ संगीत, दोनों ही मालवीयजी को प्रिय थे। दोनों ही उन्हें अनुप्राणित और आनन्दित करते थे, तथा उनकी थकावट और परेशानी में स्वास्थ्यवर्धक औषधि का काम करते थे। वे जानते थे, जैसा कि उन्होंने मुंशी ईश्वर शरण से कई बार कहा भी थी, कि यदि वे प्रतिदिन आधा घंटा अच्छा संगीत सुन सकें तो उनका स्वास्थ्य बहुत कुछ सुधर सकता है। पर दूसरे सामाजिक कार्यों में व्यस्त मालवीयजी स्वास्थ्य के निमित्त भी घंटा आधा घंटा नहीं निकाल पाते थे। कभी-कभी तो संगीत गोष्ठी का आयोजन करते-करते किसी सार्वजनिक कार्य में संलग्न हो जाते और योजना यों ही पड़ी रह जाती थी। पर फिर भी कभी-कभी महादेव कत्थक या गायनाचार्य शिवप्रसादजी आदि की गोष्ठी हो जाती थीं, और मालवीयजी समुचित मनोयोग से संगीत का रसास्वादन कर पाते थे।

आहार-विहार

मालवीयजी के रहने-सहने तथा खाने-पीने का ढंग सादा, सरल स्वच्छ था। वे प्रातः काल सन्ध्योपासना के उपरान्त मिश्री और दूध तथा कोई फल, मध्याह्न को भोजन के बाद गाय के दूध का मट्ठा, सायंकाल को कुछ फल तथा रात्रि को भोजन के कुछ देर बाद गौ के दूध का सेवन करते थे। गर्मी की ऋतु में सायंकाल को बिना भाँग की ठंडाई, तथा रात्रि को चूसे जाने वाले आमों का भी सेवन करते थे। अन्न में गेहूँ के आटे के हलके फुल्के और थोड़ा-सा बारीक चावल का भात, तथा अरहर या मूँग की दाल, तरकारी में परवल-लौकी, नेनुआ, भिंडी, पालक जैसे सुपाच्य पदार्थों का ही वे सेवन करते थे। टमाटर भी उन्हें अच्छे लगते थे। आलू खाना उन्होंने छोड़ दिया था। पिता जी के श्राद्ध के दिन उन्हें बाग से मँगा कर वे खा लेते थे, क्योंकि उनके पिता को वह बहुत पसन्द था। मालवीयजी ने पण्डित रामनरेश त्रिपाठी को बताया कि उन्हें घर पर बनी अरहर की दाल, ''बहुत पसन्द'' थी। उन्होंने कहा : ''अरहर की दाल को पहले घी में भूनकर फिर उसे खौलते पानी में डाल दिया जाता था। जब वह अधपकी हो जाती थी, तब उसमें फिर घी डाला जाता था, जिसमें वह मलाई की तरह मुलायम हो जाती थी और बहुत स्वादिष्ट लगती थी।'' बुढ़ापे में तो उन्होंने पहले अरहर की दाल का, और बाद में मूँग की दाल का भी सेवन बन्द कर दिया था, चावल खाना भी बन्द कर दिया था।। युवावस्था में वे सायंकाल के समय 30-40 बादाम पिसवा कर पी लिया करते थे। मीठी तथा खट्टी चटपटी चीजों में उन्हें विशेष रुचि नहीं थी। युवावस्था तक वे दूध की बनी मिठाई खा लेते थे, पर आगे चलकर उन्होंने उसे भी छोड़ दिया था। फलों में उन्हें सेब बहुत पसन्द था। उसकी तरकारी तथा उसके रस का सेवन वे बहुत रुचि से करते थे। जैसे-जैसे बुढ़ापा बढ़ता जाता था, आहार की मात्रा घटती जाती थी, पर दूध और मक्खन की पुरानी मात्रा बुढ़ापे में भी बनी रही। वे अपनी माता के आदेशानुसार एक सेर दूध तथा आधी छटाँक मक्खन का सेवन करते थे। उनका कहना था कि ''बुढ़ापे का जिउ, दूध और घिउ।'' अस्सी वर्ष की आयु में भी वे प्रातःकाल दवा के साथ मक्खन और दूध, दोपहर और रात्रि को भोजन के साथ मक्खन या घी, सायंकाल को थोड़ा-सा दूध और सोते समय दवा के साथ दूध पीते थे।

यात्रा में वे बहुधा रसोइये की अनुपस्थिति में स्वयं खिचड़ी पका कर उसका सेवन कर लेते थे। रेल की लम्बी यात्रा में वे बहुधा दूध में गुंधे आटे की घी की पूड़ियाँ तथा मोहनभोग का प्रयोग करते थे। बहुत निश्चित व्यक्तियों द्वारा समाचार मिलने पर गौ के दूध के साथ इस प्रकार के भोजन का या फलाहार का प्रबन्ध स्टेशन पर कर दिया जाता था। पर कभी-कभी समुचित प्रबन्ध न होने पर उन्हें उपवास भी कर लेना पड़ता था।

उनके शाकाहारी भोजन में चाय, काफी, लहसुन, प्याज, मादक द्रव्य तथा गैस मिश्रित पेय पदार्थों का कोई स्थान नहीं था। वे तो मिर्च, माला तथा पान का भी सेवन नहीं करते थे। भोजन के बाद सुपारी की थोड़ी सी डली प्रायः मुख में डाल लिया करते थे। मालवीयजी चाय को बड़ी ही हानिकर वस्तु समझते थे। उन्होंने पण्डित रामनरेश त्रिपाठी जी को बताया कि उन्होंने एन्ट्रेन्स और एफ0 ए0 की परीक्षाओं के समय कुछ दिनों तक चाय का प्रयोग किया था, पर उसका उनके स्वास्थ्य पर बहुत ही बुरा प्रभाव पड़ा। बहुत से सार्वजनिक कार्यों में घिरे रहने के कारण भोजन में उन्हें प्रायः बहुत विलम्ब हो जाता था।

मालवीयजी के परिवार में पहले सिर पर पंडताऊ टोपी कलीदार, अंगरखा, और देशी जूता पहनने का चलन था। उनकी पोशाक भी पहले यही थी। मऊ (जिला आजमगढ़) की बनी हुई रेशमी किनारे की बारीक और चौड़े पनहे की धोती उनको बहुत पसन्द थी। लम्बी बन्ददार अचकन, सिर पर भली-भाँति संवारा हुआ विशेष प्रकार का साफा, गले में घुटनों तक लटकता हुआ दुपट्टा, एवं ललाट पर मलयागिरि चंदन उनके सुधर और गौर वर्ण पर विशेष शोभा देते थे। पगड़ी और दुपट्टे के सँवारने में वे काफी सावधानी रखते थे। वे समयानुकूल धोती और

पैजामा दोनों का प्रयोग करते थे। अधिक वृद्ध हो जाने पर उन्होंने पगड़ी के स्थान पर पंडताऊ टोपी का प्रयोग भी प्रारम्भ कर दिया था। मध्यवय में ही उन्होंने चमड़े के जूतों के बजाय रबर की तली के जूते पहनना शुरु कर दिये थे। जाड़ों की ऋतु में वे ऊनी लबादे का तथा शाल (चादर) का भी प्रयोग करते थे। पूजा पाठ के समय, कथा सुनाते समय तथा भोजन करते समय वह शुद्ध रेशमी वस्त्र का प्रयोग करते थे। उनके वस्त्र स्वदेशी और शुभ्ररंग के होते थे। सत्रह वर्ष का आयु में ही उन्होंने स्वदेशी का व्रत ले लिया था। सन् 1920 के बाद वे खद्दर का प्रयोग विशेष रूप से करने लगे थे।

त्रुटियाँ

बहुगुणसम्पन्न मालवीयजी के कतिपय सद्गुणों ने उनके लिए काफी कठिनाइयाँ भी पैदा कर दी थीं। गाँधीजी कहा करते थे कि ''मालवीयजी की दया उनका दुश्मन बन गई है।'' दया के पात्र और कुपात्र उन्हें सदा घेरे रहते थे। अपने सच्चे और बनावटी कष्टों की अतिरंजित बातों से वे उन्हें दुःखी करते रहते थे। मानव स्वभाव के प्रति उनकी उदार भावना भी उनके लिए कठिन पहेली बन गयी थी। इस उदारता के कारण उनके लिए मनुष्यों की आन्तरिक भावनाओं का ही मूल्यांकन करना बहुधा कठिन हो जाता था। मनुष्यों के सम्बन्ध में उनका अनुमान प्रायः यथातथ्य से अधिक उदार होता था, जिसके कारण उन्हें बात को कभी-कभी कठिन समस्याओं का सामना करना पड़ा जाता था। दूसरों की भावनाओं के प्रति आदर भावना ने भी उनकी जीवनचर्या को किसी अंश में अव्यवस्थित और उनके जीवन को कष्टमय बना दिया था। उनका शील-संकोच उन्हें वक्त बेवक्त लोगों से मिलने को मजबूर करता था, जिसके कारण वे न ठीक समय पर भोजन कर पाते थे, और न ठीक से आराम कर पाते थे। पूर्व निश्चित सार्वजनिक काम करने में भी उन्हें देर जाती था। उनकी समाजसेवा की भावना ने भी उन पर उत्तरदायित्व का इतना बोझ लाद दिया था जिसका ठीक-ठीक निर्वाह उन जैसे कर्मठ समाज-सेवी के लिए भी असम्भव हो रहा था। दिन-रात काम में लगे रहने पर काम अधूरा रह जाता था उनके सहयोगियों को उनसे शिकायत बनी रहती थी। समाजसेवा की चिन्ता से वे अपने को कभी भी मुक्त नहीं कर सके। पचपन वर्ष से अधिक समाजसेवा करने के बाद भी सेवा की उत्कट इच्छा बनी रही, अपनी बड़ी-बड़ी योजनाओं के अपूर्ण अंशों की याद उन्हें मरते दम तक परेशान करती रही। आत्मोत्सर्ग और आत्मसमर्पण की भावनाओं ने उन्हें अपने स्वास्थ्य के प्रति भी बहुत हद तक उपेक्षित बना दिया था। उन जैसा विनोद-प्रिय व्यक्ति भी जीवन में मनोरंजन के महत्व को भूल-सा गया था। स्वास्थ्यवर्धक संगीत के लिए भी वे आधा घण्टा नियमित रूप से नहीं निकाल पाये। पीछे की चीजों को पकड़े रहने की प्रवृत्ति से उनको चिढ़ थी, फिर भी समाज-सुधार के प्रश्नों पर उन्होंने शास्त्रों की रस्सी इस तरह पकड़ रक्खी थी कि इस क्षेत्र में बहुत आगे बढ़कर काम करना उनके लिए कठिन हो रहा था। वे मानवता के व्यापक सिद्धान्तों के आधार पर समाज सुधार की कोई योजना जनता के सामने प्रस्तुत नहीं कर सके। श्री नरसिंह चिन्तामणि केलकर जैसे व्यक्ति भी, जिन्होने स्वयं हरविलास शारदा द्वारा प्रस्तुत हिन्दू बालविवाह विधेयक पर मालवीयजी के साथ वोट किया था, उन्हें प्रचलित अर्थों में समाज सुधारक कहने को तैयार नहीं था। उनकी तितिक्षा, दूसरों के विचारों और भावनाओं का आदर करने की उनकी प्रवृत्ति, प्रत्येक विषय के सब पक्षों पर विचार करने की उनकी आदत के कारण भी बहुधा महत्त्वपूर्ण विषयों पर कोई निर्णय लेने में उन्हें बहुत समय लग जाता था, और कभी-कभी तो समझौते की प्रबल इच्छा के कारण या तो उनके लिए निर्णय लेना ही असम्भव हो जाता था, या समझौते की छाप के कारण निर्णय की स्पष्टता या निदेशकता धूमिल हो जाती थी। पर कभी-कभी उनकी दृढ़ता जिद का रूप धारण कर लेती थी, उन्हें व्यावहारिकता से विलग कर देती थी। फिर भी प्रायः उनके जिस विचार को दूसरे लोग अव्यावहारिक कल्पना या जिद समझते थे, उसे वह कार्य रूप में परिणत कर उसकी व्यावहारिकता और सार्थकता सिद्ध कर देते थे। काशी विश्वविद्यालय इसका सबसे बड़ा उदाहरण है। प्रायः मालवीयजी के जिस विचार को उग्रगामी निरर्थक, गतिरोधात्मक समझते थे, वह परिस्थिति विशेष में देश की अधिकांश जनता का मार्गदर्शन करने में, उसका नेतृत्व करने में, उसे आगे बढ़ाने में सहायक सिद्ध होता था। रूढ़िवादियों को भी सुधार की ओर प्रवृत्त करना उनके नेतृत्व का गुण था।

अद्वितीय व्यक्तित्व

उनके व्यक्तित्व की सर्वतोमुखी प्रतभिा, साहस एवं उत्साह और त्याग, तथा राष्ट्र-सेवा में उनकी निष्ठा और लगन अतुलनीय थी। उनका व्यक्तित्व निश्चय ही अद्भुत था। वे निःसन्देह उच्चकोटि के जननायक तथा राष्ट्र-निर्माता थे। राष्ट्र के नेताओं में उनका बहुत ऊँचा स्थान था। गाँधीजी का कहना था कि मालवीयजी के साथ देशभक्ति में कौन मुकाबला कर सकता है? राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के विचार में मालवीयजी ''आदर्श मनुष्य थे'', जिन्होंने ''राजनीति और शिक्षा दोनों क्षेत्रों में युग परिवर्तक और प्रवर्तक का काम किया।''[32] प्रिन्सिपल दीवानचन्द के विचार में ''मालवीयजी पवित्र आत्मा थे। उनके व्यक्तित्व की मनोहरता का उनके लाखों समकालीन लोगों पर उदात्त प्रभाव था।''[33] बंगाल के सुप्रसिद्ध देशभक्त वैज्ञानिक सर प्रफुल्लचन्द्र राय का विचार था कि ''गाँधीजी के बाद कोई दूसरा ऐसा मनुष्य मिलना कठिन है जिसने इतना अधिक त्याग किया हो, और बहुमुखी कार्यों का ऐसा प्रमाण प्रस्तुत किया हो जैसा मालवीयजी ने''।[34] लिबरल पार्टी के प्रमुख नेता श्री सी0 वाई0 चिन्तामणि का भी विचार है कि ''मालवीयजी ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो साबरमती के मनीषी (गाँधी जी) को कोष्ठक में रखने योग्य हैं।''[35] दूसरे उदार-दलीय नेता पंडित हृदयनाथ कुंजरू का विचार है कि ''गाँधी जी को छोड़कर उनसे बड़ा भारतीय कोई नहीं हुआ।''[36] मुंशी ईश्वर शरण का कहना है कि ''हम दूसरे सार्वजनिक पुरुषों की योग्यता और व्यवहार-कौशल को स्वीकार करते हैं, पर महात्मा गाँधी को छोड़कर कोई दूसरा हमारा हृदय उस प्रकार आकर्षित नहीं करता जैसा मालवीयजी''।[37] उन्होंने यह भी कहा कि यह उनका

''अटल विश्वास है कि जब तक भारत् गाँधीजी और मालवीयजी जैसे व्यक्तियों को जन्म देता रहेगा, तब तक भारत जीवित बना रहेगा।''[38] भर्तृहरि ने महात्मा के प्रकृतिसिद्ध लक्षणों का वर्णन करते हुए कहा है—

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा, सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृतिसिद्धमिदं हि महात्मनाम्॥

ये सभी गुण मालवीयजी में स्वाभवतः विद्यमान थे, और वे निःसन्देह बहुगुण-सम्पन्न महात्मा तथा सात्त्विक कर्त्ता थे।

सन्दर्भ

1. अभ्युदय, 19 मई, सन 1912।
2. अभ्युदय, 14 जनवरी, सन् 1909।
3. वही।
4. मालवीय जी-जीवन झलकियाँ, पृ0 3।
5. वही, पृ0 10।
6. वही, पृ0 4 (पुरुषोत्तमदास टंडन)।
7. लेजिस्लेटिव असेम्बली डिबेट्स, 1930, जि0 3, पृ0 2626।
8. रामनरेश त्रिपाठी : मालवीय जी के साथ तीस दिन, पृ0 30।
9. गवर्नर जनरल की कौंसिल (विधान), सन् 1915, जि0 53, पृ0 637।
10. वही, सन् 1914, जि0 52, पृ0 603-604।
11. मालवीय जी-जीवन झलकियाँ, पृ0 75।
12. वही, पृ0 झ।
13. रामनरेश त्रिपाठी : मालवीय जी के साथ तीस दिन, पृ0 163।
14. वही, पृ0 169।
15. मालवीय जी—जीवन झलकियाँ पृ0 4।
16. मालवीय जी—जीवन झलकियाँ, पृ0 10।
17. वही, पृ0 43।
18. महामना मालवीय जी बथ4 सेनटनरी कोमिमोरेशन वाल्यूम (पुरुषोत्तम दास टण्डन का वक्तव्य)।
19. मालवीय जी—जीवन झलकियाँ, पृ0 43।
20. मालवीय जी कोमिमोरेशन वाल्यूम, 1932, पृ0 1030।
21. मालवीयजी, जीवन झलकियाँ, पृ0 19।
22. वही, पृ0 23-24।
23. मालवीयजी—जीवन झलकियाँ, पृ0 15।
24. वही, पृ0 15।
25. वही, पृ0 छ।
26. रामनरेश त्रिपाठी : मालवीयजी के साथ तीस दिन, पृ0 81।
27. मालवीयजी—जीवन झलकियाँ, पृ0 73।
28. रामनरेश त्रिपाठी : मालवीयजी के साथ तीस दिन, पृ0 274-275।
29. मालवीय कोमिमोरेशन वाल्यूम, पृ0 1051।
30. मालवीयजी—जीवन झलकियाँ, पृ 38।
31. मालवीयजी—जीवन झलकियाँ, पृ0 65-66।
32. महामना मालवीयजी : वर्थ सेनटिनरी कोमिमोरेशन वाल्यूम।
33. वही, पृ0 215।
34. मालवीय कोमिमोरेशन वाल्यूम, पृ0 1005।
35. वही, पृ0 1012।
36. मालवीयजी—जीवन झलकियाँ, पृ0 48।
37. मालवीय कोमिमोरेशन वाल्यूम, पृ0 1051।
38. वही।

◆

महामना मालवीय की मूल्यशिक्षा : एक सिंहावलोकन

प्रो0 चन्द्रकला पाडिया एवं मनीषा मिश्र***

आधुनिक भारत के निर्माताओं के योगदान की समीक्षा की जाए तो शिक्षा के क्षेत्र में पं0 मदनमोहन मालवीय जी का योगदान अतुलनीय है। भारतीय ज्ञान परम्परा की जिस मनीषा को उन्होंने अपने शिक्षा दर्शन में आलोकित किया, वह मालवीय जी जैसे मनीषी के लिए ही सम्भव था। पाश्चात्य जीवन शैली का अन्धानुकरण भारतीय युवा मन को किस तरफ भविष्य में ले जाएगा, इसका उनको सहज ही अनुमान था। मूल्य रहित शिक्षा जो केवल सूचनाओं के सम्प्रेषण पर आधारित होगी और जिसका उद्देश्य केवल भौतिक जीवन की समृद्धि होगा, ऐसी शिक्षा मनुष्य की गुणवत्ता एवं मानवता को किस प्रकार तार-तार कर देगी, इसका भी उन्हें पूरी तरह से आभास था। वे इस बात से भली-भाँति परिचित थे कि राष्ट्रनिर्माण के लिए उच्च चिकित्सकीय शिक्षा, तकनीकी शिक्षा एवं विज्ञान की शिक्षा का प्रचार-प्रसार आवश्यक था। परन्तु एक संवेदनहीन, सदाचार विहीन व संस्कारों से रहित व्यक्ति जब इस ज्ञान को अर्जित करेगा, तो वह ज्ञान राष्ट्रनिर्माण नहीं वरन् राष्ट्र के विनाश का कारण बनेगा। किसी भी ज्ञान विज्ञान की संरचना का आधार हमेशा मनुष्य का आदर्श चरित्र ही होगा। यही कारण है कि जहाँ भारतवर्ष के महानतम् मनीषियों ने केवल आत्मसंयम, सदाचार एवं आत्मसाक्षात्कार जैसे आदर्शों को ही शिक्षा का मूल उद्देश्य बताया, वहीं पं0 मदन मोहन मालवीय भारतवर्ष के शायद एकमात्र ऐसे राष्ट्रनिर्माता थे, जिन्होंने भारत के भौतिक उत्थान के लिए विज्ञान और तकनीकी की शिक्षा पर भी बल दिया परन्तु इस शिक्षा-संरचना का आधार चरित्र निर्माण को बनाया। ऐसा अद्भुत समन्वय मालवीय जी के ही शिक्षा दर्शन में देखने को मिलता है। अपने इस प्रयास में मालवीय जी ने भारत के सनातन धर्म से प्रेरणा ली एवं उसके सच्चे उदात्त स्वरूप को हमारे सामने रखा। वे कट्टरपंथियों की संकीर्णता एवं धर्मान्धता से कोशों दूर थे। उन्होंने उन धर्माचारों का घोर विरोध किया जिन्होंने भारत की सनातन परम्परा को किसी वर्ग की निम्नता के साथ जोड़ा। वे मानवीय समाज की उस धारणा में विश्वास करते थे जहाँ छोटे-बड़े, उँच-नीच, गरीब-अमीर में किसी प्रकार का भेदभाव न हो एवं जहाँ स्नेह, सहिष्णुता, दया, सहयोग एवं पारस्परिकता की गंगोत्री निर्झर बहती हो। प्रस्तुत लेख का उद्देश्य उनके शिक्षा दर्शन में ध्वनित इसी मूल्य शिक्षा को प्रतिध्वनित करना है।

पं0 मदन मोहन मालवीय भारतीय सभ्यता के उन सशक्त हस्ताक्षरों में से एक थे जिन्होंने भारतीय ज्ञान परम्परा की गहराई, मानवता, समग्रता, न्यायप्रियता एवं एकात्मकता जैसे मूल्यों को बड़ी गहराई से समझा। पाश्चात्य ज्ञान और मानदण्डों की आँधी उन्हें अपनी जड़ों से उखाड़ न सकी। इसी प्रकार भारत की जमीन से जुड़े हुए मठाधीशों, जमींदारों का प्रभुत्व भी उन्हें डिगा नहीं सका। वे एक ओर ऐसे कठमुल्लाओं के उद्देश्य से भली-भाँति परिचित थे, तो दूसरी ओर पाश्चात्य प्रतिमानों एवं जीवनशैली के अंधानुकरण के दोषों से भी भली-भाँति परिचित थे।

मालवीय जी के सम्पूर्ण कृतित्व और कर्तित्व की यदि ध्यानपूर्वक समीक्षा की जाए तो यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो जाती है कि मालवीयजी के जीवन का लक्ष्य शिक्षा के क्षेत्र में मानवीय मूल्यों को पल्लवित एवं पुष्पित करना था। मानवीय मूल्यों से उनका तात्पर्य मुख्यतः निःस्वार्थता, शुद्धता, सद्व्यवहार, सहानुभूति, प्रेम, कर्त्तव्यपरायणता आदि गुणों का बीजारोपण करने एवं उन्हें निरन्तर सींचने से था ताकि मानवता से ओत-प्रोत एक संस्कारी मनुष्य का निर्माण हो सके।

अक्टूबर सन् 1905 में प्रस्तावित विश्वविद्यालय की योजना के प्राक्कथन में मालवीयजी ने स्पष्ट रूप से कहा, ''भारत के प्राचीन धर्म की शिक्षा है कि प्रत्येक मनुष्य स्वयं को एक बड़ी समष्टि की इकाई समझ कर उसके हित के लिए जीवित रहे और काम करे, लोककल्याण और लोकसंग्रह को परम पुरुषार्थ समझें।''[1]

जुलाई, 1911 में मालवीयजी ने गणमान्य व्यक्तियों के साथ गहन-विचार विमर्श के आधार पर विश्वविद्यालय के लिए प्रस्तुत अपनी संशोधित योजना में विश्वविद्यालय के लिए चार उद्देश्य दिये, जिसमें चतुर्थ उद्देश्य को रेखांकित करते हुए उन्होंने लिखा, ''धर्म और नैतिक शिक्षा को शिक्षा का अविभाज्य अंग बनाकर नौजवानों में चरित्र निर्माण करना।''

यहाँ यह बात उल्लेखनीय है कि विश्वविद्यालय की स्थापना के पूर्व भारत में पाँच विश्वविद्यालय अस्तित्व में आ चुके थे। परन्तु इन सभी विश्वविद्यालयों पर इंग्लैण्ड के शिक्षा आदर्शों का पूरा प्रभाव था जिसका उद्देश्य ज्ञान-प्रकाश एवं चरित्रनिर्माण के बजाय देश के नवयुवकों को इंग्लैण्ड के प्रति श्रद्धालु तथा परमुखापेक्षी बनाना था। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय भारत का छठा विश्वविद्यालय था जिसका उद्देश्य भारत में केवल मुंशियों एवं नौकरशाहों को जन्म देना नहीं, बल्कि परस्पर विश्वास सहयोग एवं सद्भावना के आधार पर भारतीय समाज को संगठित करना एवं उनमें धार्मिक भावना का प्रचार एवं प्रसार करना था।

मालवीयजी के अनुसार हिन्दू समाज का पूरा ताना-बाना धर्म पर निर्मित है। इस सभ्यता के लिपिबद्ध अवशेष संस्कृत वाङ्मय है जो

---

* संकायाध्यक्षा, सामाजिक विज्ञान संकाय एवं प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, पूर्व विभागाध्यक्षा राजनीति विज्ञान विभाग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एवं पूर्व अध्यक्षा, यू0जी0सी0 महिला तदर्थ समिति, पूर्व निदेशिका, महिला अध्ययन एवं विकास केन्द्र, का0हि0वि0वि0; निदेशिका, वाराणसी अध्याय, बट्रेंड रसेल सोसायटी, यू0एस0ए0।

** शोध छात्रा, राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

मालवीयजी के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति के शारीरिक, बौद्धिक, नैतिक, आध्यात्मिक विकास एवं उनके समृद्धिशाली जीवन निर्माण हेतु एक पूर्ण योजना प्रस्तुत करते हैं।

मालवीयजी ने जब भी 'हिन्दू' शब्द का प्रयोग किया, तो कभी भी किसी संकीर्ण अर्थ में नहीं किया। उनके लिए 'हिन्दू धर्म' जीवन दर्शन है जिसका उद्देश्य आध्यात्मिक ज्ञान की उपलब्धि तथा आत्मविमुक्ति है एवं जिसका ध्येय सत्य का अन्वेषण करना है। 'सत्य' उनके अनुसार, हिन्दू धर्म का केन्द्रीय दर्शन है और धर्म ही सर्वश्रेष्ठ सत्य है। शास्त्रों के अनुसार ''सत्यात्नास्ति परोधर्मः''। मालवीयजी ने स्पष्ट शब्दों में कहा कि 'हिन्दू' शब्द कतई साम्प्रदायिक नहीं है। यह अपने में एक विराट दर्शन और भावना को संजोय हुए है।' वे हिन्दुत्व की आत्मा थे परन्तु हिन्दूवादी कदापि नहीं।

सनातन धर्म का उल्लेख करते हुए उन्होंने बताया कि भारतवर्ष की प्राचीन शिक्षा संस्थाओं में जब भी कोई छात्र प्रथम प्रवेश के लिए जाता था तो उसे ''सत्यम् वद धर्मम् चर'' का उपदेश दिया जाता था। जीवन की पवित्रता को वेदों के ज्ञान से अधिक महत्वपूर्ण माना जाता था। हिन्दूशास्त्रों में 'सत्य', 'अहिंसा', 'निःस्वार्थ सेवा' एवं 'लोकसंग्रह' आदि प्रमुख आदर्श माने गए है। यहाँ 'आचरण' को सारी सम्पत्ति से श्रेष्ठ बताया गया है। शास्त्रों में इसका स्पष्ट उल्लेख मिलता है :

''वृत्तं यत्नेन संरक्षेद्वित्तमायाति याति च।''

महामना का दृढ़विश्वास था कि हमारी सारी समस्याओं की जड़ 'अज्ञानता' में ही है। इसलिए इस अज्ञानता को दूर करने के लिए मूल्य शिक्षा का व्यापक प्रचार एवं प्रसार आवश्यक था। उन्हें इस बात का दुःख था कि सरकारी लोगों में न तो इस बात के लिए कोई चिन्ता व्याप्त है और न ही उसके समाधान के लिए उनमें कोई दृष्टि और न ही उसके सुधार के लिए कोई पहल। इसीलिए, वे काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के द्वारा शिक्षा जगत की इस कमी को पूरा करना चाहते थे। इस परिप्रेक्ष्य में महामना के लिए सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह था कि ऐसी शिक्षा का क्या स्वरूप हो? भारतीय परम्परा में ज्ञान के दो प्रकार रहे हैं विद्या और अविद्या जिसे आध्यात्मिक एवं भौतिक भी कहा गया है। मालवीयजी का विश्वास था ये दोनों विधाएँ एक-दूसरे की विरोधी नहीं बल्कि पूरक है। उनके परस्पर समन्वय से ही देश का सन्तुलित विकास होगा। वे देश को एक ओर भीषण दरिद्रता से मुक्त करने के लिए आधुनिक वैज्ञानिक एवं तकनीकि शिक्षा पर बल देते थे। वही दूसरी ओर वे आत्मिक एवं नैतिक शिक्षा पर भी उतना ही बल देते थे क्योंकि उनका पूर्ण विश्वास था कि केवल आर्थिक उन्नति ही मनुष्य के जीवन को सार्थक नहीं बना सकती। जबतक मनुष्य में आत्मिक एवं नैतिक बल नहीं होगा तब तक वह भी सच्चे अर्थों में समृद्ध नहीं हो सकता। वे उपनिषदों के इस सूक्त में विश्वास करते थे : **सा विद्या या विमुक्तये।** उन्होंने विद्यार्थियों का आह्वान करते हुए 14 दिसम्बर 1929 के दीक्षान्त उद्‌बोधन के समय कहा :

"You must always be prepared to do the duty that your country may demand of you. Love your countrymen and promote unity among them. A large measure of toleration and forbearance and a large spirit of service is demanded of you. We expect you to devote as much of your time and energy as you can spare to the upliftment of your humble brethren. We expect you to work in their midst, to share in their sorrows and their joys, to strive to make their lives better in every way you can." [2]

महामना का यह दृढ़ विश्वास था कि शिक्षा के इस वृहद उद्देश्य की प्राप्ति तभी हो सकती है जब विद्यार्थियों का जीवन ब्रह्मचर्य एवं आत्मसंयम पर आधारित हो। मालवीय जी ने विद्यार्थियों को सन्देश दिया :

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव॥

अर्थात् सत्य पालन, आत्मसंयम या ब्रह्मचर्य पालन, शारीरिक व्यायाम, शिक्षा, देश भक्ति तथा आत्मत्याग द्वारा सदा ही सम्मान पाने योग्य बनो।

महामना चाहते थे कि विद्यार्थी इन मूल्यों का पालन कर अपनी जीवन शक्ति को परिपुष्ट करें। विद्याध्ययन द्वारा अपनी बौद्धिक शक्ति का विकास तथा समाज व राष्ट्र की सेवा करने की क्षमता का विकास करें। आचरण में शुद्धता, शील या शालीनता का सदा पालन करें। इस प्रकार छात्र अध्ययन के साथ-साथ स्वनियंत्रित जीवन पद्धति एवं चरित्र निर्माण द्वारा उत्तम व्यवहार कुशलता को विकसित करें। वे चाहते थे कि भारतीय छात्र सहनशीलता, क्षमा तथा निःस्वार्थ सेवा के भाव को जीवन में उतारें। इस प्रकार मालवीय जी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों हेतु अन्य शिक्षण संस्थाओं से पृथक शिक्षा पद्धति विकसित करना चाहते थे।[3]

महामना के अनुसार सबसे महत्वपूर्ण मूल्य एवं विश्वविद्यालय शिक्षण का सर्वप्रमुख कार्य विद्यार्थियों का चरित्र निर्माण है। महामना के शब्दों में,

"Formation of character is even more important for the well being of the individual and of the community, than cultivation of intellect [p. 127] .... mere industrial advancement cannot ensure happiness and prosperity to any people; nor can it raise them in the scale of nations [p. 131] ... Even industrial prosperity cannot be attained in any large measure without mutual confidence and loyal co-operation amongst the people who must associate with each other for the purpose. These qualities can prevail and endure only amongst those who are upright in their dealings, strict in the observance of good faith, and stead-fast in their loyalty to truth [p. 131]. ....Moral progress is even more necessary than material [p. 131] ....Hence it is that the proposed university has placed the formation of

character in youth as one of its principle objects. It will seek not merely to turn out men as engineers, scientists, doctors, merchants, theologians, but also as men of high character, probity and honour, whose conduct through life will show that they bear the hall-mark of a great University." [p. 137] .....[4]

महामना के इन्हीं दिव्य विचारों के कारण कविवर रविन्द्र नाथ टैगोर ने 28 दिसम्बर, 1996 के दीक्षान्त भाषण में महामना के प्रति 'जागृत भगवान हे' नामक महत्त्वपूर्ण कविता लिखी जिसके एक पद का अनुवाद करने पर भावार्थ स्पष्ट हो जाता है- आपकी शक्ति जिसे स्वयं के अन्तरात्मा के मध्य में मिलती है, वह भय को वर्जित करके जय को अर्जित करते हैं। वे हर कार्य में सार्थक सिद्ध होते हैं, वह दिन कब आएगा? वह भारत कहाँ है? कठिन आघातो से भी उस अनन्त शक्ति स्रोत आत्मा का कभी नाश नहीं होगा। वहाँ कभी अपनी आत्मा के प्रति अविश्वास होने पर लोग कठिन आघात से उस अविश्वास का नाश करेंगे। आज पुञ्जित अवसाद से ग्रसित होकर लोग अमंगल के रास्ते की ओर बढ़ रहे हैं। पुञ्जित अवसाद भार को वज्राधात से नाश करने का समय आ गया है। ऐसे में आपकी छाया मात्र ही भय से चकित लोगों को इस विपदा से मुक्ति दिलाएगी। अतः हे भगवान जागृत हो जाइये।[5]

उनके इन्हीं विचारों को देखते हुए डॉ0 राधाकृष्णन् ने मालवीयजी के अवकाश ग्रहण के समय कोर्ट में इस प्रकार कहा-

''पं0 मदनमोहन मालवीय जी में हम दो महान विशेषताओं का समन्वय पाते है- भगवान श्रीकृष्ण की चिन्तन-शक्ति और अर्जुन की कार्य-दक्षता। अपनी इन्हीं शक्तिओं के बल पर उन्होंने इस महान संस्था को जन्म दिया है, जिससे जुड़ने का हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ है। पंडित जी एक महान् 'कर्मयोगी' हैं। उन्होंने अपने स्वप्न का भौतिकीकरण किया और इस विश्वविद्यालय की स्थापना की। आज देश को 'कर्मयोग' की बहुत आवश्यकता है।''

महामना की दृष्टि में मूल्य शिक्षा का उद्देश्य विद्यार्थियों को पवित्र, सुखी, नियमयुक्त एवं चरित्रवान बनाना है। उन्होंने गीता के निम्न श्लोक का उद्धरण छात्रों को अभिप्रेरित करने हेतु बार-बार दिया :

युक्ताहारविहारस्य युक्तचेष्टस्य कर्मसु।
युक्तस्वप्नावबोधस्य योगो भवति दुःखहा।।

अर्थात् सभी बातों में संयम सीखो। वाणी में संयम, भोजन में संयम रखो एवं अपने सभी कार्यों में शीलवान् बनो। शील ही पुरुष का सबसे उत्तम भूषण है।[6] इस प्रकार मालवीय जी मूल्यशिक्षा को शिक्षा का अभिन्न अंग मानते हैं। मूल्य शिक्षा में महामना की गहरी आस्था सनातन धर्म के प्रति उनकी असीम श्रद्धा का परिणाम थी।

भारतीय ज्ञान–परम्परा में मूल्य-शिक्षा का स्थान

मूल्यों से सामान्यतः तात्पर्य उन आदर्श नैतिक संस्कारों एवं अनुशासन के नियमों से है, जो समाज द्वारा स्वीकृत होते हैं, जिन्हें व्यक्ति समाज के विभिन्न कृत्यों में भाग लेते हुए सीखता है, तथा इनसे उसका व्यवहार निर्देशित होता है। प्राचीन काल से ही भारत में शिक्षा अंतर्ज्योति और शक्ति का स्रोत मानी जाती रही है, जो शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक और आर्थिक शक्तियों के संतुलित विकास से हमारे स्वभाव में परिवर्तन लाती है तथा उसे श्रेष्ठ बनाती है। इस प्रकार शिक्षा हमें इस योग्य बनाती है कि हम समाज के एक विनीत और उपयोगी नागरिक के रूप में अपने कर्तव्यों का पालन कर सकें।[7]

मूल्य की अवधारणा उस केन्द्रीय शक्ति पूँज या धुरी (axis) के समान है जो सम्पूर्ण जीवन शैली को नियंत्रित एवं परिचालित करती है। भारतीय ज्ञान परम्परा इसी मूल्य संबंधी विचारों के आधार स्तम्भ पर खड़ी है। प्राचीन काल से ही हमारी संस्कृति पर बारम्बार आक्रमण होते हुए भी इन्हीं सांस्कृतिक मूल्यों की धरोहर ने भारतीय संस्कृति को अखण्डित रखा है। भारतीय ज्ञान परम्परा लोक कल्याणकारी, उदारवादी एवं ज्ञान की अनन्त स्रोत रही है। आदिकाल से अनेक युगद्रष्टा ऋषियों ने आध्यात्मशास्त्र का गहन अध्ययन कर भारतीय ज्ञान परम्परा को विकसित किया है। इस सम्पूर्ण शास्त्रीय विकासचक्र का केन्द्र बिन्दु मूल्यों की वैज्ञानिक अवधारणा है। मनु के अनुसार, धैर्य, क्षमा, बुरी वृत्तियों का दमन करना, चोरी न करना, शौच, आत्मनिग्रह, विवेक, विद्या, सत्य, क्रोध न करना- ये धर्म के दस लक्षण है :

धृतिः क्षमा, दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।[8]

मालवीय जी के अनुसार शिक्षा विद्यार्थी में धर्म के इन लक्षणों को विकसित करने का माध्यम है न कि मात्र जीविकोपार्जन का। शिक्षा छात्रों के हृदय में स्थित अनन्त शक्ति को उन्मेषित करती है। अतएव शिक्षा सम्पूर्ण व्यक्तित्व के विकास की धुरी है। शिक्षा के इस वृहद उद्देश्य का संकेत विश्वविद्यालय के शब्द चिन्ह में मिलता है जहाँ विद्याध्ययन को अमृतत्व प्राप्ति का माध्यम माना गया है- **'विद्ययाऽमृत अस्नुते'।** मालवीय जी की मूल्य शिक्षा का एक प्रमुख उद्देश्य शिक्षित भारतीय युवा पीढ़ी में देशप्रेम, राष्ट्रीयता और सम्पूर्ण मानवता के प्रति प्रेम के मूल्यों की प्रतिस्थापना करना था।

भारत के भावी युवा पीढ़ी के शिक्षा के बारे में महामना ने कहा था, ''जीवन ज्योति का यह केन्द्र जो अस्तित्व में आ रहा है उन विद्यार्थियों को तैयार करेगा, जो संसार के अन्य भागों के विद्यार्थियों के समान ही नहीं वरन् उत्तम जीवन बिताने में ईश्वर भक्ति तथा देश प्रेम में भी प्रशिक्षित होंगे।''

''हिताय सर्वलोकानां निग्रहाय च दुष्कृताम्।
धर्मसंस्थापनर्थाय प्रणम्य परमेश्वरम्।।
प्रसादाद् विश्वनाथस्य काश्यां भागीरथीतटे।
विश्वविद्यालयः श्रेष्ठः हिन्दूनां मानवर्धनः।।
हिन्दूराज्याधिपतिभिः धनिकै-धार्मिकैस्तथा।
मिलित्वा स्थापितः सद्भिः विद्याधर्मविवृद्धये।।''

महामना एवं मूल्य–शिक्षा का व्यापक परिदृश्य

महामना की इस मूल्य शिक्षा का बड़ा ही व्यापक परिदृश्य था जहाँ किसी भी स्तर पर मनुष्य – मनुष्य के बीच में किसी भी प्रकार के भेदभाव के लिए कोई स्थान नहीं था। हिन्दू धर्म के सनातन मूल्यों में तथाकथित स्वार्थी लोगों द्वारा मूल्यों को नष्ट किए जाने के प्रयास के वे तीव्र विरोधी थे। उनका पूरा जीवन सनातन मूल्यों पर आधारित था। इस परम्परा का जीता-जागता उदाहरण था जिसमें कहा गया था :

''जन्मना जायते शूद्रः संस्काराद् द्विज उच्यते
वेदपाठी भवेद् विप्रो ब्रह्म जानाति ब्राह्मणः।''[9]

उन्होंने जन्म के आधार पर किसी को ब्राह्मण बनने का अधिकार नहीं प्रदान किया। यही कारण है कि ब्राह्मणों के तीव्र विरोध के बावजूद उन्होंने गंगा के तट पर 1936 में सैकड़ों शूद्रों का यज्ञोपवीत किया एवं उन्हें मंत्र-दीक्षा दी। महामना के लेखों के संकलन में वैष्णव-तन्त्र के एक मंत्र का उल्लेख मिलता है जिससे उनकी दलित-उद्धारक समावेशन की नीति स्पष्ट हो जाती है—

''यथा काञ्चनतां याति कांस्यं रसाविधानतः।
तथा दीक्षाविधानेन द्विजत्त्वं जायते नृणाम्॥''[10]

जैसे काँसे पर रस का प्रयोग करने से वह सोने के समान चमकने लगता है, वैसे ही मंत्र-दीक्षा के लेने से मनुष्य द्विजत्त्व को प्राप्त करता है। द्विजत्त्व अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य के समान आदर के योग्य हो जाता है। इसका यह अर्थ है कि सामान्य शूद्र तथा चाण्डाल में भी यदि विद्या, ज्ञान, शौच, आचार आदि मूल्यों का विकास हो जाए तो ज्ञान के क्षेत्र में और सामान्य सामाजिक व्यवहार में द्विज लोग उसकी विद्या, ज्ञान, सदाचार आदि मूल्यों के अनुरूप उसका आदर करें। महामना **'अन्त्यजोद्धार विधि'** पुस्तक में दलित उद्धार के बहुत से बिन्दुओं पर प्रकाश डाले हैं। वे चाहते थे कि सार्वजनिक स्थानों से वर्णभेद का प्रश्न हटा दिया जाए। महामना ने बताया कि महाभारत में कहा गया है-

''वर्णोत्कर्षमवाप्नोति नरः पुण्येन कर्मणा।
यथाऽपकर्षं पापेन इति शास्त्रनिदर्शनम्॥
शूद्रोऽपि शीलसम्पन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत्।
ब्राह्मणोऽपि क्रियाहीनः शूद्रात् प्रत्यवरो भवेत्॥[11]

अर्थात् मनुष्य पुण्यकर्म से वर्ण के उत्कर्ष को तथा पापकर्म से अपकर्ष को प्राप्त करता है।

इसी प्रकार वे स्त्रियों को शिक्षा न दिये जाने के तीव्र विरोधी थे। जिस देश की जननी अशिक्षित रह जाएगी, उस देश में संस्कार युक्त देशप्रेमी, सहृदयी संतानों का निर्माण असम्भव हो जाएगा। गांधी जी की तरह महामना स्त्री शिक्षा एवं महिला सशक्तिकरण को राष्ट्र के उत्थान के लिए अपरिहार्य मानते थे। वे चाहते थे कि स्त्रियों की मानसिक शक्ति का पूर्ण विकास हो। उनकी दृष्टि में स्त्रियों की शिक्षा कई अर्थों में पुरुषों की शिक्षा से अधिक महत्वपूर्ण है क्योंकि वे ही भारत के भावी संतति की जननी हैं।[12] भारतीय परम्परा में **''गृहिणी गृह उच्यते''** जैसे मूल्य को बहुत अधिक महत्व प्रदान किया गया है। इसी मूल्य के सम्वर्धन के लिए स्त्री शिक्षा, नारी के प्रति सम्मान तथा उनके बहुआयामी विकास पर महामना का सतत् तथा दृढ़ समर्पण रहा है। यही कारण है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ महिला महाविद्यालय की भी स्थापना उनके द्वारा की गयी।

महामना की मूल्य शिक्षा केवल भूतल प्राणियों तक ही सीमित नहीं थी, प्रकृति के संरक्षण व संवहन को भी आत्मसात करती थी। वे धरती को मानवकेन्द्रित (Anthropocentric) नहीं वरन् विश्वकेन्द्रित (Cosmocentric) मानते थे। वे पर्यावरण की रक्षा को मानव जीवन की रक्षा से गहन रूप से जुड़ा हुआ मानते थे। गंगा के प्रवाह को सतत बनाए रखने के लिए उनका प्रयास इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जाएगा। भारत जैसे कृषि प्रधान देश में गंगाजल, सिंचाई कार्य के अग्रणी स्रोत से लेकर जीवन के हर संस्कारों का आधार रही है। 1916 में हरिद्वार में गंगा के प्रवाह को जारी रखने हेतु महामना के नेतृत्व में एक विशाल सभा का आयोजन हुआ। इस सम्मेलन में गंगा के ऊपर प्रस्तावित बांध को समझौते द्वारा रोकना मालवीय जी की बड़ी सफलताओं में से एक थी। गंगा का संरक्षण पर्यावरण संरक्षण के वृहद अवधारणा से जुड़ा है।

इसी प्रकार महामना ने 1887 में हरिद्वार में गो-रक्षा के लिए एक संगठन स्थापित किया। 1934 में एक आवेदन प्रकाशित कर आपने कहा था कि बच्चों की रक्षा के लिए गो-वध बन्द होना चाहिए। मालवीय जी द्वारा यह भगीरथ प्रचेष्ठा हमारे परम्परागत मूल्यों की रक्षा का प्रयास ही था।

महामना श्रीमद्भागवद् के साक्षात् विग्रह थे। मानवता और मालवीय मूल्यों का यह ग्रन्थ ही मालवीय जी की शक्ति का स्रोत और साधना का सोपान था। इस ग्रन्थ का सार गीता के रूप में संक्षिप्त एवं सरल भाषा में उपलब्ध है जो कर्म प्रधान जीवन की ओर प्रेरित करता है।[13] महामना नित्य श्रीमद्भागवत का स्वाध्याय करते थे। उनकी डायरी में नित्य की घटनाएँ नहीं लिखी होती, बल्कि उसे एक नीति का ग्रन्थ कह सकते हैं। अनेक कवियों, नीतिकारों और धर्मग्रन्थों के सुन्दर नीतिपूर्ण दोहे-श्लोक आदि उन्होंने उसमें लिखे थे।[14] यह उनके मूल्य-बोध एवं चरित्रवान भावी संतति के निर्माण की प्रचेष्टा का ही परिचायक है। विश्वविद्यालय के प्रागंण में मूल्य शिक्षा को जीवंत स्वरूप प्रदान करने के लिए उन्होंने एकादशी कथा एंव प्रत्येक रविवार को गीता के प्रवचनों के पाठ की प्रथा की व्यवस्था कराई। महामना की ओजस्वी वाणी के द्वारा जब इन कथाओं का पाठ होता था तब उसका प्रभाव अन्तः चेतना को जागृत करते हुए पूरे वातावरण को पवित्र बना देता था। भारतीय सांस्कृतिक परम्परानुसार मालवीय जी यथार्थ में 'राष्ट्रगुरु' रहे हैं, जिनका सम्पूर्ण प्रयास **'ज्ञानाञ्जन शलाका'** द्वारा **'अज्ञानरूपी अंधकार'** को मिटाकर उत्तम ज्ञान मार्ग की ओर प्रशस्त करना रहा है। अन्य सुअवसरों पर भी धार्मिक सम्भाषण दिये जाते थे और यह प्रयत्न किया जाता था कि विद्यार्थियों के हृदय पर धर्म और नीति के मूल तत्व का प्रभाव पड़े।[15]

गायत्री मंत्र मानसिक ऊर्जा एवं बौद्धिक शक्ति के विकास पूँज के रूप में कार्य करती है। यह वैज्ञानिक मान्यता सम्पन्न मंत्र स्वास्थ्य

संरक्षण के साथ-साथ रोगों से मुक्ति का मार्ग भी प्रशस्त करती है। महामना इस मंत्र को प्रत्येक छात्र के सर्वोमुखी विकास हेतु उनकी नित्य जीवनचर्या का अंग बनाना चाहते थे। अतः उन्होंने प्रत्येक विद्यार्थी द्वारा इसके स्पष्ट उच्चारण एवं नित्य पाठ करने पर बल दिया। इसके माध्यम से विद्यार्थियों को अनन्त शक्ति के अभिमुख करना उनका उद्देश्य था। महामना ने गो-रक्षा, गंगा की अविरल धारा पर बाँध बनाने का विरोध, गीता पाठ एवं गायत्री मंत्र के वैज्ञानिक महत्व को देश के सर्वांगीण विकास का आधार स्तम्भ माना। इस प्रकार आज के परिप्रेक्ष्य में यदि हम गवेषणा करें तो पाते है कि महामना के ये चार मूल्य संबंधी आधार स्तम्भ एवं भारतीय संस्कृति को अक्षुण्ण रखने वाले विचार अपनी प्रासंगिकता को बनाये हुए है।

समकालीन परिप्रेक्ष्य में मूल्य–शिक्षा की उपादेयता

समकालीन परिप्रेक्ष्य में वैश्वीकरण, पश्चिमीकरण एवं यूरोप के अंधानुकरण के प्रभाव के कारण मूल्यों के ह्रास की समस्या विकट रूप धारण करती जा रही है। वास्तव में मूल्यों का ह्रास वैश्वीकरण के कारण नहीं हुआ है। यह देखने की आवश्यकता है कि हमने किस सीमा तक वैश्वीकरण के समक्ष खुद को समर्पित कर दिया है। समस्या इससे विकराल रूप धारण की है। भारतीय जनमानस में मूल्यों का ह्रास हो रहा है। वे अपनी जड़ों से कटते जा रहे हैं। ऐसी स्थिति में केवल वैश्वीकरण से मूल्यों का ह्रास हो रहा है, यह कहना अनुचित होगा। आज विकास के नाम पर अमेरिकी कम्पनियों द्वारा शिक्षा को एक व्यापार (Industry) बनाकर प्रस्तुत करने का भरसक प्रयास किया जा रहा है। देश की संस्कृति पर निरन्तर प्रहार हो रहा है। इस विनाशकारी वातावरण में राष्ट्रीय भाषा, संस्कृति एवं पारम्परिक मूल्यों के संरक्षण एवं सम्वर्द्धन हेतु सभी के लिए निरन्तर संगठित होकर प्रयास करना आवश्यक हो गया है। वर्तमान में हमारा देश जिस प्रकार भ्रष्टाचार, कालेधन, राजनीति के अपराधीकरण, नैतिकता के घोर पतन एवं प्रशासन की अराजकता से त्रस्त है, ऐसे में मूल्य शिक्षा की उपादेयता स्पष्टतः परिलक्षित होती है। इस परिप्रेक्ष्य में महामना की मूल्यशिक्षा प्रासंगिक प्रतीत होती है। महामना ने देशहित में सामाजिक सहिष्णुता एवं अनेकता में एकता के मूल्य को भली-भांति समझा एवं इस दिशा में आजीवन कार्यरत रहे। महामना को निकट से देखने, अनुभव करने वाले मर्मज्ञ आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी ने ठीक ही कहा हैं, 'पूज्य मदन मोहन मालवीय जी भारतीय संस्कृति के मूर्तिमान रूप थे।'[16]

मालवीय जी के शिक्षा संबंधी विचारों एवं राष्ट्रीयता मूलक चिन्तन में ''**मूल्य**'' का विशेष प्रभावशाली एवं अग्रणी स्थान रहा है। मूल्य आधारित नेतृत्व के माध्यम से ही महामना ने अतुलनीय शिक्षण संस्थान की प्रतिस्थापना की।[17] सनातन धर्म तथा भारतीय संस्कृति के संरक्षण तथा प्रोत्साहन में मूल्य की धारणा उनके विचारों में विशेष रूप से मुखर होकर सामने आई है। दृष्टान्त हेतु गंगा नदी के ऊपर बाँध बनाने या उसके प्रवाह को बाधित करने का उन्होंने पूरजोर विरोध किया था। वर्तमानकालीन गंगा संरक्षण के लिए देशभर के आन्दोलन एक तरह से महामना के दूरगामी विचार एवं भगीरथ प्रचेष्टा का ही हृदय से नमन कर रहे हैं। यह उनके मूल्य सम्बन्धी गहन विचारों का ही प्रभाव है कि आज मूल्य शिक्षा विद्यालयी विषय के रूप में कई प्रमुख संस्थानों में अनिवार्य रूप से पढ़ाया जाने लगा है। महामना ने शिक्षा में समरसता के महत्व पर बल दिया जो वर्तमान समाज की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता है।

आज विद्यार्थियों का समूह जिस प्रकार हिंसा, अनैतिकता एवं विघटकारी क्रियाओं में लिप्त हो रहे हैं, ऐसे में महामना के मूल्य संबंधी विचारों की प्रासंगिकता और भी अधिक बढ़ गई है। मूल्य शिक्षा को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के लक्ष्य के रूप में उन्होंने प्रतिस्थापित किया है। उनके अनुसार विश्वविद्यालय का उद्देश्य होगा,

"To promote the building up of character in youth by making religion and ethics an integral part of education."

कुसुमाञ्जली

महामना के अनुसार किसी मनुष्य अथवा जाति की तब तक उन्नति नहीं हो सकती, जब तक वह अपनी वर्तमान दशा से असन्तुष्ट होकर उसे सुधारने का यत्न न करे। वर्तमान अवस्था से असन्तोष और उन्नति की इच्छा, ये दो उन्नति के मूल मंत्र है।[18] लाला लाजपत राय ने महामना जी को श्रद्धा सुमन अर्पित करते हुए कहा था कि मालवीय जी जैसे महापुरूष कई सैकड़ों वर्षों में पैदा हुआ करते हैं। देश के अथवा कांग्रेस के सामने जब कोई विशेष संकट उपस्थित हुआ, महामना मालवीय जी उससे उबारने के लिए चट्टान की तरह खड़े पाये गए। ऐसे नर रत्न की अर्चना-वन्दना कौन देश नहीं करेगा।[19]

महामना की अपेक्षा थी कि ''यह विश्वविद्यालय ऐसा हो जहाँ हमारे प्राचीन काल की उदात्त पद्धतियों की रक्षा और प्राच्य व पाश्चात्य के सर्वश्रेष्ठ ज्ञान का एक साथ प्रकाश हो सके।[20] महात्मा गाँधी ने महामना के विषय में कहा था कि ''मैं तो मालवीय जी महाराज का पूजारी हूँ।'' यह उनकी बहुमुखी प्रतिभा का हमारे राष्ट्रपिता के हृदय में अगाध श्रद्धा को प्रतिबिम्बित करता है।

महामना विद्यार्थियों को उपदेश देते हुए कहते थे कि ''कठोर काम में अनवरत लगे रहने का अभ्यास डालो, पढ़ते समय सारी दुनिया को एक ओर रख दो और पुस्तकों में, लेखक की विचारधारा में डूब जाओ। यही तुम्हारी समाधि है, यही तुम्हारी पूजा है। कठिन परिश्रम करना सीखो। खूब जमकर मेहनत करो और अपने उच्च और पवित्र आदर्श को कभी मत भूलो। शास्त्र और शस्त्र, बुद्धिबल और बाहुबल दोनों का आदर्श न भूलो।[21] महामना के जीवनी लेखक प्रो0 मुकुट बिहारी लाल ने उनके मूल्य संबंधी धार्मिक दृष्टिकोण के विषय में लिखा है किः- ''वे धार्मिक शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों में उन व्यापक और उदार भावनाओं को प्रोत्साहित करना चाहते थे, जो मनुष्य के बीच भातृत्व की भावना का विकास करे।''[22] वे चाहते थे कि देश के भावी कर्णधारों का चरित्र धर्म, नैतिकता और देशभक्ति की ऊर्जा से अनुप्राणित हो तो दूसरी ओर वे देश के भौतिक, आर्थिक प्रगति में बढ़-चढ़कर योगदान कर सकें।[23]

महामना के कथानुसार, यदि आप यह याद रखेंगे कि परमात्मा सभी जीवधारियों में विद्यमान हैं तो उस ईश्वर तथा अन्य जीवधारी भाईयों से आपका सच्चा सम्बन्ध सदा बना रहेगा। इसी विश्वास से कि परमात्मा सभी प्राणियों में विद्यमान है, मूल्यों का निर्माण हुआ है जिनमें सभी प्रकार के मानव धर्म का समावेश हो जाता है। जैसे- '**आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।**' अर्थात् दूसरों के प्रति कोई भी ऐसा आचरण न करो जिसे तुम अपने प्रति किये जाने पर अप्रिय समझते हो, यथा

'यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत्।'

अर्थात् जो कुछ तुम अपने प्रति चाहते हो, वैसा ही तुम्हें दूसरों के प्रति भी करना आवश्यक है। ये दो प्राचीन मूल्य मनुष्य मात्र के लिए आचरणीय है।[24]

आज देश में पश्चिमीकरण, उपभोक्तावाद एवं गलत पूँजीवादी नीतियों का जिस प्रकार अंधानुकरण किया जा रहा है उसी का प्रभाव है कि हमारे देश में पेट्रोलियम का मूल्य राष्ट्रीय नहीं अपितु अन्तर्राष्ट्रीय बाजार संस्थाएँ निर्धारित करती है। वैश्विक आर्थिक संकट का प्रभाव हमारे बाजारों पर भी पड़ने लगा है। हमारे किसानों को विदेशी बीजों के प्रयोग हेतु बाध्य किया जा रहा है। जिससे क्रमशः हमारे कृषि क्षेत्र का नियंत्रण बहुराष्ट्रीय कम्पनियों के हाथों में आ जाने का भय है। भारतीय बौद्धिक परम्परा के जितने सक्रिय कार्यकर्त्ता रहे हैं, चाहे वे सी0वी0 रमन हो या लोहिया जी, चाहे गाँधी जी हो या मालवीय जी सभी ने भारतीय परम्परा, सभ्यता एवं संस्कृति पर आधारित मूल्यों की आधारशिला पर ही अपने विचार-मंथन को केन्द्रित किये। महामना का समस्त जीवन ही मूल्यों पर केन्द्रित था। शिक्षा जगत् से लेकर राजनीतिक क्षेत्र में, समाज सेवा से लेकर निजी जीवन में उन्होंने स्वयं उन मूल्यों को न केवल आत्मसात् किये वरन् ''**आत्मोदीपो भव**'' के अनुरूप भावी पीढ़ी को अपना दृष्टान्त प्रस्तुत किये।

गुरूदेव रविन्द्रनाथ टैगोर ने उन्हें पहली बार 'महामना' कहा जो आजीवन उनकी पहचान बन गई।

डॉ0 श्यामाप्रसाद मुखर्जी के मत में, शिक्षा, राजनीतिक और हिन्दू धर्म तथा संस्कारों के सुधार कार्य में उनकी कोई समानता नहीं कर सकता। इस क्षेत्र में वे एक असाधारण व्यक्तित्व थे।

जिस प्रकार गंगाजल से गंगा पूजन हमारी परम्परा है, उसी क्रम में कर्मयोगी महामना के मूल्य विषयक चितंन के कुछ प्रसंगों द्वारा हम अपनी श्रद्धा सुमन अर्पित कर रहे हैं:-

''तुम धरोहर इस धारा के ज्योति पुँज-अपार
युग सृजन के कर्मयोगी, इस धरा के हार।
भारतीयता के पुजारी, परम साधु अपार
हे मालवीय! वन्दन तुम्हारा, वन्दना शतबार॥''

सन्दर्भ

1. दर एण्ड सोमस्कन्दन, 1966, ***हिस्ट्री ऑफ द बनारस हिन्दू यूनिवरसिटी,*** पब्लिकेशन सेल, का0हि0वि0वि0, वाराणसी, पृ0 51
2. डॉ0 चन्द्रकला पाडिया एवं डॉ0 भावना मिश्रा (सम्पा0), 2001, ***भारतीय मनीषा के अग्रदूत पं. मदनमोहन मालवीय,*** विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी, पृ0 135-143
3. उद्धृत, ***काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक : महामना पंडित मदन मोहन मालवीय,*** 2007, प्रेस पब्लिकेशन एण्ड पब्लिसिटी सेल, का0हि0वि0वि0, वाराणसी। (महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय द्वारा दिया गया 1929 के दीक्षान्त भाषण का अंश)
4. दर एण्ड सोमस्कन्दन, 1966, ***हिस्ट्री ऑफ द बनारस हिन्दू यूनिवरसिटी,*** बी0एच0यू0 प्रेस, का0हि0वि0वि0, वाराणसी।
5. ''जार तव शक्ति मिल निज अन्तर माझे।
   बर्जिल भय, अर्जिल जय, सार्थक हल काजे।।
   दिन आगत ओई भारत तबउ कोई?
   आत्म अविश्वास तार नाश कठिन घाते।
   पुञ्जित अवसाद भार हान अशनि पाते।।
   छाया भय चकित मुन्छ करइ परित्राग हे।
   जागृत भगवान हे।, उद्धृत, डॉ0 उमेश दत्त तिवारी, 1988, ***भारत-भूषण महामना पं0 मोहन मालवीय, (जीवन एवं व्यक्तित्व),*** का0हि0वि0वि0, वाराणसी, पृ0 143 से, अनुवादित मेरे द्वारा।
6. अवधेश प्रधान (सम्पा0), 2007, ***महामना के विचार : एक चयन,*** सजिल्द, का0हि0वि0वि0, वाराणसी, पृ0 37
7. डॉ0 अनन्त सदाशिव अल्तेकर, ***प्राचीन भारतीय शिक्षण पद्धति,*** पृ0 6
8. ***मनुस्मृति,*** अध्याय 6, श्लोक संख्या 92
9. ***महाभारत,*** अध्याय 12, श्लोक 188
10. उद्धृत, डॉ0 उमेश दत्त तिवारी, 2004, ***महामना के लेख,*** महामना मालवीय फाउण्डेशन, वाराणसी, पृ0 46-47
11. उद्धृत, डॉ0 विश्वनाथ पाण्डेय (सम्पा0) 2008, ***काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक,*** का0हि0वि0वि, पृ0 27-28
12. चन्द्रकला पाडिया, 2007, ***प्राच्यवाद और स्त्री का प्रश्न : आधुनिक चिन्तकों की दृष्टि,*** महिला अध्ययन एवं विकास केन्द्र, का0हि0वि0वि0, वाराणसी, पृ0 162
13. डॉ0 उमेश दत्त तिवारी, 2003, ***महामना पं0 मदन मोहन मालवीय : संक्षिप्त जीवन-परिचय,*** महामना फाउण्डेशन, पृ0 30
14. डॉ0 उमेश दत्त तिवारी, 2004, ***महामना के प्रेरक प्रसंग खण्ड-3,*** महामना मालवीय फाउण्डेशन, वाराणसी, पृ0 33
15. पूर्वोक्त, अवधेश प्रधान, ***महामना के विचार : एक परिचय,*** आमुख
16. उद्धृत, धर्मपाल सैनी, 25 दिसम्बर, 2007, ***सादगी-संस्कार-स्वदेश प्रेम की अद्भुत त्रिवेणी, हिन्दुस्तान***, पृ0 9
17. ए0एन0 त्रिपाठी, 2003, ह्यूमैन वैल्यूस, न्यू एज इण्टरनेशल पब्लिशर्स, नई दिल्ली, पृ0 232
18. डॉ0 लक्ष्मीशंकर व्यास, 1987, ***महामना मालवीय और हिन्दी पत्रकारिता,*** का0हि0वि0वि0, पृ0 71
19. डॉ0 उमेश दत्त तिवारी, 2003, ***महामना पं0 मदन मोहन मालवीय : संक्षिप्त जीवन परिचय,*** महामना फाउण्डेशन, पृ0 31
20. वही, पृ0 27
21. डॉ0 उमेश दत्त तिवारी, 2004, ***महामना के भाषण,*** महामना मालवीय फाण्डेशन, वाराणसी, पृ0 47
22. मुकुट बिहारी लाल, 1978, ***महामना मदन मोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व,*** मालवीय अध्ययन संस्थान, का0हि0वि0वि0, वाराणसी
23. पूर्वोक्त, अवधेश प्रधान, ***महामना के विचार : एक परिचय,*** आमुख।
24. डॉ0 विद्युत वर्मा, जनवरी, 2001, ***महामना चिन्तन आलोक,*** महामना मालवीय मिशन, लखनऊ, पृ0 121-122

◆

करुणामूर्ति मालवीय जी एवं उनका गोरक्षाभियान

डॉ0 श्यामसुन्दर शुक्ल *

मालवीय जी जिस धर्म के पुजारी थे, उसे वे हिन्दू धर्म की संज्ञा नहीं देते थे क्योंकि सामान्य रूप से हिन्दू धर्म 'हिन्दू सम्प्रदाय' का पर्याय माना जाता है, परन्तु मालवीय जी जिस हिन्दू धर्म की बात करते थे, वह सम्प्रदाय से अलग और संसार के सभी धर्मों से श्रेष्ठ है। अहिंसा के पुजारी तो महात्मा गांधी भी थे, परन्तु महामना की अहिंसा ईसाइयत तथा टालस्टॉय के सिद्धान्तों के अनुसार न होकर धर्मशास्त्रों पर आधारित थी। मालवीय जी के विचार से ''हमारे देश में समस्त आध्यात्मिक जीवन का आधार ही अहिंसा रहा है।'' महात्मा गांधी ने अहिंसा की जो व्याख्या की थी, वह परम्परागत विचार से भिन्न है, परन्तु मालवीय जी इस अहिंसा से आगे जाकर अनिर्दयता के सिद्धान्त को अहिंसा मानते थे। चूँकि हिंसा निर्दयता की चरम स्थिति है, अतः उसके विपरीत अनिर्दयता अहिंसा का सर्वोत्तम रूप है, ऐसी मान्यता मालवीय जी की थी।

इसी क्रम में मालवीय जी की अहिंसा का एक प्रतिबिम्ब हरिहर बाबा के प्रसंग में देखा जा सकता है। काशी में उस समय रामनगर घाट के सामने संत हरिहर बाबा नाम के एक साधु रहते थे। वे सदा ही गंगा में नौका पर निर्वस्त्र ही रहा करते थे। यहाँ तक कि वे कौपीन या लँगोटी भी धारण नहीं करते थे। उनके शरीर की चमड़ी शीत और घाम से तप कर काली और हाथी की चमड़ी जैसी हो गयी थी। मालवीय जी ने जब विश्वनाथ जी के मंदिर में 'विश्वशांति यज्ञ' किया था, उस अवसर पर हरिहर बाबा का उसी प्रकार से उनके द्वारा अभिषेक किया गया था, जैसा रुद्राभिषेक के आयोजन में होता है। उन्हें मालवीय जी ने एक बड़ी नौका भी समर्पित की थी। एक दिन विश्वविद्यालय के कुछ छात्रों से और बाबा के शिष्यों से कहा-सुनी होने के बाद नौका को छात्रों ने क्षतिग्रस्त कर दी। इससे चिढ़कर बाबा वहाँ से तीन किलोमीटर दूर अस्सी घाट पर जाकर रहने लगे थे। जब मालवीय जी वापस आये तो उन्हें इस घटना का पता चला। इससे खिन्न होकर वे दूसरे ही दिन बाबा से क्षमा माँगने के लिए गये। बाबा के बजड़े पर ज्यों ही महामना जी के पैर पड़े, बाबा ने नितान्त ग्रामीण भाषा में धाराप्रवाह रूप से सैकड़ों भद्दी-भद्दी गालियाँ दीं। महामना जी उनसे बार-बार क्षमा माँगते जा रहे थे। मालवीय जी की आँखों से अश्रुधारा बह निकली और दूसरी नौका बनवाकर उन्हें देने का वचन देकर मालवीय जी वापस आ गये। इसके पश्चात् जो भी व्यक्ति बाबा से मिलने आये, बाबा ने उन सबको बताया कि 'मालवीय जी उनसे भी बड़े संत हैं, अतः सब लोग उन्हीं का आशीर्वाद लिया करें।'

पूर्वी बंगाल के नोआखाली में हिन्दुओं पर हुए भीषण अत्याचार का आँखों देखा दृश्य जब मालवीय जी को बताया गया तो वे इतने दुखी हुए कि उनकी आँखों से आँसुओं की बरसात होने लगी। उस समय वे रुग्ण थे और कहीं आने-जाने में असमर्थ थे। उस समय मालवीय जी के सामने दो प्रश्न थे, पहला यह कि सांप्रदायिक हिंसा के बल पर जिन हिन्दुओं का धर्मान्तरण किया गया है, उनके विषय में और जिन महिलाओं को विधर्मियों द्वारा विधवा बना दिया गया है, उनका अपहरण किया गया है, उनके साथ दुराचार हुआ है और साथ ही उन्हें धर्मांतरित भी कर दिया गया है, उनके सम्बन्ध में क्या होना चाहिए। ऐसे प्रश्नों पर विचार जानने और निर्णय करने के लिए मालवीय जी ने अपने बँगले पर मूर्धन्य पंडितों की एक सभा बुलाई और सबको एक स्वर से यह स्वीकार करने की प्रेरणा दी कि ''बलात् मुसलमान बनाये गये हिन्दुओं को पुनः हिन्दू धर्म में लेने के लिए किसी प्रकार की शुद्धि-प्रक्रिया की आवश्यकता नहीं है, मात्र राम-नाम और गंगाजल इसके लिए पर्याप्त हैं। साथ ही बहुत धीमी आवाज में उन्होंने नोआखाली के विपत्ति-गस्त हिन्दुओं के नाम और उसके बहाने समस्त हिन्दू राष्ट्र के लिए उनका अंतिम संदेश सिद्ध हुआ।

गोभक्त महामना के प्रेरणा-स्रोत

कौटिल्य के 'अर्थशास्त्र' के गो-प्रकरण से जान पड़ता है कि उस समय दूध देने वाले पशुओं की रक्षा के लिए समसामयिक शासन द्वारा अनेक प्रकार के उपाय किये जाते थे। यों तो गायों के दुहते समय इतना दूध छोड़ने का नियम उसके भी बहुत पहले से चलता आ रहा था कि जितने से बछड़े या बछिया का पेट भर सके। परन्तु गर्मी के दिनों में जब गायों में दूध की कमी आ जाती थी, तब गोपालक बछड़े के लिए थन में दूध छोड़े जाने की मात्रा घटा देते थे, जिससे बछड़े का पेट नहीं भरता था। यदि कोई गोपालक ऐसा करता था तो शासन की ओर से आज्ञा थी कि ऐसे ग्वाले का अँगूठा काट लिया जाय। तात्पर्य यह कि बछड़ा या बछड़ी को पर्याप्त दूध मिले, ताकि वे एक स्वस्थ बैल या गाय का रूप ले सकें। इसी 'अर्थशास्त्र' के अनुसार बछड़े, साँड़ या गौ अबध्य थे। इस देश में यह प्रथा बहुत दिनों से चली आयी है कि गाय केवल हिन्दुओं की ही माता नहीं हैं, बल्कि तीनों लोकों की माता है। शास्त्रों में कहा गया है ''गावस्त्रैलोक्य मातरः''। यहाँ तक कि मुसलमानों के समय में भी गोरक्षा पर पर्याप्त ध्यान रखा गया था।

मुगल बादशाह बाबर ने मरते समय अपने बेटे हुमायूँ को समझाया था कि यदि भारत के लोगों पर सुविधाजनक शासन करना है, तो गौ-हत्या पर रोक लगानी होगी। इसके पहले फीरोजशाह तुगलक के समय तक मांसाहार के लिए गौ-वंश की बिक्री पर जजिया कर लगाया गया था। बाद में मुगल बादशाहों ने गो-वध की मनाही कर दी। मुगल सम्राट् अकबर और उसकी कई पीढ़ियों बाद मुहम्मदशाह और

* सेवानिवृत्त आचार्य, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

शाहआलम ने भी गो-वध पर रोक लगा दी थी। मुगलों के अंतिम दिनों में छत्रपति शिवाजी ने तो ब्राह्मण और गो-वंश की रक्षा को अपनी राजनीति का मुख्य आधार ही बनाया था। शिवाजी ने अपने इस नियम का बड़ी कड़ाई से पालन किया। काश्मीर और नेपाल में गोरखा राजाओं द्वारा इसके लिए विशेष प्रबन्ध किये गये थे। जोधपुर रियासत में तो गाय के साथ भेड़ और बकरी को भी वध-हेतु राज्य से बाहर ले जाने पर कड़ा प्रतिबन्ध लगाया गया था। इस प्रकार विभिन्न समयों में, विभिन्न राजवंशों ने अपने-अपने ढंग से गो-संवर्द्धन और गोरक्षा का उचित उपाय किया था।

इस विषय में बहुत से मुस्लिम राज्य भी हिन्दुओं से पीछे नहीं थे। सीतापुर की 'इस्लामिक गोरक्षण सभा' के संस्थापक सैय्यद नाजिर अहमद साहब ने 'इस्लामी गोरक्षण सभा' की स्थापना की थी। वे गौ और गोपाल कृष्ण के अनन्य भक्त थे और उन्होंने सदा यह प्रचार किया कि इस्लाम धर्म ने कहीं भी गो-वध की आज्ञा नहीं दी है। सन् 1877 में मद्रास में ''जीवों को निर्दयता से बचाने वाली समिति'' नामक एक संस्था स्थापित हुई थी। इस संस्था के सिपाहियों को अधिकार मिला था कि वे किसी भी जीव-हिंसक को गिरफ्तार कर सकते हैं। कलकत्ते में सन् 1928 ई0 में 'काऊ प्रिजर्वेशन लीग' की स्थापना हुई और इसके अध्यक्ष सर आशुतोष मुखर्जी थे। इसके साथ ही बंगाल में अनेक पिंजरापोल, गोशालाएँ और गोरक्षण मंडलियाँ बनी हुई थीं।

मालवीय जी द्वारा गोरक्षा-आन्दोलन का नेतृत्व

मालवीय जी का गोरक्षा आन्दोलन से बड़ा सम्बन्ध रहा है। कांग्रेस की राष्ट्रीय महासभा के अस्तित्व में आने के बाद ही उसके सम्मेलन के साथ-साथ प्रतिवर्ष गो-रक्षा सम्मेलन भी होने लगा था और उसमें मालवीय जी बढ़-चढ़कर भाग लेने लगे थे। महामना का 'गोरक्षा आन्दोलन' धार्मिक, आर्थिक और स्वास्थ्य, तीनों कारणों से प्रेरित था। इसी प्रेरणा के फलस्वरूप हरिद्वार के ''गो वर्णाश्रम धर्मसभा-कनखल'' ने और फिर 'भारत धर्म महामण्डल' और 'सनातन धर्मसभाओं' ने गोरक्षा के लिए आन्दोलन छेड़ दिया। मालवीय जी इनमें से अधिकांश गोरक्षा सम्मेलनों के सभापति रहे। उन्होंने स्थान-स्थान पर गोशालाओं और पिंजरापोलों के लिए भूमि और भवन की व्यवस्था में अपना अविस्मरणीय योगदान किया। साथ ही उन्होंने राजाओं और जमींदारों से मिलकर गोचर भूमि के लिए उनसे जगह छुड़वाई और आर्थिक सहायता भी ली। उन दिनों मथुरा के स्वामी हासानन्द की गोरक्षक के रूप में बड़ी ख्याति थी। वे सदैव मुँह पर कालिख पोते हुए रहते थे। उनका कहना था कि ''जब तक पूरे देश में गो-वध पूरी तरह बन्द नहीं हो जाता तब तक वे इसी प्रकार रहेंगे।'' महामना जी ने इनकी मथुरा में 'हासानन्द गोचर भूमि ट्रस्ट' की स्थापना में भरपूर सहायता की। कांग्रेस की 'अखिल भारतीय गोरक्षा समिति' तो महात्मा गांधी की संरक्षकता में ही संस्थापित हुई थी। मालवीय जी की अध्यक्षता में प्रयाग में जो 'सनातन धर्म महासम्मेलन' हुआ, उसमें गो-रक्षा के सम्बन्ध में कई महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव पारित किये गये, इनमें से कुछ निम्नवत हैं-

1- यह महासभा हिन्दू भाइयों से आग्रहपूर्वक प्रार्थना करती है कि वे गौओं को बधिकों के हाथ न पड़ने दें और बंध्या तथा बूढ़ी गोओं को ऐसे स्थानों में या जंगलों में रखने का प्रबन्ध करें, जहाँ सरकारी प्रतिबन्ध न हो।

2- इस महासभा के द्वारा जमींदारों से निवेदन किया गया कि वे गो-चारण के लिए काफी भूमि छोड़ने का नियम बनावें और सरकार उन जमीनों को मालगुजारी से मुक्त करे।

3- जहाँ-जहाँ उचित जान पड़े, एक-एक आदर्श गोशाला खोली जाय और प्रत्येक हिन्दू से निवेदन किया जाय कि अपने सामर्थ्य के अनुसार कम-से-कम एक गाय अवश्य पाले।

4- गोदान करने वालों से कहा गया कि वे ऐसे व्यक्ति को ही दान करें, जो उस गाय की रक्षा करने में समर्थ हो। यदि वे ऐसा करने में समर्थ न हों तो उन्हें वे दान में गाय देने से मना कर दें।

5- मृतक संस्कार में सवर्ण हिन्दुओं में प्रचलित 'वृषोत्सर्ग' में वे उत्तम जाति के ही साँड़ छोड़ें और साथ ही उन्हें पालने वाली संस्था या व्यक्ति के लिए उसका ठीक-ठीक पालन-पोषण करना और रक्षा करना कर्त्तव्य होगा। यदि दान प्राप्तकर्त्ता व्यक्ति द्वारा ऐसा प्रबन्ध सम्भव न हो तो वृषोत्सर्ग में साँड़ छोड़ा ही न जाय, क्योंकि अंततः वे कसाई के हाथ पड़ जाते हैं।

6- यह महासभा हिन्दू मात्र को आदेश देती है कि कसाइयों से किसी तरह का व्यवहार न रखें और किसी भी हालत में गोवंश को उनके हाथ न बेंचा जाय। यदि कोई ऐसा करे तो उसको दण्डित करने की व्यवस्था होनी चाहिए।

अंत में, समस्त हिन्दुओं से अनुरोध किया गया कि गोवंश के वध से प्राप्त चमड़ा और चर्बी आदि का उपयोग वे त्याग दें और स्वाभाविक मृत्यु से मरे पशुओं के ही चमड़े से बने हुए जूते काम में लावें। इसी प्रकार कपड़ा-निर्माताओं को निर्देश दिया गया कि वे कपड़े में माड़ी के प्रयोग में चर्बी के स्थान पर अन्य वस्तुओं का उपयोग करें।

'सनातन धर्म महासभा' ने इस बात पर बड़ी चिन्ता व्यक्त की कि बड़े शहरों में दूध बेचने वाले व्यक्ति गायों के साथ बड़ी क्रूरता का व्यवहार करते हैं। गाय जब युवावस्था में होती है तभी उसे बंध्या बनाकर कसाई के हाथों बेंच दिया जाता है। गाय का दूध बछड़े के पीने से कम न हो, इसलिए उसके बच्चे को ही मार दिया जाता है। अतः पिंजरापोल के व्यवस्थापकों को ऐसी गायों का पता लगाकर अपने संस्थान में ले लेना चाहिए, और आर्थिक दृष्टि से वे उपयोगी हो सकें, इसका प्रयास करना चाहिए। इसके साथ ही गोदुग्ध को अधिकाधिक लोकप्रिय बनाने का प्रयास भी किया जाना चाहिए। 'सनातन धर्म महासभा' ने एक ''अखिल भारतवर्षीय गोरक्षा कोष'' की भी स्थापना की थी। साथ ही उक्त प्रस्ताव के साथ गोपालकों को परामर्श दिया गया कि गोपाष्टमी का पर्व धूम-धाम से मनाया जाय। गोरक्षा संबंधी एवं गो-

पूजा और गो-कथा के आयोजनों के साथ-साथ गो-परिपालन सम्बन्धी साहित्य का प्रचार भी किया जाय। जमींदारों से निवेदन किया गया कि जिनकी जमींदारी के भीतर गाय-बैल के बाजार लगते हों, उनमें कसाई क्रय-विक्रय न कर सकें। इस प्रकार मालवीय जी ने 'सनातन धर्म गोरक्षा समिति' के माध्यम से गोधन की रक्षा और समृद्धि के लिए अनेकानेक उपाय किये। मालवीय जी स्वयं ही गायों को पालने और उनका दूध पीने का आग्रह लोगों से करते थे। इनका गाय और बैलों के प्रति इतना अधिक प्रेम था कि यदि हल जोतते या बैलगाड़ी खींचते हुए बैल थकते जैसे मालूम हो रहे होते तो उन्हें बिना चोट पहुँचाये कुछ समय के लिए कार्यमुक्त करने का उनका आग्रह होता था। यदि किसी गाय या बैल को घाव हो गये हों, वे बीमार हो गये हों या घायल हो गये हों तो वे स्वयं मरहम-पट्टी के लिए आगे बढ़ते थे और दूसरों को भी प्रेरित करते थे।

गोरक्षा कोष

जैसा कि इसके पहले कहा जा चुका है, सनातन धर्म की उक्त सभा में यह भी संकल्प लिया गया था कि गोधन की वृद्धि के लिए एक 'अखिल भारतवर्षीय गोरक्षा कोष' की स्थापना की जायँ, जिसकी सहायता से गोचर भूमि की वृद्धि और गोरक्षा के अन्यान्य उपाय किये जायें। इसके लिए अन्य गो-प्रेमी भाइयों एवं गोरक्षा के क्षेत्र में काम करने वाले लोगों से सहयोग लिया जाय। साथ ही सरकारी जंगलों में गोचर भूमि अधिक-से-अधिक क्षेत्रफल में प्राप्त हो, इसके लिए प्रान्तीय कौंसिलों, व्यवस्थापिका संस्थाओं तथा देशी राज्यों के द्वारा कानून बनवाने का प्रयत्न भी किया जाय।

साथ ही यह भी प्रस्ताव पारित किया गया कि 'गो सप्ताह' मनाये जाने की अवधि में गोरक्षा हेतु दान माँगा जाय और जितनी रकम मिले उसे अखिल भारतीय गोरक्षा कोष में जमा कराया जाय।

मालवीय जी अखिल भारतीय स्तर पर गोरक्षा के उपायों में ही तल्लीन नहीं थे, बल्कि स्वयं भी गोपालन करते थे। उनके आवास के भीतर कई गायें एवं बछड़े-बछड़ी होते थे। मानो वे शास्त्र के इस श्लोक का पूरा अनुगमन कर रहे हैं-

''गावो मेऽग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥''[1]

मालवीय जी गौ के बारे में कहा करते थे, ''गौ मानव-जाति की माता के समान उपकारी, बल और निरोगता देने वाली तथा मनुष्य जाति की आर्थिक उन्नति बढ़ाने वाली देवी है।''

सन् 1925 में एक बार मालवीय जी व्याकरण तथा साहित्याचार्य एवं संस्कृत साहित्य विभागाध्यक्ष पंडित चन्द्रधर शर्मा पाण्डेय से मिलने आये और हँसते हुए पूछा कि पंडित जी! आप कितना दूध पीते हैं? शर्मा जी ने कहा ''सायंकाल दो सेर भैंस का दूध पीता हूँ।'' मालवीय जी ने उन्हें राय दी- ''गौ का दूध पीजिए, भैंस का नहीं, क्योंकि गौ के दूध से लाभ अधिक हैं। पुनः एक बार चन्द्रधर जी से महामना ने पूछा- ''आपने कितनी दण्ड-बैठक लगाई और कितना दूध पिया?'' तो उन्होंने बताया- ''चार-पाँच सौ बैठक लगाकर, दो सेर भैंस का दूध पीकर आया हूँ।'' सन् 1928 में कलकत्ता कांग्रेस के अवसर पर ''गौ महासभा'' के सभापति के नाते मालवीय जी ने जो भाषण दिया वह अविस्मरणीय है। उन्होंने अश्रु भरे नेत्रों और भर्राए कण्ठ से परम गोभक्त बासवानी जी से कहा ''मैं एक वृद्ध व्यक्ति हूँ और आपसे शायद न मिल सकूँ, परन्तु आपसे यह कहना चाहता हूँ कि गोरक्षा का कार्य अपने हाथ में लें और पूर्ण प्रयास करें कि गौओं पर अमानुषिक अत्याचार बन्द हों।''

एक बार जब पंजाब के गोरक्षा-व्रती तथा पशु हिंसा-विरोधी महात्मा रामचन्द्र वीर से मिलने मालवीय जी कलकत्ता पधारे तो उन्होंने अनशनरत वीर जी से दो घंटे तक बातचीत की। उस समय मालवीय जी ने उनसे व्रत को स्थगित करने का आग्रह किया और बताया कि ''मैंने एक अखिल भारतीय संस्था गोरक्षा के लिए स्थापित की है, जो पशुबलि के विरुद्ध आन्दोलन करेगी।'' मालवीय जी के कारण कलकत्ता के नागरिकों ने इस योजना में पूरा सहयोग दिया। मालवीय जी के इस आश्वासन पर महात्मा रामचन्द्र वीर ने एक वर्ष के लिए अपना अनशन स्थगित कर दिया और साथ ही अपना यह निश्चय भी व्यक्त किया कि यदि ''काली मंदिर में पशुबलि बन्द नहीं होगी तो मैं पुनः अनशन आरम्भ कर दूँगा।'' अतः एक वर्ष बाद तीस सितम्बर सन् 1936 को वीर जी को पुनः अनशन करना पड़ा, क्योंकि पुजारियों की हठधर्मी के कारण पशुबलि बन्द नहीं हुई। इस बार वह अनशन 40 दिन तक चला। इस समय मालवीय जी भी पशु-हत्या बन्द न होने के कारण बहुत दुःखी हुए और देश के विभिन्न स्थानों पर जाकर उन्होंने पशुबलि के विरुद्ध जनमत तैयार किया, जिसका परिणाम यह हुआ कि पशुबलि पूर्णतः बन्द तो नहीं हुई परन्तु बहुत कम हो गयी। मालवीय जी जब भी गीता-प्रवचन या धार्मिक विषयों पर प्रवचन करते थे, वे 'जीवदया' और 'धर्म-रक्षा' पर अवश्य जोर देते थे।

मालवीय जी अपने वक्तव्यों में प्रायः हिंसा विरोधी विचार व्यक्त करते थे। वे कहा करते थे कि ''जूतों के कारण लाखों दीन और बेगुनाह पशुओं की जान मारी जाती है। इन जूतों के निर्माण के लिए जिस तरीके से असंख्य पशु मारे जाते हैं, वह कहने, सुनने और देखने में अत्यन्त दुःखद है।'' अतः मालवीय जी ने पशु-हिंसा के विरोध में स्वयं तो चमड़े के जूते का त्याग किया ही था, अन्य लोगों को भी वे ऐसा ही करने की प्रेरणा देते थे। वे लोगों को राय देते थे कि कपड़े का जूता भी पर्याप्त टिकाऊ होता है। अतः उसे अपनाना पशु-हिंसा को रोकने में सहायक होगा।

1. 'अखिल भारतीय गोरक्षा-समिति' में पारित प्रस्ताव संबंधी सामग्री के लिए आचार्य सीताराम चतुर्वेदी कृत 'महामना पंडित मदन मोहन मालवीय का जीवन चरित' नामक ग्रन्थ पर आधृत होने के कारण आचार्य चतुर्वेदी जी के प्रति आभारी हूँ।

मालवीय जी का हृदय इतना कोमल था कि वे किसी भी जीव को कष्ट में नहीं देख सकते थे। एक बार एक कुत्ते के कान के पास एक बड़ा घाव हो गया था और उसमें कीड़े पड़ गये थे। उसे देखकर वे व्यग्र हो उठे और दौड़-धूप कर उन्होंने दवा की व्यवस्था का, परन्तु उस पागल कुत्ते को कैसे दवा लगाई जाय और कैसे खाने की दवा दी जाय, इसका साहस किसी को नहीं हो रहा था। लेकिन मालवीय जी धुन के पक्के थे और उन्होंने एक बाँस में लपेट कर कुत्ते के घाव में दवा लगा दी, थोड़ी ही देर में उसे आराम हुआ तो वह शान्त हो गया और फिर उन्होंने खाने की दवा भी खिला दी। कुछ दिनों के उपचार के बाद वह ठीक हो गया, ऐसे थे- मदन मोहन!

एक बार नासिक (महाराष्ट्र) में 15 मार्च सन् 1936 को आयोजित गोरक्षा सम्मेलन में मालवीय जी ने बहुत ही मार्मिक भाषण दिया था। वह अवसर था, सेठ श्री प्रागजी भाई द्वारा स्थापित एक बहुत बड़ी गोशाला की स्थापना का। उस अवसर पर महामना ने कहा था- ''जिस दिन देश के कोने-कोने में इस प्रकार की संस्थाएँ स्थापित होंगी, जिनका मुख्य काम होगा जनसामान्य के पास तक शुद्ध और सस्ता दूध पहुँचा देना, तो यथार्थतः दुग्ध-क्रान्ति आयेगी। आज तो देश में दूध की चारों ओर कमी है, उसमें भी गाय के दूध की तो और भी कमी है। यह तो आप जानते ही हो कि गाय के दूध में जो गुण हैं, वह किसी अन्य पशु के दूध में नहीं। इस बात का समर्थन सभी डॉक्टर, हकीम, वैद्य और अनुभवी व्यक्ति समान रूप से करते हैं। एक समय था जब देश में घी और दूध की नदियाँ बहती थीं, उस समय भारत की प्रजा में जो बल था, पराक्रम और पुरुषार्थ था, उसकी कथा आज आश्चर्य के साथ सुनी जाती है। जिस प्रकार लन्दन आदि बड़े-बड़े नगरों के पास गाँवों में गोशालाएँ स्थापित हैं, उसी प्रकार बम्बई, कलकत्ते आदि विशाल नगरों के बाहर गाँवों में गोशालाएँ स्थापित हों, जिनसे उन नगरों में शुद्ध और पवित्र दूध भेजा जा सके।''

मालवीय जी केवल ऐसा उपदेश मात्र ही नहीं देते थे, बल्कि उन्होंने विश्वविद्यालय और काशी के आस-पास अनेक गोशालाओं की स्थापना में भी योगदान दिया था। काशी में जौनपुर राजमार्ग पर वाराणसी से 10 किलोमीटर पश्चिम पंचकोशी परिक्रमा के रामेश्वर नामक तीर्थ स्थित 'व्यास-बाग' में एक गोशाला में लगभग सौ गायें थीं और इनके अतिरिक्त अच्छी नस्ल के साँड़ और बैल भी थे।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है, दूध न देने वाली गायों को कसाई के हाथ बेचना मालवीय जी के लिए बहुत कष्टकारक अनुभव था। इसीलिए वे बार-बार विभिन्न अवसरों पर कहा करते थे कि गोमाता (जिसे वे ''गूँगी माता'' कहते थे) को कसाई के हाथ बेचना पाप है।'' उनका हृदय इतना दयालु था कि वे किसी भी छोटे-बड़े जीव की हिंसा से द्रवित हो जाते थे। एक बार की बात है, वे जब मोटर से आजमगढ़ होते हुए गोरखपुर जा रहे थे, तो रास्ते में मोटर के पहिए से दबकर एक गिलहरी का देहान्त हो गया। गोरखपुर पहुँचने पर उन्होंने बिना अन्न-जल ग्रहण किये प्रायश्चित रूप में जब तक 'ॐ नमः शिवाय' मन्त्र का कई बार जप नहीं कर लिया और गिलहरी की सद्गति के लिए भगवान् शिव से प्रार्थना नहीं कर ली, तब तक उन्हें शान्ति नहीं मिली, फिर उसके बाद ही अन्य कार्यक्रम आरम्भ हो सके। यहाँ तक कि जब गांधी जी के बीमार बछड़े को उसके कष्ट-निवारण के लिए उनके संकेत पर विष देकर मृत्यु प्रदान किये जाने का समाचार जब मालवीय जी को मिला तो उन्होंने इसे अच्छा कार्य नहीं माना।

◆

महामना : छवि और प्रकृति

प्रोफेसर (डॉ0) महेन्द्र नाथ दूबे *

''महामना'' नाम नहीं, सामान्य-जनता द्वारा श्रद्धा भाव से निवेदित किया गया, ''नाम''-की ही जगह, संक्षेप में संबोधित किया जानेवाला, उपनामवत पदबन्ध है, जो ''मदन मोहन मालवीय'' नाम के सत्पुरुष के लिए सर्व-समाज में प्रचलित हुआ। समाज द्वारा प्रदत्त ऐसे पदबन्धों को स्वीकारने-नकारने का कोई विकल्प नहीं होता। परम्परानुसार-वंश-कुल आत्मीयजनों की सहमति से माता-पिता अपनी सन्तानों का अच्छा-से-अच्छा नामकरण करते हैं। वही सन्तान की संज्ञा (व्यक्तिवाचक) होती है। परम्परानुसार ही उस वंश-कुल की वंशोपाधि भी प्रायः ही उसके साथ जुड़ जाती है। संज्ञा-नाम-और वंशोंपाधि नाम दे देने तक का ही योगदान होता है, किसी भी वंश में उत्पन्न हुई मानव-सन्तान को उसके माता-पिता परिवार द्वारा नामकरण कर देने का, उसके बाद उस नाम का केवल बस उसी रूप में लेना या और भी उत्कृष्टतर करके अपनाना अथवा उसे और भी बिगाड़ कर उसके प्रति अपनी खीझ दिखाना, अथवा उसकी खिल्ली-उड़ाना आदि सुकर्म या अपकर्म उससे संबंध रखनेवाला समाज ही करता है। आँखों से विहीन को प्रज्ञाचक्षु या सूरदास या विल्वमंगल को बिलुआ-मँगरुआ कृष्णवर्णवाले को कलुआ, छोटे कदवाले को नटुआ आदि उपनाम समाज ही देता आया है। व्यक्ति के रूप-वर्ण-कद-काठी-हृष्ट-पुष्टता, सामाजिक-जीवन स्तर एवं उसके द्वारा किए गए सुकर्मों-कुकर्मों, (जिनका निर्णायक समाज स्वयं होता है।) के आधार पर, वे उससे संबंद्ध समाज ही करता है।

वैसे कई सन्तानें अपनी विभिन्न योग्यताओं के बलबूते शैक्षणिक-सामाजिक गौरव के अनुरूप नाना उपाधियाँ भी प्राप्त करती हैं। नाना कारणों से कोई-कोई अपनी वंशोपाधियों का प्रयोग करना छोड़ देता है, उससे संबंधित कोई और पुरानी वंशोपाधि ग्रहण कर लेता है, अपनी इच्छा के अनुरूप कोई नई ही उपाधि ग्रहण कर लेता है, जाति की किसी एक शृंखला को सूचित करने वाली वंशोपाधि की जगह अपने मूल-गोत्र से संबंधित गोत्रोपाधि अपना लेता है अथवा कभी-कभी जब संबंधित समूहों का एक बड़ा वर्ग अपनी निजी महत्ता को श्रेष्ठस्तर पर सूचित करने के लिए अपने संबद्ध किसी पुरानी उपाधि को या फिर स्वेच्छा से नई उपाधि को ग्रहण करता है जैसे कि उत्तर भारत में ''राम'' या ''देवी'' जैसे प्रचलित उपाधियों की जगह चौधरी, चौहान, मौर्य, यादव, सिंह यादव, शाक्य, कुशवाहादि पुनःप्रचलन में आईं उस प्रवाह में सम्मिलित होता है। परन्तु समाज जब अपनी ओर से भला-या-बुरा कोई पदबन्ध या सम्मानोपाधि या दुर्नामोपाधिपरक कर देता है, तो निश्चय ही उसके पीछे उस सन्तान की एक पुरुष या महिला के रूप में किए गए लम्बे समय तक के कर्मों को ही आधार बनाए होता है; तभी किसी-किसी को महात्मा, महापुरुष, महामना, साधू महाराज, भले मानस, योगी-यती या फिर नारद, विभीषण, जयचन्द आदि उपनामों से पुकारने लगता है।

वंशोदभव और पारिवारिक अवस्थान का आधार हमें सूचित करता है कि महामना की स्थिति-माध्यमिका थी। बहुत पुराने जमाने की तरह उनका वंश-परिवार बस एक विशेष स्थान पर ही बसे रहने का न तो दृढ़वती था और न आज के नौकरीपेशा या व्यापारिक सुविधा असुविधा के चलते थोड़े-थोड़े समय पर ही स्थान परिवर्त्तित करते रहने वाला था। बहुत समय तक मालवा की सरजमी पर निवास करते हुए पेशे से श्रीमद् महाभागवत पुराण कथा वाचक, ब्राह्मण जाति के इस परिवार के सदस्य कथावाचन करवानेवाले कथा-पिपासुओं के आमन्त्रण पर यहाँ-वहाँ जाते-आते रहे थे, किन्तु अपने मूलनिवास-स्थान को छोड़कर कहीं अधिक सुविधाजनक जीवन बिता सकने की संभावना और उस स्थान पर की पवित्रता-महात्म्य-धार्मिक जीवन जी सकने की आशा से मालवा क्षेत्र के कुछेक अन्य परिवारों के साथ एक विशेष चतुर्वेदी ब्राह्मण उपाधि शाखा का भारद्वाज गोत्रीय परिवार, जिसके मूल-शाखा प्रवाही पंडित धर्मवीर चतुर्वेदी थे, जिनके वंश में पुत्र प्रेमधर चतुर्वेदी पौत्र ब्रजनाथ चतुर्वेदी उत्पन्न हुए (हिन्दू-विवाह-परम्परा में वर-वधू की पाणिग्रहण-वेला में जो शाखा-गोत्राचार होता है, उसमें दोनों कुलों की तीन-तीन पीढ़ियों का नामोच्चार होता है, अतएव जब कोई किसी को प्रणाम करता था, तब अपने पिता के नाम को बतलाता हुआ अपना परिचय देता था, उसी तरह विवाहोपरान्त अथवा अन्यान्य आधारों पर मूल-निवास-स्थान परिवर्तन करने पर अपनी तीन पीढ़ियों का नाम बतलाने की परम्परा है) उन-ब्रजनाथ चतुर्वेदी ने भागवत-कथा-वाचन का अपना पारिवारिक कार्य सुचारु रूप से करके ख्याति प्राप्त करते हुए अपने परिवार के लिए तीर्थराज प्रयाग (इलाहाबाद) में आकर निवास-स्थान बनाया। इलाहाबाद के अहियापुर मुहल्ले में धर्मपत्नी मूनादेवी के साथ रहते हुए कथा-वाचन का पारिवारिक व्यवसाय करते हुए अपनी वंश-वेलि बढ़ाई। उनके दो अग्रज पुत्रों लक्ष्मीनारायण, जयकृष्ण और पुत्री यशोदा देवी के अनन्तर तीसरे पुत्र के रूप में जिस बालक ने जन्म लिया (पौषकृष्ण, अष्टमी संवत् 1918, दिनांक 25-12-1861 ई0) उसका नामकरण मदन मोहन चतुर्वेदी के रूप में हुआ। उनके बाद जो चौथे कनिष्ठ पुत्र हुए वे श्याम सुन्दर चतुर्वेदी कहलाए।

पं0 ब्रजनाथ चतुर्वेदी जी तो कथा-वाचन का आनुवांशिक कार्य ही करते रहे, किन्तु मालवा से इलाहाबाद आए अन्यान्य परिवारों की देखा-देखी इस परिवार और इस परिवार के अन्यान्य पट्टीदारों ने विभिन्न शिक्षाएं लेकर नौकरी-पेशा अथवा स्वतन्त्र कार्य-व्यवसाय भी करना शुरु कर दिया था। मालवा से आए गौतम-गोत्रीय भट्ट ब्राह्मण-

* पूर्व सम्पादक, ''प्रज्ञा'' जर्नल, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एवं पूर्व निदेशक, के. एम. मुंशी इन्स्टीट्यूट, आगरा विश्वविद्यालय, आगरा।

श्री बालकृष्ण भट्ट ने 'हिन्दी प्रदीप' नामक विख्यात पत्रिका का सम्पादन आरंभ किया था। स्वयं मालवीय के चाचा श्री गदाधर जी ने गवर्नमेन्ट हाईस्कूल में संस्कृत विषय पढ़ाने का कार्य स्वीकारते हुए स्थानान्तर होने पर मिर्जापुर में जाकर रहना शुरु कर दिया था। वैसे सेवानिवृत्त होने के बाद इलाहाबाद ही लौट आए थे जहाँ उन्होंने बालकृष्ण भट्ट को संस्कृत और अन्यान्य विषयों की शिक्षा इतने प्यार से दी थी, कि वे उन्हें ही अपना गुरु मानते थे। मालवीय जी के एक चचेरे बड़े भाई पं0 जय गोविन्द जी उसी गवर्नमेन्ट स्कूल के हेडमास्टर थे, जिसमें मालवीयजी ने पढ़ाई की थी। नौकरी-पेशा अपना चुके पट्टीदारों का रहन-सहन अपेक्षाकृत सुविधाजनक था किन्तु पं0 ब्रजनाथ चतुर्वेदी की अत्यन्त आकर्षक और ज्ञानवर्द्धक कथा-वाचन शैली के बावजूद श्रोताओं की ओर से इतनी धनराशि भी नहीं मिल पाती थी कि वे अपने परिवार का अच्छी तरह पालन-पोषण कर सकें। अपनी सन्तानों के भविष्य को उज्ज्वल करने के लिए युगानुरूप उपयोगी शिक्षा दिला सकें। मदन मोहन सहित वे अपनी सभी सन्तानों को संस्कृत-पाठशालाओं की परम्परित शिक्षा ही दिलवा पा रहे थे। संयोग से उस समय प्रयाग में एक पंडित हरदेव गुरु जी नाम के ऐसे समाज सेवी थे, जिन्हें गरीब जनता के बाल-बच्चों में निःशुल्क, शिक्षा-प्रसार करने की प्रबल भावना थी, जिसके चलते उन्होंने ''धर्मज्ञानोंपदेशिनी-पाठशाला'' चला रखी थी, जिसमें वे स्वयं भी पढ़ाया करते थे। संस्कृत की पाठशालीय शिक्षा मदन मोहन की यहीं से आरंभ हुई। पं0 हरदेव जी छात्रों को इतनी आत्मीयता से पढ़ाते थे, कि ऋषिकुलों के गुरुओं के प्रति की जानेवाली श्रद्धा उनके छात्र उनके प्रति करते थे। मदन मोहन पं0 हरदेव गुरु जी को ही अपना आदिगुरु मानते थे। उन्हीं की प्रेरणा से संस्कृत की परम्परित-शिक्षा के अलावा नये जमाने की शिक्षा के प्रति भी मदन मोहन का झुकाव हुआ, जिसके लिए वे ''गवर्नमेन्ट स्कूल में भर्त्ती हुए। वहाँ थोड़ी सुविधा इसलिए थी कि उनके ज्येष्ठ चचेरे भाई पं0 जयकान्त जी वहीं अध्यापक थे। किन्तु हाईस्कूल के आगे की खर्चीली पढ़ाई के लिए आवश्यक धन जुटाने के लिए उनकी माता मूना देवी को अपने गहने तक गिरवी रखने पड़े थे।''

पारिवारिक रहन-सहन वेश-भूषा आदि मालवा-क्षेत्र से विस्थापित होकर इलाहाबाद में बसे ब्राह्मणों ने इलाहाबाद में आकर भी अपना रहन-सहन मालवा जैसी ही बनाए रखा था। नित्य प्रातः स्नान-ध्यान, पूजन-अर्चन, जिसमें किसी-किसी ने त्रिवेणी संगम जाकर स्नान कर आने का अनुष्ठान भी जोड़ लिया था। कुछ ने प्रातःकालीन टहलने का अभ्यास अपना लिया था, तो कोई-कोई इलाहाबादी अखाड़ों में जाकर कसरत करने कुश्ती-लड़ने का भी चाव दिखाया था। जो ऐसा न कर पाते वे स्वयं अथवा किसी सहयोगी से पूरे शरीर में तेल मालिश जरूर करवाते। प्रातराश (नाश्ता) से लेकर रात्रिकालीन भोजन तक सभी कुछ सीधा-सादा होता। गाय से प्राप्त दूध-दही-मट्ठा-पनीर-भिगोई बादाम को यूँ ही पीसकर खाने, किसी-किसी परिवार में भाँग घोटने का भी चलन बदस्तूर था, कुछ ने उसे ठंडई में बदल लिया था। साधारण ब्राह्मण परिवारों की तरह वे लोग भी प्याज, लहसुन जैसे उत्तेजक पदार्थों, माँस-मछली आदि को भोजन में कभी भी शामिल नहीं करते थे। अधिक मिर्च अथवा अधिक गर्म मसाले भी नहीं ग्रहण करते थे।

उन सभी की वेश-भूषा में मालवीपन बना हुआ था। पं0 बालकृष्ण भट्ट की सी ही वेश-भूषा गाढ़े कपड़े की धोती मालवी शैली की मिरजई बांधने वाली, कुछ लोग बटनदार कमीजें और कुर्त्ता भी पहनने लगे थे। शौकीन लोग रेशमी दुपट्टे रखते, तो साधारण लोग गमछा या अंगोछा कंधों पर डाले रहते। जाड़ों में ऊनी और मोटे कपड़ों का व्यवहार इलाहाबादी परिवारों जैसा ही होता। सरपर मालवी शैली की टोपी, जो कुछ-कुछ मथुरिया चौबे लोगों जैसी भी हुआ करती थी, प्रयोग में लाते थे।

मालवा से आए ब्राह्मण परिवार जहाँ तक हो सकता था, अपनी सन्तानों के संस्कारादि अपनी पूर्व व्यवस्था के अनुसार ही करते थे मदन मोहन का यज्ञोपवीत संस्कार नौ वर्ष की वय में 1970 ई0 में सम्पन्न करवा दिया गया। सन्तानों के विवाह वे लोग प्रायः अपने समाज में ही करते थे। बालकृष्ण भट्ट और मदन मोहन मालवीय जी ने भी बहुत बाद में चलकर उसी, सद्भावना के तहत अपनी एक-एक का विवाह करवाया और इस तरह परस्पर समधी बने। हालांकि इलाहाबाद और आस-पास के स्थानीय ब्राह्मणों से भी संबंध बनाने का सिलसिला भी चलन में आ गया था। स्वयं मदन मोहन का विवाह मिर्जापुर के एक ब्राह्मण परिवार में हुआ था। उनके गदाधर जी, चाचा जी जब मिर्जापुर गवर्नमेन्ट कालेज में पढ़ाते थे, तब एक बार जब वहाँ ब्राह्मणों की विशाल सभा हुई तब मदन मोहन जी उनके साथ उसमें गए थे। अवसर मिलने पर उन्होंने भी वहाँ अपना ओजस्वी भाषण दिया जिनकी स्पष्ट उच्चारण करने वाली वाणी, तर्क शैली, सुन्दर रूप के साथ-साथ मर्यादित आचरण देखकर सभा में उपस्थित स्थानीय ब्राह्मण पंडित नन्दराम जी ने उन्हें अपना जमाता बनाने का निर्णय लिया, जिसके परिणामस्वरूप 20 वर्ष की उम्र में सन् 1881 ई0 में उनका विवाह नन्दराम जी की कन्या कुन्दन देवी से सम्पन्न हुआ। आगामी काल में मदन मोहन मालवीय जी ने अपने पौत्र-पौत्रियों के विवाह स्थानीय ब्राह्मणों के परिवारों में ही किया।

संभाव्य तो यही था कि मालवा की परम्परित शैली में जीवन-जीते हुए संस्कृत का गहन अध्ययन कर मदन मोहन भी अपने पूज्य पिता की भागवत कथावाचन की परम्परा को और चार चाँद लगाते। परिवार की इच्छा भी यही थी, विशेषतः मदन मोहन की शारीरिक गठन, गौरवर्ण, मुख-मण्डल की कान्ति और वाणी की ओजस्विता को देखते हुए। नयी परिस्थितियों को देखते हुए पूज्य पिता जरूर इतना और चाहने लगे थे कि मदन मोहन जब बी0ए0 कर ही रहे हैं, तो संस्कृत विषय में एम0 ए0 भी कर लें। म्योर सेन्ट्रल कालेज, इलाहाबाद जो तब कलकत्ता विश्वविद्यालय से ऐफिलिएटेड थी, पढ़ाई करते हुए उन्होंने जो ऋषितुल्य गुरु पाया था, पं0 आदित्य राम भट्टाचार्य के रूप में उन्होंने भी इनकी प्रतिभा को देखते हुए, इन्हें बार-बार प्रोत्साहित किया

एम0 ए0 कर लेने के लिए। किन्तु परिवार की आर्थिक दशा अब ऐसी नहीं रह गई थी कि आगे पढ़ाई करें। इसी से इनके चचेरे भाई पं0 जय गोविन्द जी साहब ने अपने गवर्नमेन्ट स्कूल में नौकरी कर लेने का प्रस्ताव दिया। माँ की आँखों में उमड़ आए आँसुओं को देख इन्होंने मात्र रूपए चालीस प्रतिमाह वेतन पर अध्यापक की नौकरी ग्रहण कर ली।

वंश-परम्परा के निर्वाह में प्रख्यात भागवत कथा-वाचक अथवा स्वयं की इच्छा के अनुसार सनातन हिन्दू धर्म के प्रचार-प्रसार में जीवन लगाकर वे महान धर्म प्रचारक के रूप में विख्यात हो सकते थे। अथवा पट्टीदारों द्वारा अपना लिए गए सरकारी नौकरी में अध्यापन करने के पेशे में प्रवेशकर एक अच्छे अध्यापक के रूप में यश कमाने का सुअवसर पा सकते थे। सो 'अन्ततः जिस गवर्नमेन्ट हाई स्कूल में पढ़ाई की थी उसी में अंग्रेजी टीचर के रूप में नियुक्ति पाकर एक लोकप्रिय अध्यापक के रूप में प्रशंसित हुए भी । मदन मोहन ने अपनी वंश-परम्परा को आध्यात्मिक परम्पराओं को किंचिन्त मात्र भी आघात नहीं लगाया। इनका वंश कृष्णोपासक था, सो परम सात्विक भागवत भक्त पिता पं0 ब्रजनाथ चतुर्वेदी की भाँति वे भी श्री कृष्ण और भागवत के भक्त जीवन-पर्यन्त बने रहे। भागवत की कथावाचक-परम्परा को वे आगे न बढ़ा पाए किन्तु अत्यन्त सुकुमार वय में ही अपनी पाठशाला के गुरु पं0 देवकीनन्दन जी के साथ प्रयाग के माघ-मेले में जाकर धर्मोपदेशात्मक व्याख्यान देना, जो उन्होंने शुरु किया तो, जीवन की सान्ध्यवेला तक प्रयाग के कुम्भ अथवा माघ मेलों में विविध आयोजनों को करते हुए वे धर्म प्रचार के साथ-साथ धर्म-संस्कार, धर्म-उद्धार, पिछड़े हुए, दबे-कुचले, तिरस्कृत धर्मबन्धुओं को उनका अधिकार दिए जाने के धर्मोपदेश देते रहे थे।

जब तक इलाहाबाद में रहे संगम-स्नान से लेकर व्यायाम कसरत दूध-माखन-पनीर सेवन, सादा भोजन, शुद्धाचरण यथावत् करते रहे। अध्यापन का कार्य परिवार की इच्छा के अनुरूप किया ही। अतः कोई भी छवि-अंकक चित्रकार (पोर्ट्रेट डिज़ाइन आर्टिस्ट) गौर कान्तिमय, प्रशस्त ललाट पर चन्दन तिलक लगाए मालवी पंडिताऊ टोपी (कुलही की आकृति-सी) से आच्छादित सिर वाली, मध्यम लम्बाई की कदकाठी वाली सुगठित देह पर अधोवस्त्र रूप में धोती, पदत्राण में नागरा जूते या कोलापुरी चप्पल पर खड़े, मालवी शैली की मिरजई या अचकन में सुशोभित प्रकृति की अनुकृति रूप में छवि आँक ही देगा। परन्तु जब मदन मोहन की प्रकृति से उसका मिलन किया जाएगा, तब निश्चय ही इस रूप में अंकित छवि का मेल मदन मोहन की प्रकृति से कभी भी नहीं मेल खा सकेगा। कारण क्या है? कारण वही है कि प्रकृति मदन मोहन की जो है। मदन (कामदेवता) ही किसी की पकड़ में नहीं आया तो फिर मदन मोहन को कोई क्या पकड़ पाएगा?

प्रकृति के अन्यतम चितेरे, सुमित्रानंदन पन्त ने कहा है—**''क्षण-क्षण परिवर्त्तित प्रकृति-देश।''** मदन मोहन की प्रकृति आगे चलकर जो इस कदर बदल गई, इसका आभास भी प्रकृति की छवि (मूल की यथार्थ अनुकृति)—पोर्ट्रेट बनाने वाले चित्रकार की कल्पना में भी कभी नहीं आ सकती थी। छवि के शीर्षक नाम को ही लें तो उन्होंने वंशोपाधि चतुर्वेदी को गुप्त रखते हुए, अपने वंश-मूल-मालवा के सन्निकर्ष में मालवीय उपाधि रखी। मालवा वाले तो नहीं किन्तु मालवा आए हुओं को इलाहाबाद आदि स्थानीय निवासी, ''मालवी, मल्लई'' कहते थे, उसे संस्कारितकर मदन मोहन ने जो ''मालवीय'' किया, फिर अपनी अलौकिक-कीर्त्ति से जो नाम-यश कमाया, उससे, मालवा से आए ब्राह्मण-परिवारों का यह सहज स्वीकार्य-''विरुद'' हो गया। इलाहाबाद के अहियापुर का वह भाग जहाँ मालवा से आए ब्राह्मणों का भी समुदाय रहता है। ''मालवीय नगर'' के रूप में विख्यात हुआ ही, अब तो जाने कितने बड़े-बड़े शहरों में विशाल-विशाल परिसर के ''मालवीय नगर'' बस और विख्यात हो चुके हैं।

प्रत्येक वस्तु की तरह छवि-निर्माण के भी दो पक्ष होते हैं, एक तो वह जिसकी छवि उतारी जा रही है, वह वस्तु या व्यक्ति स्वयं और दूसरा छवि बनाने वाला कलाकार। व्यक्ति, समाज या लोक जो दरसल रचयिता भी होते हैं और उसे बनाए रखते हुए और उसी रूप में प्रचारित करते रहने की भूमिका में भी होते हैं। चित्र मूर्त्ति दरसल छवि ही तो होती है। कैसा सुखद संयोग है कि चित्र का अर्थ बोधक जो संस्कृत ''छवि'' शब्द है, फारसी का ''शनीह'' उससे ध्वनि से तो मिलता ही है-छाया-चित्र, तस्वीर, फोटो, समानता, मिसाल, सादृश्य आदि अर्थों को व्यक्त करने के कारण भी समान हैं।

इनके निर्माण में संलग्न कलाकार वस्तु, प्रकृति-परिवेश (लैंड-स्केप) अथवा व्यक्ति की आभा से स्वयं प्रभावित हो, अथवा किसी अन्य द्वारा निर्देशित किए जाने पर जो उस प्रकृति का ये कलाकार चित्र बनाते हैं, वे प्रथमतः उसका सम्यक-दृष्टि से यथातथ्यात्मक आवलोकन, निरीक्षण-परीक्षण करते हैं। ठीक उसी तरह जैसे फोटो खींचने वाले कैमरे के परिदृश्य में उसे अच्छी तरह साध लिया करते हैं, तब बटन दबाकर उसकी फोटो खींचते हैं। इस तरह खींचे गए फोटो में जैसे उस वस्तु का सही-सही अक्स-स्वरूप-बिम्ब उतर आता है, उसी तरह अतिकुशल व्यक्ति चित्रांकक कलाकार चित्रांकित की जा रही वस्तु-परिवेश या व्यक्ति का सही चित्र उकेर देते हैं। छवि उकेरने की इस कला शैली में भी दो तरह की मुख्य मान्य शैलियाँ हैं—(I) अतियथार्थ या यथार्थवादी (सुररिएलिस्टिक) और (II) प्रभाववादी (इम्प्रेशनिस्टिक) छवि-अंकक स्वाभाविक रूप से सर्वोत्तम छवि ही प्रस्तुत करना चाहता है, अतः स्वाभाविक है कि वह पदार्थ-परिवेश या व्यक्ति भी सर्वोत्तम ही सामने चुनना चाहता है। हर एक की छवि उतारने में न उसे अभिरुचि होती है और न उसे कोई लाभ हो सकने की संभावना। व्यक्ति-चित्रांकक या मूर्त्ति-निर्माता कलाकारों का यथार्थ का अतियथार्थ वादी वर्ग यहाँ तक कि प्रभावादी-वर्ग के भी कुछ बहुत ऊँची श्रेणी के कलाकार इसी लिए सर्वोत्तम सौन्दर्य को ही अपने लक्षितव्य के रूप में सामने रखना चाहते हैं। परन्तु उनका आग्रह हर किसी के द्वारा स्वीकार कर लिया जाना संभव नहीं होता। हर किसी की बात क्या करें? कवीन्द्र

रविन्द्रनाथ ठाकुर जो स्वयं भी एक महान चित्रकार थे, अपने आत्मीय संबंधों के कारण उस जमाने के सर्वाधिक प्रसद्धि व्यक्ति-चित्रकार को जब योरोप से खास तौर पर कलकत्ते व्यक्ति-चित्र (पोर्ट्रेट) बनाने के लिए बुलाया गया तब जब ''प्रीति अधिकारी'' (जो बाद में लेडी रानू मुखर्जी के रूप में अपने सौन्दर्य के साथ-साथ ललित कलाओं की श्रेष्ठ जानकार और संरक्षक के रूप में विख्यात हुई) के पोर्ट्रेट बनवा रहे थे, तब जब उस चित्रकार ने उसकी नग्न-छवि उतारनी चाही थी, तब रवीन्द्र नाथ जैसे कला उपासक ने भी मना ही कर दी थी, हालांकि तब रानू बालवय की ही थी; किन्तु रविबाबू की अत्यन्त चहेती थी, जिसे कवि गुरु अपने परिवार की बहू बनाने के लिए उत्सुक थे।

आत्मीय लगाव के चलते प्रायः ही लोग ऐसी दशा में नग्न-तस्वीरें बनवाना पसन्द नहीं करते, किन्तु उधर श्रेष्ठ और स्थापित छविकारों का भी अकाट्य तर्क होता है कि व्यक्ति के नाम पर हम उसके पहने कपड़ों जो दरसल-व्यक्ति सौन्दर्य को ढँकने का वाहियात काम ही करते हैं, उनका चित्र क्यों कर बनाएँ? हम कपड़े बनाने या फैशन-डिज़ाइनिंग प्रसाधन-कम्पिनियों के विज्ञापन के लिए तो चित्र नहीं बना रहे होते हैं। उनका यह आग्रह भी सही होता है। इस आग्रह के चलते ही पूरी दुनियाँ में अनेकानेक श्रेष्ठ चित्रों एवम् मूत्तियों का निर्माण हुआ है, जिन्हें युगों-युगों से लोग अति आतुरता और श्रद्धाभाव से निहारते आ रहे हैं। कला की उत्कृष्टता के चलते दर्शक यह तक भूल जाते हैं कि ऐसी कुछ कलाकृतियाँ उनके परमपूज्य देवताओं या देवियों को भी नग्न रूप में प्रदर्शित करती हैं। 1. ग्रीस के देवता ''काउरोस'' की ताममूर्त्ति, 2. डिस् कोबलस-रोमन प्रतिकृति मूर्त्ति 3. मथुरा-म्युजियम की तोरणद्वार की यक्षिणी मूर्त्तियाँ 4. नर्त्तित-नटेश श्री रंगम को नटराज की विश्व प्रसिद्ध मूर्त्ति 5. क्रूस पर चढ़ाए गए ईसामसीह क्राइस्ट की-पेस्टक्रूज-(जर्मनी-कोलोग) की काष्ठ-मूर्त्ति, 6. माइके-जोलों का बनाया गया-डेविक-का व्यक्ति-चित्र, 7. सिस्टाइन की सीलिंग पर बना फ्रेस्को-भित्ति-चित्र, 8. धनुष चढ़ाते हुए कुपिड बालक का चित्र (विएना), 9. ऐडम और ऐव का चित्र-(ब्रिटिश म्युजियम), 10. लूकास क्रेनाश का चित्र बनाया जर्मन-स्त्री और बालक का नग्न चित्र, 11. नाथंशेबा का बनाया-रेम्ब्रान्ट नामक नग्न-स्त्री चित्र, 12. मोनेट का बनाया-ओलेम्पिआ नामक और स्त्री चित्र, 13. बैटिसेल का बनाया-बर्थ आफ वेनिस नामक चित्र, 14. कुजमा पेट्रोव का चित्र-दिरेडहार्स राइडर, 15. अल्ब्राइट का बनाया चित्र फलक-कमरा नं0 203 आदि चित्र नग्न होते हुए भी अपनी प्रभावोताकता के कारण पूरे विश्व में विख्यात हैं, समादृत है। यथार्थ चित्र बनाने का यह चक्कर जब अतियथार्थ चित्र के नाम पर शरीर के बालों तक का जगह-जगह के धब्बों की भी छवि उतारने लगता है, तो साहित्य की अश्लील कृतियों की तरह स्वयं ही निरादर का पात्र भी बनने लगता है।

फोटो कैमरे की तरह कलाकार की दृष्टि जड़ नहीं होती, फलतः उसका दर्शन भी जड़वत नहीं होता। एक लोक प्रचलित कहावत है कि—''चीजें जैसी होती हैं, हम उन्हें ठीक वैसी नहीं देखते, बल्कि हम जैसे होते हैं, चीजों को उसी रूप में देखते हैं।''—इसका तात्पर्य सीधा यह है कि पद पदार्थ प्रकृति—व्यक्ति जिस किसी की भी छवि बनाने वाला चित्रकार स्वयं एक सचेतन मानव प्राणी होता है इसलिए किसी भी चीज को देखने की उसकी अपनी ज्ञानेन्द्रियों की शक्तियाँ तो सहायक होती ही हैं, उसके अपने भाव-विचार भी उसमें महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। अतः एक ही वस्तु की यथार्थ-छवि भिन्न-भिन्न कलाकारों द्वारा बनाई जाने पर भिन्न-भिन्न प्रकार की हो जाती है।

उत्तम कोटि का कलाकार अपनी कलात्मक उत्कृष्टता से बेजान चित्र में भी जैसे जान डाल देता है, उसी तरह कभी-कभी साधारण को भी असाधारण स्वरूप देकर उत्कृष्टतर रूप में अंकित कर देता है। वहीं दूसरी ओर जिसकी छवि बनाई जा रही है, उस लक्ष्य की भी यदि अपनी अलौकिक खूबी हुई, तो उसे पकड़ पाने में, चित्रित कर पाने में बड़े-से-बड़े कलाकार भी असफल रह जाते हैं। कविवर बिहारी ने स्पष्टतः तो नहीं कहा, किन्तु लगता यही है कि किसी रमणी रत्न की ही छवि अंकित करने की बात बतलाते हुए उन्होंने लिखा—

''लिखन बैठि जाकि शबी, गहि-गहि गरब गरूर।
भाए न केते जगत के चतुर चितेरे कूर॥''

अच्छे-से-अच्छे शबीह-तस्वीर बनाने के मशहूर कलाकार बुला-बुलाकर लाए गए, फिर भी सही-सही तस्वीर नहीं बना पाए, उस अलौकिक रूप-राशि का। इसके अन्यान्य कारणों के साथ निश्चय ही एक वह विशेष कारण यह भी होगा, जिसकी ओर कवि कालिदास ने भी इंगित किया था, हालांकि उन्होंने भी किसी विशेष लिंग की ओर संकेत नहीं किया था, फिर भी लगता है कि वे भी अप्रतिम रमणी-रत्न के रूप की ओर ही इशारा कर रहे थे—

'क्षणे-क्षणे यन्नवतामुपैति, तदैव रूपं रमणीयतायाः।' यदि रूप-राशि अपना रूप क्षण-क्षण पर ही बदलती जाएगी तो छवि-अंकक, शबीह उतारने वाले कलाकार भला उसे उकेरेंगे भी तो कैसे? आज का बड़ा-से-बड़ा व्यक्ति छवि अंकक कलाकार भी जिसकी व्यक्ति-छवि (पोर्ट्रेट) बनाता है, उसे एक ही अवस्था में बहुत देर तक अविचल-पूर्णतः स्थिर बैठे रहने को कहता है। तभी तो लोग इस प्रक्रिया में अकसर ही बहुत थक जाते हैं। माडेल-आर्टिस्ट तो इसी की एवज में बहुत अधिक पारिश्रमिक वसूलते हैं। वैसे पोर्ट्रेट चित्रकारों का पारिश्रमिक भी बहुत ही होता है। फलतः हर कोई व्यक्ति चित्र या पोर्ट्रेट बनवाने की क्षमता नहीं रखता। जो सक्षम होते भी हैं, उनके भी पोर्ट्रेट काफी कम संख्या के ही होते हैं। राजाओं-महाराजाओं के भी व्यक्ति चित्र गिने-चुने ही प्रदर्शित मिलते हैं।

महामना इस माने में कुछ अधिक ही भाग्यवान थे कि कभी खास उनकी वजह से तो, कभी उनसे मिलने आने वाले लोकसमादृत लोगों के कारण, उनके अनेक व्यक्ति चित्र (पोर्ट्रेट) बनाए गए। मेरे देखने में उनके जो कुछ विशेष व्यक्ति चित्र आए उनमें प्रमुख हैं—

1. चर्खा कातते हुए महात्मा गाँधी के साथ का चित्र, 2. डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन् को कुलपति पद का भार सौंपते हुए का चित्र,

3. अपनी प्रचलित पोशाक में बैठकर ग्रन्थ पाठ करने का चित्र, 4. कपड़े के सफेद जूते से लेकर सर पर सुरुचिपूर्ण ढंग से बंधे साफे तक का आदमकद चित्र, 5. अतिशय बीमारी की अवस्था में जब पंडित जवाहर लाल नेहरू उन्हें देखे आए थे, तब का चित्र, 6. बुढ़ापे में लाठी के सहारे खड़े हुए रूप का चित्र, 7. महात्मा गाँधी और सरोजनी नायडू के साथ खिंचे फोटो का चित्र, 8. कुर्सी पर बैठने की मुद्रा में भी बगल में सहारे की लाठी लिए हुए का चित्र, 9. इस्लामियाँ कालेज पेशावर में स्वागत किए जाने के समय का चित्र, 10. महात्मा गाँधी से अन्तरंग संवाद करते समय का चित्र, 11. अपने चारों पुत्रों के साथ कुर्सी पर एक कतार में बैठे समय का चित्र, 12. अपने दो सहपाठियों के साथ बैठे रहने का चित्र, 13. पंडिताऊ टोपी और गलाबन्ध कुर्त्ते में अर्द्धवक्ष-चित्र और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा बहु प्रचारित किए जाते रहने वाले फोटो (साफे शेरवानी में गले में दुपट्टा लपेटे रहनेवाला) का आधार चित्र। बहुत संभव है कि उनके और भी व्यक्ति चित्र बने या बनवाए गए हों, किन्तु इनके ही पर्यवेक्षण के आधार पर मैं अनुमान लगा पा रहा हूँ कि कोई भी व्यक्ति-चित्र उनके भव्य व्यक्तित्व को पूरी तरह अभिव्यक्त करने में समर्थ नहीं हो पाया होगा।

वंशानुग्रह से प्राप्त आधारों तथा शारीरिक एवं मानसिक क्षमताओं की ससीमता के बावजूद विपरीत परिस्थितियों में भी किए गए महामना के अपौरुषेय कार्यों के परिणामों का प्रतिफलन महामना के कार्यों की सारिणी प्रस्तुत करते हुए प्रायः ही उनके द्वारा की गई—''काशी हिन्दू विश्वविद्यालय''—स्थापना की कीर्त्ति ही उनका सर्वोत्कृष्ट सत्कर्म गिनाया जाता है। उनकी पारिवारिक पृष्ठ-भूमि से हट कर, सर्वथा नये संघर्षशील-सामाजिक-जीवन में उतरने—विशेषतः उन्होंने अपनी पढ़ाई जिस गवर्नमेन्ट मिडिल स्कूल में की थी अपने चाचा के आदर्शों पर चलकर वहीं (English Teacher) अंग्रेजी भाषा के शिक्षक नियुक्त हो 3 वर्षों तक की अध्यापकी के जीवन के उपरान्त का उनका अत्यन्त तेजगति से चला हुआ कर्ममय जीवन-चक्र स्वयं के पुरुषार्थ से समार्जित (विक्रमार्जित राज्यस्य स्वमेव मृगेन्द्रता) उत्तरोत्तर उन्नतिशील जीवन का जो समारम्भ अपने पूज्य गुरु आदित्यराम भट्टाचार्य के साथ—(सन् 1885 ई0 में ह्यूम के नेतृत्त्व में स्थापित) ''इण्डियन नेशनल कांग्रेस'' के सन् 1886 ई0 में हुए कलकत्ते के प्रथम अधिवेशन में ही अवसर पाकर मात्र 25 वर्ष की आयु में ही अपनी चाँदी-सी चमकती आवाज में भाषण देकर सभापति दादा भाई नौरोजी, मुख्य अतिथि गोपाल कृष्ण गोखले यहाँ तक कि सर हयूम द्वारा भी अत्यधिक प्रशंसा प्राप्त कर प्रभावशाली वक्तव्य रखने; प्रशंसनीय व्यवहार के बल पर कलाकाकर प्रतापगढ़ के राजा रामपाल द्वारा अपने हिन्दी साहित्यिक समाचार पत्र—हिन्दोस्थान—का सम्पादकत्व सौंपे जाने, वहाँ अपने संपादक-मण्डल में पं0 प्रतापनारायण मिश्र, अमृतलाल चक्रवर्त्ती, गोपाल कृष्ण गहमरी जैसे हिंदी-विद्वानों-रचयिताओं को रखने, फिर उस जमाने के प्रतिष्ठित उर्दू-साहित्यकार बालमुकुन्द गुप्त को हिंदी में लाकर हिंदी का ही श्रेष्ठ साहित्यकार बनवा देने, राजा साहब द्वारा अनुबन्धों को तोड़ने पर संपादकत्त्व छोड़ देने फिर भी राजा साहब द्वारा दिए जा रहे, 250 रू0 प्रतिमाह के वेतन के भरोसे घर-खर्च चलाते हुए भी जानसेन गंज के राय बहादुर पं0 बलदेव राम जी के यहाँ रहकर एल0एल0बी0 (कानून) का अध्ययन करते हुए हाईकोर्ट की लीडरशिप परीक्षा पास कर फिर कलकत्ता विश्वविद्यालय से 1891 में एल0एल0बी0 उत्तीर्ण होने पं0 बेनीराम जी कान्यकुब्ज के निर्देशन में 1892 वकालत-सिविल कोर्ट में शुरुकर फिर 1892 ई0 इलाहाबाद हाईकोर्ट के प्रतिष्ठित एडवोकेट बनने, रायबहादुर पं0 बलदेव राम दवे के साथ मिलकर कांग्रेस-पार्टी के काम करने फिर उनके भाई सर सुन्दरलाल दवे से मित्रता होने पर इन्हें नेशनल कौंसिल की मेंबरशिप के लिए खड़ाकर जितवा देने, शुरु-शुरु में ब्रिटिश-शासन के डर से काशी-हिन्दू-विश्वविद्यालय के लिए सहयोग देने में हिचकिचाहट रखने वाले सर सुन्दरलाल को अन्ततः विश्वविद्यालय के प्रथम कुलपति (वाइस चांसलर) पद पर ले आने, उनके नाम पर सर सुन्दरलाल चिकित्सालय की स्थापना करने से लेकर जीवन की अन्तिम श्वास गोरक्षा में ही समर्पित हो मुक्ति-क्षेत्र काशी से बरबस काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में पहुँचकर श्वास छोड़ने तक जो उनके द्वारा किए गए नाना प्रकार के अचिन्त्यनीय (यहाँ तक कि अपौरुषेय से लगनेवाले—) जैसे कार्य, महात्मागाँधी द्वारा चौरी-चौरा काण्ड में गिरफ्तार हुए देश प्रेमियों को निस्सहाय छोड़ देने पर, अपनी छोड़ी गई वकालत को फिर से वकालत का पेशा शुरु कर लगभग 150 देशप्रेमियों को फाँसी के फन्दे से छुड़ा लेने जैसा नानाविध गौरवशाली अनेक कार्य उन्होंने किए, उसमें प्रायः ही लोग काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना को ही सर्वाधिक महत्त्वपूर्ण बतलाते हैं। ऐसा बतलाने और मानने के अन्यान्य कारणों में एक कारण स्वयं यह विश्वविद्यालय भी है। एक साधन सम्पन्न संस्था और प्रचार करने की क्षमता से युक्त होने और उस क्षमता का प्रयोग करते हुए नाना उपायों से उनके इस सत्कार्य की महत्ता को प्रचारित करते रहने के कारण यह कार्य सर्वोत्कृष्ट प्रचारित हो भी गया। किन्तु जहाँ तक अपनी अल्पविद्या-बुद्धि से मैं समझ पाया हूँ, महामना के द्वारा किए गए श्रेष्ठकार्यों में वरीयता क्रमानुसार सर्वाधिक श्रेष्ठ कार्य ये हैं—

1. महात्मा गाँधी और डॉ0 भीमराव अम्बेडकर के बीच यरवदापैक्ट या पूना-पैक्ट जैसा महान् समझौता करवाने में सर्वप्रधान भूमिका निभाना। मुझे अच्छी तरह मालूम है कि तब देश के सर्वप्रधान लोगों ने इस कार्य को सम्पन्न करवाने के लिए सर्वाधिक समर्थ कवीन्द्र रवीन्द्रनाथ ठाकुर को मानते हुए उनसे अनुरोध किया था। कविगुरु ने महात्मा गाँधी को कई एक तार भेजे भी थे, परन्तु उनका अनुशीलन कर मैंने पाया कि वे केवल महात्मा को ही संबंधित थे, जिनमें महात्मा के गिरते स्वास्थ्य की चिन्ता थी, अतएव उनसे अनशन समाप्त करने के अनुरोध थे। डॉ0 भीमराव अम्बेडकर से उन्होंने सीधा सम्पर्क नहीं किया था। हाँ लोगों को यह सलाह अवश्य दे दी थी कि इस संबंध में महामना मदन मोहन मालवीय ही प्रभावशाली भूमिका निभा सकते हैं। अन्यथा गाँधी जी महाराज और डॉ0 अम्बेडकर के बीच जो कटु सम्बन्ध हो चुके थे, उन्हें देखते हुए, वे दोनों सीधे-सीधे तो बात करने

से रहे। फलतः किसी समझौती पर पहुँ पाना संभव ही नहीं था। मालवीय जी ही ऐसा क्यों कर सकेंगे? इस जिज्ञासा पर उन्होंने बंगाल के आदिवासी-गुरुपंथी नेता योगेन्द्रनाथ मण्डल द्वारा दिए गए सन्दर्भों की ओर इशारा किया था।

योगेन्द्रनाथ मण्डल (जो आदिवासी और अनुसूचित जातिवर्ग के नेता तो थे ही, मुस्लिम लोग के नेताओं और मुस्लिम सम्प्रदाय से भी उनके बड़े ही मधुर संबंध थे, यहाँ तक कि विभाजन स्वीकार कर जब भारतवर्ष और पाकिस्तान दो टुकड़े स्वतन्त्र-देश बने, तब वे पाकिस्तान ही चले गए थे, जहां के वजीरे आज़म, वायसराय राष्ट्रपति मुहम्मद अली जिन्ना ने उन्हें अपनी कैबिनेट में ला मिनिस्टर (कानून मंत्री) का ऊँचा और अति उत्तरदायित्वपूर्ण पद, सौंपा था।) जी ने अपने गुरु, गुरुप्रसाद जी का सन्दर्भ देते हुए बतलाया था कि जब एक बार उनके गुरु ने अपने पंथ को हिन्दू धर्म से अलग कर देने का मन बना लिया था—पृष्ठभूमि यह थी कि, मूलतः वे मैथिली-ब्राह्मण थे जो आदिवासियों की सेवा करने के भाव से बंगाल के राढ़-अञ्चल में बसे आदिवासियों के बीच आकर उन्हें उपदेश देते हुए उनकी सर्वविधि सहायता करते हुए उनका जीवन-स्तर सुधारने का प्रयत्न कर रहे थे। उनके बीच बसे रहते हुए जब बाद में उनका सुशिक्षित सुपुत्र विवाह योग्य हुआ, तो पूरे मिथिला क्षेत्र का चक्कर लगा; असंभव-विवाह-समस्या को भी सुलझाकर विवाह सम्पन्न करवा देनेवाले मिथिला के ''सौराठ-मेला'' में भी खोजबीन कर असफल हो तो वे लौटे ही, समूचे बंगाल से भी कोई ब्राह्मण बंगाली अपनी कन्या उनके पुत्र से ब्याहने को तैयार नहीं हुआ। अन्ततः उन्होंने एक आदिवासी कन्या से ही अपने सुपुत्र का विवाह कर दिया। पुराने खयालोंवाली उनकी धर्मपत्नी तब नित्य-प्रति कलह करतीं कि अपना मैथिल ब्राह्मण समाज छोड़ जो आदिवासी इलाके में आ बसे। इसी से हमें ब्राह्मणों ने छोड़ दिया। नित्य-प्रति की कलह से आजिज हो गुरुप्रसाद मिश्र ने हिन्दू-धर्म से ही किनारा कस लेना अच्छा समझा और अपने गुरु-पंथ को हिन्दू-धर्म से सर्वथा पृथक कर लेने की योजना बना डाली।

संयोग से उसी सय कोलकत्ता में ''सनातन-धर्म-महामण्डल'' की बैठक में मालवीय जी का आना हुआ तो वे कलकत्ते में जाकर उनसे मिले और अपनी योजना समझाई। सम्मेलन से समय निकाल मालवीय जी आदिवासी क्षेत्र में उनके घर गए। उनकी पत्नी और बहू को बुलाकर भेंट की। दोनों से हिन्दू-धर्म शास्त्रों, पुराणों संबंधी प्रश्न पूछे। पंडित जी की पत्नी की अपेक्षा बहू ने ही सबके सही उत्तर दिए। फिर तो मालवीय जी गद्-गद् हो गए। बोले—''किस माने में यह आप से कम ब्राह्मणी है? और पंडित जी आप ऐसी सुशील-सुपंडित बहू पाकर भी हिन्दू धर्म से किनारा करना चाहते हैं। आपको तो इन आदिवासियों की और-और कन्याओं को भी शिक्षा-दीक्षा देकर इसी के समान गुणवती बनाना चाहिए।

महाराज! अपना घर गन्दगी से भर गया है इसलिए उसे त्यागकर दूसरे के घर चले जाने में कोई भलाई नहीं है। गए तो हैं हजारों लोग क्रिश्चियन-धर्म में। किन्तु सैंकड़ों साल बाद भी क्या योरोपीय अंग्रेज क्रिश्चियनों ने उन्हें अपने समान मर्यादा दी? यहाँ भारतवर्ष में ही उन्होंने ''योरोपियन इंडियन ईसाई'' और ''ऐंग्लो इंडियन ईसाई'' की दो नई शाखाएँ बना दी है। जिनमें भी ऊँच-नीच की दीवाल खड़ी कर दी है। जो लोग अपना धर्म छोड़ इस्लाम में गए, उन्हें आज सैकड़ों वर्षों बाद भी क्या वहाँ वह मर्यादा वह हैसियत मिली, जो खास अरब से आए, अरबी-खून से विकसित खानदानों को मिलती है?

भाई मेरे! अपने घर में गन्दगी है तो उसे छोड़ देने की नहीं बल्कि झाड़ू-बुहारु लेकर घर के कोने-कोने में घुसकर सफाई करने की जरूरत है। तभी घर स्वच्छ और सुन्दर होगा। आप को, हमको तो यह सफाई करनी ही है। पुरखों की सम्पत्ति जैसे लोग पाते हैं, उसी तरह उनके कर्ज़े भी नई पीढ़ी को चुकाने होते हैं। लोग कहते हैं कि हिन्दू धर्म में नफरत की दीवारें हमारे पुरुषों ने बनाई हैं, तब इन दीवालों को ढहाकर, फिर से सभी के मिलने-जुलने की राह सुगम बनाने की जिम्मेदारी हमारी है। इसके विरोधी लोगों के पास कोई शास्त्रीय आधार नहीं है। **''ईश्वर सर्व भूतानां हृद्देशेर्जुन तिष्ठति।'' एकोऽहं द्वितीयो नास्ति।'' ''घट-घट व्यापक रामजपुरे।'' ''सियाराम मय सब जगजानी।''** जैसे उपदेश वाक्यों की काट किसी के पास नहीं है। अतः आप अपने काम में अविचलित हो लगे रहें। आप ही नहीं आप द्वारा दीक्षित ये आदिवासी भी किसी भी माने में, किसी भी हिन्दू ही नहीं, किसी भी मजहब के मजहबी से कम नहीं।

जिस तरह दुर्गन्ध तेजी से फैलती है, उसी तरह सुगंध के फैलने में भी कोई देर नहीं होती। उस भेंट की सारी जानकारी मराठी अनुवाद से डॉ0 अम्बेडकर तक पहुँच गई थी। फिर उन्होंने मालवीय जी के जीवन की एक-एक गतिविधि की जानकारी ली। परिणाम स्वरूप तथा कथित हिन्दू-पक्ष के नेताओं में से केवल मदन मोहन मालवीय जी को ही एक ऐसा व्यक्ति मानते हैं, जिनसे बराबरी से बात की जा सकती है।

गांधी जी के गिरते स्वास्थ्य से चिन्तित हिन्दु-मुस्लिम ही नहीं, अंग्रेज सरकार ने भी मालवीय जी से सम्पर्क साधा। मालवीय जी ने खामोश रहते हुए भी जो दोनों ओर से सम्पर्क साधा, उसी का परिणाम था कि यरवदा-पैक्ट या पूना-पैक्ट जैसा विश्व-विख्यात समझौता सम्पन्न हो गया। जिसकी सफलता के बाद सभी ओर न्यूज प्रचारित हुआ—"Malviya's good relations with Dr. B.R. Ambedkar helped in meaningful negotitaions with him, and thus he avoided that unholy detachment of the depressed classes from main Hindu stream." उस घटना पर टिप्पणी करते हुए एम0सी0 छागला ने स्पष्ट घोषित किया—"It was largely due to his able guidance that the conference was a marked success. The result was that a major catastrophe was averted and the depressed classes agreed to forego the "seperate-electorate." बाद में यह तथ्य भी उजागर हुआ कि जब समझौता-प्रपत्र पर लोगों ने पहला हस्ताक्षर एम0के0 गाँधी का करवाने का जोर दिया डॉ0

अम्बेडकर ने साफ मनाकर दिया तथा शर्त्त रखी कि पहला हस्ताक्षर मदन मोहन मालवीय की ही हो, क्योंकि इस विवाद को सुलझाने में उन्हीं की अग्रणी और आधार भूमिका रही है। फलतः पहला हस्ताक्षर मालवीय जी ने ही किया।—Dr. B.R. Ambedkar, M.K. Gandhi and other Hindu leader's signed the Yerawada pact, viz Poona-pact with Malviya ji, the key-link, as the first signatory. And thus the British Government was bound to accept the pact." इस तरह महामना ने पाकिस्तान के अलावे, फिर उससे भी बड़ा-भारतीय-भूभाग भारतवर्ष से अलग हो जाने के महासंकट से देश को बचा लिया। स्वतन्त्र हो रहे भारतवर्ष को मालवीय जी ने जो इतना बड़ा उपहार दिया, उसे सही ढंग से कभी भी महत्व नहीं दिया गया, यह बहुत बड़ी चूक है। शिक्षा निश्चय ही महत्त्वपूर्ण है, और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय जैसे शिक्षा प्रतिष्ठान स्थापित करना नितान्त ही श्लाघ्य है, किन्तु उससे भी अधिक श्लाघ्य है अपने घर के सदस्यों को सम्मान सहित अपने साथ बनाए रखना। अपने ही जब अलग हो जायेंगे? तो शिक्षा-प्रतिष्ठान किस काम के? विभाजन के पहले के लाहौर का ''धर्म-समाज कॉलेज'', लाहौर कालेज पेशावर का ''इस्लामिया कालेज'' एवं पंजाब-यूनिवर्सिटी जिसका मुख्यालय लौहार में ही था, विभाजन के बाद एक इसी नाम से चण्डीगढ़ में खोल ली गई, किन्तु मूल-पंजाब यूनिवर्सिटी तो वहीं रह गई। ढाके का प्रसिद्ध जगन्नाथ कालेज, ढाके कालेज, शिलहट का विख्यात ''मुरारी चाँद कालेज, स्वयं ढाका विश्वविद्यालय आदि सभी विद्या के श्रेष्ठ प्रतिष्ठान थे, अब हमारे काम कहाँ आ रहे हैं? अतः देश को और अधिक विभाजन से बचा लेने का जो काम मालवीय जी ने किया निश्चय ही वही उनका सर्वोत्कृष्ट कार्य माना जाना चाहिए।

दूसरा अवदान है, अछूतों अन्त्यजों को मन्त्रदीक्षा देने का; विशेषतः इस कारण कि उस जमाने में, जब मुंशी प्रेमचन्द जैसा संवेदनशील साहित्यकार भी ''ठाकुर का कुँआँ'', जैसी कहानी लिखकर जीवन यथार्थ की तस्वीर पेशकर रहा था कि प्यास से मरणासन्न हो जाने पर भी पत्नी पीने की आस में कोई अछूत ''ठाकुर के कुएँ'' पर नहीं चढ़ सकता था, ऐसे संकीर्णमना रुढ़िग्रस्त सम्प्रदाय के कठमुल्लों के दुराग्रही तथा कथित धर्म के ठेकेदारों के सामने ''अन्त्यजोद्धार'' जैसे मुहिम चलाना, 1884 में इलाहाबाद में ''मध्य हिन्दू-समाज'' की स्थापना 1906 के ''सनातन धर्म सभा'' के अधिवेशन में प्रस्ताव पारित करवाना कि ''ब्राह्मण से लेकर अन्त्यज पर्यन्त सभी वैष्णवी या शैवी दीक्षा दिए जाने योग्य हैं।'' अलावा इसके प्रस्ताव नं0 6 के अनुसार—''जो जातियाँ अस्पृश्य मानी गई हैं, उन्हें भी देवदर्शन का पूरा अधिकार है। उन्हें सर्वसाधारण कुएँ, तालाब, बावली, बाग, सड़क, सराय, श्मशान घाट तथा सर्वसाधारण स्कूल और सभाओं में जाने की कोई रुकावट नहीं है।''—जैसे प्रस्ताव पास करवा लेना कोई साधारण काम नहीं है। किन्तु इन सभी के लिए शास्त्रीयप्रमाण प्रस्तुतकर मालवीय जी ने 1927 में काशी के दशाश्वमेध घाट पर 1934 में काशी में महात्मा गाँधी के 'अछूतोद्धार-आन्दोलन'' की सफलता के समारोह जैसे असम्भव कार्य भी संभवकर दिखाए थे। मेरी दृष्टि में उसे युग पुरुष का यह अनुष्ठान ही उनका द्वितीय श्रेष्ठ कार्य है।

राजनीति के विशारद दबी-जबान से स्वीकार करते हैं कि नियति चक्र से मालवीय जी का कांग्रेस और सक्रिय राजनीति से अलग-थलग रहने लगना, अस्वस्थ होते जाना और अन्ततः भगवान को प्यारे हो जाना, जैसे दुर्भाग्यपूर्ण अघटनों का घटित हो जाना यदि नहीं होता, तो देश का विभाजन भी उनके द्वारा रोका जा सकता था। सन् 1935 ई0 में कांग्रेस पार्टी ने जब साम्प्रदायिक सौहार्द्र (कम्युनिल एवार्ड) स्थापित करने के लिए मुस्लिम लीग के कायदे आज़म जिन्ना साहब से वार्तालाप करने के लिए अपने प्रतिनिधि के रूप प्रस्तावित किया था, तब जिन्ना साहब ने स्पष्ट रूप से सूचित किया था कि इस समझौतावार्त्ता में पं0 मदन मोहन मालवीय जी को अवश्यमेव रखा जाय; क्योंकि ''ऐज़ मुहम्मद जिन्ना हैड नाट मच कान्फीडेन्स विद एनी अदर लीडर ऐण्ड सो ही इन्सिस्टेड दैट मिस्टर मालवीया शुड बी ए पार्टी टु एग्रीमेन्ट बिकाज़ ही हैड सच ए डामिनेन्ट इन्फुलुऐंस इन बेंगाल ऐण्ड पंजाब दैट एनी पैक्ट कुड बी नलीफाइड विदाउट हिम।''

बंगाल के हिन्दू तो मालवीय जो सर्वाधिक पवित्र हिन्दू पुरोधा मानते ही थे, वहाँ के मुसलमान क्योंकर मालवीय को फरिश्ता मानने लगे थे, इसकी एक झाँकी मैं—मालवीय जी संबंधी अपने एक पूर्व लेख में दे चुका हूँ, जिसमें मैंने संकेत किया है कि सन् 1905 में लार्ड कर्ज़न द्वारा-बंग-भंग नामक बंगाल-विभाजन कर दिए जाने पर बंगाल में जो पूरी तरह ब्रिटिशराज विरोधी साकार ने आंदोलन चला उठा था, उसे प्रशमित करने के जो तरीकें अंग्रेज सरकार ने अपनाए, उसमें पूर्वी-बंगाल के ढाका शहर में एक यूनिवर्सिटी खोलने का भी प्रस्ताव था। चूँकि पूर्वी-बंगाल मुस्लिम बहुल क्षेत्र था, अतः स्वाभाविक रूप से पूरे बंगाल के मुसलमान इससे खुश होने लगे थे। किन्तु उस जमाने के महान नेता सर डॉ सुरेन्द्रनाथ बैनर्जी, डॉ. आशुतोष मुखोपाध्याय आदि आदि इसके विरुद्ध खड़े हो गए। उधर कर्जन के बाद आने वाले वायसराय लार्ड हार्डिंग्स ने नाना तथ्यों को प्रस्तुत करते हुए, अंग्रेजों की भारतीय राजधानी कलकत्ते से हटाकर दिल्ली कर देने का भी प्रस्ताव रख दिया। पूर्वी-बंगाल के विरोध में अन्धे हुए बंगाली हिन्दू नेता मूर्खतापूर्ण बयान—''राजधानी हटाए जाने से कोई खास फर्क नहीं पड़ेगा। ऐसा निस्सार बहाना रखते हुए राजधानी स्थानान्तरित करने का विरोध करना तो छोड़ दिया, किन्तु शिक्षा-विस्तार के लिए उत्तरदायी सर सुरेन्द्र नाथ बैनर्जी सहित सभी नेता ढाके में विश्वविद्यालय खोलने का विरोध करते रहे; जिसमें मौलाना फजलूलहक, मौलाना मसानी जैसे साफ्ट-कार्नर्ड मुसलिम नेता भी डर गए। चूँकि लार्ड हार्डिंग्स के मालवीय जी से बड़े सौहार्दपूर्ण संबंध थे, अतः उन सभी ने मालवीय से गुजारिश की। परिणाम स्वरूप ढाके में विश्वविद्यालय खोलने की शर्त्त पर हार्डिंग्स डँटे रहे। उन्हीं हार्डिंग ने काशी में हिन्दू विश्वविद्यालय की भी स्थापना की शिलान्यास की मजबूत ईंट रखी और मालवीय के

प्रयासों से ढाके में भी ढाका विश्वविद्यालय खुलवा दिया तब से बंगाली मुसलमानों में मालवीय की छवि और भी उज्ज्वल हो गईं।

कायदे आजम जिन्ना ने मालवीय का प्रभाव पंजाब में क्योंकर बहुत असरदार बतलाया? इसके उत्तर में सामान्यतः लोग लाला लाजपत राय से उनके निकट संबंधों, जलियान वाला बाग के अत्याचार, उसमें लाला जी मृत्यु के बाद कांग्रेस के बाद स्वतन्त्रता प्रेमियों पर बढ़ते अंग्रेजी जीवन के अत्याचारों के खिलाफ की गई लड़ाई में मालवीय जी की भूमिका, पंजाब प्रान्तीय ऐसेम्बली के चुनाव में बेहद रुग्ण दशा में भी नेशनलिस्ट कांग्रेस पार्टी'' की उम्मीदवार श्रीमती शन्नो देवी के पक्ष में प्रचार करते हुए समूचे पंजाब प्रान्त में सिख और हिन्दू मतदाताओं पर तो उन्होंने जो भारी-प्रभाव जैसा ही था, पंजाबी बिलो के अफगानी और सिन्धी मुसलमानों की दुर्दशाग्रस्त जिन्दगी देखते हुए उनकी भलाई के लिए जो अंग्रेजी-शासन से संघर्ष किया था, उससे पंजाबी मुसलमान भी बेहद प्रभावित थे।

जिन्ना साहेब के उस निष्कर्ष का समर्थन सन् 1934 ई0 में पेशावर के इस्लामिया कालेज में मालवीय जी डिग्री (पदवी) वितरण समारोह में दीक्षान्त-भाषण होने के पहले जो भव्य-स्वागत-समारोह हुआ था, उसमें उस कालेज के प्रिंसिपल साहब द्वारा दिए गए स्वागत-भाषण से स्वतः ही प्रमाणित हो जाएगा। उक्त अवसर पर बोलते हुए उन्होंने कहा था—आज आप के सामने जो शख्शियत रुबरु है वह हैं पं0 मदन मोहन जी। हमारा इस्लामियां कालेज जैसे खुले माहौल का है मैं उसमें वैसे ही खुले दिलवाले किसी विद्वान नेशनल लीडर को बुलाना चाहता था, अपने कालेज कान्वोकेशन की सदारित करने के लिए। मैंने अपने कालेज की इन्तजामियाँ के नुमाइन्दों, साथ ही कालेज में पढ़नेवाले मुस्लिम, क्रिश्चियन, सिख, पारसी और हिन्दू मजहबों के रिप्रेजेन्टेटिव स्टूडेन्ट से दो-दो नाम, एक अपने मजहब का, दूसरा गैर मजहब का माँगे थे। आप को सुनकर ताज्जुब होगा कि केवल हिन्दू मजहब के नुमाइन्दे ने दूसरा नाम जनाब अबुल कलाम आजाद का दिया था, बाकी सभी का दूसरा नाम पं0 मदन मोहन मालवीय का ही था। हिन्दू नुमाइन्दे का पहला नाम भी उन्हीं का था। इस तरह सभी मजहबों की मुहब्बतों के धनी पं0 मालवीय जी को ही अपने कालेज से पास हुए स्टूडेन्ट्स को डिग्री देने और कान्वोकेशन ऐड्रस करने के लिए बुलाना तय पाया गया। उसी का परिणाम है कि हमारे बीच आज उपस्थित हैं, महामना मालवीय जी बनारस वाले।

हमारे कुछ नुमाइन्दों ने यह मसला भी उछाला कि जब किसी युनिवर्सिटी वाले को ही बुलाना था, तब अलीगढ़ की मुस्लिम यूनिवर्सिटी से ही किसी को बुला लेते, मगर हमारी इंतजामियाँ के सदर (प्रमुख) महोदय ने यह कहकर उसे खारिज कर दिया—''छोड़ो भी मियाँ। अधिकतर मदद हिन्दू जागीरदारों, तिजारतियों से लेने के बावजूद वहाँ उन्होंने मुस्लिमों के लिए कुछ परसेन्ट सीटें रिजर्व रखी हैं। जो उनकी लिमिटेड मेन्टलटी (संकीर्ण मनोभावना) को साफ दिखलाती हैं, जब कि हमारा यह इस्लामियाँ कालेज किसी भी तरह की संकीर्णता को तरजीह नहीं देता। हमने देखा कि मालवीय जी ने अपनी यूनिवर्सिटी में न केवल हिन्दुओं को अथवा किसी भी मजहब वाले को ही कोई सीट रिजर्व नहीं की, बल्कि गैर मज़हब वाले एक मुसलमान स्टूडेन्ट ने जब संस्कृत पढ़नी चाही तब उसे शाबाशी देते हुए वजीफा भी बक्श दिया। जब कि ठीक उसी समय जब मुहम्मद शहीदुल्ला नामक एक अत्यन्त ब्रिलिऐन्ट स्टूडेन्ट का ऐडमीशन कलकत्ता यूनिवर्सिटी में संस्कृत एम0 ए0 कक्षा में हुआ तब कलकत्ता यूनिवर्सिटी के संस्कृत डिपार्टमेन्ट के सारे प्रोफेसरों ने इस्तीफा दे दिया कि एक म्लेच्छ को हम संस्कृत नहीं पढ़ा सकते। जिस मुल्क में इतनी संकीर्ण मानसिकता के पढ़े-लिखे लोग हैं, वहीं मालवीय जी जैसा इतने बड़े मनवाला एक फकीर इस मुल्क को रोशन कर रहा है।

महात्मा गाँधी उन्हें दुनिया का सबसे बड़ा (ग्रेटेस्ट बेगर) भिखमंगा'' फरमाते हैं। जबकि हम पूछते हैं कि कोई भीख देने वाला धनी-मानी भी क्या इस दुनियाँ में है, जो बिना किसी किस्म का फर्क किए, सभी के लिए सभी कुछ लुटा देते हो? हमने हर एक तरफ से जाँच परख कर देखा और पाया है कि जिस तरह एड़ी से चोटी तक वे सलीके की सफेद पोशाक से चमकते हैं, उसी तरह उनके जिस्म भीतर का उनका मन भी पूरी तरह चमाचम चमकता ही रहता है। हमारा मुल्क नये जमाने की जिन रोशनियों से अब तक महरूम रहा है, जिसके लिए धनी-मानी लोग अपनी सन्तानों को इंगलैण्ड, पेरिस, वाशिंगटन पढ़ने भेज रहे हैं वहाँ मालवीय जी ने जर्मनी, फ्रांस, इंग्लैण्ड, जापान हर कहीं से एक-से-एक बड़े प्रोफेसर को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में ही बुलाकर, सिख, पारसी, हिन्दू, मुस्लिम हर एक कौम के बच्चों को इंजीनियरिंग-टेक्नोलोजी जैसी नये जमाने की एजुकेशन यहीं मुहैया करवा रहे हैं। हमारी इंतजामियाँ और स्टूडेन्ट यूनियन ने इसीलिए देश के बड़े-बड़े नेताओं के बीच से मालवीय जी को ही बुलाना ठीक ठहराया। मुझे तो पूरा कान्फीडेंस है कि आज के पंजाब, सिख-बिलोचिस्तान में कहीं भी आप इस तरह की नुमाइन्दगी के लिए वोट करवा लें, हर कहीं मालवीय जी को ही बुलाने को कहा जाएगा, क्योंकि एक ऐसा आदमी जिसका दिल हर किसी की तकलीफ पर पसीजता हो, जिसका मन आसमान की तरह इतना बड़ा हो कि उसमें सभी के लिए जगह हो, उसे कोई भला क्यों न चाहेगा? महामना के इसी प्रभाव को लक्ष्य कर जनाब जिन्ना साहेब ने हिन्दू-मुस्लिम समझौता वार्त्ता में महामना मालवीय को बुलाए जाने की आवश्यकता बतलाई थी।

महामना से मि0 जिन्ना का साथ उनके गुरु गोपालकृष्ण गोखले के जमाने से ही था। सन् 1909 में जब गोखले जी ने तत्कालीन ब्रिटिश सरकार के समक्ष पूरे देश में प्राइमरी शिक्षा को बच्चों के मौलिक अधिकार के रूप में मान्यता देने का प्रस्ताव रखा था तब सारे स्वदेशी नेताओं के अंग्रेजी प्रशासक बटलर से मिल जाने पर भी एक मात्र मालवीय जी गोखले और जिन्ना के साथ बने रहे। आज लगभग सौ साल बाद माननीय प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह जी के नेतृत्व में जब

शिक्षा को मौलिक अधिकार घोषित किया गया है, तब मालवीय के उस दूरगामी चिन्तन का महत्त्व स्वयं प्रत्यक्ष होता है, जिसे उन्होंने सौ साल पहले ही पास करवाना चाहा था। सो बाद में जो जिन्ना साहेब समूचे भारत से अलग हो लिये, उन जिन्ना को अपना बगलगीर बनाते हुए। गोखले साहेब के प्रस्ताव को जिन्ना के साथ आगे बढ़ाने के उस संघर्षमय दिनों का ही परिणाम था कि सन् 1927 ई0 के मुस्लिम अली जिन्ना ने मदन मोहन मालवीय जी को आमन्त्रित किया था। एक अकेले हिन्दू नेता थे। मालवीय जी के सुझाव पर ही 1932 ई0 में नेशनलिस्ट मुस्लिम मीट का आयोजन लखनऊ में हुआ था।

मिर्जा इस्माइल ने तो स्पष्ट शब्दों में कहा है—''**कुछ लोगों ने तो मुझसे बतलाया कि मालवीय जी मुसलमानों के विरोधी हैं, परन्तु उनकी ये बातें कितनी झूठी और भ्रम फैलाने वाली हैं, यह मैंने मालवीय जी की एक-एक कार्य प्रणालियों का सूक्ष्म अध्ययन कर जाना है। —The great qualities of his personality which impressed me most are his humanity, selfless service and high standard of values."**

मुसलमान-समुदाय में उनकी लोक-प्रियता इस कदर गहरी पैठ बना चुकी थी कि एक बार जब एक आलोचक न केवल इस आधार पर कि उन्होंने भी एक विश्वविद्यालय की स्थापना की थी (मुस्लिम यूनिवर्सिटी, अलीगढ़) सर सैयद अहमद खान की बराबरी मालवीय जी से कर दी तो उस जमाने के सर्वाधिक प्रसद्धि शायर अकबर इलाहाबादी जी बिफर पड़े थे :—

''हजार शेख ने दाढ़ी बढ़ाई सन की सी।
मगर वो बात कहाँ मालवी मदन की सी।''

—यहाँ तक कि एक बार जब सर डॉ0 मुहम्मद अल्लामा इकबाल जैसे मशहूर शायर (जो अपने तराने—''सारे जहाँ से अच्छा हिन्दुस्तां हमारा—'' के कारण पूरे देश में चहेते बहन गए थे? ने मालवीय जी पर शेर छपवायाः—''**कर चुके खिदमत बहुत कुछ कौम की। देखिए होते हैं, कब, 'सर' मालवी॥**''

तो जैसे पूरे पढ़े-लिखे समाज में आग लग गई। अल्लामा इकबाल की सोच कितनी संकीर्ण थी कि वे सोचते थे कि मालवीयजी भी औरों और स्वयं अल्लामा की तरह, अंग्रेज-शासकों से ''नाइटहूडकी पदवी-जिसमें नाम के आगे ''सर'' लगाते हैं पाने के लिए सारे कुछ कर रहे हैं। इसीलिए उर्दू शायरों ने इसके खिलाफ लिखना शुरु कर दिया।

''मालवी को आज तक कोई नहीं सर कर सका।
उनसे लड़ने में यकीनन आप सर हो जायेंगे।''

काल-चक्र ऐसा चला कि वे ही अल्लामा बाद में ''पाकिस्तान'' बनने के मूल कारक बन गए। उन्होंने अपना तराने के बोल बदलने शुरु कर दिये। उसमें आए ''हिन्दी''—शब्द की व्याख्या कर बतलाने लगे कि उस तराने में ''हिन्दी'' का अर्थ हिन्दुस्तान का निवासी न होकर हिन्दुस्तान में आ बसने वाले मुसलमानों से है, जैसा कि कई सदी पहले खुसरों ने कहा था—''मुसलमान जो हिंदी थे।''

मालवीयजी को ''सर'' का खिताब पाने की कभी लालसा ही नहीं हुई। उनकी सरपरस्ती में सर सुन्दरलाल दवे जैसे महाविद्वान् काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के पहले वाइसचांसलर और मालवीय जी ने अपने बाद जिन्हें वाइसचांसलर बनाया, वे सर डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन् तो विश्वविद्यालय की सेवा में लगे ही थे। संकीर्ण मानसिकता के प्रतीक बनने से अल्लामा इकबाल जहाँ भारतवर्ष के बँटवारे के आधार बन गए वहाँ मावीय जी ताजिन्दगी सभी धर्मों की एकता बनाए रखने के ही पुरोधा बने रहे। सभी के विश्वासपात्र बने रहे। इसी से उन लोगों के अनुमान में दम है जो मानते हैं कि यदि मालवीय जी रहते तो देश के दो टुकड़े कदापि नहीं होते।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना और विकास तथा उसे शिखर तक पहुँचाने के उनके अवदान को मैं उनका किया चौथा महत्त्वपूर्ण कार्य मानता हूँ। परन्तु उन महान् प्रवक्ता बने मालवीय प्रशंसकों की भाँति नहीं जो इस महायज्ञ के लिए जहाँ-तहाँ से समिधा जुटाने, महीयसी एनीबेसेन्ट द्वारा कर्णघण्टा मुहल्ले के एक भाड़े के घर में सेन्ट्रल हिन्दू स्कूल खोलने, फिर काशी नरेश द्वारा अपना कमच्छा स्थित आवास और रनिवास परिसर दे दिए जाने पर सेन्ट्रल हिन्दू कालेज जैसा महान् शिक्षा संस्थान जिसमें आर्ट्स, साइंस टेक्नोलोजी, टीचर्स-ट्रेनिंग, ड्राइंग-पेंटिंग-मूर्त्ति निर्माण आदि के शिक्षा प्रशिक्षण देश-विदेश से आए महान् विद्वान् पहले से दे रहे थे। शिक्षा विभाग के बटलर साहब द्वारा यह आब्जेक्शन लगा देने पर कि केवल हजारों एकड़ जमीन और लाखों के चन्दे इकट्ठे होने पर ही किसी को विश्वविद्यालय खोलने की अनुमति कैसे दी जा सकती है, जिसके पास एक प्राथमिक विद्यालय तक भी न हो—उस आब्जेक्शन की काट जब वायसराय हार्डिंग्स साहब के पास भी नहीं थी, तब वह विदेशी महिला सामने आई और उसने इस शर्त्त पर अपना पूरा सेन्ट्रल हिन्दू कालेज उसकी चल-अचल सारी सम्पत्ति, शिक्षण कार्य एवं अन्यान्य कार्य कर रहे सारे प्रोफेसरों-कर्मचारियों सहित मालवीय जी के नाम रजिस्ट्री कर दी कि इस विश्व-विद्यालय में प्राचीन भारतीय हिन्दू आदर्शों, उपनिषदों में अभिव्यक्त मानवीय आदर्शों, थियासोफी में मान्य मानव मूल्यों को सर्वदा समुचित समादर दिया जायेगा।

महाराज रामेश्वर सिंह, राजा दरभंगा ने स्वयं तो लाखों दिया ही, तमाम हिन्दू राजाओं से दान दिला-दिलाकर करोड़ों की सम्पत्ति जुटाई इसलिए कि भारतीय संस्कृति के मन्दिर में भगवान् विश्वनाथ के मन्दिर के साहचर्य में यहाँ वैदिक संस्कृति की गरिमा का खयाल रखा जाएगा। महाराजा प्रभुनारायण सिंह, काशी नरेश ने दर्जनों गाँव उजाड़कर विरोध करने वालों में से कई को फाँसी की क्रूर सजा देने का हार्दिक दर्द झेलकर भी अपने राज्य की कोसों फैली जमीन दान में इसलिए दे दी थी कि मालवीय उनसे निरन्तर यही कहते रहे कि इस विशाल विश्वविद्यालय के परिसर में रहने वाले छात्रावासों के दस हजार विद्यार्थी

रोज प्रातः आपके किले से सटकर बहने वाली उत्तरमुखी पतित पावनी गंगा की ओर मुख कर रोज प्रातःकाल सूर्य को वैदिक मन्त्रों के उच्चारण के साथ जल चढ़ाया करेंगे। मध्य कालीन भक्ति-काल के कवियों मानव-मूल्यों का आदर करते हुए आपके आराध्य श्रीराम और योगेश्वर श्री कृष्ण की महानता का अनुकरण करते हुए नये युग के ज्ञान के अर्जन के प्रताप से काशी का गौरव सारे विश्व में फैलाएँगे आज कुछ लोगों को उनका तनिक भी ज्ञान न होने पर भी सर्वज्ञ बन कर, अथवा उसे जानते हुए भी उन भावादर्शों को न केवल धता बताते हैं, बल्कि निरन्तर उनका तिरस्कार करते हुए अपने को प्रगतिशील सिद्ध करने में जुटे रहते हैं। तुलसी की सरल चौपाई के अर्थ भी जिनसे नहीं लगते, वे कबीर की साखी, छन्द दोहा से कैसे भिन्न है यह तो जानते ही नहीं, फिर कबीर की हठयोगपरक कठिन शब्दावली के भी अर्थ केवल हिन्दू और मुसलिम भावनाओं को ठेस पहुँचाने के लिए ही लगाते हुए समूची भारतीय संस्कृति की खिल्ली उड़ाकर ऊँचे मंचों से भाषण करते हुए, महामना की उज्ज्वल छवि पर अनायास ही कीचड़ उछालते रहते हैं। देश ही नहीं अपने को विश्व की महान, ज्ञानवान् होने का प्रदर्शन करते हैं।

मेरी सीमित बुद्धि में ऐसे महाज्ञानियों के मन में मालवीय की क्या छवि बनी है? और बाहर -बाहर वे उसे किस रूप में व्यक्त कर रहे हैं, इसका कोई अनुमान नहीं है। परन्तु मालवीय द्वारा किए गए अन्यान्य महत-कार्यों की भाँति ही विश्व को प्रदान की गई; साथ ही हिन्दू-मानस की सेवा में भी संयोजित की गई इस धरोहर का भी गौरवमय स्थान है, जिसे उन्होंने किसी दूसरे धर्म, रेलीजन या मजहब वालों पर कीचड़ उछाले बिना, फिर भी अपने हिन्दू-धर्म की शुभ्र-धर्म-पताका को विश्व में सगर्व फैलाने के अभिप्राय से ''हिन्दू'' शब्द का गौरवमय संयोजन काशी में विश्वविद्यालय की स्थापना की। उनके अत्यन्त निकट सहयोगी श्री लक्ष्मी नारायण गर्दे ने बिना किसी प्रत्यालोचना के डर के इस विश्वविद्यालय की स्थापना के मालवीय के उद्देश्य को स्पष्ट करते हुए लिखा है—''मालवीय जी महाराज की राष्ट्रीयता की यह विशेषता थी कि वह हिन्दुत्त्व की बुनियाद पर खड़ी थी। वे उस राष्ट्रीयता को नहीं मानते थे जो हिन्दुत्त्व को भुला दें। यही नहीं, इस देश में वास्तविक राष्ट्रीयता तभी स्थापित हो सकती है, जब हिन्दू, हिन्दू के नाते अत्यन्त, धर्मवान, बलवान और सुसंगठित हों, यही इनकी धारणा थी। इसी के लिए उन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की और—''हिन्दू धर्मोपदेश'' का जीवन भर प्रचार करते रहें।''—(-Commemoration Volume, 1961 पृष्ठ 159) हिन्दू-धर्मावलम्बियों के ''हिन्दूनाम मानवर्द्धनः'' के उद्घोष के साथ शिक्षा प्रतिष्ठान खोलने पर भी जब वे अन्यान्य मज़हबों के मोमिनो, निष्ठामय अनुरागियों के बीच भी जब तथा कथित सेकुलरिस्टों की अपेक्षा अधिक विश्वसनीय, अधिक शूरमा और समस्त भारतीयों की रक्षा करने वाले, सभी इज्जत सम्मान बढ़ानेवाले, सभी में मेल-जोल बढ़ानेवाले नेता माने जा सके थे। ऊपर इसका आभास पेशावर के इस्लामियां कालेज के प्रिंसिपल के कथनों से तो मिला ही होगा।

उस जमाने में इंग्लैण्ड में जाकर पढ़ाई करने वाले इंडियन-मुस्लिम छात्रों के संगठन ''मुस्लिम-मजलिस'' के सेक्रेटरी (छात्र-नेता) स्टूडेन्ट्स यूनियन रहे हुमायूँ कबीर के उक्ति से वह और भी सम्पुष्ट हो जाता है।—**"This was in the year 1931 when he was in the United Kingdom for the Second Round Table Conference. We had invited him to visit Oxford-in our Muslim Students Mazlis. He came and spoke to the Majlis, when the president of the Majlis suggested that I should move the vote of thanks to the distinguished visitor.... I spoke, but somewhat strongly of the sense of disappointment..... Most politicians would have ignored such remarks from a callow** (नातजुर्बेकार, अपरिपक्व) **student, but to my surprise, Pt. Malaviya Ji rose again after my vote of Thanks and addressed us for almost an hour. What impressed us even more and made me both ashamed and happy, he gave us a pledge that immediately on his return to India he would devote all his energies to a satisfactory solution of the communal problems.... Soon after return to India, Pt. Malaviya did convene and all parties conference and made earnest efforts for a satisfactory solution of the differences among the Indian communities."**

भिन्न धर्मावलम्बी, यहाँ तक कि विरोधी मानसिकता के दुराग्रही परिपंथी भी जब आप के अपने गुणों से ही आप की श्रेष्ठता स्वीकार करने को तैयार है, अपने कुल-धर्म-पितृ के विरुद्ध जहर उगलने पर ही ऐसा करने की उनकी कोई शर्त्त नहीं है, तब अपने बाप को गाली देकर ही साँस लेने की क्या जरूरत?

सन् 1961 ई0 में, महामना मालवीय जी की आदमकद-मूर्त्ति का काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के गोपुर प्रवेशद्वार के सामने, लंका-वाराणसी पर महामहिम डॉ0 सर्वपल्ली राधाकृष्णन द्वारा उद्घाटन किए जाने के अवसर पर दिए गए भाषण को एम0 ए0 हिन्दी के छात्र के रूप में सुनने का सुअवसर मुझे मिला था। वेद-पुराण-भागवत, रामायण, महाभारत, श्रीमद्भागवतगीता के मूल संस्कृत उद्धरणों के साथ उनकी उद्घोष करती वाणी में तब किंचित् विराम पड़ा, जब उन्हें बतलाया गया कि ओरिएण्टल (संस्कृत महाविद्यालय) कालेज के पूर्व प्रिंसिपल श्री व्यास जी जो तब मुमुक्षुभवन, अस्सी के पास के अपने मकान में रह रहे थे, उन्होंने आमरण-अनशन कर रखा है, कि महामना की स्वच्छ शुभ्र वेश-भूषा ही जीवन भर धारण करते रहने की जानकारी होने पर भी उनकी मूर्त्ति क्यों पीताभकाँसे की बनवाई गई है, जब काली शेरवानी पहननेवालों की भी मूर्त्तियाँ सफेद संगमरमर की बनाई जाती हैं।

पं0 व्यास सर सर्वपल्ली राधाकृष्णन् तभी से परिचित थे, जब 1939 ई0 में उन्होंने विश्वविद्यालय के कुलपति पद का भार मालवीय जी से ग्रहण किया था। साथ रहते हुए सौहार्द भी हुआ और आगे चलकर कुछ विवाद भी हुआ। किन्तु उनके अनशन को उन्होंने जायज

ठहराया और अलग स्पष्टीकरण देते हुए कहा कि स्वच्छ शुभ्र-निष्कलुष परिधान पहनना तो मैंने महामना से ही सीखा है। अतः पं0 व्यास की भावनाओं से मैं सहमत हूँ। अतः उनसे अनशन व्रत तोड़ने की अपील नहीं करूँगा। हाँ, उन्हें यह आश्वासन अवश्य दूँगा कि मैं स्वयं और इस विश्वविद्यालय के छात्र शिक्षण कर्मचारी अब और सजगता से प्रयत्न करेंगे कि महामना ने हिन्दू धर्म-संस्कृति के जिन आदर्शों को आधार बनाकर उसकी स्थापना की है, वेद उपनिषद् पुराण-इतिहास और हमारे धर्म में उत्पन्न सन्त-महात्माओं के समादर में कभी कोताही न होने पाए। महामना जिन्हें पूज्य मानते रहे, उनके विरुद्ध कभी कोई कटु टिप्पणी न हो, उनके आदर्शों की कभी कोई अवहेलना न होने पाए। मेरा विश्वास है, मूर्त्ति को संगमरमर से सफेद करने, जो निश्चय ही मुगलों की अभिरुचि का विषय है, की जगह मालवीय के भावदर्शों की शुचिता यदि हम सब बना सकेंगे, तो मालवीय के निष्कलंक स्वच्छ व्यक्तित्व के प्रति अधिक श्रद्धा व्यक्त कर सकेंगे। उनका वक्तव्य लाउडस्पीकरों से सुनते ही व्यास जी ने अनशन तोड़ दिया था।

अब उसी विश्वविद्यालय में जो भक्तों-सन्तों-महात्माओं की भाव-मूर्त्ति पर थूक-थूक कर ही विद्वत्ता स्थापित करने के कतिपय महाघटारोपी विद्वान प्रयास कर रहे हैं उस पर कोई कहे भी तो क्या कहे, क्योंकि वे तोप ''हिन्दू'' नाम को ही कलंक मानते हैं। जब कि बात-बात में नंगे होकर लेट जाने वाले बनारस से एक बहुचर्चित नेता जी जब ''काशी हिन्दू विश्वविद्यालय'' नाम से हिन्दू नाम निकाल देने का हठ पकड़े अपनी धोती खोलने लगे थे तब उन्हीं डॉ0 राधाकृष्णन् ने कहा था—''शरीर से कपड़ा हटाने की जगह अपने धर्म के नाम से हिन्दू हटा देना, अपने को हिन्दुओं की किसी भी जाति का सदस्य न होना, पहले रजिस्टर्ड कर घोषित करवा लें, फिर सीधे दिल्ली आएं, बीच में अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी पड़ेगी। उसका ''मुस्लिम'' नाम हटवा कर मुझसे नहीं बल्कि भारतीय लोकसभा से प्रस्ताव पास करवाकर ही आएं, क्योंकि संविधान के तहत मैं लोकसभा की भारतीय राष्ट्रीय सरकार के मन्त्रिमण्डल की संस्तुति के बिना कुछ भी करने की शक्ति नहीं रखता।'' महामना द्वारा ''काशी हिन्दू विश्वविद्यालय'' की स्थापना को उनका वरीयता क्रम से चौथा कार्य मानते हुए भी उनकी निजी मान्यताओं के आलोक में उनका सर्वोत्तम अवदान माना जा सकता है।

नाम या उपाधि प्रायः ही रखने या प्रदान करने वाले वे दूसरे लोग ही होते हैं, जो वस्तुओं या व्यक्तियों की प्रकृति का, उनकी भीतरी और बाहरी बनावट का, वेश-भूषा का, अच्छे या बुरे कार्यों का निरीक्षण-परीक्षण करते रहते हैं। फिर उसकी छवि अपने अन्तरतम में, उसकी उच्चावचता के समानान्तर निखारते या बिगाड़ते रहते हैं। इस विधि से उनका जो अन्तिम रूप से सम्प्राप्त बिम्ब होता है उसी के अनुरूप वे नाम, उपनाम या उपाधि उद्घोषित और प्रयुक्त करने लगते हैं। प्रकृत रूप में वह व्यक्ति तो इसे बहुत बाद में जान पाता है। कभी-कभी तो इतने बाद में कि फिर वह चाहकर भी उसका विरोध नहीं कर पाता। स्वयं महात्मा गाँधी ने इसी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में सन् 1947 ई0 में—''दीक्षान्त-भाषण''—देते हुए अपने लिए प्रयुक्त की जा रही—''महात्मा''—उपाधि के संबंध में बतलाया था—जब कोई मुझे—''महात्मा''—के नाम से पुकारते भी थे, तो मैं यही सोच लेता था कि उसने ''महात्मा मुंशीराम जी'' के बदले भूल से मुझे पुकार लिया होगा। उनकी कीर्त्ति तो मैंने दक्षिण अफ्रीका में ही सुन ली थी। हिन्दुस्तान से धन्यवाद और सहानुभूति का संदेश भेजनेवालों में एक वे भी थे।''

महात्मा गाँधी भी नहीं जानते थे, कि लोगों ने उन्हें कब से 'महात्मा' उपाधि दे डाली। अब कुछ लाल बुझक्कड़ समझा रहे हैं कि रवीन्द्रनाथ ठाकुर ने सबसे पहले-पहले उन्हें—''महात्मा''—कहा, किन्तु बंगला का साधारण ज्ञान रखने वाला भी जानता है कि रवीन्द्रोनाथ उन्हें—''गाँधी जी महाराज'' कहते थे—

''गाँधी जी महाराजेर शिष्य;
केओ बा धनी, केओ बा निस्व॥''

वे तो मालवीय जी को भी ''पंडित जी महाराज'' कहकर पुकारते थे। उम्र के बढ़ते रहने और यशः कीर्त्ति के बढ़ते रहने के साथ-साथ मदन मोहन को कभी, 1. बाबू जी 2. बबुआ भइया 3. पंडित जी 4. मालवी जी (बनारस वाले अन्तिम ''य'' कार नहीं उचारते थे।) 5. विधाता पुरुष 6. सबसे बड़ा भिखारी 7. बड़े भैया (बड़ ली बन्धु) 8. पंडित जी महाराज और 9. महामना, उपाधि से पुकारे जाने लगे थे।

उस जमाने में साधारण व्यक्तियों, पूरे समाज, विशिष्ट संस्थाओं के अतिरिक्त तत्कालीन ब्रिटिश सरकार भी अपनी ओर से खिताब या पदवी प्रदान करती रहती थी। यहाँ तक कि संस्कृत पंडितों का भी—''महामोहपाध्याय''—की पदवी से नवाजती थी। राय, रायबहादुर खान, खान बहादुर राजा, राजधिराज जैसी भारतीय सी लगनेवाली पदवी के अतिरिक्त अंग्रेजी—नाइट हूड—सम्माननीय राजपुरुष सूचक ''सर'' की अंग्रेज सरकार की उपाधि भी देती थी। उपाधि घोषित करने के पहले उस व्यक्ति से भी सलाह-परामर्श लेती थी। एक समय मालवीय जी के सामने भी अंग्रेज-शासकों की ओर से प्रस्ताव आया। स्वयं निर्णय ले लेने के पहले किसी निकट सहयोगी से राय-मशवरा करने की अपनी आदत के मुताबिक उन्होंने श्री जीवनशंकर याज्ञिक जी से पूछा—''नाइट हूड के लिए क्या कहते हो?'' याज्ञिक जी ने जब उत्तर दिया—''महाराज! मुझे तो 'महामना पंडित'—ही अच्छा लगता है।'' तब पूरी तरह आश्वस्त हो लेने के लिए फिर पूछा—''देखो; फिर पछताओगे तो नहीं?'' उत्तर में जब सुना कि ''नहीं पछताऊँगा।'' तब बोलो कि फिर मुझे कुछ सोचने की क्या जरूरत है?''

परन्तु शीघ्र ही एक ऐसा अवसर भी आया जब वे अपेक्षाकृत अधिक उलझन में पड़ गए। क्योंकि प्रायः सभी लोग उन्हें यह सलाह देते रहे थे कि अगर कोई विश्वविद्यालय कोई आनरेरी डिग्री दे तो उसे स्वीकार करना उचित है। अतः जब आत्मीय संबंधों से भी अतिनिकट, देश में बड़े सम्माननीय व्यक्ति माननीय आशुतोष मुखर्जी (A. T. Mukhopadhyay) वाइसचांसलर-कलकत्ता यूनिवर्सिटी ने अपने

विश्वविद्यालय की डी0 लिट्0 मानद् उपाधि देने का प्रस्ताव भेजा तब मालवीय जी कई दिनों तक बेचैन रहे। कई लोगों से परामर्श किए। किन्तु अन्त में अपनी अस्वीकृति पठवा दी। जिससे माननीय मुखर्जी से उनके संबंध लगभग समाप्त से हो गए। लोगों ने जब बहुत कुरेदा तब एक दिन अचानक बोल पड़े—''बहुत पहले मैंने अपने पूज्य पिता को वचन दिया था कि मैं उनकी इच्छा के अनुरूप संस्कृत विषय में एम0 ए0 उत्तीर्णकर उनकी इच्छा पूरी करूँगा। दुर्दैव से अभी आज तक अपना वचन पूरा नहीं कर सका। जब पिता जी द्वारा वांछित उपाधि ही न पा सका, तब फिर विश्वविद्यालयों से मिलनेवाली कोई उपाधि नहीं लूँगा।'' फिर तो उपस्थित सभी लोगों के कण्ठ से सहज ही निकल गया—''जनता-जनार्दन'' ने आपको जो उपाधि दी है—''महामना'' उसके सामने सारी उपाधियाँ फीकी हैं। उपाधि भी कोई अहात्मक उक्ति नहीं है। बढ़ा-चढ़ा कर कुछ भी कहने की चेष्टा नहीं है। बस जो है, सो कहा गया है। इतना महान मन है आपका कि उसे—''महामना''—के अतिरिक्त और किसी उपाधि से अभिव्यक्त ही नहीं किया जा सकता है।

महामना चिन्तित मुद्रा में मौन हो रहे। ''मौनं स्वीकृति लक्षणम्''—सूत्र से उपाधि को स्वीकृति ही मिल गयी; जैसे महात्मा गाँधी ''महात्मा''—का संबोधन सुन उसे अपने को किया गया संबोधन मानने के अभ्यस्त हो गए, उसी तरह मदन मोहन मालवीय भी ''महामना'' संबोधन सुन अपने को संबोधित किया गया, मानने के अभ्यस्त हो गए।

◆

''गीता धर्म की निधि है। केवल हिन्दुओं की ही नहीं, किन्तु सारे जगत् के मनुष्यों की निधि है। जगत् के अनेक देशों के विद्वानों ने इसको पढ़कर लोक की उत्पत्ति, स्थिति और संहार करने वाले परम पुरुष का शुद्ध सर्वोत्कृष्ट ज्ञान और उनके चरणों में निर्मल निष्काम परमाभक्ति प्राप्त की है।''

– मदन मोहन मालवीय

(उद्धृत–'कल्याण' भाग-4, अंक-1, संवत् 1986)

मानवता के प्रकाश-स्तम्भ महामना मालवीय

प्रोफेसर भोला नाथ द्विवेदी एवं डॉ0 एस0 जे0 पाठक***

महामना का जन्म गंगा, यमुना, सरस्वती के संगम त्रिवेणी की गोद में हुआ था और खेलना तीर्थराज की देहली पर। तीर्थराज प्रयाग में समन्वय-शक्ति की प्रधानता है। ऐसी ही जन्म-स्थली को पाकर मालवीय जी महामना हो गये। तीर्थराज प्रयाग का सार मदन मोहन में समा गया। इनका व्यक्तित्व इसी तीर्थराज के समान उज्ज्वल और समन्वयकारी हो गया। वे उस समय के सभी धर्म, सम्प्रदाय, जाति, वर्ण आदि के मिलन-स्थल हो गये। उनका व्यक्तित्व संगम था। उनके अस्तित्व में त्रिवेणी उतर गयी। गंगा की पावनता, यमुना की कर्मनिष्ठता और सरस्वती की निपुणता मालवीय जी के चरित्र में अवतरित हो गयी। वे तीर्थरूप हो गये। जिस तरह त्रिवेणी की प्रत्येक धारा पाप पंकिल जीवों को मुक्त करने के लिए सदैव तैयार रहती है, उसी तरह मालवीय जी की भावधारा दुखी जनों का दुःख दूर करने के लिए हमेशा कमर कसे रहती। मालवीय जी के जीवन का प्रत्येक क्षण निष्काम कर्म का पाठ पढ़ाता हुआ सभी को सभी प्रकार की कामना से मुक्त रखता और दूसरों को भी निष्काम कर्म करने की प्रेरणा देता। वे पूरे संसार को ही परमात्मा के रूप में देखा करते, जैसा गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं-

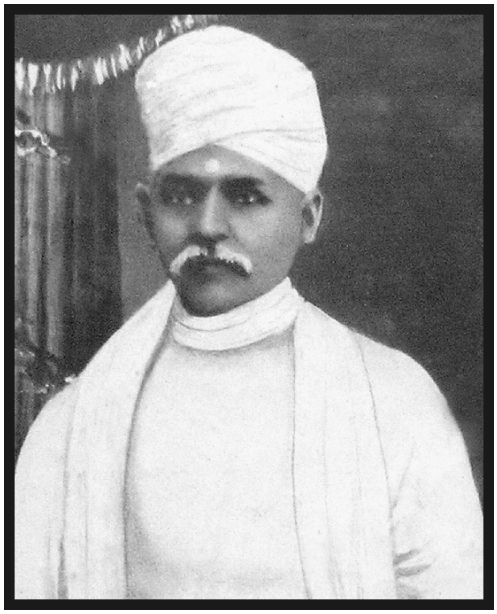

''सीय राममय सब जग जानी।
करउँ प्रनाम जोरि जुग पानी।''

वे संसार में व्याप्त दुःख-दैन्य को दूर करने के लिए हमेशा व्याकुल रहते। वे आधुनिक युग के बुद्ध थे। जिस तरह बुद्ध ने धरती पर दुखी जनों में करुणा की धारा बहाई, उसी तरह मालवीय जी ने भी अपने सत्कार्यों द्वारा दुःख-दैन्य से कराहते लोगों के कष्ट को दूर किया। जिस तरह हमारे प्राचीन संतों की आत्मा दूसरों के कष्ट को दूर करने के लिए मचल उठती, जैसा कि महाभारत के शिवि अपनी कामना व्यक्त करते हैं-

''न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं न पुनर्भवं।
प्राणिनाम दुःख तप्तानाम प्राणिनामर्तिनाशनम्॥''

और श्रीमद्भागवत के रन्तिदेव भी इसी कामना से ओत-प्रोत हो यह कह उठते हैं-

''न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परामष्टर्द्धियुक्तामपुनर्भवं वा।
आर्तिं प्रपद्येऽखिलदेहभाजामन्तःस्थितो येन भवन्त्यदुःखा।''

अर्थात् ईश्वर से मेरी यही कामना है कि मुझे आठों ऋद्धियों से युक्त मोक्ष पद नहीं चाहिए और न ही मुझे पुनर्जन्म से मुक्ति। मुझे तो ऐसी क्षमता मिले ताकि मैं समस्त देहधारी प्राणियों के हृदय में रहकर उनके दुःखों का अनुभव कर सकूँ और वे उन दुःखों से मुक्त हो सकें।

उसी स्वर में स्वर मिलाते हुए मालवीय जी की वाणी भी प्रस्फुटित हो उठी। मालवीय जी दूसरे की कल्याण-कामना से चालित थे। उनसे किसी का दुःख देखा नहीं जाता था। उनका हृदय बहुत विशाल था, जिसमें सारी सृष्टि समा जाती।

मदन मोहन से महामना बनने की प्रक्रिया उनके जन्म-काल से ही प्रारम्भ हो गयी थी। वे इसलिए महामना थे कि वे मन के महान् थे, अर्थात् उनका मन सभी जीवों की कल्याण-कामना से भरा हुआ था। वे मन पर आरूढ़ थे, मन उन पर नहीं। उनके मन में पूरी सृष्टि के लिए शुभकामना निहित थी। बाल्यावस्था में स्कूल से घर आते हुए उन्होंने एक जगह भीड़ देखी, जो दुःख से पीड़ित एक कुत्ते को देख रही थी। उनमें कितने ऐसे थे, जो सहानुभूति प्रकट कर रहे थे, लेकिन उसके लिए कुछ सार्थक नहीं कर पा रहे थे। तभी छोटे-से मदन मोहन उस भीड़ को चीरते हुए कुत्ते के पास गये और देखा कि उसकी पीठ पर एक घाव हो गया है, जिसके कारण वह दर्द से परेशान हृदय-विदारक स्वर में चिल्ला रहा है। यह देख, वह छोटा बालक दौड़कर तुरन्त एक डाक्टर के पास गया और वहाँ से उसके लिए दवा लेकर आया। दवा लेकर आ तो गया, लेकिन उस दवा को उस कुत्ते के घाव पर लगाना भी एक कठिन काम था; क्योंकि वह दर्द से बेहाल किसी को भी अपने पास फटकने नहीं देता था, लेकिन उस बालक की करुणा भी कहाँ मानने वाली थी? किसी तरह उसने डण्डे में कपड़ा बाँधकर उसके घाव पर दवा लगाने लगा। वहाँ उपस्थित लोगों के मना करने पर भी वह लड़का मरहम लगा रहा था। कुछ देर बाद दवा के प्रभाव से कुत्ते का दर्द दूर होने लगा। ऐसी थी महामना की करुणा, जो मदन मोहन को महामना बनाने में महती भूमिका निभाई।

* अध्यक्ष, पूर्वछात्र प्रकोष्ठ, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005
** शोध सहायक, पूर्वछात्र प्रकोष्ठ, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

महामना एक सेतु की तरह

महामना का व्यक्तित्व एक सेतु की तरह था। जिस तरह सेतु का काम दो किनारों को जोड़ना है। उसी तरह मालवीय जी भी दो भिन्न विचार वाले व्यक्तियों को जोड़ने का काम करते थे। समाज को जोड़ने की कला में वे माहिर थे। जोड़ की गणित में निपुण होने के कारण वे बेजोड़ थे। उनका जन्म बड़े दिन (25 दिसम्बर) को हुआ था, इसीलिए उनका चरित्र बड़ा था। इसी दिन सद्गुणों के राशिभूत अंश, शांति-दूत, ईसामसीह का जन्म हुआ था। महामना में महात्मा ईसा के अनेक गुणों का समावेश हो गया था। वे देश एवं समाज में शांति-व्यवस्था बनाये रखने के लिए हमेशा प्रयत्नशील रहते थे। अपने इन्हीं गुणों के कारण वे सामाजिक, धार्मिक, राजनीतिक और सांस्कृतिक मंच पर सेतु का काम करते थे। अमृतसर में कांग्रेस अधिवेशन के अवसर पर मांटेग्यू सुधार-योजना को लेकर एक ओर लोकमान्य तिलक और देशबन्धु तथा दूसरी ओर महात्मा गांधी और मिस्टर जिन्ना के बीच जो मतभेद पैदा हो गया था, उसे दूर करने के लिए मालवीय जी ने महती भूमिका निभायी। असहयोग आंदोलन के समय महात्मा गांधी तथा लार्ड रेडिंग में मेल कराने का कार्य भी महामना के ही यशस्वी व्यक्तित्व से सम्भव हुआ। महात्मा गांधी और अम्बेडकर के बीच 'पूना पैक्ट' भी एक ऐसा ही अनोखा उदाहरण है। जिसमें महामना का ही प्रमुख हाथ रहा। सन् 1932 में प्रयाग में आयोजित एकता सम्मेलन में हिन्दू-मुसलमान तथा अन्य सम्प्रदायों के मध्य समझौते का एक महत्त्वपूर्ण आधार स्थापित करने का काम भी महामना ने ही किया था।

कांग्रेस एकमात्र राष्ट्रीय पार्टी के रूप में पूरे देश में चुनाव लड़ने की तैयारी कर रही थी। कांग्रेस के इस कार्य का विरोध करने का प्रयत्न 'हिन्दू महासभा' से जुड़े महंत दिग्विजयनाथ जी कर रहे थे। वे इस सम्बन्ध में मालवीय जी से सलाह-मशविरा करने वाराणसी आये। महामना ने उनसे कहा कि वे कांग्रेस का विरोध न करें, क्योंकि वह एक राष्ट्रीय संस्था है, जो देश के हित में कार्य कर रही है। मालवीय जी के इस बहुमूल्य सलाह को महंत जी ने शिरोधार्य करते हुए कांग्रेस का विरोध करना छोड़ दिया।

महामना के सम्बन्ध में भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं0 जवाहर लाल नहेरू ने 29 दिसम्बर 1961 में एलफ्रेड पार्क, इलाहाबाद में मालवीय जन्म शताब्दी के उद्घाटन भाषण में कहा था कि भारतीय राजनीति में मालवीय जी एक ऐसे अगुआ थे, जिन्होंने न केवल राष्ट्रीय आंदोलन में महती भूमिका निभायी, अपितु कांग्रेस के नरम दल और गरम दल को मिलाने में एक कड़ी के रूप में भी काम किया।

वाणी के धनी

महामना सरस्वती के वरदपुत्र थे। इसीलिए वे शिक्षा को विशेष महत्त्व देते थे। शिक्षा ही व्यक्ति के चरित्र में निखार लाती है। असली स्वतंत्रता शिक्षा के माध्यम से ही प्राप्त की जा सकती है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय मालवीय जी के शिक्षा-प्रेम का ज्वलन्त उदाहरण है। वे विश्वविद्यालय के बारे में बराबर चिन्तित रहते थे। जीवन की सांध्य-बेला में उनकी शय्या के नीचे दो दान-पात्र रखे रहते- एक सनातनधर्म का दान-पात्र होता और दूसरा प्रस्तावित विश्वनाथ मंदिर और विश्वविद्यालय का। जो भी व्यक्ति मालवीय जी से मिलने जाता, उनका पहला प्रश्न होता- क्यों, विश्वविद्यालय देखा? उत्तर मिलता- हाँ, देखा। पुनः प्रश्न होता- ''कैसा लगा, कुछ दिया?'' और इतना कहते ही वे तत्काल याचना कर बैठते। ऐसा करने में उनको संकोच नहीं होता था; क्योंकि वे कहा करते थे- ''मरि जाऊँ माँगू नहीं अपने हित के काज, परमारथ के कारने मोहि न आवे लाज।'' उनका व्यक्तित्व इसी भावना से ओत-प्रोत था। वे जीवन भर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए भिखारी बने रहे। महात्मा गांधी के शब्दों में- ''वे भारत के एक महान् भिखारी थे। उनके माँगने का ढंग निराला था। वे अपनी वाणी के कारण माँगने की कला में निपुण थे।''

महामना विश्वविद्यालय की स्थापना के सम्बन्ध में जब एक बार प्रयाग पधारे तो एक अत्यन्त रोचक घटना घटित हुई। विश्वविद्यालय के लिए धन एकत्र करने के उद्देश्य से उन्होंने प्रयाग के धनाढ्य रईसों की एक सूची बनायी और उनको एक सभा में आमंत्रित किया। इस सभा में नगर के प्रायः सभी धनी-मानी व्यक्ति पधारे हुए थे तथा उन्होंने इस पुण्य कार्य में यथासम्भव अपना योगदान किया, किन्तु नागरिकों की इस सूची में भूलवश एक रईस का नाम शामिल नहीं किया जा सका। मालवीय जी जब उस सभा से वापस लौट रहे थे तब उन्हें उस रईस की याद आयी। वे तुरन्त उनके घर चले गये। महामना को देखकर वे रईस महोदय नाराज होकर बोले- ''कहिए, कैसे आए पंडित जी?'' इस पर महामना ने कहा- ''विश्वविद्यालय के काम से आया था।'' तब उस नाराज सज्जन ने कहा- ''मुझसे आपका क्या प्रयोजन? आपने अपनी सूची के मुताबिक नगर के रईसों को आमंत्रित किया, किन्तु मुझे नहीं। हाँ भाई, मैं तो कोई बड़ा आदमी हूँ नहीं, कैसे आप मुझे बुलाते।'' महामना उनके इस कथन से अवाक् रह गये, किन्तु उनकी वाक्पटुता ने वहाँ तुरन्त जादू-सा काम किया। वे मुस्कराते हुए बोले- ''आप भी क्या कहते हैं। मैं पहले ही समझता था कि आप नाराज हो जाएँगे, किन्तु वह सूची तो रईसों की थी, राजा-महाराजाओं की नहीं। आप तो मेरी दृष्टि में महाराज है।'' इतना सुनते ही वे महाशय पिघल गये और उन्होंने न केवल 25000/- नकद दिये, अपितु विश्वविद्यालय में एक सुन्दर भवन बनवाने का भी आश्वासन दिया।

देशभक्ति

मालवीय जी आधुनिक भारत के निर्माताओं में से एक थे। उनके अन्दर देशभक्ति कूट-कूट कर भरी हुई थी। वे धर्म की अपेक्षा देश और देशभक्ति को महत्त्वपूर्ण मानते थे। मालवीय जी स्वतन्त्र भारत की कामना करते थे। उसके लिए वे तन-मन से जुटे थे। महामना का राष्ट्र-प्रेम रचनात्मक था। स्वतंत्रता-संग्राम का इतिहास इस बात का साक्षी है कि जब-जब देश की अखण्डता और एकता खतरे में पड़ी, देशवासियों पर निराशा और विपत्ति के काले बादल मडराये, राष्ट्रीय संस्था कांग्रेस

पर संकट आया तब-तब महामना ने अपनी प्रखर प्रतिभा से उन सबका समुचित समाधान किया।

महामना उदारवादी दल के नेता थे, लेकिन वे समय-समय पर देश की स्वतंत्रता के लिए जुझारू वातावरण में भी कूद पड़ते थे। उन्होंने गाँधी जी के राष्ट्रीय कार्यों में सहयोग प्रदान किया। गांधी जी के दृष्टिकोण से पूर्णतया सहमत न होने के कारण कांग्रेस को अपना सक्रिय सहयोग सदैव न दे सके, लेकिन देश की पुकार पर कांग्रेस के गाढ़े समय में उसकी रक्षा करने में वे कभी पीछे नहीं रहे। कांग्रेस की अध्यक्षता उन्होंने चार बार की थी। कांग्रेस अध्यक्ष की हैसियत से 1909 के लाहौर अधिवेशन में उन्होंने 'मुण्डकोपनिषद्' के शाश्वत मंत्र 'सत्यमेव जयते' को आधुनिक भारत के इतिहास में पहली बार राष्ट्रीय आदर्श के रूप में उद्घोषित किया।

महामना के अनुपम व्यक्तित्व की झाँकी एक महान् पत्रकार, समाजसेवी, देशभक्त एवं प्रखर वक्ता के रूप में मिलती है। उनके जीवन का परम उत्कर्ष एक महान् शिक्षाविद् के रूप में हुआ था। वे देश के कल्याण के लिए प्रत्येक देशवासी को शिक्षित करना चाहते थे। उनके इसी आदर्श का प्रतीक है : काशी हिन्दू विश्वविद्यालय।

मालवीय जी अत्यन्त धर्मनिष्ठ एवं सदाचारी महापुरुष थे। उनका व्यक्तित्व सद्गुणों का संगम था, जो उनको विरासत में प्राप्त था। उनके पूज्य दादा जी और पिता श्री ब्रजनाथ जी से होती हुई भगवद्भक्ति की धारा महामना में प्रवाहित हुई थी। उनके पिता कथावाचक के साथ-साथ सुन्दर वंशी-वादक भी थे। वे अपने वंशीवादन से श्रोताओं को मंत्रमुग्ध कर देते थे। श्री विष्णुकान्त मालवीय प्रयाग से प्रकाशित 'सम्मेलन पत्रिका' के श्रद्धांजलि अंक में लिखते हैं कि- सन् 1857 की राज्यक्रांति के समय, जब इलाहाबाद के चौक में अंग्रेज सैनिक बेकसूर लोगों को पकड़-पकड़कर नीम के पेड़ों पर फाँसी की सजा दे रहे थे, उसी क्रम में मालवीय जी के पिता पंडित ब्रजनाथ जी को भी गिरफ्तार कर लिया गया। ब्रजनाथ जी ने अपने प्राण को संकट में देख अपने आराध्य भगवान् श्रीकृष्ण से अपने प्राणों की रक्षा के लिए प्रार्थना करते हुए बंशी बजाने लगे। उनकी बंशी की मनमोहक धुन से वशीभूत होकर अंग्रेज सैनिकों ने उन्हें मुक्त कर दिया। ऐसे भगवद्भक्त पिता का पुत्र होने के नाते मालवीय जी में बाल्यकाल से ही धार्मिकता का उदय हो गया था, जिसका उत्तरोत्तर विकास होता गया। वे जीवनभर प्राणिमात्र के हितार्थ कृतसंकल्प रहे। उन्होंने जो भी कार्य किया, समाज के लिए किया। वे युग की महानतम विभूति थे। राष्ट्र के उत्थान में जिन महापुरुषों ने योगदान किया, उनमें मालवीय जी का नाम स्वर्णाक्षरों में अंकित है। उन्होंने अपनी दिव्य वाणी और लोकहित कार्यों द्वारा भारत की जनता में धार्मिक, सांस्कृतिक, सामाजिक तथा राजनैतिक चेतना का प्रसार किया।

महामना की देशभक्ति अपूर्व थी। वे अपने देश में अपना राज चाहते थे। जब 1942 में महात्मा गांधी द्वारा 'करो या मरो' का नारा दिया गया तब पूरी भारतीय जनता उनके समर्थन में उठ खड़ी हुई। जो ब्रिटिश सरकार के जुए को कंधे से उखाड़ फेंकना चाहती थी। देश का आबाल-वृद्ध एक होकर फिरंगियों को अपने यहाँ से भगा देना चाहता था। उधर ब्रिटिश सरकार भी अपना नग्न रूप प्रस्तुत कर रही थी। उस समय वयोवृद्ध महामना का यौवन लहर मार उठा, उन्होंने अपनी तुलना एक बूढ़े शेर से करते हुए कहा था- ''मैं एक बूढ़े शेर की तरह हूँ। आज मेरे इस जीर्ण शरीर में जरा भी शक्ति का संचार हो जाता तो मैं सारे देश में विद्रोह कर देता।''

मालवीय जी अपने देश को शक्तिशाली बनाना चाहते थे। जिसके लिए देश के जवानों को शक्तिशाली होना जरूरी है, इसीलिए वे कहा करते थे—

''दूध पियो, कसरत करो नित्य जपो हरि नाम,
हिम्मत से कारज करो पूरेंगे सब काम।''

मानवता के पोषक

मालवीय जी ऋषि-तुल्य थे। उनकी प्रखर वाणी परतन्त्र भारत के लोगों में व्याप्त निराशा का शमन करती रहती थी। मालवीय जी मानवता के पुजारी थे, उनमें किसी भी धर्म के प्रति संकीर्णता नहीं थी। उनमें 'सर्व धर्म समभाव' समाहित था। वे करुणा-मूर्ति थे। वृद्धावस्था में तीर्थ के समान हो गये थे। उन दिनों काशी में केवल दो ही वस्तुएँ दर्शनीय समझी जाती थीं- एक बाबा विश्वनाथ, दूसरे दिव्यता की प्रतिमूर्ति महामना। अतः सदैव मालवीय जी के दर्शनार्थियों का ताँता लगा रहता था।

मालवीय जी के विचार उदात्त और दिव्य थे। उनके अन्दर जाति-पाँति का बन्धन नहीं था। वे मानवता को सभी धर्मों का सार मानते थे। उनके हृदय में सभी प्राणियों के लिए शुभकामनाएँ निहित थी। वे हिन्दू, मुस्लिम, सिक्ख, ईसाई, पारसी, जैन, बौद्ध आदि सभी धर्मों का आदर करते थे। उनका मानना था कि जो भी कार्य मानव को मानव बनाने में, परस्पर एक-दूसरे से सहानुभूतिपूर्ण व्यवहार करना सिखाये, वही कर्म धर्म है। मालवीय जी हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक थे। वे इस मत को एकदम बर्दास्त नहीं कर सकते थे कि कोई हिन्दू या कोई मुस्लिम एक-दूसरे पर अत्याचार करें। उनकी दृष्टि दोनों के प्रति समान थी। अपने इसी विचार को 1933 के लाहौर भाषण में उद्धृत किया था-

''हिन्दू बलवान होकर मुसलमानों को तकलीफ दें, ऐसी मेरी स्वप्न में भी कल्पना नहीं है। मेरे मन में ऐसा विचार आया कि मैं धर्मच्युत हुआ। मेरी सदा यही इच्छा है कि हिन्दू और मुसलमान शक्तिमान हों और जगत् के अन्य समाज के साथ खड़े होने लायक बने। हिन्दू और मुसलमान एकत्र हों और उनके अखाड़े भी एक ही हों। मेरा अपने धर्म में दृढ़ विश्वास है, परन्तु परधर्म के अपमान करने की कल्पना मेरे मन को छू तक नहीं गई। किसी गिरिजाघर अथवा मस्जिद के पास

से जब मैं जाता हूँ, तब मेरा मस्तक अपने आप झुक जाता है। जबकि परमेश्वर एक ही है तो लड़ने का कारण क्या? भूमि एक, देश एक, वायु एक, ऐसी परिस्थिति में रहते हुए भी आपस में दंगों का होना, इससे बढ़कर और आश्चर्य की बात क्या हो सकती है?''।

मार्च 1933 में जब कानपुर में हिन्दू-मुस्लिम दंगा हुआ। उसके कुछ दिन बाद 11 अप्रैल 1933 को कानपुर में आयोजित एक सभा में मालवीय जी ने अपने विचार प्रकट करते हुए कहा था-

''मैं मनुष्यता का पूजक हूँ। मनुष्यत्व के आगे जात-पाँत नहीं मानता। कानपुर में जो दंगा हुआ, उसके लिए हिन्दू या मुसलमान इनमें से एक जाति की जवाबदेही नहीं हैं। जवाबदेही दोनों जातियों पर समान है। मेरा आप लोगों से आग्रहपूर्वक ऐसा कहना है कि ऐसी प्रतिज्ञा कीजिए कि अब हम भविष्य में अपने भाइयों से युद्ध नहीं करेंगे।''

हिन्दी सेवा

मालवीय जी ने हिन्दी की बहुमूल्य सेवा की। 1893 में स्थापित 'नागरी प्रचारिणी सभा' द्वारा देवनागरी लिपि को कचहरियों में प्रवेश दिलाने के आन्दोलन की अगुवाई महामना ने ही की। तत्कालीन पश्चिमोत्तर प्रदेश के ले0 गवर्नर सर एंटनी मेकडोनल्ड मालवीय जी के द्वारा हिन्दी के लिए की गई पैरवी से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने कचहरियों में हिन्दी में अर्जियाँ देने की राजाज्ञा जारी कर दी। हिन्दी का प्रचार-प्रसार करने के लिए 'नागरी प्रचारिणी सभा', काशी के प्रांगण में मालवीय जी की अध्यक्षता में 1910 में अखिल भारतीय हिन्दी साहित्य सम्मेलन का अधिवेशन हुआ और इसका प्रधान कार्यालय प्रयाग में रखने का निश्चय किया गया। हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना का एक मुख्य उद्देश्य हिन्दी की सेवा करना भी था। मालवीय जी चाहते थे कि हिन्दू विश्वविद्यालय की शिक्षा हिन्दी माध्यम से दी जाय, लेकिन तत्कालीन वाइसराय ने यह कहते हुए इसका विरोध किया कि अगर विश्वविद्यालय की शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी नहीं बनाया गया तो सरकार की तरफ से इसकी सहायता नहीं की जाएगी। जिसके कारण मालवीय जी ने अपने विचार में परिवर्तन करते हुए शिक्षा का माध्यम अंग्रेजी होना स्वीकार कर लिया। विश्वविद्यालय की स्थापना के कुछ वर्ष बाद सन् 1922 में स्नातकोत्तर में हिन्दी की पढ़ाई आरम्भ की गयी और प्रवेश-परीक्षा में उत्तर लिखने का माध्यम विकल्प के रूप में हिन्दी हो गई।

धार्मिक, सामाजिक, साहित्यिक, शैक्षणिक एवं सांस्कृतिक क्षेत्रों में महामना का योगदान स्मरणीय है। धर्म, समाज, संस्कृति और शिक्षा को वे जीवन का प्रमुख आधार मानते थे। उनका मानना था कि इनके उत्थान के बिना राष्ट्र का विकास संभव नहीं है। वे शिक्षा को महत्त्वपूर्ण मानते थे। प्राचीन भारत में शिक्षा को ज्ञान-संवर्द्धन का प्रमुख कारण माना, जिससे चरित्र का विकास होता था, लेकिन मध्यकाल तक आते-आते शिक्षा का उद्देश्य तत्कालीन लोगों द्वारा मात्र उदर-पोषण ही माना जाने लगा। इसी पीड़ा को गोस्वामी तुलसीदास अपने 'रामचरितमानस' में चित्रित करते हैं—

'उदर भरै सोई धर्म सिखावहिं'

अर्थात् जिस शिक्षा से पेट चल जाय।

महामना मालवीय जी द्वारा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की योजना मात्र एक विद्या-मन्दिर खोलना नहीं था, बल्कि यह बौद्धिक और चारित्रिक उत्थान का राष्ट्रव्यापी आन्दोलन भी था। प्राचीन भारत के तक्षशिला और नालन्दा की शिक्षा-व्यवस्था को एक बिन्दु पर लाने का सत्प्रयास था- काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना। वे इसके द्वारा भारत की सदियों से सुप्त पड़ी चेतना को जगाना चाहते थे। हिन्दू विश्वविद्यालय की भावना का विकास भारत के उत्तर से दक्षिण तथा पूरब से पश्चिम के ज्ञान-विज्ञान का एकीकृत रूप है। महामना ने इसके माध्यम से देश की सांस्कृतिक और राष्ट्रीय भावना को एक बार पुनः जागृत किया। देश के सभी वर्गों- किसान, वणिक, सामान्य प्रजा, श्रीमन्त तथा राजा-महाराजाओं ने खुले हृदय से इसका स्वागत किया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना का दिन स्वतन्त्र राष्ट्रीय शिक्षा का महान् पर्व बन गया। भारत के परपंरागत ज्ञान को विज्ञान से जोड़ना महामना का सबसे बड़ा काम था। पंडित जवाहर लाल नेहरू के शब्दों में- ''विश्वविद्यालय के सामने उद्देश्य था लक्ष्य था, आजकल के जमाने में विज्ञान और विज्ञान की औलाद टेक्नालॉजी, इण्डस्ट्री वगैरह को पुरानी भारतीय संस्कृति के साथ जोड़ना। एक माने में यह सबसे बड़ा कार्य था भारत के लिए। अब भी है, क्योंकि यह एक-दो रोज की बात तो नहीं है।''

मालवीय जी के विचार से विश्वविद्यालय का अखिल भारतीय होना आवश्यक था। अंग्रेजी सरकार ने ऐसा कोई विश्वविद्यालय स्थापित नहीं किया, जो भारत की भावनात्मक एकता स्थापित करे। अंग्रेजी साम्राज्य की एकता शासन-तंत्र पर आधारित थी। महामना राष्ट्रीय एकता के लिए एक सर्वदेशीय विश्वविद्यालय का महत्त्व समझते थे। मालवीय जी ने हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना द्वारा पूरब, पश्चिम, उत्तर और दक्षिण को मिलाने का अभूतपूर्व कार्य किया। मालवीय जी ने भारतीयता को गति प्रदान की। उन्होंने अपने चरित्र द्वारा भारत की जनता को एक दिशा देने की कोशिश की। वे यथार्थ में हमारे मार्गदर्शक थे।

श्रद्धांजलि

मानवता के प्रकाश-स्तम्भ, पत्रकारिता-जगत् के कुलगुरु, सरस्वती के वरदपुत्र, भारतीय संस्कृति के सजग प्रहरी, अछूतोद्धारक, आधुनिक शिक्षा-जगत् के पुरोधा, नैतिक मूल्यों के पहरुआ, तेजस्वी व्यक्तित्व से सम्पन्न, राजनीतिक-सामाजिक मर्यादा के सेतुबंध, युगावतार, दिव्य विभूति से विभूषित, राष्ट्रीयता के महान् पुजारी, वाणी के धनी, सर्वधर्मसमभाव के पोषक, गांधी जी के 'पूज्य' एवं प्रातः स्मरणीय, 'सत्यमेव जयते' के जीवन्त दर्शन महामना मदन मोहन मालवीय जी के 150वें जयन्ती- वर्ष में हम उनको श्रद्धा-सुमन अर्पित करते हुए कृतज्ञ हृदय से नमन करते हैं।

◆

विलक्षण पत्रकार महामना पं0 मदन मोहन मालवीय की प्रखर राजनैतिक, सांस्कृतिक एवं सामाजिक चेतना

('सनातन धर्म' एवं 'अभ्युदय' के विशेष संदर्भ में)

प्रो0 (डॉ0) श्रीनिवास पाण्डेय एवं डॉ0 फ्रैंकी सिन्हा***

महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय बहुमुखी प्रतिभा के धनी महापुरुष थे। वे एक भविष्य दृष्टा ऋषि थे। यही कारण है कि वे पराधीन भारत की भयावह परिस्थितियों के साथ-साथ देश के उज्ज्वल भविष्य के प्रति भी जागरुक थे। वे तत्कालीन राजनीति में सक्रिय भागीदारी करने के साथ ही देश की सांस्कृतिक अस्मिता एवं आध्यात्मिक चेतना को भी जागरुक रखने के लिए सतत प्रयत्नशील रहे। वे निरन्तर अपनी लेखनी एवं वक्तव्यों द्वारा जनमानस को जाग्रत करते रहे। इसी कारण उन्होंने अनेक पत्र/पत्रिकाओं का संपादन एवं संयोजन किया, जिसके द्वारा वे अपने संदेश एवं विचारों को भारतीय जनमानस में संप्रेषित कर सके। उन्होंने अनेक पत्र/पत्रिकाओं का संपादन किया, जिनमें 'सनातन धर्म' एवं 'अभ्युदय' का उल्लेखनीय स्थान है। इसके अतिरिक्त उन्होंने 'हिन्दोस्तान', 'मर्यादा', 'इण्डियन ओपेनियन', 'एडवोकेट', 'लीडर', 'दैनिक भारत' एवं 'गोपाल' आदि अनेक पत्र/पत्रिकाओं का सम्पादन किया।

सन् 1933 में देश का स्वतंत्रता आंदोलन दिनोंदिन चरम पर पहुँचता जा रहा था। कांग्रेस की अंग्रेज विरोधी नीति देश में बह रही थी। मालवीय जी देश की बड़ी पार्टी कांग्रेस से जुड़े थे। वे कांग्रेस के 4 बार अध्यक्ष भी रह चुके थे। मालवीय जी देश की सामाजिक एवं राजनैतिक विकास एवं एकता के लिए हमेशा सजग रहते थे। वे साप्ताहिक पत्रिका 'सनातन धर्म' के संरक्षक तथा संचालक थे। इसके एक अंक में वे कांग्रेस पार्टी के बारे में लिखते हैं- ''मैं कांग्रेस में दो दल बनाने की बात अनुचित समझता हूँ। आज एकता होने की जितनी जरूरत है उतनी पहले नहीं थी। सबसे पुरानी और प्रभावशाली संस्था होने के कारण कांग्रेस में एकता होना आवश्यक है।''[1]

मालवीय जी मानते थे कि पार्टी की अंदरुनी एकता के साथ-साथ देश के सभी राजनीतिक दलों में एकता होना आवश्यक है। इसी से देश की जनता के अधिकारों की रक्षा हो सकेगी। इससे स्वराज प्राप्ति की दिशा में उत्साहवर्धक परिणाम आएंगे और देश का शासन जनता द्वारा एवं जनता के लिए होगा। वैश्वीकरण के वर्तमान दौर में ब्रिटिश काल की वही साम्राज्यवादी शोषणकारी प्रवृत्ति का लक्षण दिख रहा है। दूसरे देशों की मल्टीनेशनल कंपनियाँ ईस्ट इंडिया कंपनी की भांति अपने व्यापार जाल में भारत को धीरे-धीरे फँसाती जा रही हैं। अतः आज स्वदेशी की भावना की प्रासंगिकता और अधिक बढ़ गई है।

मालवीय जी ने 'अभ्युदय' पत्रिका का भी संपादन-कार्य किया। 'अभ्युदय' के एक अंक में 'स्वराज की कल्पना' शीर्षक के अंतर्गत अंग्रेजों की भारतीयों के प्रति उपेक्षित दृष्टिकोण की आलोचना की है- ''अब फिर भारतवासियों में स्वराज की कल्पना का प्रादुर्भाव हुआ है। ईश्वर यदि इनकी इस जागृति को बनाए रखे और ब्रिटिश सरकार का अनुग्रह और कृपा इन पर बनी रहे तो एक समय ऐसा आएगा जब इनको स्वराज के अधिकार अवश्य प्राप्त होंगे।''[2]

मालवीय जी 'अभ्युदय' के इस अंक के सम्पादकीय टिप्पणी में लिखते हैं कि स्वराज की कल्पना भारतीयों को यूरोप से नहीं मिली, बल्कि यूरोपियों ने स्वराज की संकल्पना भारतीयों से ली। वे मिस्टर मार्ली, मिंटो और जाक्सन इत्यादि के मत का विरोध करते हैं कि लोक नियंत्रित राजसत्ता से भारतीय अनजान थे। फिलहाल भले ही भारतीय अयोग्य हों परन्तु अपने पूर्वजों से प्रेरणा लेकर भारतवासी संसार को यह करके दिखला सकते हैं। मालवीय जी सनातन धर्म के मर्मज्ञ थे। वे अच्छी तरह जानते थे कि स्वराज का मूल वैदिक काल से मिलता है, अतः वे 'स्वराज ब्रिटिश संकल्पना है' के विरोध में अकाट्य तर्क देते थे।

'सनातन धर्म' पत्रिका के एक अन्य अंक में मालवीय जी राष्ट्रभक्ति से पूर्ण राजनैतिक लेख लिखते हैं ''शासन का वर्तमान तरीका बदलने के लिए किए गए अहिंसात्मक आन्दोलन ने यह दिखला दिया है कि इस बड़े देश का शासन देश की इच्छा के विरुद्ध और बिना जनता की मर्जी के नहीं चलाया जा सकता।''[3] मालवीय जी की इस टिप्पणी में उनकी ब्रिटिश शासन की शासकीय व्यवस्था का विरोधी स्वर मुखर है। वे देश की जनता की सहमति के बिना अंग्रेजी शासन नहीं चलने देना चाहते थे। जिसके लिए वे अपनी 'सनातन धर्म' पत्रिका द्वारा देश की जनता को स्वशासन का सपना दिखाते रहे। मालवीय जी ने अपनी इस पत्रिका के माध्यम से 'साइमन कमीशन' का भी प्रबल विरोध किया। ''जो व्यक्ति साइमन कमीशन की नियुक्ति के बाद स्थिति और आज की स्थिति का मुकाबला करेगा उसे स्पष्ट विदित हो जाएगा कि जो लोग अंग्रेजों के हाथों में अधिकार आने देना नहीं चाहते वे हमारी फूट का फायदा उठाकर किस प्रकार अपने पक्ष में और हमारे विरुद्ध शक्ति संचय कर रहे हैं।''[4]

मालवीय जी अंग्रेजों के काला कानून- 'साइमन कमीशन' का अपने पत्रों में हमेशा विरोध किया। अंग्रेजी शासन ने 'साइमन कमीशन' से विरोध करने वाले पत्रों पर तिरछी नजर डाली किन्तु मालवीय जी निर्भीकता से इसके विरोध में लिखते रहे। मालवीय जी अंग्रेजों की 'फूट डालो और राज करो' की नीति के विरोध में निरंतर जनता को सचेत

* प्रोफेसर, हिन्दी विभाग एवं सम्पादक, प्रज्ञा, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

** पूर्व शोध छात्रा, हिन्दी विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

करते रहे। अंग्रेजों का यह कहना कि भारतीय अभी स्वशासन संभालने के योग्य नहीं हुए हैं एवं भारत का अलगाववाद भी इसमें बाधक बनेगा। ये सभी बातें सच नहीं हैं। मालवीय जी देशहित में योग्य व्यक्तियों से आवाहन करते हैं कि अंग्रेजों की कुत्सित, राजनैतिक गतिविधियों के तोड़ में ऐसी राष्ट्रीय नीति और कार्यक्रम निश्चित करें, जिससे कि शीघ्र ही हमारे देश का राजनैतिक और आर्थिक उद्धार हो सके।

मालवीय जी भारत की सुदृढ़ आर्थिक स्थिति के लिए स्वदेशी वस्तुओं के इस्तेमाल पर जोर देते थे। मालवीय जी के अपने पत्रों में स्वदेशी चेतना स्पष्ट परिलक्षित होती है। वे स्वदेशी वस्तुओं के प्रयोग एवं बिक्री को प्राथमिकता देते हुए 'सनातन धर्म' पत्रिका में टिप्पणी करते हैं- ''अपनी आर्थिक अवस्था सुधारने के लिए जनता के पास यही एक उपाय है कि अपनी आवश्यकता को कम कर, जहाँ तक बन पड़े, उन्हीं वस्तुओं की खरीद और बिक्री करे जो हिन्दुस्तान के कच्चे माल, पूँजी और मजदूरी से हिन्दुस्तान में ही तैयार की गई हो। अपने देश की स्त्रियों और पुरुषों से मेरा हार्दिक निवेदन है कि वे प्रतिज्ञा करे कि हम हानि उठाकर भी केवल स्वदेशी वस्तुएं बेचेंगे, स्वदेशी वस्तुएं मोल लेंगे और स्वदेशी वस्तुओं का ही व्यापार करेंगे तथा शांतिमय उपायों से और लोगों को भी ऐसा ही करने के लिए उत्साहित करेंगे।''[5] मालवीय जी की यह टिप्पणी आज के संदर्भ में भी उतनी ही उपयोगी है जितनी तब थी। आज बहुराष्ट्रीय कंपनियों द्वारा तैयार सामान से पूरा भारतीय बाजार भरा पड़ा है। इन विदेशी सामानों की बिक्री का लाभ देश में नहीं रहता बल्कि बहुराष्ट्रीय कंपनियों की झोली में जाता है। खाने-पीने की वस्तुओं, सौन्दर्य प्रसाधनों, इलेक्ट्रॉनिक सामानों आदि सभी विदेशी चीजें देशी बाजार में पूरी तरह घुसपैठ बना चुकी हैं। अतः वर्तमान समय में स्वदेशी चेतना की आवश्यकता एवं प्रासंगिकता और अधिक बढ़ गई है।

मालवीय जी चाहते थे कि प्रत्येक समझदार भारतीय विचार करें कि वह देश को कितना अधिक लाभ पहुँचा सकता है। स्वदेशी वस्तुओं के क्रय-विक्रय एवं प्रयोग से अन्ततः भारत की आर्थिक दशा में सुधार होगा और विदेशी वस्तुओं का वर्चस्व खत्म होगा। उनका मानना था कि हिन्दुस्तान में उद्योगधंधों को संरक्षित और उत्साहित करना प्रत्येक हिन्दुस्तानी का परम कर्तव्य है। भारत में देशभक्ति के भाव से एक आत्मनिर्भर, संप्रभु राष्ट्र के निर्माण में मदद मिलेगी। स्वदेशी वस्तु के इस्तेमाल से भारत का कच्चा माल, खनिज संसाधन भी दूसरे देशों में जाने से बचाया जा सकेगा। इस प्रकार मालवीय जी के सम्पादकीय लेखों से उनकी देशवासियों के हित साधन की भावना परिलक्षित होती है।

'सनातन धर्म' पत्रिका का सामाजिक एवं धार्मिक उपादेयता भी दृष्टव्य है। जैसा कि 'सनातन धर्म पत्रिका के नाम से विदित होता है कि मालवीय जी हिन्दुत्व के प्रबल समर्थक थे हालांकि कौमी एकता पर भी उनकी सजग एवं सकारात्मक सोच थी। वे धर्म को सामाजिक-आध्यात्मिक संरचना के समकालीन विकास से जोड़कर देखते थे। मालवीय जी के लिए धर्म सिर्फ पूजा-पाठ या कर्मकाण्ड की चीज नहीं थी, अपितु उसमें वे जीवन जीने की समग्र कला देखते थे। ''मनुष्य जाति के इतिहास में जितने पुरुषों की कथा संसार में विदित है। उनमें सबसे बड़े महापुरुष भगवान श्रीकृष्ण हुए हैं। मनुष्य की शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक शक्ति का जितना ऊँचा विकास उनमें हुआ उतना किसी दूसरे महापुरुष में नहीं हुआ। जैसी नीति और जैसे विमल ज्ञान का उन्होंने उपदेश किया वैसा दूसरे किसी ने नहीं किया है।''[6] मालवीय जी सनातन धर्म को अपने आचरण में अंगीकार करने की शिक्षा देते हैं। उनका कथन है कि भगवान श्रीकृष्ण ने अपने प्राकट्य से लेकर अन्तर्धान होने तक साधुओं की रक्षा, दुष्टों का दमन, न्याय और धर्म की स्थापना आदि अनेक अनुकरणीय अद्भुत कार्य किए। मालवीय जी से शिक्षा लेकर हमें भी समकालीन बाधाओं, विपत्तियों का सामना एवं निराकरण करना चाहिए।

मालवीय जी समग्र राष्ट्र निर्माण की संकल्पना को भी देश के समक्ष रखते हैं। वे देश में सामाजिक सांस्कृतिक एकता के लिए जनता के सामने विभिन्न मतान्तरों में समान उद्देश्य होने पर जोर देते हैं- ''मत-मतान्तरों से तथा अन्य कारणों से बिखरे हुए लोगों को एकत्रित करने के लिए एक ही उद्देश्य का होना और एक ही क्लेश से पीड़ित होना बड़े भारी बंधन हैं।''[7]

अपनी टिप्पणियों में मालवीय जी जातिप्रथा एवं छुआछूत आदि जैसी कुरीतियों पर प्रहार करते हैं। वे जनता के वर्गभेद को मिटाकर सबको एक साथ लेकर सामाजिक उद्धार पर जोर देते थे। वे स्त्री को भी पुरुषों के बराबर शिक्षा मिलने के अधिकार के हिमायती थे। ऐसा होने पर ही समाज का सही दिशा में विकास होगा।

मालवीय जी मानते थे कि जैसे संसाधन भारत में हैं वैसा समृद्ध संसाधन किसी देश में नहीं है। यहाँ के विभिन्न जाति के लोगों में त्याग और बलिदान की भावना संसार भर में प्रसिद्ध है। भारत में कृषक और श्रमिक वर्ग अल्प व्यय से अपना जीवन निर्वाह कर लेते हैं। यहाँ की कृषि योग्य भूमि अति उर्वरा है। अब प्रमुख आवश्यकता इस बात की है कि ये गुण हमारी जाति में भी आ जाए और हमारे चित्त में ये प्रबल अभिलाषा उत्पन्न हो जाए कि हम लोग जैसे भी हो अपने राष्ट्र को पुनः उन्नति के शिखर पर पहुँचा दें, क्योंकि सभी कार्य आन्तरिक मन की अभिलाषा से ही पूरे होते हैं। हमारी अभिलाषा इतनी बढ़नी चाहिए कि वह एक प्रकार का व्यवसन हो जाए।

'अभ्युदय' के एक अंक के सम्पादकीय में मालवीय जी ने भारत में कौमी एकता पर भी टिप्पणी की है- ''हिन्दुस्तान अब केवल उन्हीं का देश नहीं है। हिन्दुस्तान जैसे हिन्दुओं का प्यार जन्मस्थान है? वैसा ही मुसलमानों का भी है। ये दोनों जातियाँ अब यहाँ बसती हैं और सदा बसी रहेंगी। जितना इन दोनों में परस्पर मेल और एकता बढ़ेगी उतनी ही देश की उन्नति करने में हमारी शक्ति बढ़ेगी और इनमें जितना ही बैर या विरोध या अनेकता रहेगी उतने ही हम दुर्बल रहेंगे।''[8] यह

सम्पादकीय मालवीय जी के उदार एवं व्यापक दृष्टिकोण का परिचायक है। वे सनातन धर्म में विश्वास रखते थे और साथ ही अन्य धर्मों के प्रति भी पर्याप्त आदर का भाव रखते थे।

मालवीय जी का मानना था कि सिर्फ एक ही तरह की उन्नति से हम उस जगह नहीं पहुँच सकते जहाँ हम पहुँचना चाहते हैं। समग्र उन्नति के लिए देश में एकता रहना आवश्यक है। राजनैतिक और आर्थिक उन्नति के लिए भारत में सभी जातियों में परस्पर एकता होना जरूरी है। हमें इस बात पर खूब विचार कर गाँठ बाँध लेना चाहिए। कौमी एकता सिर्फ विचार न होकर संवैधानिक व्यवस्था का अंग भी है। आज संविधान ने कार्यपालिका, न्यायपालिका, विधायिका तीनों द्वारा कौमी एकता बनाए रखने के स्पष्ट निर्देश दिए हैं।

मालवीय जी कालजयी पत्रकार थे। उनके चिन्तन में ऐसे शाश्वत तत्व विद्यमान थे जिसने आगे आने वाली पीढ़ियों को भी प्रभावित किया। मालवीय जी अपने समय के परिवेश एवं परिस्थितियों के प्रति सजग तो थे ही वे आने वाली पीढ़ियों के लिए भी चिंतित थे। अपने पत्रों में 'स्वदेशी प्रयोग', 'स्वराज' एवं 'छुआछूत' जैसी अनेक समस्याओं पर विचार करते थे। ये चुनौतियाँ वर्तमान समय में वैश्वीकरण के दुष्परिणाम के रूप में सर उठाए हुए हैं। बहुराष्ट्रीय कंपनियों ने स्वदेशी वस्तुओं के इस्तेमाल को कम किया है, चिप्स, पापड़, अचार आदि जैसे भारतीय संसाधनों से भारत में निर्मित सामानों की जगह अंकल चिप्स, लेज, मैगी इत्यादि बहुराष्ट्रीय उत्पाद लेते जा रहे हैं।

मालवीय जी जानते थे कि स्वदेशी वस्तुओं के इस्तेमाल से राष्ट्र की अंदरूनी आर्थिक शक्ति बढ़ती है। इस समय बहुराष्ट्रीय कंपनियाँ मालवीय जी के समय की ईस्ट इंडिया कंपनी जैसी चुनौतियाँ दे रही हैं। अतः मालवीय जी के लेख एवं सम्पादकीय समकालीन चुनौतियों से भी उबरने की प्रबल प्रेरणा देते हैं।

मालवीय जी के छुआछूत से संबंधित सम्पादकीय टिप्पणी भी वर्तमान समय में प्रासंगिक बनी हुई हैं। इक्कीसवीं सदी में आरक्षण के रूप में जातिभेद समाज को डस रहा है। इसी तरह मालवीय जी की स्त्री उद्धार संबंधी सोच की प्रासंगिकता वर्तमान समय में और बढ़ती जा रही है। भ्रूण हत्या, दहेज हत्या, बलात्कार जैसी स्त्री संबंधी समस्याएँ अपने फन उठाए हुए हैं। अतः मालवीय जी की 'सनातन धर्म' एवं 'अभ्युदय' पत्रिका की सम्पादकीय टिप्पणियों में स्त्री उद्धार की समस्या की प्रासंगिकता बढ़ गई है। इसी प्रकार स्वराज, साइमन कमीशन आदि के प्रति मालवीय जी की सोच से आज के राजनैतिक परिवेश को शिक्षा एवं दिशा मिल सकती है।

समग्रतः मालवीय जी अपने समय की चुनौतियों को पहचानने वाले सजग एवं विलक्षण पत्रकार थे। वे जानते थे कि भारतीय जनमानस को जागरुक करने का सबल हथियार है, पत्र/पत्रिकायें। यही कारण है कि मालवीय जी ने अपने जीवन काल में अनेक पत्र/पत्रिकाओं का सम्पादन किया और अपनी सम्पादकीय टिप्पणियों द्वारा जनमानस को सचेत एवं जागरुक किया। इन टिप्पणियों में अनेक ऐसी टिप्पणियाँ हैं जिनकी सार्थकता पहले की अपेक्षा आज और अधिक बढ़ गयी हैं। पत्रकारिता के क्षेत्र में महामना के योगदान पर कुछ कार्य जरूर हुए हैं लेकिन अभी भी उनका सम्यक मूल्यांकन नहीं हो सका है। उनके द्वारा सम्पादित पत्र/पत्रिकाओं के गहन चिंतन एवं सूक्ष्म विश्लेषण की आज भी महती आवश्यकता है।

संदर्भ

1. सनातन धर्म, काशी मि0, आश्विन शुक्ल 2, गुरुवार, सं0 1990 वि. ता0 21 सितम्बर सन् 1933 ई0, अंक 10
2. अभ्युदय, मार्गशीर्ष, कृष्ण 2 सं0 1964
3. सनातन धर्म, काशी मि0, आश्विन शुक्ल 2, शुक्रवार, सं0 1990 वि. ता0 21 सितम्बर सन् 1933 ई0, अंक 10
4. वही
5. सनातन धर्म, काशी मि0, श्रावण शुक्ल 5, गुरुवार, सं0 1990 वि. ता0 27 जुलाई सन् 1933 ई0, अंक 2
6. सनातन धर्म, भाद्रपद कृष्ण 5 गुरुवार, सं0 1990 वि0, पृ0 3, शीर्षक- 'मेरे तो कृष्ण प्राण हैं'
7. मार्गशीर्ष, कृष्ण 9 सप्तमी सं0 1964
8. अभ्युदय, फाल्गुन, शुक्ल, त्रयोदशी, सं0 1963, शीर्षक- 'हिन्दू-मुसलमानों में एकता'

◆

महामना का आयुर्वेद प्रेम एवं ऋतुचर्या

(स्वस्थ-रक्षण का विज्ञान)

प्रो0 विनोद कुमार जोशी *

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक युगद्रष्टा पं0 मदन मोहन मालवीय जी, जो स्वयं भारतीय संस्कृति के संवाहक थे, उनका जीवन-दर्शन, इससे प्रत्यक्ष रूप से मन-वाणी-कर्म से ओत-प्रोत था। उनकी अभिलाषा थी कि भारतीय जीवन-दर्शन जो विभिन्न रूप में संस्कृति के माध्यम से परिलक्षित हो रही है उसका, समुचित विकास एवं विस्तार प्राणी जगत के कल्याणार्थ हो।

इसी विचार के साथ सन् 1927 में उन्होंने आयुर्वेद में स्नातक पाठ्यक्रम प्रारम्भ कराया। मालवीय जी आयुर्वेद में वर्णित सिद्धान्तों के अनुरूप जीवन-यापन करते थे। वे स्वयं ब्रह्ममुहूर्त्त में नित्य उठकर आयुर्वेद में वर्णित दिनचर्या का पालन करते थे और **ऋतुचर्या के माध्यम से स्वयं को स्वस्थ्य बनाये रखते थे।** यहाँ पर यह उल्लेख करना समीचीन होगा कि आयुर्वेद के मौलिक ग्रन्थों में, स्वस्थ जीवन यापन हेतु सिद्धान्तों के, विचार विनिमय हेतु मालवीय जी की अध्यक्षता में चतुर्दिवसीय राष्ट्रीय सम्मेलन काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में दिनांक 2 से 5 नवम्बर 1935 को आयोजित किया गया। सम्मेलन का मुख्य विषय था—पंचभूत-त्रिदोष चर्चा जिसमें प्राच्य विद्या एवं प्रतीच्य विज्ञान के मूर्धन्य विद्वान एकत्रित हुए (चित्र)।

ऋतुचर्या-ऋतु एवं चर्या दो शब्दों से मिलकर बना है। ऋतु का अर्थ निश्चित समयावधि या निर्धारित समय और चर्या का अर्थ भ्रमण/चलना। अर्थात् निश्चित समयावधि के अनुसार चलना। स्वस्थ रक्षण से तात्पर्य है, प्राकृतिक अवस्था में बने रहना। इस कलेण्डर के माध्यम से यह इंगित किया गया है कि स्वस्थ अवस्था की रक्षा हेतु विभिन्न ऋतुओं में किस प्रकार का आहार-विहार अपनाया जाय जिससे मनुष्य आजीवन स्वस्थ बना रहे।

कलेण्डर, इन्द्रधनुष के सात रंगों को दृष्टिगत रखते हुए निर्मित किया गया है, सर्वप्रथम केन्द्र को एक वर्ष (संवत्सर) दर्शाया है। द्वितीय गोलक में उत्तरायन-दक्षिणायन काल में विभाजित किया है। तृतीय गोलक में उत्तरायन काल में समाविष्ट होने वाले तीन ऋतुओं को तथा दक्षिणायन काल में तीन ऋतुओं को सूर्य की गति के अनुसार दर्शाया गया है। चतुर्थ गोलक में प्रत्येक ऋतु में आने वाले मास द्वय को दर्शाया गया है। पीत वर्ण वाले गोलक में शुक्ल पक्ष एवं कृष्ण पक्ष को तथा नारंगी वर्ण में 15-15 दिवस की संख्या जो पक्ष द्वय को दर्शाया गया है। अन्त में रक्त वर्ण के गोलक से दिवस-रात्रि को दर्शाया गया है। इस प्रकार संवत्सर (एक वर्ष काल) के अन्तर्गत काल खण्ड को दर्शाया गया है।

आधुनिक युग में विज्ञान के माध्यम से इसका महत्व अब क्रमशः समझ में आने लगा है। चिकित्सा-वैज्ञानिकों के मतानुसार किसी भी प्राणी (एक कोषीय या बहु कोषीय) को सुखी जीवन हेतु एक अच्छे पर्यावरण की आवश्यकता होती है।

ग्लैन्न और गिब्सन के अनुसार आहार का मुख्य कार्य शारीरिक क्रिया को सुचारू रूप से क्रियान्वयन करने हेतु पोषक तत्त्वों की आवश्यकता होती है। इसके आधार पर आहार एवं स्वास्थ्य पर अनुसन्धान से यह विदित हुआ कि आहार, मात्र पोषक तत्व ही नहीं प्रदान करते हैं अपितु अन्य महत्त्वपूर्ण कार्य करते हैं जिसे, ''फक्शनल फूड'' के नाम से जाना जाने लगा है। आहार प्रारम्भिक अवस्था से अन्तिम परिणति तक 'गट् फ्लोरा' को प्रभावित करता है। गट् से तात्पर्य, मुख से लेकर आन्त्रनलिका के अन्तिम भाग गुदा तक है। तथा फ्लोरा से उसमें निवास करने वाले सूक्ष्म जीवाणुओं से है।

आधुनिक चिकित्सा वैज्ञानिकों का मत है कि मानव शरीर 100 ट्रिलियन कोषों से निर्मित है और उसके गट में 1000 ट्रिलियन सूक्ष्म जीवाणु निवास करते हैं, अधिकांश सूक्ष्म जीवों का आज भी पता नहीं हो पाया है क्योंकि उनका कल्चर संभव नहीं है।

वस्तुतः इन जीवणुओं में परिवर्तन व्यक्ति विशेष के आहार पर निर्भर करता है, मुख्यतः ये दो प्रकार के होते हैं, शरीर के लिए हानिप्रद तथा लाभकारक। उपरोक्त विचार आयुर्वेद सम्मत ऋतुचर्या के माध्यम से स्वस्थ-जीवन रक्षण के उपाय को परिपुष्ट करता है। जिससे यह स्पष्ट होता है कि प्राचीन काल के ऋषियों को आहार-विहार से लाभ-हानि के विषय में ज्ञान था, जिसे उन्होंने ऋतुचर्या के माध्यम से स्वस्थ-दीर्घ जीवन हेतु आयुर्वेद के प्राचीन ग्रन्थों में समाविष्ट किया।

आयुर्वेद के मौलिक आधार ग्रन्थ-चरक संहिता एवं सुश्रुत संहिता में स्वस्थ-दीर्घ जीवन यापन हेतु ऋतु-चर्या के माध्यम से मार्ग निर्दिष्ट किया गया है। जो वर्षों तक प्राचीन-काल से मध्य-काल तक जन-जन में व्याप्त था। मध्यकाल के पश्चात् आधुनिक-काल में इस अमूल्य-ज्ञान का तीव्र गति से क्षरण हो गया। इसकी श्रेष्ठता की अनुभूति आंग्ल भाषी ब्रितानी सरकार को भी थी, इसीलिए उन्होंने भारतीय संस्कृति को समाप्त करने हेतु हमारे देश में जनवरी से दिसम्बर तक का 12 महीने वाला कलेण्डर प्रचलित किया, परिणामतः ऋतुचर्या के माध्यम से स्वस्थ रक्षण ज्ञान धीरे-धीरे लुप्त हो गया।

* पूर्व संकायप्रमुख, आयुर्वेद संकाय; विभागाध्यक्ष, द्रव्यगुण विभाग, आयुर्वेद संकाय, चिकित्सा विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

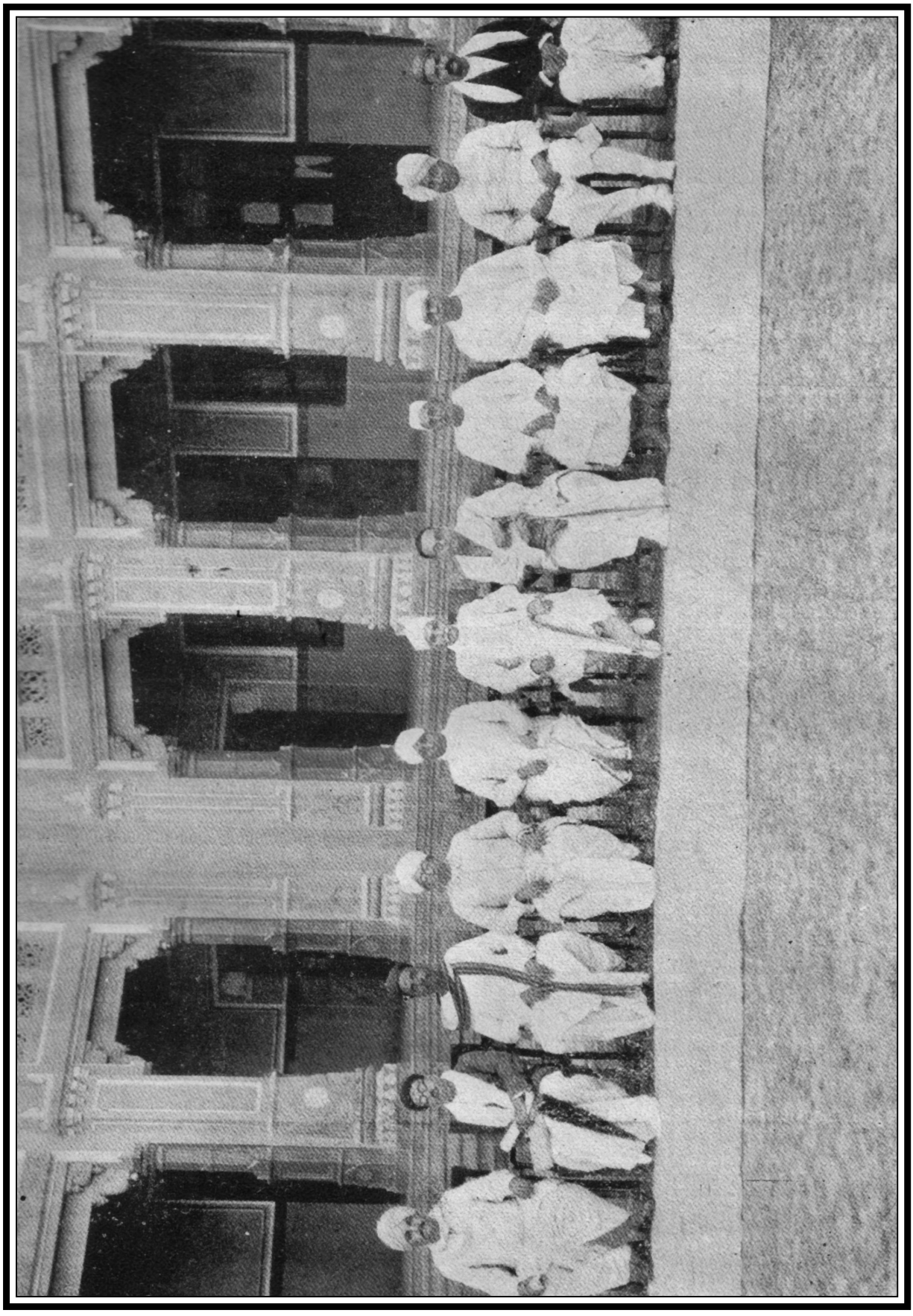

काशीकी पंचमहाभूत और त्रिदोषपरिषत् के समय लिया हुआ चित्र

बायीं ओर से 1-पं0 जगन्नाथप्रसाद वाजपेयी, 2-वै0 वामनशास्त्री दातार, 3-वै0 पं0 कृष्णशास्त्री कवडे, 4-वै0 जादवजी आचार्य, 5-के0 जी0 श्रीनिवासमूर्ति, 6-पं0 मदनमोहनमालवीयजी, 7-म0 म0 क0 गणनाथसेनजी, 8-पं0 व्रजविहारी चतुर्वेदी, 9-आ0 मा0 लक्ष्मीरामजी स्वामी, 10-क0 प्रतापसिंहजी, 11-वै0 त्र्यंबकशास्त्री आपटे।

ऋतुचर्या : स्वस्थ-रक्षण का विज्ञान

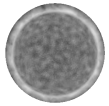

उत्तरायन

उत्तरायन (आदान) काल में शिशिर– वसन्त–ग्रीष्म ऋतु सम्मिलित हैं। यह समय क्रमशः अग्निगुण प्रधान होता हैं जिसके कारण पृथ्वी में स्थावर (वनस्पति जगत्) एवं जङ्गम (प्राणि जगत्) के शरीर से स्नेह अंश का क्रमशः अधिकाधिक शोषण होता है, परिणामतः देह (शरीर) में बलक्षय होता है। ग्रीष्म काल में स्नेह अंश का शोषण अधिक होता है क्योंकि पृथ्वी में सूर्य की प्रखर किरणों के कारण उष्णता की वृद्धि के साथ-साथ वायु (वात) की रूक्षता भी होती है। प्रखर सूर्य की किरणों तथा वायु की रूक्षता से स्नेह अंश का शोषण द्विगुणित हो जाता है, जिसके कारण प्राणि अत्याधिक थकान का अनुभव करता है, जिससे कार्य करने की क्षमता घट जाती है।

शीतांशुः क्लेदयत्युर्वी विवस्वान् शोषयत्यपि।
तावुभावपि संश्रित्य वायुः पालयति प्रजाः॥
(सुश्रुत संहिता)

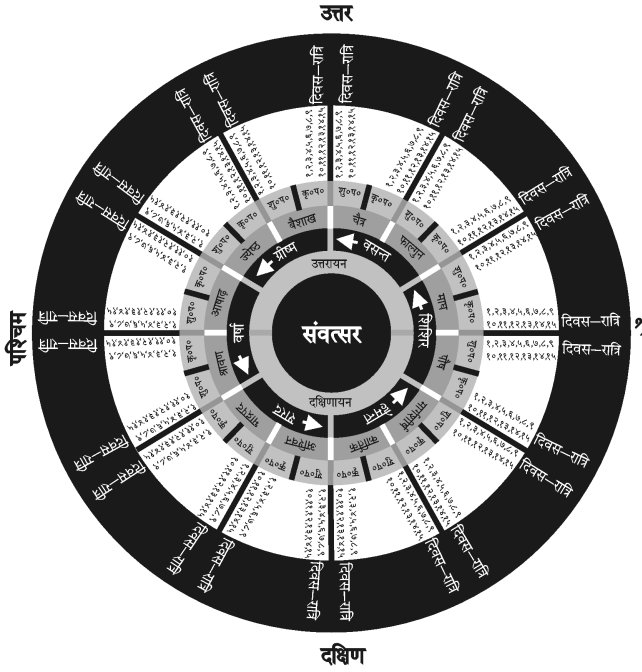

दक्षिणायन

दक्षिणायन (विसर्ग) काल में वर्षा-शरद-हेमन्त ऋतु सम्मिलित हैं। यह समय क्रशमः सोमगुण प्रधान होता है, जिसके कारण पृथ्वी में स्थावर (वनस्पति जगत) एरां जङ्गम (प्राणि जगत) के शरीर में स्नेह अंश की क्रमशः वृद्धि होती है। परिणामतः देह (शरीर) में बल वृद्धि होती है। हेमन्त ऋतु में बलाधिक्य होता है। इस काल में प्राणि स्वयं को शक्ति-सामर्थ्य युक्त अनुभव करता है, जिससे कार्य करने की क्षमता बढ़ जाती है।

चन्द्रमा अपने सोम गुणों से पृथ्वी को पुष्ट करता है और सूर्य आग्नेय गुणों से शोषण करता है। तथा वायु दोनों का आश्रय लेकर प्रजा का पालन करती है।

सृष्टि का प्रारम्भ चैत्र शुक्लपक्ष प्रतिपदा से मान्य है। उसी दिन से वासन्तिक नवरात्र आरम्भ होते हैं। नौ दिन तक सर्वेश्वरी के नौ रूपों की पूजा की जाती है, जिससे वर्ष पर्यन्त गृह, राज्य एवं देश में सुख-समृद्धि की वृद्धि हो और सभी स्वस्थ बने रहें।

वसन्त ऋतु (चैत्र-वैशाख)

ऋतु वर्णन	-	तलय गिरि (दक्षिण दिशा) से वायु चलती है, निर्मल वातावरण होता है। पलाश, कमल, आम के वृक्ष, कलियों तथा पुष्पों से शोभित होते हैं।
शरीर पर प्रभाव	-	दोष - कफ का प्रकोप बल - मध्यम अग्नि - मन्द
पथ्य (हितकर) आहार	-	पुराना जौ, गेहूँ, मूँग, मधु आदि आहारद्रव्य, शुण्ठी (सौंठ) का पकाया जल पीना चाहिए।
पथ्य (हितकर) विहार	-	व्यायाम करना चाहिए तथा उष्ण जल से स्नान करना चाहिए।
अपथ्य (अहितकर) आहार	-	मधुर रस वाले द्रव्य, गुरु (देर में पचता है) तथा स्निग्ध (चिकना) गुण वाले द्रव्यों का सेवन नहीं करना चाहिए।
अपथ्य (अहितकर) विहार	-	दिवाशयन (दिन में सोना)
ऋतु जनित सामान्य व्याधियाँ	-	कास, मन्दाग्नि (भूख न लगना), अजीर्ण (भोजन का न पचना)
निर्देशित संशोधन	-	वमन, शिरोविरेचन, निरूह बस्ति।

चैत्रशुक्लपक्षः (23 मार्च से 6 अप्रैल 2012)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
: चन्द्रमा की कला प्रतिपदाः तिथि 1 : दिनांक		चन्द्रवार (सोमवार) सूर्यवार (रविवार)		प्रतिपदा 23	द्वितीया 24	तृतीया 25
चतुर्थी 26	पंचमी 27	षष्ठी 28	षष्ठी 29	सप्तमी 30	अष्टमी 31	नवमी 1
दशमी 2	एकादशी 3	द्वादशी 4	चतुर्दशी 5	पूर्णिमा 6		

वैशाखकृष्णपक्षः (7-21 अप्रैल 2012)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
					प्रतिपदा 7	द्वितीया 8
तृतीया 9	चतुर्थी 10	पंचमी 11	षष्ठी 12	सप्तमी 13	अष्टमी 14	नवमी 15
दशमी 16	एकादशी 17	द्वादशी 18	त्रयोदशी 19	चतुर्दशी 20	अमावस्या 21	

वैशाखशुक्लपक्षः (22 अप्रैल से 6 मई 2012)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
						प्रतिपदा 22
द्वितीया 23	तृतीया 24	चतुर्थी 25	पंचमी 26	षष्ठी 27	सप्तमी 28	अष्टमी 29
नवमी 30	दशमी 1	एकादशी 2	द्वादशी 3	त्रयोदशी 4	चतुर्दशी 5	पूर्णिमा 6

रस	आहार द्रव्य का उदाहरण
मधुर (मीठा) -	गोधूम (गेहूँ), आम्र (पक्व), खर्जूर (खजूर), गुड़, अनार आदि।
अम्ल (खट्टा) -	निम्बू (नीबू), नारंगी, अम्लिका (इमली), अपक्व आम्र फल आदि।
लवण (नमकीन) -	सैन्धव, सामुद्र, सौवार्चल, विड आदि।
कटु (तीखा) -	रसोन (लहसुन), मरिच (काली मिर्च), शुण्ठी (सोंठ) आदि।
तिक्त (कड़ुवा) -	करेला, निम्ब (नीम), मेथी आदि।
कषाय (कषैला) -	खदिर (कत्था), जामुन बीज, सहजन फली आदि।

ग्रीष्म ऋतु (ज्येष्ठ आषाढ़)

ज्येष्ठ कृष्णपक्षः (7-20 मई 2012)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
प्रतिपदा 7	तृतीया 8	चतुर्थी 9	पंचमी 10	षष्ठी 11	सप्तमी 12	अष्टमी 13
नवमी 14	दशमी 15	एकादशी 16	द्वादशी 17	त्रयोदशी 18	चतुर्दशी 19	अमावस्या 20

ज्येष्ठ शुक्लपक्षः (21 मई से 4 जून 2012)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
प्रतिपदा 21	प्रतिपदा 22	द्वितीया 23	तृतीया 24	चतुर्थी 25	पंचमी 26	षष्ठी 27
सप्तमी 28	अष्टमी 29	नवमी 30	दशमी 31	द्वादशी 1	त्रयोदशी 2	चतुर्दशी 3
पूर्णिमा 4						

आषाढ़ कृष्णपक्षः (5-19 जून 2012)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
	प्रतिपदा 5	द्वितीया 6	तृतीया 7	चतुर्थी 8	पंचमी 9	षष्ठी 10
सप्तमी 11	अष्टमी 12	नवमी 13	दशमी 14	एकादशी 15	द्वादशी 16	त्रयोदशी 17
चतुर्दशी 18	अमावस्या 19					

आषाढ़ शुक्लपक्षः (20 जून से 3 जुलाई 2012)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
		प्रतिपदा 20	द्वितीया 21	तृतीया 22	चतुर्थी 23	पंचमी 24
षष्ठी 25	सप्तमी 26	अष्टमी 27	नवमी 28	दशमी 29	एकादशी 30	द्वादशी 1
चतुर्दशी 2	पूर्णिमा 3					

ऋतु वर्णन	-	सूर्य का ताप तीव्र, नैऋत कोण की असुखकर वायु का प्रवाह, गर्मी के कारण भूमि में तपन, नदियों में अल्प जल से मन्द प्रवाह। तृण, लता, गुल्म आदि पादपों का पर्ण विहीन होकर अधः पतन होना, वायु का चक्रवत भ्रमण।
शरीर का प्रभाव	-	दोष - वात का संचय बल - क्षय अग्नि - विषम
पथ्य (हितकर) आहार	-	शीत, घृतयुक्त, मधुर द्रव्य, द्रव, शर्करायुक्त मन्थ (सत्तू)।
पथ्य (हितकर) विहार	-	रात्रि में चन्द्रमा की शीतल किरणों में शयन, मस्तक पर चन्दन का लेप, हल्के वस्त्र पहनना।
अपथ्य (अहितकर) आहार	-	मद्य (मदिरा), लवण, अम्ल, कटु, उष्ण रस वाले द्रव्य।
अपथ्य (अहितकर) विहार	-	व्यायाम
ऋतु जनित सामान्य व्याधि	-	शारीरिक दौर्बल्यता।

वर्षा ऋतु (श्रावण-भाद्रपद)

श्रावण कृष्णपक्षः (4-19 जुलाई 2012)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
		प्रतिपदा 4	द्वितीया 5	तृतीया 6	चतुर्थी 7	पंचमी 8
षष्ठी 9	सप्तमी 10	अष्टमी 11	नवमी 12	दशमी 13	एकादशी 14	द्वादशी 15
त्रयोदशी 16	त्रयोदशी 17	चतुर्दशी 18	अमावस्या 19			

श्रावण शुक्लपक्षः (20 जुलाई से 3 अगस्त 2012)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
				प्रतिपदा 20	द्वितीया 21	तृतीया 22
चतुर्थी 23	पंचमी 24	सप्तमी 25	अष्टमी 26	नवमी 27	दशमी 28	एकादशी 29
द्वादशी 30	त्रयोदशी 31	चतुर्दशी 1	पूर्णिमा 2			

भाद्रपद कृष्णपक्षः (3-17 अगस्त 2012)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
				प्रतिपदा 3	द्वितीया 4	तृतीया 5
चतुर्थी 6	पंचमी 7	षष्ठी 8	सप्तमी 9	अष्टमी 10	नवमी 11	दशमी 12
एकादशी 13	द्वादशी 14	त्रयोदशी 15	चतुर्दशी 16	अमावस्या 17		

भाद्रपद शुक्लपक्षः (18-31 अगस्त 2012)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
					प्रतिपदा 18	द्वितीया 19
तृतीया 20	चतुर्थी 21	पंचमी 22	षष्ठी 23	सप्तमी 24	अष्टमी 25	दशमी 26
एकादशी 27	द्वादशी 28	त्रयोदशी 29	चतुर्दशी 30	पूर्णिमा 31		

ऋतु वर्णन	-	नदियाँ जल से पूर्ण, सरोवर कमल से शोभित, पृथ्वी अनेक प्रकार की वनस्पतियों से शोभित।
शरीर पर प्रभाव	-	दोष - वात का प्रकोप बल - अल्प अग्नि - मन्द
पथ्य (हितकर) आहार	-	वात शमन के लिये स्निग्धोष्ण द्रव्यों का प्रयोग, जौ, गेहूँ, पुराना अन्न, शृतशीत (उबालकर ठंडा किया) जल।
पथ्य (हितकर) विहार	-	सुखोष्ण जल से स्नान, अल्प व्यायाम।
अपथ्य (अहितकर) आहार	-	अधिक जल पीना, शीतल आहार का सेवन, नवीन अन्न का सेवन।
अपथ्य (हितकर) विहार	-	दिवाशयन (दिन में सोना) आतप (धूप) सेवन।
ऋतु जनित सामान्य व्याधियाँ	-	वातव्याधि की प्रधानता, आमवात, श्वास आदि रोगों की वृद्धि।
निर्देशित संशोधन	-	अभ्यंग, शिरोबस्ति, शिरोअल्यंग, पिण्डस्वेद एरां बस्ति।

वर्षा (भाद्रपद), शरद ऋतु (अश्विन-कार्तिक)

अधिक भाद्रपदकृष्णपक्षः (1-16 सितम्बर 2012)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
					प्रतिपदा 1	द्वितीया 2
तृतीया 3	चतुर्थी 4	पंचमी 5	षष्ठी 6	सप्तमी 7	अष्टमी 8	नवमी 9
नवमी 10	दशमी 11	एकादशी 12	द्वादशी 13	त्रयोदशी 14	चतुर्दशी 15	अमावस्या 16

शुद्ध भाद्रपदशुक्लपक्षः (17-30 सितम्बर 2012)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
प्रतिपदा 17	तृतीया 18	चतुर्थी 19	पंचमी 20	षष्ठी 21	सप्तमी 22	अष्टमी 23
नवमी 24	दशमी 25	एकादशी 26	द्वादशी 27	त्रयोदशी 28	चतुर्दशी 29	पूर्णिमा 30

अश्विन कृष्णपक्षः (1-15 अक्टूबर 2012)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
प्रतिपदा 1	द्वितीया 2	तृतीया 3	चतुर्थी 4	पंचमी 5	षष्ठी 6	सप्तमी 7
अष्टमी 8	नवमी 9	दशमी 10	एकादशी 11	द्वादशी 12	त्रयोदशी 13	चतुर्दशी 14
अमावस्या 15						

अश्विन शुक्लपक्षः (16-29 अक्टूबर 2012)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
	प्रतिपदा 16	द्वितीया 17	तृतीया 18	चतुर्थी 19	पंचमी 20	सप्तमी 21
अष्टमी 22	नवमी 23	दशमी 24	एकादशी 25	द्वादशी 26	त्रयोदशी 27	चतुर्दशी 28
पूर्णिमा 29						

ऋतु वर्णन	-	सूर्य उष्णा कपिल पिंगल वर्ण का होता है, आकाश निर्मल एवं सफेद रंग के बादलों से युक्त।
शरीर पर प्रभाव	-	दोष - पित्त का प्रकोप
		बल - मध्यम
		अग्नि - मध्यम
पथ्य (हितकर) आहार	-	मधुर, तिक्त रस युक्त द्रव्य, लघु, शीत, यव (जौ), गेहूँ, मुद्ग, दुग्ध, इक्षु (गन्ना) का सेवन।
पथ्य (हितकर) विहार	-	रात्रि में चन्द्रमा की किरणों का सेवन, हल्के वस्त्रों का धारण, चन्दन लगाना।
अपथ्य (अहितकर) आहार	-	दधि (दही), तैल, अम्ल, उष्ण, तीक्ष्ण, लवण।
अपथ्य (अहितकर) विहार	-	धूप का सेवन, दिवाशयन (दिन में सोना), रात्रि जागरण।
निर्देशित संशोधन	-	विरेचन, रक्तमोक्षण

शरद (कार्तिक), हेमन्त ऋतु (मार्गशीर्ष-पौष)

कार्तिक कृष्णपक्षः (30 अक्टूबर से 13 नवम्बर 2012)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
	प्रतिपदा 30	द्वितीया 31	तृतीया 1	चतुर्थी 2	चतुर्थी 3	पंचमी 4
षष्ठी 5	सप्तमी 6	अष्टमी 7	नवमी 8	दशमी 9	एकादशी 10	द्वादशी 11
त्रयोदशी 12	अमावस्या 13					

कार्तिक शुक्लपक्षः (14-28 नवम्बर 2012)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
		प्रतिपदा 14	द्वितीया 15	तृतीया 16	चतुर्थी 17	पंचमी 18
षष्ठी 19	सप्तमी 20	अष्टमी 21	नवमी 22	दशमी 23	एकादशी 24	द्वादशी 25
त्रयोदशी 26	चतुर्दशी 27	पूर्णिमा 28				

मार्गशीर्ष कृष्णपक्षः (29 नवम्बर से 13 दिसम्बर 2012)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
			प्रतिपदा 29	द्वितीया 30	तृतीया 1	चतुर्थी 2
पंचमी 3	षष्ठी 4	सप्तमी 5	अष्टमी 6	नवमी 7	दशमी 8	एकादशी 9
द्वादशी 10	त्रयोदशी 11	चतुर्दशी 12	अमावस्या 13			

मार्गशीर्ष शुक्लपक्षः (14-28 दिसम्बर 2012)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
				प्रतिपदा 14	द्वितीया 15	तृतीया 16
पंचमी 17	षष्ठी 18	सप्तमी 19	अष्टमी 20	नवमी 21	दशमी 22	एकादशी 23
द्वादशी 24	द्वादशी 25	त्रयोदशी 26	चतुर्दशी 27	पूर्णिमा 28		

ऋतु वर्णन	-	उत्तर दिशा की शीतल वायु चलती है, कभी-कभी धुन्ध एवं कोहरा।
शरीर पर प्रभाव	-	दोष - श्लेष्मा का संचय, पित्त का उपशम। बल - श्रेष्ठ अग्नि - तीव्र
पथ्य (हितकर) आहार	-	स्निग्ध, तिल, माष (उरद), दधि (दही), इक्षुविकृति (गुड़ शर्करा)
पथ्य (हितकर) विहार	-	उष्ण जल से स्नान, अभ्यंग, स्निग्ध पदार्थों से उबटन, धूप का सेवन, गर्म गृह में निवास।
अपथ्य (अहितकर) आहार	-	लघु, वातवर्धकअन्न, उदमन्थ (सत्तू + जल), अल्प भोजन।
अपथ्य (अहितकर) विहार	-	दिवाशयन (दिन में सोना)।
ऋतु जनित सामान्य व्याधियाँ	-	कफज व्याधियाँ, मेदो वृद्धि।
निर्देशित संशोधन	-	जेन्ताक स्वेदन।

हमेन्त (पौष), शिशिर ऋतु (माघ-फाल्गुन)

पौष कृष्णपक्षः (29 दिसम्बर से 11 जनवरी 2013)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
					प्रतिपदा 29	द्वितीया 30
तृतीया 31	चतुर्थी 1	पंचमी 2	षष्ठी 3	सप्तमी 4	अष्टमी 5	नवमी 6
दशमी 7	एकादशी 8	द्वादशी 9	चतुर्दशी 10	अमावस्या 11		

पौष शुक्लपक्षः (12-27 जनवरी 2013)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
					प्रतिपदा 12	द्वितीया 13
तृतीया 14	चतुर्थी 15	पंचमी 16	षष्ठी 17	सप्तमी 18	अष्टमी 19	नवमी 20
दशमी 21	एकादशी 22	द्वादशी 23	त्रयोदशी 24	चतुर्दशी 25	चतुर्दशी 26	पूर्णिमा 27

माघ कृष्णपक्षः (28 जनवरी से 10 फरवरी 2013)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
प्रतिपदा 28	द्वितीया 29	तृतीया 30	चतुर्थी 31	पंचमी 1	षष्ठी 2	अष्टमी 3
नवमी 4	दशमी 5	एकादशी 6	द्वादशी 7	त्रयोदशी 8	चतुर्दशी 9	अमावस्या 10

माघ शुक्लपक्षः (11-25 फरवरी 2013)

चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
प्रतिपदा 11	द्वितीया 12	तृतीया 13	चतुर्थी 14	पंचमी 15	षष्ठी 16	सप्तमी 17
अष्टमी 18	नवमी 19	दशमी 20	एकादशी 21	द्वादशी 22	त्रयोदशी 23	चतुर्दशी 24
पूर्णिमा 25						

ऋतु वर्णन	-	शीत अधिक, दिशाएँ वायु और कभी-कभी वर्षा से व्याप्त।
शरीर पर प्रभाव	-	दोष - कफ संचय
		बल - श्रेष्ठ
		अग्नि - तीव्र
पथ्य (हितकर) आहार	-	स्निग्ध, अम्ल, लवण रस युक्त भोज्य पदार्थ, मधु (शहद), दूध और उससे बने पदार्थ, गरम जल तथा इक्षु विकार (गन्ने से बने पदार्थ-गुड़, राब आदि)।
पथ्य (हितकर) विहार	-	तैल अभ्यंग, धूप का सेवन, उष्ण गृह में निवास।
अपथ्य (अहितकर) आहार	-	कटु, तिक्त, कषाय रस युक्त द्रव्य, वातकारक, लघु, शीतल अन्नपान।
अपथ्य (अहितकर) विहार	-	शीतल जल से स्नान, दिवाशयन (दिन में सोना)।

शिशिर (फाल्गुन), वसन्त ऋतु (चैत्र)

फाल्गुन कृष्णपक्षः (26 फरवरी से 11 मार्च 2013)						
चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
	प्रतिपदा 26	द्वितीया 27	तृतीया 28	चतुर्थी 1	पंचमी 2	षष्ठी 3
सप्तमी 4	अष्टमी 5	नवमी 6	दशमी 7	एकादशी 8	त्रयोदशी 9	चतुर्दशी 10
अमावस्या 11						

फाल्गुन शुक्लपक्षः (12-27 मार्च 2013)						
चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
	प्रतिपदा 12	द्वितीया 13	तृतीया 14	चतुर्थी 15	पंचमी 16	षष्ठी 17
सप्तमी 18	सप्तमी 19	अष्टमी 20	नवमी 21	दशमी 22	एकादशी 23	द्वादशी 24
त्रयोदशी 25	चतुर्दशी 26	पूर्णिमा 27				

चैत्र कृष्णपक्षः (28 मार्च से 10 अप्रैल 2013)						
चन्द्रवार	मंगलवार	बुधवार	बृहस्पतिवार	शुक्रवार	शनिवार	सूर्यवार
			प्रतिपदा 28	द्वितीया 29	तृतीया 30	चतुर्थी 31
पंचमी 1	सप्तमी 2	अष्टमी 3	नवमी 4	दशमी 5	एकादशी 6	द्वादशी 7
त्रयोदशी 8	चतुर्दशी 9	अमावस्या 10				

ऋतु वर्णन	-	तलय गिरि (दक्षिण दिशा) से वायु चलती है, निर्मल वातावरण होता है। पलाश, कमल, आम के वृक्ष, कलियों तथा पुष्पों से शोभित होते हैं।
शरीर पर प्रभाव	-	दोष - कफ का प्रकोप बल - मध्यम अग्नि - मन्द
पथ्य (हितकर) आहार	-	पुराना जौ, गेहूँ, मूँग, मधु आदि आहारद्रव्य, शुण्ठी (सौंठ) का पकाया जल पीना चाहिए।
पथ्य (हितकर) विहार	-	व्यायाम करना चाहिए तथा उष्ण जल से स्नान करना चाहिए।
अपथ्य (अहितकर) आहार	-	मधुर रस वाले द्रव्य, गुरु (देर में पचता है) तथा स्निग्ध (चिकना) गुण वाले द्रव्यों का सेवन नहीं करना चाहिए।
अपथ्य (अहितकर) विहार	-	दिवाशयन (दिन में सोना)
ऋतु जनित सामान्य व्याधियाँ	-	कास, मन्दागिन (भूख न लगना), अजीर्ण (भोजन का न पचना)
निर्देशित संशोधन	-	वमन, शिरोविरेचन, निरूह बस्ति।

त्रिविध आहार एवं उसका प्रभाव

सात्विकः - मधुर रस, स्निग्ध (चिकने), लघु हृद्य (मन को प्रिय) आहार- आयु, बुद्धि, बल एरां आरोग्य प्रद होता है।

राजसिकः - कटु, अम्ल, लवण, अति-उष्ण (गर्म), तीक्ष्ण (तीखा), रूक्ष (रूखा), विदाहि (दाहकारक) आहार-दुःख, शोक (चिन्ता) और रोग प्रद होता है।

तामसिकः - अर्द्धपक्व (आधा पका), गतरस (स्वाद विहीन), पूति (दुर्गन्ध-युक्त) और पर्युषित (बासी), उच्छिष्ट (खाने के पश्चात् बचा अन्न)- बुद्धि, बल एवं आयु का क्षय करता है।

भविष्यद्रष्टा महामना जी एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में सिरामिक अभियान्त्रिकी शिक्षा का विकास

आचार्य देवेन्द्र कुमार *

मृतिका शिल्प व काँच उद्योग, अनेक अति प्राचीन उद्योगों में से कतिपय बहुत ही महत्त्वपूर्ण उद्योग हैं। लगभग दस हजार वर्षों से मानव सभ्यता के विकास में इन उद्योगों का महत्वपूर्ण योगदान है। आधुनिक युग में सिरामिक व काँच अभियान्त्रिकी विषय ने बहुत प्रगति की है तथा उच्चकोटि के नवीनतम सिरामिक तथा काँचीय पदार्थ अन्य अभियान्त्रिकियों की प्रगति में महत्वपूर्ण योगदान दे रहे हैं। सिरामिक व काँच पदार्थों के विकास के बिना वर्तमान औद्योगिक विकास अधूरा ही रह जाता।

महामना पं0 मदनमोहन मालवीय जी ने एक भविष्यद्रष्टा के रूप में व एक दूरगामी परिकल्पना के आधार पर, 20वीं सदी के प्रारम्भ में भारतीय शिक्षा व ज्ञान के विकास के लिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय को गढ़ना प्रारम्भ कर दिया था। प्राची व प्रतीचि विद्याओं के सह विकास के लिए उन्होंने विश्वविद्यालय में एक के पश्चात एक उच्च शिक्षा व ज्ञान के आदर्श विद्यालयों व विभागों की स्थापना का कार्य प्रारम्भ कर दिया था। उन्होंने देश व विदेश के अनेक ख्यातिप्राप्त कर्मठ मनीषियों को इन विद्यालयों को उत्कर्ष तक पहुँचाने की बागडोर सौंपी। यह माना जा सकता है कि ये विद्यालय काशी की उत्तरवाहिनी गंगा माँ की माला की लड़ियों के मोती हैं, जिनके मध्य में काशी विश्वनाथ मंदिर सुघोषमणि के रूप में शोभायमान है। माला के एक छोर पर चिकित्सा विज्ञान संस्थान, दूसरे छोर पर प्रौद्योगिकी संस्थान व हृदय देश में विज्ञान, कला, संगीत, संस्कृत, धर्म विद्या इत्यादि मोती सदृश संकाय स्थित हैं।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय अपनी स्थापना के सौ वर्ष पूर्ण करने जा रहा है। यहाँ के हर संस्थान, संकाय व विभाग की एक कहानी है। प्रत्येक संस्थान, संकाय व विभाग को अनेक मनीषियों ने अपने ज्ञान व कड़ी मेहनत से मालवीय जी की परिकल्पनाओं के अनुरूप गढ़ने व उत्कर्ष की ओर ले जाने का प्रयत्न किया। परन्तु कालचक्र हमेशा समान नहीं रहता है, कभी वैभव काल आता है तथा ख्याति का डंका विश्व में गूँजता है तथा कभी पराभव काल आता है तब हम गुमनामी की ओर अग्रसर होते हैं। वैभव के बाद पराभव तथा पराभव के बाद वैभव काल के आने-जाने से कहानी बनती है, जिनके सहारे से आगे आने वाली पीढ़ी इतिहास को समझकर कहानी की कड़ियों को जोड़ने का प्रयास करती है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की कहानी को समझने की कड़ी के रूप में मैं प्रौद्योगिकी संस्थान वर्तमान में भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान के सिरामिक अभियान्त्रिकी विभाग की कहानी, उसके वैभव काल, उसके पराभव काल, उसके पुनर्जागरण को समझने का प्रयास तथा आगे आने वाले काल में पं0 मदन मोहन मालवीय जी की परिकल्पनाओं को वर्तमान काल के अनुरूप ढालकर विभाग को विकास व उत्कृष्टता की ओर ले जाने की विचारधारा को इस लेख में प्रस्तुत कर रहा हूँ। सर्वप्रथम सिरामिक विज्ञान, प्रौद्योगिकी व अभियान्त्रिकी विषय व उसके आयामों को प्रतीची व प्राची काल के परिप्रेक्ष्य में समझना आवश्यक है, तभी हम मालवीय जी की काशी हिन्दू विश्वविद्यालय परिकल्पनाओं को वर्तमान काल के अनुरूप परिभाषित कर पायेंगे।

सिरामिक विज्ञान, प्रौद्योगिकी, अभियान्त्रिकी व कला

प्राचीन ऐतिहासिक काल में मानव सभ्यता के विकास के अन्तर्गत जब मानव सभ्यता जंगलों से सामाजिक परिवेश के रूप में रूपान्तरित हुई तो सर्वप्रथम खेती द्वारा अन्न उत्पादन, उपजाये हुए अन्न का भण्डारण व अग्नि द्वारा खाद्यान्न को पकाने की कला का विकास हुआ। अन्न के भण्डारण, पकाने व सेवन के लिये सर्वसुलभ जो उपकरण मानव ने विकसित किये वो मिट्टी के बने हुए थे। खाद्यान्न पकाने के साथ-साथ मिट्टी को पका कर उनके बर्तनों को स्थायित्व देने की कला का विकास भी मानव ने कर लिया। इस प्रकार मिट्टी, चाक व अवा द्वारा कुम्भकारी कला का विकास हुआ होगा। मानव के कलाकारी स्वभाव के फलस्वरूप मिट्टी की वस्तुओं को कलात्मक रूप देने तथा उनको रंगने की कला का भी विकास हुआ। आज से लगभग दस हजार साल पहले इन्हीं रंगों के आकर्षण ने उसे ऐसे काँचीय ग्लेजों के आविष्कार का अवसर प्रदान किया, जिनका मिट्टी के बर्तनों पर लेप लगाकर आग में पकाने पर बर्तनों को आकर्षक चमकीले रंगों द्वारा कलात्मक रूप से रंगा जा सकता था। इस प्रकार पॉटरी कला का विकास हुआ, जो बाद में एक उद्योग धन्धे के रूप में विकसित हुई। पाटरी वस्तुएँ व कलाकृतियों पर ताप, वातावरण व रसायनों का प्रभाव नहीं के बराबर होता है, अतः ये सैकड़ों या हजारों वर्ष तक सुरक्षित रह सकते हैं। पाटरी का प्रकार, उसके बनाने में उपयुक्त मिट्टी, उसमें मिश्रित अवयवों, आकृति प्रदान करने वाली तथा पकाने की प्रक्रियाओं व ग्लेजों के चयन पर निर्भर करता है। भारतवर्ष में कुम्भकारी कला अति प्राचीन है, लेकिन पाटरी कला चीन अथवा मध्य एशियाई व यूरोपीय देशों जैसी प्राचीन नहीं है।

आग से संतप्त (पकी) हुई मिट्टी की विभिन्न आकारों की ईंटों का उपयोग गृह अथवा भवन निर्माण में प्राचीन काल से हो रहा है। सर्वप्रथम मिट्टी, फिर चूना व चूना मिश्रित पदार्थों से भवन निर्माण में ईंटों या पत्थरों की चिनाई का कार्य होता रहा है। वर्तमान में चूने पत्थर व अन्य कुछ प्रकार के पदार्थों के सम्मिश्रित पाउडर की क्लिंकरिंग कर तथा क्लिंकर को पीस कर सीमेन्ट बनाया जाता है। वर्तमान में सामान्यतया इसी सीमेन्ट में बालू मिलाकर ईंटों या पत्थर की चिनाई का कार्य होता है। सीमेन्ट, पत्थर व लोहे के छणों के मिश्रण से कंक्रीट का निर्माण होता है। कंक्रीट निर्मित स्लेब, स्तम्भ, छत आदि भवन की

* प्रोफेसर, सिरामिक अभियान्त्रिकी विभाग, भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी–221005

संरचना को मजबूती व स्थायित्व प्रदान करते हैं। सीमेन्ट व कंक्रीट प्रौद्योगिकी सिरामिक अभियान्त्रिकी का एक अभिन्न अंग है। पाटरी कला अथवा प्रौद्योगिकी का भवन निर्माण में एक अद्‌भुत व महत्वपूर्ण योगदान है– टाइल व सेनेटरी वेयर। टाइल व सेनेटरी वेयर भवन की सुन्दरता के साथ-साथ उसके टिकाऊपन व जल प्रबन्धन के लिए अत्यन्त उपयोगी है। आधुनिक शोध व विकास के माध्यम से इस प्रकार की प्रौद्योगिकी व अभियान्त्रिकी का विकास हो चुका है, जिसके माध्यम से बड़े आकार व उच्चकोटि की मजबूत, सुन्दर व कलात्मक टाइलों का उत्पादन व उपयोग हो रहा है।

कुछ सिरामिक पदार्थ अत्यन्त कड़े (Hard) होते हैं। इनको एब्रेसिव पदार्थ कहा जाता है। इनके कणों की माप के अनुसार इनके पावडर को वर्गीकृत किया जाता है। एब्रेसिव पावडर के कणों को किसी धातु या सिरामिक सतह पर रगड़ा जाता है तो उनकी सतह छिलती (Grind) है, अतः किसी वस्तु की असमतल सतह को समतल बनाने के कार्य में एब्रेसिव पदार्थों का उपयोग होता है। यदि एब्रेसिव पावडर के कण अति महीन (1 माइक्रान माप) से कम हो तो धातु, सिरामिक या काँच की वस्तु की सतह को इनकी सहायता से घिसने से सतह चमकीली हो जाती है। एब्रेसिव पदार्थों के कणों के लेप किये हुए कागज, कपड़े तथा व्हील भी बनाये जाते हैं, जिनका समान उपयोग होता है।

प्राचीन काल से ही यह ज्ञात हो गया था कि कुछेक सिरामिक पदार्थ अत्यन्त ही उष्म-सह होते हैं, अर्थात उच्च तापक्रम पर भी किसी प्रकार का आकार परिवर्तन नहीं होता है व गलते नहीं हैं। अनेक प्रकार के उद्योगों जैसे– लोह व स्टील, अलोह धातु, रासायनिक खाद, सीमेन्ट, सिरामिक, काँच, विद्युत, न्यूक्लियर उद्योगों को अपने उत्पादों की निर्माण प्रक्रियाओं को उच्च तापक्रम पर संचालित करना पड़ता है। इसके लिये उच्च तापक्रम पर संचालित होने वाले रिएक्टर व भट्ठियों का प्रयोग किया जाता है। ये रिएक्टर व भट्ठियाँ अपनी-अपनी कार्यानुरूप डिजाइन के अनुसार इन उष्म सह (Refractory) पदार्थों की ईंटों, कास्टेबुल तथा मोनोलिथ के द्वारा बनाये जाते हैं। बिना रिफ्रेक्टरी पदार्थों से निर्मित भट्ठियों या रिएक्टर के इन उद्योगों की कल्पना भी नहीं की जा सकती है।

मानवीय विकास के द्वारा उत्पादित रंगीन काँचीय ग्लेजों ने धीरे-धीरे काँच बनाने की प्रक्रियाओं को संवर्धित किया तथा काँच के बर्तनों और कलाकृतियों का उत्पादन प्रारम्भ हुआ। इस प्रकार विभिन्न देशों में वृहत स्तर पर काँच को गलाने व उसको फुलाकर विभिन्न आकर्षक रंग और रूप देकर वस्तुएँ बनाने के उद्योग धन्धों का विकास होता गया। पाटरी की वस्तुएँ व कलाकृतियों के साथ-साथ काँच से बनी वस्तुओं व कलाकृतियों का व्यापार भी बढ़ता गया। काँच को फुलाने के अतिरिक्त इसको तार के रूप में भी खींचा जा सकता है। काँच के तार खींचने की कला का सर्वप्रथम उपयोग सस्ती सर्वसुलभ आभूषण चूड़ियों को बनाने के लिए किया गया, जो धीरे-धीरे सोने, चाँदी, लाख, हाथी के दाँत से बनी चूड़ियों व कंगन का स्थान लेती गयी तथा चूड़ी पहनना अनेक देशों में परम्परा का अंग बन गया।

ईसा की प्रथम शताब्दी में काँच को समतल (Flat) रूप में उत्पादन का कार्य भी आरम्भ हो गया था, जिसने भवन निर्माण व सामाजिक परिवेश में क्रान्तिकारी परिवर्तन ला दिया। भवनों में खिड़कियों और झरोखों में रंगहीन व रंगीन काँच का उपयोग प्रारम्भ हुआ, जिससे भवनों की सुन्दरता में भी बढ़ोत्तरी हुई तथा भवनों के अन्दर सूर्य के प्रकाश की मात्रा में भी बढ़ोत्तरी हुई। 1600 ई0 से बीसवीं सदी के मध्य काल तक समतल काँच बनाने की प्रौद्योगिकी के विकास में धीरे-धीरे तीव्रता आती गयी। वर्तमान में फ्लोट प्रौद्योगिकी से बड़े से बड़े आकार का अति समतल मजबूत काँच का उत्पादन हो रहा है तथा भवनों, खासकर व्यवसायिक उपयोग के भवनों में समतल काँच के उपयोग का प्रतिशत अत्यन्त बढ़ गया है। समतल काँच का दूसरा क्रान्तिकारी सामाजिक परिवर्तन काँच के दर्पण के उत्पादन से प्रारम्भ हुआ। काँच के दर्पणों से पहले विशेष प्रक्रियाओं से धातुओं के बने दर्पण उपयोग होते थे, जो अधिक मूल्य के होने के कारण सर्वसुलभ नहीं थे। समतल काँच के उपयोग का एक बहुत ही महत्वपूर्ण आयाम, इसका अन्तरिक्षयान, वायुयान, पनडुब्बी, रेल तथा मोटर वाहनों की विण्डस्क्रीन व खिड़कियों के लिए उपयोग होना है।

काँच के बने बर्तनों की विकास प्रक्रियाओं ने इस प्रकार के काँचों का विकास किया, जो रसायन प्रतिरोधी, उष्मप्रतिरोधी या दोनों क्षमता रखते हैं। इनमें लम्बे समय तक रखे पदार्थ खराब नहीं होते हैं। इस प्रकार औषधियों तथा खाद्य पदार्थों के पैकेजिंग के लिए काँच की शीशी बोतलों का उत्पादन प्रारम्भ हुआ। काँच की शीशी व बोतलों की उपलब्धता ने औषधियों, खाद्य व पेय पदार्थों को दीर्घकाल तक सुरक्षित रखने व सुदूरगामी क्षेत्रों तक पहुँचाने की विधाओं व व्यापार को बढ़ावा दिया। काँच के इसी रसायन व ऊष्म प्रतिरोधी क्षमता के कारण रासायनिक प्रयोगशालाओं में उपयुक्त विभिन्न प्रकार के बर्तनों व उपकरणों को बनाने के लिए काँच का प्रयोग बृहत स्तर पर होता है।

एडीसन ने सर्वप्रथम विद्युत बल्ब का आविष्कार किया, जिसमें पारदर्शी काँच के बल्ब के अन्दर, प्रकाशीय स्रोतों को सुरक्षित व अधिकतम प्रकाश देने वाला बनाता है। विद्युत बल्ब के आविष्कार के लम्बे समय पश्चात इलेक्ट्रानिक युग आने पर इलेक्ट्रानिक निर्वात बल्बों, कैथोड रे ट्यूब, कम्प्यूटर, टेलीविजन, मोबाइल तथा अनेक प्रकार के उपकरणों में काँच का विभिन्न रूपों में उपयोग होता है।

काँच के दर्पण के बाद विज्ञान व प्रौद्योगिकी में एक क्रान्तिकारी युग का प्रारम्भ काँच के लेन्स के आविष्कार के साथ हुआ। काँच के लेन्स के उपयोग से अनेक प्रकार के प्रकाशीय उपकरणों की खोज हुई, जैसे सूक्ष्मदर्शी, दूरदर्शी, कैमरा, स्प्रेक्टोमीटर इत्यादि जिन यन्त्रों के माध्यम से अन्तरिक्ष, पदार्थ, जीव, प्रकाश तथा अनेक वैज्ञानिक विधाओं में आविष्कार हुए व मानव उपयोगी प्रौद्योगिकियों का विकास हुआ। मानव के अचिकित्सकीय दृष्टिदोषों के होते हुए भी काँच लेन्स

निर्मित चश्मे की सहायता से सामान्य दृष्टि रखना मानव समाज के लिए एक बहुत ही महत्वपूर्ण उपलब्धि है।

काँच के तार खींचने के गुण ने अति महीन काँच के तन्तु (Fibre) बनाने की प्रौद्योगिकी का आविष्कार करवाया। काँच के तन्तु सामान्य काँच से बहुत अधिक मजबूत होते हैं तथा इन तन्तुओं व प्लास्टिक के सम्मिश्रण से फाइबर रेन फोर्सड प्लास्टिक कम्पोजिट (FRP) चादरें बनाई जा सकती हैं, जो अत्यन्त मजबूत व हल्की होती है। बीसवीं शताब्दी के सत्तर व अस्सीवें दशक तक संचार माध्यमों ने काफी प्रगति कर ली थी, लेकिन यह सर्वसुलभ प्रौद्योगिकी का रूप नहीं ले पा रही थी, क्योंकि अधिक मात्रा में बिना विकृति के सन्देश या सूचनाओं (DATA) को सुदूर स्थानों में पहुँचाने वाला संचार माध्यम उपलब्ध नहीं था। इन दशकों में काँच व संचार विज्ञानियों के संयुक्त प्रयास से अति शुद्ध प्रकाशीय काँच तन्तु (Optical Glass Fibre) की प्रौद्योगिकी का विकास हुआ, जिसमें संचार माध्यमों के प्रचार-प्रसार में एक क्रान्तिकारी परिवर्तन हुआ, जिसके कारण ही वर्तमान में संचार माध्यम अधिक से अधिक जनसंख्या की सेवा कर रहे हैं।

काँच व सिरामिक पदार्थ उष्म सह, घर्षण व रसायन प्रतिरोधी होते हैं। धातुएँ उष्म सह, घर्षण व रसायन प्रतिरोधी नहीं होती हैं। धातुओं की वस्तुओं पर काँच व सिरामिक पदार्थों के सम्मिश्रण का लेप लगाकर गर्म करने पर धातुओं की सतह पर एक इनामल की पतली सतह बन जाती है; इस प्रकार धातुओं की बनी वस्तुयें अधिक उपयोगी बन जाती हैं। इस प्रकार की इनामल वस्तुओं का उपयोग रसोइघरों, अस्पतालों, डिस्प्ले बोर्ड बनाने में किया जाता है।

सिरामिक विज्ञान, प्रौद्योगिकी व अभियान्त्रिकी का आधुनिक काल

सदियों तक सिरामिक व काँच के उत्पादों का उत्पादन व विकास उन विशिष्ट व्यक्तियों के हाथों में रहा जो पारम्परिक रूप से इन उद्योगों से जुड़े हुए थे। कला व कला बहुल अभियान्त्रिकी का महत्व काफी अधिक था। पन्द्रहवीं व सोलहवीं शताब्दी में वैज्ञानिक युग के प्रारम्भ होने के साथ-साथ ये औद्योगिक स्वरूप प्राप्त करने लगे तथा औद्योगिक स्तर पर उत्पादन के लिए प्रमाणिक अभियांत्रिक प्रक्रियाओं, शिक्षण व प्रशिक्षण का प्रादुर्भाव हुआ। साथ ही साथ काँच व सिरामिक पदार्थों के उपयोग में आने वाली मशीनरियों का भी विकास हुआ। निर्माण के लिए स्थानीय मिट्टी, बालू व अन्य पदार्थों पर निर्भरता कम हुई व सुदूर प्रदेशों में उपलब्ध पदार्थों का उपयोग बढ़ा। औद्योगिक रूप से उत्पादन व व्यापार के फलस्वरूप समाज में काँच व सिरामिक वस्तुओं की उपलब्धता बढ़ी, सामाजिक परिवेश बदला तथा उच्चतर गुणवत्ता वाले उत्पादों की माँग बढ़ी। लौह, काँच व अन्य उद्योगों, जिनमें बड़ी-बड़ी भट्ठियों का प्रयोग होता था, की स्थापना से रिफ्रेक्टरी उत्पादों की माँग व विकास हुआ। रसायन प्रतिरोधी, उष्मसह व उच्च प्रकाशीय गुणों से युक्त लेन्सों के निर्माण ने काँच व सिरामिक पदार्थों के वैज्ञानिक अध्ययन की आवश्यकता बढ़ती गयी।

19वीं सदी का अन्तिम व 20वीं सदी का प्रारम्भिक काल से अनेक वैज्ञानिक आविष्कारों व खोजों के लिए हमेशा यादगार स्वरूप माना जायेगा, जिनसे पदार्थ के परमाणु व अणु स्वरूप के ज्ञान प्राप्त करने में काफी सहायता प्राप्त हुई। बीसवीं सदी के प्रारम्भिक काल से मध्य काल तक जो पदार्थ विज्ञान की प्रगति हुई उसका फल धीरे-धीरे नवीन प्रौद्योगिकियों व अभियान्त्रिकियों के रूप में सामने आने लगा। जहाँ एक तरफ सेमीकन्डक्टर उपकरणों के विकास के साथ इलेक्ट्रानिक युग का प्रारम्भ हुआ, वही काँच व सिरामिक पदार्थों के वैज्ञानिक अध्ययन से इस क्षेत्र में भी नवीन विधाओं का विकास हुआ। इनमें से कुछ निम्न हैं, काँच व सिरामिक प्रौद्योगिकी की प्रथम विधा है– 'इन्जीनियरिंग सिरामिक।' प्राचीन काल से ही काँच व सिरामिक पदार्थों को कम मजबूत व सरलता से टूटने वाला माना जाता है। वैज्ञानिकों ने जब काँच व सिरामिक पदार्थों के आणविक बान्ड सामर्थ्य की तुलना धात्विक पदार्थों (जो मजबूत माने जाते हैं) के आणविक बाण्ड सामर्थ्य से की तो उन्हें ज्ञात हुआ कि काँच व सिरामिक पदार्थों का वाण्ड सामर्थ्य धात्विक पदार्थों के बाण्ड सामर्थ्य से कई गुणा अधिक हैं। अतः काँच व सिरामिक पदार्थ आणविक या मूल रूप में धात्विक पदार्थों से कहीं अधिक मजबूत होते हैं। इसके साथ ही काँच व सिरामिक पदार्थों के कमजोर व टूटने का कारण खोजा गया। यह खोज काँच व सिरामिक विज्ञान के क्षेत्र में अत्यन्त ही महत्वपूर्ण उपलब्धि थी, जिसके कारण इस आशा का संचार हुआ कि काँच व सिरामिक उत्पादों को मजबूत व दृढ़ बनाया जा सकता है। वैज्ञानिक अध्ययन व प्रयोगों पर आधारित नवीन प्रौद्योगिकियों का विकास हुआ, जिससे धातुओं से बने हुए उत्पादों से भी उच्च गुणों व क्षमता वाले उत्पाद विभिन्न अभियान्त्रिक उपकरणों के लिए उपयोगी साबित हो सकें। उदाहरण के तौर पर अन्तरिक्ष अभियान की सफलता इस बात पर भी निर्भर करती है कि उसकी खिड़की के काँच इतने मजबूत हों कि अभियान के दौरान टूटे नहीं।

बीसवीं सदी के मध्यकाल में जब इलेक्ट्रानिक युग का प्रारम्भ हुआ। इस इलेक्ट्रानिक युग को बुलन्दियों पर पहुँचाने का श्रेय जितना सेमीकण्डक्टर पदार्थों को जाता है, उतना ही सिरामिक पदार्थों के इलेक्ट्रानिक गुणों के अध्ययन व इस अध्ययन के द्वारा विकसित काँच व सिरामिक प्रौद्योगिकी को भी जाता है। इलेक्ट्रानिक सिरामिक प्रौद्योगिकी के विकास के माध्यम से इलेक्ट्रानिक उपकरणों का आकार कम होना, नये-नये प्रकार के सेंसरों, संचार उपकरणों तथा इलेक्ट्रानिक कन्ट्रोल उपकरणों में उपयुक्त एक्चुएटरों इत्यादि का विकास सम्भव हो सका है। सेमीकण्डक्टर व इलेक्ट्रानिक सिरामिक पदार्थों के संयुक्त उपयोग द्वारा विकसित उपकरणों से मानव की जीवन शैली में लगातार क्रान्तिकारी परिवर्तन हो रहे हैं।

बीसवीं सदी के अन्तिम दशकों में काँच व सिरामिक के क्षेत्र में एक नवीन दिशा में खोजों का प्रारम्भ हुआ। यह दिशा थी जैविक काँच व सिरामिक पदार्थों की खोज। बीमारी या अन्य दुर्घटनाओं के कारण

हड्डियाँ टूट जाती हैं या मानव अंग नष्ट हो जाते हैं। कभी-कभी टूटी हड्डियाँ उपचार द्वारा जुड़ने की स्थिति में नहीं होती हैं या जुड़ने में काफी समय लगने की सम्भावना रहती है। चिकित्सा विज्ञान के विकास में सर्जरी द्वारा टूटी हुई हड्डियों के स्थान पर स्टील, टाइटेनियम एलाय की प्लेट व छड़ों को स्थानापन्न करने से मानव जीवन व उसके कष्टों से रक्षा हो जाती है। जैविक काँच व सिरामिक के विकास ने इन बनावटी मानव अंगों, जैसे हड्डी, दाँत को और अधिक उपयोगी बना दिया है।

बीसवीं सदी के अन्त व इक्कीसवीं सदी के प्रारम्भ में प्रौद्योगिकी व विज्ञान के विकास ने काँच व सिरामिक कणों को नैनोमीटर आकार में बनाना सम्भव करवाया। नैनो आकार के कणों में अणुओं व परमाणुओं की संख्या सीमित रहती है तथा वे आकार की माप पर आधारित गुण धर्म प्रदर्शित करते हैं। वर्तमान में नैनो प्रौद्योगिकी के माध्यम से अनेक प्रकार के काँच व सिरामिक उत्पादों का प्रयोग बढ़ रहा है।

इस प्रकार यह देखा जा सकता है कि काँच व सिरामिक विज्ञान, प्रौद्योगिकी, अभियान्त्रिकी के अनेक विविध आयाम हैं तथा यह प्रौद्योगिकी व अभियान्त्रिकी अपने स्वयं के उत्पादों के विकास के साथ-साथ अन्य सहयोगी प्रौद्योगिकी व अभियान्त्रिकियों के विकास का माध्यम बन रही है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में सिरामिक शिक्षा का प्रारम्भ

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना उस काल में हुई, जब भारतवर्ष की स्वतन्त्रता एक सपना था। देश के प्रबुद्ध, राजनीतिक व सामाजिक नेता देश को एक सूत्र में बाँध कर देश में जागृति व एकता का बिगुल बजा रहे थे। यूरोपीय देशों में औद्योगिक व सामाजिक क्रान्ति आ चुकी थी। अंग्रेजों ने भारतवर्ष को एक औद्योगिक उपनिवेश के रूप में परिकल्पित कर बड़े उद्योगों की स्थापना प्रारम्भ कर दिया था। उस काल के भारतीय भविष्यद्रष्टाओं ने भारतीयों के आत्मसम्मान की रक्षा व भविष्य की पीढ़ियों को सँवारने के लिए एक ओर विद्यालयों व शिक्षा संस्थानों की स्थापना प्रारम्भ कर दी थी, वहीं सर जमशेद जी टाटा जैसे धनाड्य घरानों ने पाश्चात्य शैली पर बड़े उद्योगों की स्थापना करना प्रारम्भ कर दिया था।

महामना पं0 मदन मोहन मालवीय जी एक विश्वस्तरीय विश्वविद्यालय की कल्पना को साकार करने में लगे थे, जो प्राच्य विद्याओं कला, संगीत व संस्कृति की शिक्षा के द्वारा भारतीय प्राचीन ज्ञान व संस्कृति की जड़ों को मजबूत करे, साथ ही में आधुनिक चिकित्सा, विज्ञान व अभियांत्रिकी शिक्षा के माध्यम से आधुनिक विश्वपटल पर मजबूती के साथ विकास पथ पर चल सकें। इस काल तक यूरोपीय देशों में सिरामिक व काँच उत्पादन औद्योगिक रूप ले चुका था। उनकी प्रज्ञा ने समाज में इन उद्योगों के महत्व को समझा तथा सन् 1924 में सिरामिक अभियान्त्रिकी तथा काँच प्रौद्योगिकी नामक दो विभागों की साथ-साथ स्थापना की। परवर्ती काल में इन दोनों विभागों को समायोजित कर सिलीकेट टेक्नोलाजी विभाग नाम से नामांकित किया गया। सन् 1968 में प्रौद्योगिकी संस्थान की स्थापना के समय इसको सिरामिक अभियान्त्रिकी विभाग के रूप में नामालंकार किया गया।

चित्र-1 : सिरामिक अभियान्त्रिकी विभाग के प्रांगण में औद्योगिक चिमनी।

मैंने भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर से पदार्थ विज्ञान में मास्टर व डाक्टरेट की उपाधि प्राप्त कर तथा शोध अभियन्ता के रूप में कार्य करने के पश्चात् जुलाई 1984 में सिरामिक के अन्तर विषयक योग्यता के आधार पर विश्वविद्यालय में प्रवक्ता के रूप में प्रवेश किया। मेरे शोध का विषय काँच विज्ञान था तथा मेरा ग्यारह वर्षों तक भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान, कानपुर की सिरामिक शोध प्रयोगशाला व पदार्थ विज्ञान के अधुनातन केन्द्र से सम्बन्ध था। यहाँ आने पर ही मुझको सिरामिक अभियान्त्रिकी के सम्पूर्ण एवं वृहद आयाम की जानकारी प्राप्त हुई। इस विभाग में लगभग सभी विषयों (काँच, पाटरी, रिफ्रेक्टरी, सिरामिक कोटिंग, ईंधन तथा भट्ठी) का अध्ययन व अध्यापन कार्य हो रहा था। औद्योगिक परिप्रेक्ष्य में पाटरी, हेवी क्लेवेयर, रिफ्रेक्टरीज, सीमेन्ट, काँच, इनामिल तथा सिरामिक कोटिंग अलग-अलग प्रकार के उद्योग माने जाते हैं। इन उद्योगों के निर्माताओं के संगठन भी अलग-अलग हैं। भारतीय मानक ब्यूरो में भी इन उत्पादों के मानक निर्धारण के लिए अलग-अलग समितियाँ हैं। सिरामिक अभियान्त्रिकी के सभी अन्तर विषयों के अध्ययन, अध्यापन व शोध की व्यवस्थाओं की केन्द्रीभूत रूप में एक ही विभाग में उपलब्धता देश व विदेश में इस विभाग की अनूठी स्थिति को प्रदर्शित करती है।

सिरामिक अभियान्त्रिकी विभाग का स्वर्णिम काल

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तथा उसके संस्थापक महामना पं0 मदन मोहन मालवीय जी के बारे में बहुत सुना था। विभाग में प्रथम प्रवेश करते ही महामना की मूर्ति के दर्शन हुए। विभाग के प्रांगण में एक बहुत ही ऊँची चिमनी दिखाई पड़ी। उस समय तो मैं अध्ययन व अध्यापन में व्यस्त हो गया, कुछ विशिष्ट अनुभव न हुआ। लेकिन धीरे-धीरे संस्थान व विश्वविद्यालय में विचरण करते व विभिन्न कार्यक्रमों में वयस्क अध्यापकों को श्रवण करते हुए महामना की महान परिकल्पनाओं तथा विश्वविद्यालय के गठन का महान परिश्रम धीरे-धीरे मन-मस्तिष्क में बैठता ही चला गया।

महामना मदन मोहन मालवीय जी की काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के गठन की परिकल्पना को एक अनूठी परिकल्पना कहा जा सकता है। जहाँ पर सभी प्राच्य विद्याओं, भाषाओं के साथ-साथ सभी अधुनातन विज्ञान, चिकित्सा तथा अभियान्त्रिकी विधाओं के शिक्षण-

प्रशिक्षण की व्यवस्था हो। जहाँ अध्यापक विद्यार्थियों को सैद्धान्तिक ज्ञान के साथ-साथ प्रयोगों में सहयोगी बनकर प्रायोगिक ज्ञान प्रदान करायें। अभियान्त्रिकी शिक्षा में औद्योगिक कार्यक्षेत्रीय अनुभव बहुत ही महत्व रखता है। विद्यार्थी सैद्धान्तिक, प्रायोगिक ज्ञान के साथ-साथ कार्यक्षेत्रीय अनुभव भी प्राप्त करें, यह उनकी परिकल्पना का अंग होगी। महामना की परिकल्पनाओं के अनुरूप विश्वविद्यालय एक सम्पूर्ण इकाई के रूप में विकसित हुआ। शिक्षा केन्द्र के साथ-साथ अध्यापकों, छात्रों व कर्मचारियों के निवास, खेल-कूद के मैदान, सड़कें, पेयजल, बिजली, सफाई व चिकित्सा की व्यवस्था विश्वविद्यालय स्वयं ही करता है। महामना के लिये अभियान्त्रिकी शिक्षा का स्वरूप बहुत महत्वपूर्ण था। बनारस इंजीनियरिंग कालेज (BENCO) के 1919 में स्थापना साथ-साथ उन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय में बिजली घर की स्थापना करवाई। इसके उपरान्त माइनिंग व मेटलर्जी (MINMET) कालेज व कालेज आफ टेक्नोलाजी (TECHNO) की स्थापना की। कालेज आफ टेक्नोलाजी के ग्लास टेक्नोलाजी व सिरामिक टेक्नोलाजी विभाग एक अहम विभाग थे। ये टेक्नोलाजी (प्रौद्योगिकी) विभाग वास्तव में उस काल के अत्याधुनिक काँच व सिरामिक टेक्नोलाजी की शिक्षा तथा प्रचार-प्रसार के अनुपम उदाहरण थे। स्वतन्त्रता पूर्व जिस समय जमशेद जी टाटा लौह तथा इस्पात उत्पादन के लिए देश को अग्रणी बनाने के लिये प्रयास कर रहे थे, मालवीय जी ने ऐसे विभागों की स्थापना की जहाँ न केवल काँच व सिरामिक अभियान्त्रिकी की शिक्षा प्रदान की जाती थी, बल्कि काँच व सिरामिक वस्तुओं के उत्पादन के सभी साधन उपलब्ध थे तथा उनका उत्पादन भी होता था। यह सिरामिक इन्जीनियरिंग विभाग का स्वर्णिम काल कहा जा सकता है। जो मशीनें, जो भट्ठियाँ, जो चिमनियाँ उद्योगों में लगाई जाती थी, वह यहाँ विभाग में लगी हुई थीं, जो अभी भी वर्तमान है। उस काल की कुछ उच्च कलाकृतियाँ इस समय भी विभाग में वर्तमान है, जो आज भी अपने अनूठेपन की गाथा कह रही हैं। कलाकृतियों को बनाने वाले प्लास्टर ऑफ पेरिस के मोल्ड (या साँचे) आज भी पुरानी अलमारियों में पाये जा सकते हैं। अर्थात् विभाग के प्राचीन अवशेषों से यह ज्ञात होता है कि मालवीय जी के समकालीन काल में इस विभाग में, कलाकृतियों तथा काँच व इनामिल की वस्तुओं का उत्पादन होता था तथा विद्यार्थियों को इनके उत्पादन का अनुभव व प्रशिक्षण प्राप्त होता था। मेरे शिक्षण के प्रथम वर्ष में मुझको इनामिल प्रयोगशाला में प्रशिक्षण का कार्य दिया गया। उस समय इस प्रयोगशाला के प्राचीन शिक्षक सेवानिवृत्त हो चुके थे तथा मुझको लोहे की प्लेटो को इनामिल के द्वारा कोटिंग करने के लिये काँच की फ्रिट बनवानी थी। उस समय मुझको यह ज्ञात हुआ कि इस विभाग में कोयले पर आधारित एक काँच फ्रिट बनाने की भट्ठी है तथा फ्रिट से स्लरी बनाने के लिये अनेक बड़ी बालमिल हैं। इस तरह के उत्पादन आधारित कार्य करने के लिये अनेक कार्यशाला सहायक भी विभाग में नियुक्त हैं। यह इस बात की पुष्टि करते हैं कि इस विभाग में इन पदों का सृजन उत्पादन आधारित कार्यों के लिये किया गया होगा। सन् 1928 में इण्डियन सिरामिक सोसाइटी की स्थापना भी यही काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में हुई थी तथा इण्डियन सिरामिक सोसाइटी का पुस्तकालय व संग्रहालय का एक भवन भी यहाँ बना हुआ है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलपति व इस विभाग के विभागाध्यक्ष आज भी इस सोसाइटी की कौंसिल के पदेन सदस्य होते हैं। इस सोसाइटी के पुस्तकालय का विश्व की विभिन्न सिरामिक तथा अन्य सोसाइटियों से समझौता था तथा उनकी पत्र-पत्रिकाओं का आदान-प्रदान होता था। उस काल के प्राध्यापकों ने काँच प्रौद्योगिकी, मृतिका शिल्प अभियान्त्रिकी व रिफ्रेक्टरी टेक्नोलाजी पर अपने समय की उच्च कोटि की पुस्तकें लिखीं थी। उस स्वर्णिम युग के लिये महामना का अद्भुत नेतृत्व व पूर्ण आर्थिक सहयोग इस विभाग के अध्यापक, कर्मचारियों व विद्यार्थियों की कर्मठता के लिये प्रेरणास्रोत रहा होगा। जिसके द्वारा वे दशकों तक इस विभाग का विकास करने व उत्कर्ष पर पहुँचाने में कामयाब रहे होंगे।

चित्र-2 : पोर्सलीन की मूर्तियों के लिये चीनी मिट्टी की स्लरी बनाने हेतु औद्योगिक बालमिल।

चित्र-3 : श्रीकृष्ण गोपी की पोर्सलीन की विशाल कलाकृति।

चित्र-4 : सम्राट अशोक, अशोक स्तम्भ व गौतम बुद्ध की पोर्सलीन की मूर्तियाँ।

विभाग का पराभव काल

मैंने जब 1984 में प्रवक्ता के रूप में प्रवेश किया तथा चिमनियों, भट्ठियों तथा कलाकृतियों का अवलोकन किया तो जिज्ञासा हुई कि कभी तो ये चिमनियाँ धुआँ उगलती होंगी। किस काल में ये कलाकृतियाँ बनी होंगी, मैंने ये जिज्ञासाएँ सभी सीनियर अध्यापकों व कर्मचारियों के समक्ष रखीं। लेकिन कोई भी मेरी जिज्ञासा शान्त न कर सका। अधिकतर सीनियर अध्यापक 60 या 70 के दशक में यहाँ अध्ययन करने के पश्चात् इस विभाग में अध्यापन कर रहे थे। इसका तात्पर्य हुआ कि 60 के दशक से पहले से ही विभाग में उत्पादन का कार्य समाप्त हो गया या समाप्ति की कगार पर था। मैंने यह भी अनुभव किया कि मेरे प्रवेश काल के समय या वर्तमान में भी सिरामिक अभियान्त्रिकी विभाग प्रौद्योगिकी संस्थान या विश्वविद्यालय में शिक्षा व शोध में अग्रणी व सम्मानजनक स्थिति नहीं रखता है। इन सभी तथ्यों का तात्पर्य यह निकाला जा सकता है कि महामना के निर्वाण के पश्चात हम लोगों ने एक प्रेरणादायी प्रकाशस्तम्भ खो दिया तथा उनकी तकनीकी शिक्षा के समग्र दृष्टिकोण की परम्परा को अक्षुण्ण न रख सकें। इस पराभव के लिये यहाँ के शिक्षक, कर्मचारी व छात्र ही उत्तरदायी नहीं थे, बल्कि कुछ काल चक्र ही इस प्रकार का चला, जिसमें उच्च आदर्शों व परम्पराओं को कालचक्र के अनुरूप ढालने में हम लोग असमर्थ रह गये। पुराना खो दिया व नवीन न पा सके।

यहाँ पर मैं अपनी समझ के अनुसार इस पराभव के कुछेक कारणों पर प्रकाश डालना चाहूँगा। महामना के निर्वाण के पश्चात् भारतवर्ष को स्वतन्त्रता की प्राप्ति हुई तथा भारत के प्रथम प्रधानमन्त्री पं0 जवाहर लाल नेहरु ने भारत के विकास को गति देने के लिए पंचवर्षीय योजनाएँ प्रारम्भ कीं तथा अनेक संस्थाओं की स्थापना की। इनमें से ही एक संस्था थी वैज्ञानिक एवं औद्योगिक अनुसंधान परिषद (C.S.I.R.)। इस संस्था ने अपनी योजना के अन्तर्गत उद्योग व विज्ञान को एक कड़ी के रूप में जोड़ने के लिये पूरे देश में विभिन्न प्रयोगशालाओं की स्थापना की। इनमें से एक केन्द्रीय काँच और सिरामिक अनुसन्धान संस्थान, कलकत्ता में स्थापित किया गया। इस अनुसन्धान संस्थान के संर्वधन व विकास के साथ-साथ इस विषय के प्राचीन शिक्षण केन्द्र के विकास पर भी ध्यान नहीं दिया गया। इस विभाग के विकास का पहिया थम गया। भारतीय सिरामिक सोसाइटी का कार्यालय भी काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के प्रांगण से स्थानान्तरित होकर कलकत्ता चला गया।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के पश्चात् उच्च तकनीकी शिक्षा को अन्तर्राष्ट्रीय स्वरूप प्रदान करने के लिए अमेरिका, ब्रिटेन, रूस, फ्रान्स व जर्मनी व उनके विश्वविद्यालय के शैक्षणिक सहयोग से भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थानों की श्रृंखला स्थापित होना प्रारम्भ हुआ। इन संस्थानों में उच्चकोटि के अन्तर्राष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त शिक्षकों की नियुक्ति हुई तथा उच्च स्तर के शिक्षण व शोध संसाधनों का विकास हुआ। धीरे-धीरे ये संस्थान उच्च तकनीकी शिक्षा के अग्रणी व आदर्श केन्द्र होते चले गये। इन्होंने नयी परम्पराओं की नींव डाली। इन संस्थानों में उस काल के अनुरूप शोध कार्यों का अधिक महत्व था, जिनके आधार पर नवीन प्रौद्योगिकी विकसित होती है। अभियांत्रिकी व कार्यानुभव का महत्व कम था। उन्होंने अपनी प्रदत्त डिग्रियों का नाम बैचलर या मास्टर आफ इंजीनियरिंग के स्थान पर वेचलर या मास्टर आफ टेक्नोलाजी रखा। भारत सरकार का ध्यान व संसाधनों का बहाव इन भारतीय प्रौद्योगिक संस्थानों की तरफ बढ़ता गया तथा विश्वविद्यालय के अन्तर्गत आने वाले इन्जीनियरिंग संस्थानों या विभागों को स्वयं की गति से प्रगति करने के लिए छोड़ दिया गया। इस प्रकार विश्व की अभियान्त्रिकी या टेक्नोलाजी के तेजी से बदलते हुए क्षितिज में, अन्य विभागों या संस्थानों के साथ-साथ सिरामिक अभियान्त्रिकी विभाग पिछड़ता गया।

बीसवीं सदी में टेक्नोलाजी के तेजी से विकास के कारण विभिन्न अभियान्त्रिकी उपकरणों व कार्यप्रणालियों का जीवन काल बहुत छोटा होता जा रहा है, जो मशीनरी या उपकरण किसी काल में सर्वोत्तम माने जाते हैं। वे कुछ ही समय पश्चात काम करते हुए भी बेकार हो जाते हैं। शिक्षण संस्थानों में पुराने उपकरणों को हटा कर नये उपकरणों में बदलने की व्यवस्था नहीं है। इसमें पूँजी लागत भी बहुत अधिक आती है। अतः मालवीय जी की शिक्षा के साथ उत्पादन के अनुभव के समायोजन की परिकल्पना को विश्वविद्यालय तेजी से बदलते हुए परिदृश्य में संपोष्य (Sustanable) रूप से बनाये नहीं रख सका। किसी भी संस्था, समाज व देश के उत्थान में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका होती है कि किस प्रकार उस संस्था, समाज व देश के लोग अपने-अपने कार्यों को कर्मठता से करते हुए एक-दूसरे के सहयोग व प्रेम भाव से एक टीम में संगठित होकर संस्था, समाज व देश के उत्थान के लिए कार्य करते हैं। संस्था के सदस्य लम्बे काल तक स्थायी नहीं रहते हैं। पुराने सदस्य संस्था छोड़ते हैं या सेवानिवृत्त होते हैं तथा नये सदस्य उसमें जुड़ते हैं। संस्था की सतत प्रगति इस बात पर भी निर्भर करती है कि संस्था में नवागंतुक कितनी शीघ्र आत्मसात होते हैं तथा कितने शीघ्र उनको संस्था के विकास में योगदान देने का समय मिलता है। यह मैंने अनुभव किया कि सिरामिक अभियान्त्रिकी विभाग नवागंतुकों विशेष कर शिक्षकों के लिए असहिष्णु है। यह असहिष्णुता असहयोग व टकराव की भावना में बदल जाती है। पुराने या सीनियर सदस्य नये विचारों, परिकल्पनाओं का स्वागत नहीं करते हैं। बदलते सामाजिक, आर्थिक, शिक्षा व शोध के परिवेश में नये सदस्यों, विचारों, परिकल्पनाओं व योजनाओं के आगमन से संस्था तेजी से विकास करती है, जिसका लाभ सभी को प्राप्त होता है। विभाग में शिक्षकों की कमी है, लेकिन बहुत-से शिक्षकों के इस विभाग को छोड़ने में उनकी प्रगति की सम्भावनाओं के साथ-साथ यह असहिष्णुता भी एक कारण थी।

विभाग का वर्तमान युग

वर्तमान में किसी विभाग या संस्थान की शिक्षा व शोध के आकलन के कुछ पैमाने हैं, जिनसे उस विभाग या संस्थान का राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का मापन होता है। ये पैमाने इस प्रकार हैं-

1. किस स्तर के शिक्षक व विद्यार्थी विभाग या संस्था में प्रवेश लेते हैं? 2. शिक्षा प्राप्ति के पश्चात् उस विभाग के छात्रों को किस स्तर का रोजगार मिलता है? 3. विभाग में शोध कार्यों के लिये संसाधन किस स्तर के हैं? 4. शोध छात्रों तथा शिक्षकों का शोध पत्रों, पेटेन्ट आदि के प्रकाशन में कितना योगदान है? 5. शोध छात्रों की संख्या कितनी है?

वर्तमान उच्च शिक्षा में शिक्षा, प्रशिक्षण तथा अनुसंधान एक-दूसरे के पूरक समानान्तर आयाम है। इस सदी के भारत के उद्योग भी शोध, शिक्षा, प्रशिक्षण, अन्तर्राष्ट्रीय प्रतिस्पर्धा, सहयोग व पूँजीनिवेश के साथ विश्व में अग्रणी स्थान बनाये हुए है।

अब यदि नवीन परिवेश में महामना पं0 मदनमोहन मालवीय जी की परिकल्पनाओं को पुनः परिभाषित करना चाहे तो वह सम्भवतः इस प्रकार होनी चाहिए–

1. काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थानों, संकायों व विभागों का सम्पूर्ण विश्व में अग्रणी स्थान हो।
2. यहाँ के शिक्षकों, शिक्षा व शोध का स्तर भी अन्तर्राष्ट्रीय स्तर व मानकों के रूप में हो।
3. शिक्षा व अनुसंधान के संसाधन नित नवीन रूप धारण करते हुए अन्तर्राष्ट्रीय मानकों के अनुरूप हों।
4. शिक्षा, शोध व प्रशिक्षण के लिये राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय विश्वविद्यालयों, संस्थानों, औद्योगिक व सामाजिक प्रतिष्ठानों में सहयोग हो।
5. उपयुक्त व सदैव आधुनिक वातावरण में शिक्षित प्रशिक्षित विद्यार्थी नैतिक रूप से जिम्मेदार, बुद्धिमान, कार्यकुशल हों, जो देश व विश्व के कल्याण के उत्कृष्ट कार्य करने में सक्षम हो।

विभाग के पुनः जागरण के युग का प्रारम्भ विश्वविद्यालय अनुदान आयोग द्वारा पाँचवी पंचवर्षीय योजना के अनुदानों से प्रारम्भ माना जा सकता है, जिसमें सात नये अध्यापकों के पद विभाग के लिये स्वीकृत किये गये थे। सन् 1983-84 का वर्ष सिरामिक अभियान्त्रिकी विभाग के लिये काफी महत्वपूर्ण रहा है। एक लम्बे अन्तराल के पश्चात् विभाग के लगभग सभी रिक्त पदों पर अध्यापकों की नियुक्ति हो सकी थी। विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने, अपने विशिष्ट सहायता कार्यक्रम के अन्तर्गत शोध कार्यों को बढ़ावा देने के लिये 60 लाख रुपया, बहुमूल्य शोध उपकरणों को क्रय करने के लिये अनुदान स्वरूप दिया था। इस प्रथम अनुदान के पश्चात् विभाग को शिक्षा व शोध कार्यों को बढ़ावा देने के लिये विभिन्न सरकारी संस्थायें अपनी विभिन्न योजनाओं के माध्यम से अनुदान दे रही है।

वर्तमान में सिरामिक अभियान्त्रिकी विभाग भी अपने सीमित संसाधनों के द्वारा शिक्षा व शोध में उत्तरोत्तर प्रगति कर रहा है। सन् 1984 के पश्चात् से विभाग अपने पाठ्यक्रम में लगातार नये-नये विषयों को सम्मलित कर इसको आधुनिक बना रहा है। सन् 2005 में प्रौद्योगिकी संस्थान के अन्य विभागों के साथ-साथ सिरामिक अभियान्त्रिकी विभाग में भी इन्टीग्रेटेड, बी0टेक0-एम0टेक0 द्विडिग्री कार्यक्रम का प्रारम्भ हुआ है। इसके अतिरिक्त सिरामिक व काँच विषय के आयामों के अनुरूप इसके द्विवर्षीय एम0टेक0 कार्यक्रम को अन्तरविषयक कार्यक्रम के रूप में मान्यता मिल गयी है। इसके एम0टेक0 कार्यक्रम में विभिन्न अभियान्त्रिकी विषय में बी0टेक0 डिग्री तथा भौतिक व रसायन विज्ञान में एम0एससी0 उपाधि प्राप्त विद्यार्थी प्रवेश लेते हैं। पहले वर्ष सिरामिक विषयों का गहन अध्ययन कर अपने मूल विषय के अनुरूप थीसिस/प्रोजेक्ट कार्य करते हैं, जिनमें मूर्तरूप होने से सिरामिक अभियान्त्रिकी विभाग का परास्नातक कार्यक्रम पुनर्जीवित हो गया है। इसी परियोजना के फलस्वरूप पीएच0डी0 कार्यक्रम भी संवर्धित हो गया है। अब एक दर्जन से अधिक शोध छात्र विभाग में कार्य कर रहे हैं। तथा इस वर्ष 2011-12 में चार शोध छात्रों ने अपनी थीसिस जमा की है। विभाग के शोध पत्रों के प्रकाशन की गति भी कई गुनी हो गयी है। विभाग का विश्वविद्यालय के स्तर पर भौतिक विभाग के विज्ञान संकाय, प्रयुक्त भौतिक, प्रयुक्त रसायन, इलेक्ट्रानिक अभियान्त्रिकी, यान्त्रिकी अभियान्त्रिकी व पदार्थ विज्ञान स्कूल से शोध सहभागिता बढ़ी है। विभाग का देश की अग्रणी शोध संस्थानों व प्रयोगशालाओं से शोध सम्बन्ध है।

हम यह आशा करते हैं कि अब हमारा संस्थान भारतीय प्रौद्योगिक संस्थान के रूप में उभरेगा तो शिक्षा व शोध के संसाधन बढ़ेंगे तथा अनेक युवा विद्वान व कर्मठ शिक्षकों का आगमन होगा तथा सिरामिक अभियान्त्रिकी विभाग महामना की परिकल्पनाओं के साथ आधुनिक स्वर्णिम युग में प्रवेश करेगा।

◆

महामना के चिन्तन में आयुर्वेद

प्रो0 (डॉ0) कमल नयन द्विवेदी, डॉ0 भुवाल राम**, डॉ0 शिवानी घिल्डियाल****

भारत के महान पुरुषों में पं0 मदन मोहन मालवीय जी का स्थान अत्यन्त महत्वपूर्ण है। महामना ने प्रतिभाशाली व्यक्तित्व, अध्यावसायी जीवन, धार्मिक मनोवृत्ति, साहस एवं विनम्र स्वभाव के गुण वंश परम्परागत पाये थे। उन्हें भारतीय संस्कृति एवं वैदिक साहित्य पर गर्व था। यदि सूक्ष्मता से महामना के व्यक्तित्व तथा कृतित्व पर विचार किया जाय तो आयुर्वेद के मूलभूत सिद्धानतों की स्पष्ट छवि इनमें लक्षित होती है। मालवीय जी के विचार में मानव के सर्वांगीण विकास तथा उत्कृष्ट आनन्दमय जीवन के लिये विकासोन्मुखी व्यापक शिक्षा तथा चरित्र गठन के साथ-साथ स्वास्थ्य की रक्षा तथा शारीरिक शक्ति की पुष्टि का भी अत्यन्त महत्व था, इसी हेतु वे युक्त आहार-विहार, ब्रह्मचर्य तथा व्यायाम को आवश्यक मानते थे।[1] आयुर्वेद शास्त्र का भी प्रथम प्रयोजन स्वस्थ के स्वास्थ्य की रक्षा करना ही है, आयुर्वेद के आर्ष ग्रन्थ चरक संहिता में स्पष्ट रूप से उल्लिखित है[2]–

प्रयोजनं चास्य स्वस्थस्य स्वास्थ्यरक्षणमातुरस्य विकार प्रशमनं च।

(च0सू0 30/26)

स्वास्थ्य रक्षण हेतु आयुर्वेद में सद्वृत्त, दिनचर्या, ऋतुचर्या तथा उचित आहार-विहार का विस्तृत वर्णन है। महामना ने भी सदैव अपने जीवन में उपरोक्त नियमों का आचरण किया और निर्विकार दीर्घायु का यापन किया। मालवीय जी को दुःख था कि स्वास्थ्य रक्षा का समुचित ज्ञान व प्रबन्ध न होने के कारण प्रतिवर्ष हजारों बच्चे, नवयुवक, मातायें और बहनें मौत का शिकार हो जाती है और लाखों अपनी शारीरिक एवं बौद्धिक शक्ति का समुचित विकास नहीं कर पाते।[3] इसी विचार से अभिभूत हो स्वस्थ समृद्ध राष्ट्र के निर्माण के लिये महामना ने अपना सर्वस्व न्यौछावर कर दिया। आयुर्वेद के प्रति आपके स्नेह तथा विश्वास को आपके व्यक्तित्व एवं कृतित्व ने साकार रूप दिया।

1. महामना द्वारा आयुर्वेद विकास के कार्य–

भारतीय चिकित्सा पद्धति (आयुर्वेद) के उत्थान तथा ज्ञान के प्रसार के लिये 1919 ई0 में महामना द्वारा ऋषिकुल आयुर्वेदिक कालेज की स्थापना की गयी, जो वर्तमान में उत्तराखण्ड राज्य सरकार के अधीनस्थ कार्यरत है। आयुर्वेद से अनन्य प्रेम एवं इसके प्रति दृढ़ आस्थावश ही काशी हिंदू विश्वविद्यालय में सर्वप्रथम प्रारंभ किये जाने वाले विषयों में महामना ने आयुर्वेद को एक विषय के रूप में स्थापित किया, तत्पश्चात् बी0एच0यू0 आयुर्वेदिक कालेज का शिलान्यास महात्मा गांधी जी द्वारा मालवीय जी की उपस्थिति में किया गया। आज यह आयुर्वेद संकाय चिकित्सा विज्ञान संस्थान के अन्तर्गत महत्वपूर्ण अंग के रूप में कार्य कर रहा है। इसी क्रम में महामना ने उदयपुर में आयुर्वेदिक कालेज की नींव डाली तथा वाराणसी में राजा बलदेवदास बिरला हास्पिटल का प्रारम्भ किया। आयुर्वेद की उन्नति तथा उचित दिशा-निर्देश के विचार से ही महामना ने 1926 में अखिल भारतीय आयुर्वेद कांग्रेस के अध्यक्ष पद को सुशोभित किया। आयुर्वेदिक औषधियों के ज्ञान तथा रक्षण के लिये महामना ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में एक विशाल भैषज्योद्यान की स्थापना की, ताकि आतुरों को औषधि युक्त पर्यावरण मिल सके तथा विद्यार्थी विभिन्न औषधीय पादपों के स्वरूप ज्ञान को प्राप्त कर सके। महामना ने स्वयं अपना आवास भी भैषज्योद्यान के समीप बनवाया था, परन्तु काल की क्रूर गति से वर्तमान में इस भैषज्योद्यान का संकुचित रूप रह गया है। कंकड़, पत्थर, रेत और सीमेंट से बने भवनों से मालवीय जी द्वारा संजोया भैषज्योद्यान सिमट गया है, जो कि अत्यन्त दुःख तथा निराशा का विषय है।

2. शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य निर्माण के क्षेत्र में महामना

महामना ने सदैव सर्वांगीण विकास पर बल दिया, उन्होंने शारीरिक तथा मानसिक दोनों आधार पर सबल बनने का उपदेश दिया, क्योंकि पूर्ण स्वस्थ की कल्पना तभी की जा सकती है जब शारीरिक तथा मानसिक दोनों पक्ष साम्यावस्था में हों, आयुर्वेद में स्वस्थ को परिभाषित करते हुये कहा गया है,[4]

समदोषः समाग्निश्च समधातुमलक्रियः।
प्रसन्नात्मेन्द्रियमनाः स्वस्थ इत्यभिधीयते॥

(सु0सू0, 15/41)

प्रस्तुत सन्दर्भ में दोष, धातु, मल, शारीरिक स्वास्थ्य तथा आत्मा इन्द्रिय तथा मन मानसिक स्वास्थ्य के द्योतक हैं, इसी हेतु महामना ने अपनी सर्वश्रेष्ठ कृति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में शारीरिक तथा मानसिक दोनों के विकास के लिये अवलम्ब स्थापित किये।

जहाँ अन्य विश्वविद्यालयों में केवल पाठ्य-पुस्तकों का अध्ययन होता था और विद्यार्थियों को केवल अर्थोपार्जन करने योग्य बनाया जाता था, वहीं मालवीय जी ने शैक्षणिक विकास के साथ-साथ चारित्रिक उन्नयन को ध्येय बनाया, उन्होंने स्वयं अपने संदेश में कहा है।[5]

सत्येन ब्रह्मचर्य्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देश भक्त्यात्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव॥

शारीरिक स्वास्थ्य सभी पुरुषार्थों का मूल है, चरक संहिता जो कि आयुर्वेद का मूल ग्रन्थ है उसमें स्पष्ट रूप से कहा गया है,[6]

* प्रोफेसर, द्रव्यगुण, आयुर्वेद विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
** असिस्टेन्ट प्रोफेसर, द्रव्यगुण, आयुर्वेद विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी
*** सीनियर रेजीडेंट एवं शोध छात्रा, द्रव्यगुण, आयुर्वेद विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

सर्वमन्यत परित्यज्य शरीरमनुपालयेत्।
तद्भावे हि भावानां सर्वाभावः शरीरिणाम्॥

(च0नि0, 6/7)

क्योंकि धर्म, अर्थ, काम तथा मोक्ष चारों पुरुषार्थों की पूर्ति स्वस्थ शरीर से ही सम्भव है। इसी भाव से महामना ने विश्वविद्यालय परिसर में विशाल क्रीडा स्थल बनाये तथा विद्यार्थियों को उपदेश दिया[7]—

''दूध पियो कसरत करो नित्य जपो हरि नाम।
हिम्मत से कारज करो, पूरेंगे सब काम॥''

परन्तु महामना को ज्ञात था कि स्वस्थ शरीर के साथ-साथ स्वस्थ मन का होना आवश्यक है, इसी हेतु महामना ने धार्मिक विषयों पर व्याख्यान कराये, धर्म सम्बन्धी कथाओं का पाठ कराया तथा परिसर में श्रीमद्भागवत गीता के साप्ताहिक नियमित धर्मोपदेश की आधारशिला रखी, जो आज भी जीवन्त है, उन्होंने स्वयं 10 सितम्बर 1935 में विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुये कहा कि, ''हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना तुम्हारे भीतर शारीरिक बल के साथ-साथ धर्म की ज्योति और ज्ञान का बल भरने के लिये की गयी है।[8]

3. महामना की आयुर्वेद पर चरम आस्था व विश्वास

महामना को आयुर्वेद चिकित्सा पद्धति पर अटूट विश्वास था, जिससे प्रभावित होकर उन्होंने कायाकल्प चिकित्सा का निर्णय लिया। कायाकल्प एक प्रकार की रसायन चिकित्सा है, जो कुटी प्रावेशिक प्रक्रिया के अन्तर्गत समाहित है।[9] 16 जनवरी सन् 1938 को मालवीय जी ने तपसी बाबा के अवलोकन में, रामबाग (शिवकोटी, प्रयाग) में कायाकल्प का प्रयोग प्रारम्भ किया तथा 40 दिन विधिवत् कायाकल्प का सेवन करने पर उन्हें वांछित परिणाम प्राप्त हुये। उदाहरणतः नेत्रों की रोशनी बढ़ी तथा बुढ़ापे के चिन्ह कुछ कम हो गये। आयुर्वेद के प्रति मालवीय जी की आस्था निम्न सन्दर्भ से पूर्णतः सिद्ध होती है। गोपाष्टमी को संध्या समय में मालवीय जी 7-8 मील दूर शिवपुर गोशाला के उत्सव में गये थे। यह गोशाला उनके प्रयास और प्रेरणा से तैयार हुयी थी। वहाँ से लौटते-लौटते काफी रात्रि हो गयी। रास्ते में ठण्ड लग जाने से शरीर में पीड़ा तथा ज्वर का प्रकोप बढ़ने लगा, तब आयुर्वेदिक औषधियों का प्रयोग शुरु किया, परन्तु जब दशा गम्भीर हो गयी तो चिकित्सकों ने आक्सीजन देने का निश्चय किया, इस कठिन क्षण में भी मालवीय जी को यह स्वीकार न था। जब उनकी पुत्री मालती जी ने कहा कि ऑक्सीजन कोई एलोपैथिक दवा नहीं है और यदि आप इसका प्रयोग स्वीकार कर लेंगे तो हम सबको सुख मिलेगा तब महामना ने स्वीकृति दी, तो ऐसी अटूट आस्था थी महामना की आयुर्वेद के प्रति।[10]

समीक्षा

आयुर्वेद स्वास्थ्य रक्षण का विज्ञान है, इसके सिद्धान्त शारीरिक तथा मानसिक दोनों पक्षों से स्वस्थता को बनाये रखने के लिये स्थापित किये गये, महामना ने भी सदैव जीवन के दोनों पहलुओं को सबल बनाने पर बल दिया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय उनके इस गम्भीर चिन्तन का जीवन्त स्वरूप है। उन्होंने अपने कार्यकाल के आरम्भ से अन्तिम क्षण तक आयुर्वेद के उत्थान के लिये अगणित कार्य किये, अपने व्यक्तिगत जीवन में भी अधिक से अधिक आयुर्वेद के सिद्धान्तों तथा औषधियों का प्रयोग किया। आयुर्वेद के समग्र विकास के लिये विद्यालय तथा भैषज्योद्यान का निर्माण करवाया। आयुर्वेद जगत महामना के आयुर्वेद के प्रति स्नेहिक चिन्तन का सदैव ऋणी रहेगा। महामना द्वारा स्थापित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का आयुर्वेद कालेज, समस्त आयुर्वेदज्ञों को नित्य संदेश देता है कि महामना ने जिस पुण्य पवित्र भावना से इसका निर्माण किया, हम सभी उसकी गरिमा को बनाये रखे तथा आयुर्वेद के उन्नयन में सहभागी हो, तभी महामना का चिन्तन, साकार रूप ले सकेगा।

महामना के चिन्तन को देकर मूर्त रूप।
आयुर्वेद विकास कर हम बने कृतज्ञ स्वरूप॥
फिर सुषमा हो उद्यान की अनुपम।
जिसमें रहे औषधियाँ सम्पन्न॥

तभी सही मायनों में आयुर्वेद का विकास होगा। जब महामना के चिन्तन पर मनन तथा कार्यान्वयन होगा।।

संदर्भ

1. प्रान्तीय कौंसिल में भाषण, 1907
2. चरक संहिता सूत्रस्थान, 30/26
3. दी आनरेबिल पंडित मदन मोहन मालवीय, लाइफ एण्ड स्पीचेज, 1907, पृ0 398
4. सुश्रुत संहिता सूत्र स्थान, 15/41
5. महामना के विचार : एक चयन, उपदेश पंचामृत एक चयन, पृ0 34-36
6. चरक संहिता, निदान स्थान, 6/7
7. 'प्रज्ञा' महामना मालवीय जयन्ती विशेषांक, अंक 56, भाग-2, वर्ष 2010-11, पृ0 177-182
8. महामना के विचार : एक चयन, विद्यार्थियों को उपदेश, पृ0 38
9. अष्टांग हृदय उत्तर स्थान रसायन विधि अध्याय, 39/4-5
10. महामना मदन मोहन मालवीय-जीवन और नृतृत्व, प्रो0 मुकुट बिहारी लाल, अस्वस्थ, पृ0 572-573

◆

बहुआयामी व्यक्तित्व के धनी पं0 मदन मोहन मालवीय के राजनीतिक विचार

प्रो0 राघवेन्द्र प्रताप सिंह *

पण्डित मदन मोहन मालवीय (1861-1946) आधुनिक भारत की महानतम् विभूतियों में एक थे। वे एक महान वक्ता थे और संस्कृत, हिन्दी तथा अंग्रेजी तीनों ही भाषाओं में समान अधिकार के साथ बोल सकते थे। वे एक महान सामाजिक तथा राजनीतिक नेता भी थे। उनके असाधारण व्यक्तित्व का आधुनिक भारत की राजनीति, समाज, शिक्षा तथा संस्कृति पर गहरा प्रभाव पड़ा है। मदन मोहन मालवीय का जन्म 25 दिसम्बर, 1861 को हुआ था और 12 नवम्बर, 1946 को उनका देहावसान हुआ। 1884 में उन्होंने बी0ए0 की उपाधि प्राप्त की। कुछ वर्षों तक उन्होंने 'हिन्दुस्तान' हिन्दी दैनिक का सम्पादन किया, कुछ समय तक वे 'द इण्डियन यूनियन' पत्र के भी सम्पादक रहे थे। उन्होंने 'अभ्युदय' नामक एक हिन्दी साप्ताहिक की भी स्थापना की थी। 1880 में मुख्यतः उन्हीं के प्रयत्नों के फलस्वरूप इलाहाबाद में हिन्दू समाज नामक संस्था की स्थापना हुई। उनके राजनीतिक भाषणों में हमें आवेश शून्य तर्कणा तथा प्रतीति करने की अद्‌भुत शक्ति देखने को मिलती है। उन्होंने अपने आकर्षक व्यक्तित्व के द्वारा भारतीय राष्ट्रवाद के विकास में महत्वपूर्ण योग दिया। महात्मा गाँधी उन्हें अपना बड़ा भाई तथा भारतीय मुक्ति संग्राम में योग्य साथी और सहयोगी मानते थे तथा उसी रूप में उनका आदर करते थे। मालवीय जी के व्यक्तित्व में गहरी निष्ठा, आत्मत्याग तथा सरलता विद्यमान थी, जिसके कारण वे महान् प्रेम तथा श्रद्धा के केन्द्र बन गये थे।

महात्मा गाँधी की दृष्टि में- ''मैं मालवीय जी से बड़ा देशभक्त किसी को नहीं मानता। मैं सदैव उनकी पूजा करता हूँ। जीवित भारतीयों में मुझे उनसे ज्यादा भारत की सेवा करने वाला भी कोई दिखाई नहीं देता।''

मालवीय जी भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस[1] के सबसे प्रारम्भिक नेताओं में थे। उस संस्था के साथ उनका सम्बन्ध 1886 से ही चला आया था। सामान्यतः उनकी गणना फिरोजशाह और गोखले की मण्डली में की जाती थी, यद्यपि उन्हें तिलक के विचारों से भी सहानुभूति थी। वे 1909 में लाहौर तथा 1918 दिल्ली में कांग्रेस के सभापति चुने गये थे।

1902 में मालवीय जी प्रान्तीय विधान परिषद के सदस्य चुने गये। वहाँ उन्होंने वार्षिक वित्तीय विवरण, उत्पादक विधेयक तथा बुन्देलखण्ड भूमि स्वामित्व परिवर्तन विधेयक पर महत्वपूर्ण भाषण दिये। 1910 में वे साम्राज्यीय विधान परिषद (इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिल) के सदस्य चुने गये और 1920 तक उसके सदस्य बने रहे। उन्होंने गोखले के प्राथमिक शिक्षा विधेयक का उत्साह के साथ समर्थन किया।

यद्यपि मालवीय जी परम्परावादी हिन्दू थे, फिर भी देश के औद्योगिक विकास में उनकी विशेष रूचि थी। वे उन नेताओं में से थे जिन्होंने 1905 में वाराणसी में भारतीय औद्योगिक सम्मेलन तथा संयुक्त प्रान्तीय औद्योगिक सम्मेलन का और 1907 में इलाहाबाद में संयुक्त प्रान्तीय औद्योगिक संघ की बैठक का आयोजन किया था। उन्होंने प्रयाग शुगर कम्पनी आरम्भ करने में भी आंशिक योग दिया था।

1930 में गाँधी जी द्वारा प्रारम्भ किये गये नमक सत्याग्रह के सम्बन्ध में उन्हें गिरफ्तार कर लिया गया। 1931 में द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने के लिए वे लन्दन गये। 1932 में उन्होंने इलाहाबाद में अखिल भारतीय एकता सम्मेलन का सभापतित्व किया।

मालवीय जी सनातन धर्म महासभा के, जिसकी बैठक जनवरी 1906 में इलाहाबाद में हुई थी, प्रमुख नेता थे। वे हिन्दू महासभा के प्रमुख नेताओं तथा संगठनकर्ताओं में थे। उन्होंने हिन्दुओं की एकता, सांस्कृतिक समुत्कर्ष, चारित्रिक शुद्धि तथा सहकारी कार्यकलाप पर बल दिया। उन्होंने उत्तर भारत में हिन्दू समाज की सुदृढ़ता तथा पुनर्स्थापना के लिए कार्य किया था। बनारस हिन्दू विश्वविद्यालय उनकी अथक राष्ट्रीय सेवाओं का चिरस्थायी स्मारक है।

मालवीय का इतिहास-दर्शन : ईश्वरीय नियतिवाद और कर्मवाद

मालवीय जी श्रद्धालु हिन्दू आस्तिक थे। उन पर भागवत के भक्तिमूलक आदर्श का गम्भीर प्रभाव पड़ा था। उनके धार्मिक दर्शन की प्रमुख धारणा 'ईश्वर की सर्वव्यापकता' थी।[2] उनकी धारणा थी कि प्रथम विश्व युद्ध में ईश्वर का हाथ था और इसलिए मित्र राष्ट्रों की विजय हुई थी। दिल्ली कांग्रेस में अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा था : ''ईश्वर का यह स्पष्ट उद्देश्य था कि विश्व के शक्तिशाली राष्ट्रों का नैतिक पुनर्जन्म हो। कर्म का नियम क्रूर निश्चितता से कार्य करना है। कुछ मित्र राष्ट्रों ने भी समय-समय पर न्याय तथा शिष्टता के सिद्धान्तों का उल्लंघन किया था। उन्हें भी अपने कुकर्मों का फल भोगना पड़ा था। इस प्रकार मालवीय जी का विश्वास था कि राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में भी नैतिक शासन का नियम काम करता है, और विजय न्याय तथा सत्य के पक्ष की ही होती है।

मालवीय के राजनीतिक विचार :

स्वामी विवेकानन्द तथा अरविन्द की भाँति मालवीय जी को भी हिन्दू संस्कृति की श्रेष्ठता में विश्वास था। वे राष्ट्रवाद की किसी ऐसी धारणा को स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं थे जो हिन्दू धर्म के आधारभूत नैतिक सिद्धान्तों के प्रतिकूल होती। किन्तु मालवीय जी का हृदय विशाल तथा उदार था, अली बन्धुओं (मो0 अली और शौकत अली) तक ने उनकी राजनीतिक कार्यप्रणाली की उदारता को स्वीकार किया था। वे इस पक्ष में नहीं थे कि देश में हिन्दुओं का आधिपत्य

* प्रोफेसर, राजनीति विज्ञान विभाग, का0हि0वि0वि0, वाराणसी।

हो। उनकी दृष्टि में सच्चे भारतीय राष्ट्रवाद की आवश्यकता यह थी कि जनता के सभी वर्गों के कल्याण और हितों का संवर्द्धन किया जाये। वे कहा करते थे कि, 'सब सम्प्रदाय के लोगों को एक महान् राष्ट्र के रूप में संयुक्त करने के लिए आवश्यक है कि देशभक्ति तथा भाईचारे की भावनाओं का परिवर्द्धन किया जाय।[3]

जीवन के प्रति मालवीय जी का दृष्टिकोण धार्मिक था।[4] उन्हें धर्म की जीवनदायिनी शक्तियों में हार्दिक विश्वास था। उनका कहना था कि धार्मिक नियमों, यमों और व्रतों का पालन करने से जो नैतिक प्रगति होती है वह भौतिक समृद्धि से अधिक सारयुक्त है। वे कर्तव्यपरायणता, भक्ति तथा समर्पण की धार्मिक भावनाओं को राष्ट्रीय महानता का साधन मानते थे। नैतिक मूल्यों की पवित्रता तथा आवश्यकता को उन्होंने गम्भीरता से हृदयंगम कर लिया था। वे महाभारत के इस उपदेश के अनुयायी थे कि स्थायी विजय धर्म के द्वारा ही प्राप्त की जा सकती है। उन्होंने विद्यालयों तथा विश्वविद्यालयों में धार्मिक शिक्षा देने का समर्थन किया।[5]

मालवीय को स्वतंत्रता तथा सांविधानिक कार्यप्रणाली में विश्वास था। उन्होंने निःसंकोच स्वीकार किया कि शिक्षित भारतवासियों द्वारा स्वराज्य की जो माँग की जा रही थी, वह अंग्रेजी साहित्य तथा ब्रिटेन के लोकतान्त्रिक दर्शन का प्रत्यक्ष परिणाम थी।[6] 1887 की काँग्रेस में भाषण देते हुए उन्होंने कहा था : ''जब हम यह माँग करते हैं कि राज्य की परिषदों में जनता के प्रतिनिधि जायें तो हम केवल उसी चीज की माँग कर रहे हैं जिसे यूरोप ही नहीं, अपितु अमरीका, आस्ट्रेलिया तथा लगभग सम्पूर्ण जगत ने एक स्वर से किसी देश के सुशासन के लिए अत्यन्त आवश्यक घोषित किया है, क्योंकि जहाँ जनता के प्रतिनिधियों को प्रशासन में भाग लेने दिया जाता है वहीं जनता की आवश्यकताओं, इच्छाओं, आकांक्षाओं और शिकायतों को उचित ढंग से प्रस्तुत किया जा सकता है।'' मालवीय जी अंग्रेज प्रशासकों को इस बात का स्मरण दिलाना चाहते थे कि वास्तव में उनके कर्तव्य और उद्देश्य का तकाजा क्या था। मालवीय जी ने 1919 में भारतीय विधान परिषद में रौलट विधेयक को पारित करने के विरूद्ध जो ऐतिहासिक भाषण दिया उससे स्पष्ट है कि वे वैयक्तिक स्वतन्त्रता के उत्कट समर्थक और पोषक थे।

तिलक की भाँति मालवीय जी उसी गम्भीर और व्यापक राजनीतिक हलचल से भली-भाँति अवगत थे जो रूस-जापान युद्ध के उपरान्त समस्त एशिया में उत्पन्न हो गयी थी। उन्होंने ब्रिटिश सरकार पर इस बात के लिए जोर डाला कि वह समय की गति को समझे और उससे सबक सीखे। उन्होंने कहा : ''इस देश की सरकार तथा जनता दोनों का हित इसी में है कि सरकार इस बात को समझ ले कि समय बदल गया है और जनता के मन पर एक नयी भावना ने आधिपत्य जमा लिया है। जापान ने, जो कुछ वर्ष पहले तक अनेक चीजों में भारत से भी अधिक पिछड़ा हुआ था, अब विश्व के राष्ट्रों के बीच प्रमुख स्थान प्राप्त कर लिया है। चीन भी अपना प्रमाद और निष्क्रियता त्याग कर उठ बैठा है। ईरान अपनी दीर्घ निद्रा से जाग गया है ..... क्या भारतवासियों के लिए उन अधिकारों तथा शक्तियों की माँग करना पाप है, जिनका उपयोग ब्रिटिश साम्राज्य के अन्य भागों में बसने वाले हमारे साथी प्रजाजन कर रहे? यदि यह पाप नहीं है तो क्या? इसकी कल्पना की जा सकती है कि उनकी आकाक्षाएँ उनकी युक्तिसंगत माँगों को उदारतापूर्वक स्वीकार किये बिना सन्तुष्ट की जा सकेंगी?''[7] 1907-1910 में मालवीय जी दादा भाई नैराजी से इस बात से सहमत थे कि स्वराज्य ही उन बुराईयों को दूर करने का मुख्य उपाय है जिनके शिकार भारतवासी दीर्घकाल से बने हुए हैं।

मालवीय जी ने स्वदेशी आन्दोलन का समर्थन किया।[8] 1906 में कलकत्ता में एक भाषण में उन्होंने कहा था : ''मैं इसको (स्वदेशी को) अपने देशवासियों के प्रति अपने धार्मिक कर्तव्य का ही एक अंग समझता हूँ। मैं इसे मानव जाति का धर्म और हम सबका विशिष्ट धर्म मानता हूँ, मानव जाति के धर्म की माँग है कि आप यथा सामर्थ्य स्वदेशी आन्दोलन को बढ़ावा दें। अपने किसी देशवासी द्वारा निर्मित वस्त्र को खरीदने में मुझे ऐसा लगा है और अभी भी लग रहा है कि मैं उसे जीवित रहने के लिए कम से कम एक कौर भोजन प्राप्त करने में सहायता दे रहा हूँ। हो सकता है कि सूत किसी बाहरी देश से आया हो किन्तु उसमें अपना जो श्रम लगाया है, उससे उसे लाभ का आधा, तिहाई अथवा कोई अंश अवश्य मिल जायेगा जिससे वह अपना और अपने आश्रितों का पेट भर सकेगा। जब आप देख रहे हैं कि आपके आसपास लोग इतना कष्ट भोग रहे हैं, देश का धन भारी राशि में बाहर जा रहा है, लोगों की आय इतनी कम और साधन इतने अल्प हैं, तो मैं कहूँगा कि प्रत्येक उदार भावनाओं वाले व्यक्ति का यह धार्मिक कर्तव्य है कि वह जहाँ कहीं भी देश में निर्मित वस्तुएँ मिल सके उन्हें विदेशी चीजों की तुलना में तरजीह देकर भारतीय उत्पादन को बढ़ावा दे, चाहे ऐसा करने में उसे कुछ त्याग क्यों न करना पड़े।[9]

मालवीय जी ने राष्ट्रीय पुनर्निर्माण के लिए एक व्यापक सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। उनका कहना था कि देश के नैतिक, बौद्धिक और आर्थिक साधनों का परिवर्द्धन करने के लिए राजनीतिक सुधारों के आन्दोलन के अतिरिक्त लोगों में लोक-कल्याण और लोक-सेवा की भावना उत्पन्न करना भी नितान्त आवश्यक है। उनका विचार था कि देश के विकास के लिए शैक्षिक तथा औद्योगिक कार्यकलाप भी जरूरी है।[10]

औद्योगिक आयोग (1916-18) के लिए जो स्मरण-पत्र तैयार किया था उसमें उन्होंने इस बात पर बल दिया था कि देश में यथोचित आधार पर उद्योगों का विकास किया जाय। उनका विश्वास था कि उद्योगों के लिए आवश्यक पूँजी प्रयत्न करने पर देश में ही एकत्र की जा सकती है। मालवीय जी ने शारीरिक विकास के कार्यों पर बल दिया। वे चाहते थे कि देश के राजनीतिक पुनर्निर्माण और प्रगति के लिए धार्मिक उत्साह और समर्पण की भावना से काम करना आवश्यक है।

गुरु गोविन्द सिंह जी ने जिस भक्ति-भावना से अपना काम किया और अपने अनुयायियों के साथ समानता का जो व्यवहार किया उससे मालवीय जी बहुत प्रभावित थे।[11]

20 फरवरी 1908 को आपने प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन में अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा था : ''मैं आपसे हार्दिक प्रार्थना करता हूँ कि आप ऐसे संगठनों का निर्माण करें जो वर्ष भर राजनीतिक कार्य चलाते रहें और सार्वजनिक हित की समस्याओं पर लोकमत को शिक्षित करने का प्रयत्न करते रहें। आप शिक्षा तथा औद्योगिक विकास के लिए संगठन बनायें और ऐसी संस्थाओं का निर्माण करें जो सहकारी आन्दोलन, पंचनिर्णय और शारीरिक शिक्षा को प्रोत्साहन दें। अन्त में, मैं आपसे यह स्मरण रखने की प्रार्थना करता हूँ कि जनता को वास्तविक सुख केवल भौतिक लाभों से ही प्राप्त नहीं हो सकता और वे सभी मनुष्य के प्रति उन शाश्वत कर्तव्यों का पालन करके उपलब्ध किये जा सकते हैं जो धर्म ने हमारे लिए निर्धारित किये हैं। यदि हम धार्मिक कर्तव्य की भावना से प्रेरित होकर कार्य नहीं करते तो हम जो भी काम करेंगे उनमें हमारी रुचि स्थायी नहीं होगी।''[12] मालवीय जी ने प्राविधिक शिक्षा को भी अत्यावश्यक बतलाया।

मालवीय जी को ईश्वर की सर्वव्यापकता में विश्वास था और इसी आधार पर उन्होंने आग्रह किया कि भारत में सर्वत्र स्वतन्त्रता, समानता तथा न्याय के सिद्धान्तों का अनुसरण किया जाना चाहिए। 1918 में दिल्ली काँग्रेस के अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने कहा था : ''मेरा निवेदन है कि आप पूरी शक्ति के साथ इस बात की माँग करने का संकल्प कर लें कि अपने देश में आपको भी अपने विकास की वे ही सुविधाएँ उपलब्ध होनी चाहिए जो इंग्लैण्ड में अंग्रेजों को मिली हुई है। आप संकल्प करें कि अपनी जनता में स्वतन्त्रता, समानता तथा भ्रातृत्व के सिद्धान्तों को फैलाने का प्रयत्न करें।

मालवीय जी आत्मनिर्णय के सिद्धान्त को मानते थे। 1918 की दिल्ली काँग्रेस में अपने अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने यह आशा व्यक्त की थी कि आत्मनिर्णय का सिद्धान्त भारत के लिए भी लागू किया जायेगा। मालवीय जी का आग्रह था कि हमें हमारा 'स्वराज्य का जन्मसिद्ध अधिकार' आत्मनिर्णय के सिद्धान्त को लागू करके तुरन्त ही प्रदान किया जाय। उनका कहना था कि अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों की न्यायोचित व्यवस्था को कायम रखने का यही एकमात्र उपाय है। भारत को अधिकार है कि वह बिना किसी बाहरी दबाव अर्थात् हस्तक्षेप के अपने राजनीतिक जीवन को अपनी इच्छानुसार चलाये।

मालवीय जी उग्र लोकतन्त्रवादी नहीं थे, वह यह नहीं चाहते थे कि राजनीतिक क्षेत्र में जनता सामूहिक रूप से उमड़ पड़े। अपने लाहौर कांग्रेस के अध्यक्षीय भाषण में उन्होंने धर्म तथा अहिंसा की धारणाओं के आधार पर आतंकवादियों तथा हिंसात्मक क्रान्तिकारियों की भर्त्सना की। उनकी भावना मौन्तेस्क्यू और जैफर्सन के सदृश थी। पण्डित मालवीय अपने समय के एक प्रतिष्ठित सार्वजनिक नेता थे। वे बुद्धिमान राजनीतिज्ञ तथा प्रकाण्ड विद्वान थे। वे अपने जीवन के अन्तिम क्षणों तक भारत की महानता के संवर्द्धन के लिए अथक परिश्रम करते रहे।''[13]

भारतीय राजनीतिक विचारों के इतिहास में मालवीय जी का मुख्य योगदान उनका व्यापक राष्ट्रवाद का सिद्धान्त है। स्टाइन, हार्डेनबुर्ग, गेटे और फिख्टे की भाँति मालवीय जी संस्कृति को राष्ट्रवाद का आधार मानते थे। प्राचीन भारत की सांस्कृतिक उपलब्धियों के लिए उनके मन में गहरी श्रद्धा थी, साथ ही साथ उन्हें देश की भावी प्रगति और सृजनात्मक शक्तियों में भी विश्वास था। वे शुद्ध भौतिकवादी अथवा ऐहिकवादी राष्ट्रवाद का समर्थन नहीं कर सकते थे। वे हिन्दू संस्कृति पर आधारित राष्ट्रवाद के सिद्धान्त को मानते थे, किन्तु साथ ही साथ वे देश के अन्य सम्प्रदायों के प्रति निरपेक्षतः उदार तथा न्यायोचित व्यवहार करने के पक्ष में थे।

सन्दर्भ

1. Speeches & Writing of Pandit Madan Mohan Malaviya (मद्रास, जी0 ए0 नटेसन एण्ड कम्पनी, 1919), पृ0 119
2. डॉ0 विश्वनाथ प्रसाद वर्मा, आधुनिक भारतीय राजनीतिक चिन्तन, प्रकाशन-लक्ष्मी नारायण अग्रवाल, आगरा, 2009, पृ0 423
3. Speeches and Writings, p. 119
4. लाहौर काँग्रेस में दिया गया अध्यक्षीय भाषण, Speeches and Writings, p. 101
5. Speeches and Writings, p. 26
6. लाहौर काँग्रेस में दिया गया अध्यक्षीय भाषण (1909)
7. Life and Speeches, p.107
8. मालवीय जी ने कुछ उद्योगों को संरक्षण देने का समर्थन किया। अपने मत की पुष्टि करने के लिए उन्होंने जॉन स्टुअर्ट मिल, बिस्मार्क तथा रुस के वित्तमंत्री काउण्ड डेविट को उद्धृत किया। Life and Speeches, p. 414-25
9. Life and Speeches, p.414
10. भारतीय औद्योगिक आयोग (हॉलैण्ड आयोग, 1911) की रिपोर्ट पर मालवीय जी की टिप्पणी (मद्रास, जी0 ए0 नटेसन एण्ड कम्पनी, 1918), पृ0 369
11. Life and Speeches, p.621
12. Life and Speeches, p.148
13. लाला लाजपत राय ने 26 जुलाई 1925 को The People में प्रकाशित अपने 'My Political Creed' नामक लेख लिखा था : ''मेरे लिये देश महात्मा गाँधी तथा मालवीय जी दो महानतम् विभूतियाँ हैं। मैं उनसे जितना प्रेम और उनकी जितनी श्रद्धा करता हूँ उतनी निजी अथवा सार्वजनिक जीवन में किसी की नहीं करता।''

◆

पं0 मदन मोहन मालवीय के शिक्षा-दर्शन की प्रासंगिकता

प्रो0 देवव्रत चौबे *

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय महामना मालवीयजी की दूरदर्शिता और भावी स्वतन्त्र भारत के निर्माण का सबसे बड़ा स्मारक है। उनके शिक्षा-दर्शन का यह सर्वाधिक जीवन्त निदर्शन है। इसीलिए महात्मा गाँधी ने कहा है कि- ''काशी विश्वविद्यालय के मालवी जी प्राण हैं, काशी विश्वविद्यालय मालवी जी का प्राण है।''[1] यह विश्वविद्यालय देश की जनता के लिए था इसलिए जनता की आकांक्षा और देश की आवश्यकताओं के अनुरूप महामना ने शिक्षा की व्यवस्था की। उन्होंने उपाधि बाँटने के लिए इसकी स्थापना नहीं की थी। इस विश्वविद्यालय का मुख्य उद्देश्य यह था कि यहाँ के विद्यार्थी स्रष्टा के प्रति कृतज्ञ रहें और सच्चे देशभक्त बनें।

महामना तकनीकी एवं व्यावसायिक शिक्षा के विशेष पक्षधर थे, क्योंकि वे चाहते थे कि विभिन्न कलाओं और विज्ञानों की शिक्षा प्राप्त करके हमारे देश के युवक देश को स्वावलम्बी और आत्मनिर्भर बना सकें। विश्वविद्यालय के निम्नांकित ध्येय अविस्मरणीय हैं।

1. हिन्दू-शास्त्र तथा संस्कृत भाषा के अध्ययन की वृद्धि, जिसके द्वारा भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता में जो कुछ भी श्रेष्ठ और महत्वपूर्ण था उसका तथा हिन्दुओं की प्राचीन संस्कृति तथा भावनाओं की रक्षा और मुख्यतः हिन्दुओं में और सार्वजनिक रूप से सर्वसाधारण में प्रचार हो सके।
2. कला और विज्ञान की सर्वतोन्मुखी शिक्षा तथा अन्वेषण की वृद्धि।
3. आवश्यक प्रयोगात्मक ज्ञान के साथ-साथ विज्ञान, शिल्पादि कला-कौशल तथा व्यवसाय–सम्बन्धी ऐसे ज्ञान की वृद्धि, जिससे देशीय व्यवसाय तथा धन्धों की उन्नति हो।
4. धर्म और नीति को शिक्षा का आवश्यक अंग मानकर या अखण्ड भाग बनाकर युवकों में सदाचार का सङ्घटन या चरित्र-निर्माण का विकास करना।[2]

महामना के उपर्युक्त उद्देश्यों से हम इस निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि वे एक ऐसी शिक्षा पद्धति के पक्षधर हैं जिससे देश का समग्र विकास हो एवं देश की पारंपरिक निजता भी बनी रहे। दूसरे शब्दों में हम यह भी कह सकते हैं कि वे विद्यार्थियों को धर्म, अर्थ, एवं काम-इन तीनों पुरुषार्थों से संपन्न बनाने वाली शिक्षा के पोषक थे।

महामना वैज्ञानिक एवं तकनीकी शिक्षा को पश्चिमी ढाँचे पर खड़ा करना नहीं चाहते थे। वे उसे भारतीय परंपरा एवं संस्कृति की नींव पर विकसित करना चाहते थे, क्योंकि दसवीं सदी के पूर्व यह देश धातुकी, औषधि-विज्ञान, ज्यामिती, खगोलशास्त्र आदि के क्षेत्रों में बहुत ऊँचाई पर था। उन्हीं के शब्दों में- ''भारतवर्ष, जो एक समय भूमण्डल में सच्ची उन्नति के शिखर पर चढ़ा हुआ था और जिसकी कि हम लोग महिमा गाते हैं और अपने भविष्य की उन्नति के लिए अपने देशवासियों को उत्तेजित करने के निमित्त उसी का स्मरण दिलाते हैं; जिसके विज्ञान, दर्शनशास्त्र और साहित्य से पाश्चात्य विद्वानों की भी बुद्धि चक्कर खाने लगती है, वह अपने ज्ञान और विचारों की उत्कृष्टता के कारण ही ऐसी उन्नत अवस्था को पहुँचा था।''[3] इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे युवकों-युवतियों को पश्चिमी ज्ञान-विज्ञान से अनभिज्ञ रखना चाहते थे।

इस लेख में मुख्य रूप से हमें इस प्रश्न पर विचार करना है कि इक्कीसवीं सदी की समस्याओं का समाधान क्या महामना के चिन्तन से मिल सकता है? इसके लिए आवश्यक है कि इस सदी की समस्याओं से पहले हम अवगत हों। आज के समय को कुछ विचारक उत्तर आधुनिक युग के नाम से अभिहित करते हैं। इस युग में तकनीकी का विकास तीव्र गति से हो रहा है। तकनीकी ही शिक्षा के केन्द्र में है। क्योंकि इस युग के विचारकों के अनुसार बिना तकनीकी ज्ञान के द्वारा कोई भी देश शक्तिशाली नहीं हो सकता। ल्योटार्ड जैसे विचारक ज्ञान को उसकी उत्पादन क्षमता से जोड़ते हैं। उनका कहना है कि ज्ञान स्वान्तः सुख के लिए नहीं होता। जैसे ही कोई तकनीकी आती है, त्योंही यह प्रश्न उठने लगता है कि इसकी उपयोगिता है कि नहीं? बाजार के लिए यह लाभकारी होगी या नहीं? ल्योटार्ड का कहना है कि ज्ञान लाभ के लिए है। ज्ञान और सूचना स्वयं में एक वस्तु है। इसलिए हम वस्तु नहीं खरीदते, ज्ञान खरीदते हैं।

इस सदी में ऐसे-ऐसे सूक्ष्म यंत्र और ज्ञान के साधन विकसित हो रहे हैं जो अकल्पनीय हैं। विनाश की अभूतपूर्व शक्तियों से संपन्न अस्त्रों की रचना हो रही है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी की कोख से केवल रत्न ही नहीं, जहर भी पैदा हो रहा है। यह जहर जल, पृथ्वी एवं आकाश में फैल रहा है। डेरिडा ने अपने एक साक्षात्कार में कहा है कि- ''आतंकी हमलों के लिए अब किसी हवाई जहाज या बम की जरूरत नहीं है। देश के आर्थिक, सैनिक और राजनैतिक संसाधनों को तहस-नहस करने में सक्षम किसी वाइरस या इसी तरह के तत्व को सिस्टम में प्रवेश करा देना भर काफी होगा।''[4] सभी तरह की नैनो प्रौद्योगिकियाँ नियंत्रण से बाहर कहीं भी घुस जाने में सक्षम हैं। कुछ वैज्ञानिक अब यह स्वीकार करने लगे हैं कि रोबोट एक न एक दिन मानव की आज्ञाओं को अस्वीकार कर मानव-जाति का ही विनाश कर देंगे। सेटेलाइट से निकलने वाली असंख्य विद्युत्-तरंगों के कारण न जाने कितने नभचर प्राणियों का अस्तित्व खतरे में आ गया है। रासायनिक खादों एवं कीटनाशकों ने धरती को विषाक्त बना दिया है।

* दर्शन एवं धर्म विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

कृषि जीवन-पद्धति न रहकर व्यापार बन गयी है। अब धरती को माता न मानकर केवल भौतिक पदार्थ समझकर उसका दुरुपयोग किया जा रहा है। आणविक अस्त्रों के परीक्षण से वातावरण भयावह बना हुआ है। भोगवादी शिक्षा ने मानव-जाति को यही तोहफे दिए हैं।

ऐसी भयावह परिस्थिति में क्या महामना का शिक्षा दर्शन कोई दिशा दे सकता है जो न केवल भारत अपितु पूरे विश्व के लिए मार्गदशक हो? महामना के शिक्षा के उद्देश्यों का उल्लेख पहले ही किया जा चुका है। इस संदर्भ में यहाँ यह बतलाना आवश्यक है कि महामना के शिक्षा के केन्द्र में धर्म है, तकनीकी नहीं। वे धर्म की भित्ति पर विज्ञान, तकनीकी आदि को खड़ा करना चाहते थे क्योंकि धर्म से ही विद्या, रूप, धन, शौर्य, वीरता, कुलीनता, आरोग्य, राज्य, स्वर्ग और मोक्ष सब प्राप्त होते हैं।[5]

जैसा कि पहले ही यह बतलाया जा चुका है कि महामना वैज्ञानिक एवं तकनीकी विषयों की शिक्षा पर विशेष बल देते थे, क्योंकि बिना इन विषयों के ज्ञान हुए देश समृद्ध नहीं हो सकता। चूँकि वे स्वदेशी के पक्षधर थे इसलिए वैज्ञानिक एवं तकनीकी ज्ञान को देशी परिप्रेक्ष्य में ही बढ़ाना चाहते थे। वे औद्योगिकी विकास देशी ढंग से करना चाहते थे। उनका यह मानना था कि देशी वस्तुओं की मांग तभी बढ़ेंगी जब वह सुन्दर एवं सस्ती होंगी। ऐसा तभी संभव है जब हम बड़े-बड़े उद्योगों की स्थापना करेंगे। उन्हीं के शब्दों में- ''यदि देशी चीज सदा मोटी बनती रही और महंगी बिकती रही, तो लोग बहुत दिनों तक उसको न खरीदेंगे। अन्त में जो चीज सस्ती और सुन्दर मिलेगी, उसी को खरीदेंगे। इसलिए हमें ऐसा यत्न करना चाहिए जिससे हम न केवल चीजों की उपज बढ़ा सकें, वरन् उनके रूप में सुन्दरता भी ला सकें और उनको सस्ती भी बेच सकें। जब तक बड़े-बड़े कारखाने न खोले जाएँगे, तब तक सस्ती और अच्छी चीजें न मिल सकेंगी। इनके लिए शिक्षित, प्रवीण, देश-हितैषी और परिश्रमी जनों की आवश्यकता है।''[6] औद्योगिक एवं तकनीकी विकास में महामना देशहित को सर्वोपरि रखते थे। पश्चिमी अंधानुकरण के विरोधी थे। देश को समग्र दृष्टि से विकसित करना चाहते थे। उनके अनुसार केवल भौतिक विकास से ही कोई देश समृद्ध नहीं हो जाता, आध्यात्मिक विकास भी आवश्यक है। उनका कहना था कि हमारा प्राचीन भारत विकास के शिखर पर था क्योंकि श्रेय और प्रेय दोनों को समन्वित करके चलता था। महामना के शब्दों में- ''हमारी प्राचीन शिक्षा-पद्धति, जो सांसारिक तथा आध्यात्मिक शिक्षा का मधुर समन्वय है- धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष, चारों ध्येयों की प्राप्ति के लिए प्रयत्न करती है।''[7] यदि इन चारों ध्येयेां को ध्यान में रखकर विज्ञान, तकनीकी का विकास होगा तो आज हमारे सामने वे समस्याएँ नहीं आएँगी जो आज उपस्थित हैं।

आज का विज्ञान एवं तकनीकी अर्थ और भोग के पीछे भाग रहा है इसलिए संसार पर्यावरण से लेकर अन्य कई विपदाओं से घिरा हुआ है। यदि महामना की समन्वयवादी शिक्षा नीति को लेकर हम चलेंगे तो कोई भी विपदा किसी भी देश में नहीं आएगी। महामना की यह सोच है कि तकनीकी एवं औद्योगिक विकास, कृषि विकास या अन्य कोई भी विकास अपने देश के स्वास्थ्य एवं प्राकृतिक संसाधनों को ध्यान में रखकर होना चाहिए। यदि ऐसी दृष्टि को लेकर हम चलेंगे तो समस्याओं से विरत रहेंगें।

इस सदी के वैज्ञानिक एवं तकनीकी विशेषज्ञ प्रकृति को भोग्या मानकर उसका दोहन कर रहे हैं। लेकिन महामना के लिए इस सृष्टि में ईश्वर व्याप्त है। उन्हीं के शब्दों में- ''इस बात को स्मरण रक्खो कि वह परमात्मा, जिसे हम ब्रह्म अथवा ईश्वर कहते हैं, इस संपूर्ण जीवधारी सृष्टि में उसी प्रकार वर्तमान है, जैसे मुझमें या आपमें।''[8] वे इसी आदर्श से ओत-प्रोत वैज्ञानिक एवं इंजीनियर पैदा करना चाहते थे। ऐसे आदर्शों से युक्त व्यक्ति द्वारा किया गया अनुसंधान प्राणिमात्र के लिए कितना उपादेय होगा, यह अवर्णनीय है।

महामना मालवीय जी को केवल औद्योगिक विकास में ही लोगों का सुख एवं वैभव नहीं दीखता है। किसी राष्ट्र के विकास का यह मापदण्ड भी नहीं है।[9] वे इसके लिए भौतिक विकास की अपेक्षा नैतिक विकास को आवश्यक मानते हैं।[10] इतना ही नहीं, वे यह भी कहते थे कि बिना पारस्परिक विश्वास एवं निष्ठसहयोग के औद्योगिक समृद्धि नहीं प्राप्त की जा सकती। ये गुण केवल उन्हीं व्यक्तियों के मध्य स्थायी एवं प्रबल रूप से विद्यमान रहते हैं जो अपने व्यवहार में ईमानदार, उचित निष्ठा के प्रेक्षण में कठोर और सत्य के प्रति दृढ़ होते हैं। ऐसे लोग सामान्य रूप से उसी समाज में मिलते हैं जिस समाज में सर्वश्रेष्ठ धर्म जीवन्त शक्ति के रूप में सक्रिय रहता है।[11] सर्वश्रेष्ठ धर्म से संचालित समाज में ही औद्योगिक समृद्धि के द्वारा लोगों में समरसता, सुख एवं वैभव प्राप्त हो सकते हैं। ऐसे समाज में ही उद्योग अपने लक्ष्य को प्राप्त कर समस्त मानव-जगत् का कल्याण करते हैं। औद्योगिक विकास उसी समाज में असमानता एवं विकृतियाँ पैदा करता है जिस समाज के लोग भोग को ही अपने जीवन का लक्ष्य समझते हैं। केवल भोग मानव और प्रकृति के बीच असंतुलन पैदा कर देता है। इसलिए मालवीय जी कहते हैं- ''नीति के विरुद्ध विषय-भोग का सुख, स्थायी नहीं होता है और परिणाम उसका विष से भी अधिक कड़वा होता है।''[12]

मालवीय जी उन पश्चात्-आधुनिकतावादी विचारकों के इस मत से सहमत हैं कि धन से ही सुख होता है। लेकिन उनका यह भी कहना है कि केवल धन की उन्नति दोष भी पैदा करती है। मालवीय जी के शब्दों में- ''हम चाहते हैं कि जिस प्रकार चीनी की चाशनी में दूध के छींटे डालकर उसके मैल को काटते और उसको पवित्र करते हैं, उसी प्रकार केवल धन की उन्नति के दोषों से अपने देश-बान्धवों को बचाने और उनको मनुष्यत्व के पूरे महत्व को पहुँचाने के लिए उनकी सबसे उत्कृष्ट आध्यात्मिक उन्नति भी हो, जिसके द्वारा वे और-और जातियों को भी आध्यात्मिक उन्नति के पथ में अपने साथ लेकर समस्त संसार का असीम उपकार करें।''[13] तकनीकी, कम्प्यूटर और व्यावसायिक

शिक्षा देश की उन्नति में सहायक होते हुए भी नाना प्रकार की विकृतियों से ग्रसित हैं जिसकी भयावह स्थिति का वर्णन ऊपर किया जा चुका है। इसलिए मालवीय जी कहते हैं कि इनकी विकृतियों को अध्यात्म के द्वारा ही दूर किया जा सकता है। आध्यात्मिक उन्नति ही विश्वकल्याण करने में सक्षम है।

महामना ल्योटार्ड के इस मत से सहमत नहीं है कि ज्ञान बेचने के लिए होता है। वही ज्ञान मूल्यवान् है जिसकी उपयोगिता बाजार में है। मालवीय जी अपने विद्यार्थियों को बताते थे कि शील और देशप्रेम से रहित ज्ञान निरर्थक है। वे कहते थे- '"शीलं प्रधानं पुरुषे'- शील ही मनुष्य में प्रधान है, 'शीलं परं भूषणम्'- शील ही मानव का सबसे उत्तम भूषण है। उनकी शिक्षा थी कि चरित्र ही मनुष्य को ऊँचा उठाता है, शील सम्पन्न विद्वान् ही अपने जीवन का समुचित उत्कर्ष तथा समाज की ठोस सेवा कर सकता है।"[14] वे उस ज्ञान को महत्व देते हैं जो जीवन को सादा और उच्च आदर्श की ओर प्रेरित करता हैं। प्राचीन ऋषियों की तरह वे आदर्श मूल्यों को ही ज्ञान कहते थे। उनका विद्यार्थियों से यह भी कहना है : "शास्त्र और शस्त्र, बुद्धिबल और बाहुबल, दोनों का उपार्जन करो।"[15] महामना केवल शास्त्र ही नहीं शस्त्र का भी ज्ञान देना चाहते थे, केवल बुद्धिबल ही नहीं अपितु बाहुबल से भी संपन्न करना चाहते थे। यहाँ ध्यान देने योग्य यह है कि शस्त्र का ज्ञान वे संसार के संहार के लिए नहीं अपितु दुखित-त्रस्त लोगों की रक्षा के लिए देना चाहते थे, निरपराधों के ऊपर प्रहार करने के लिए नहीं।[16] वे दैवी अस्त्रों के समर्थक थे, आसुरी अस्त्रों के नहीं। दैवी अस्त्र रक्षक होता है, आसुरी अस्त्रों की तरह भक्षक नहीं। आज दुनिया भक्षक अस्त्रों के निर्माण में अरबों-खरबों रुपए खर्च कर रही है। अणु शस्त्रों से दुनिया पट गयी है। राजसिक गुणों का प्राबल्य कभी भी दुनिया के अस्तित्व को मिटा सकता है। परमाणु युद्ध कभी भी मानव सभ्यता का अंत कर सकता है।

प्रथम विश्वयुद्ध के बाद से ही योरोप अपनी शिक्षा पद्धति को लेकर चिन्तित होने लगा। मालवीय जी के अनुसार, "योरोप अपने वर्तमान पथ को सशंकित दृष्टि से देखता है। क्योंकि जिस मार्ग का वह स्वयं अनुसरण कर रहा है, वह उस भयानक युद्ध को न रोक सका, जिसके परिणामस्वरूप स्वयं सभ्यता के ही अस्तित्व पर भारी आघात पहुँचा था।"[17] दूसरे विश्वयुद्ध में तो आणविक अस्त्रों का ही इस्तेमाल हुआ था। अब तो हिरोशिमा और नागासाकी को तहस-नहस करने वाले बमों से हजार गुना शक्तिशाली बम से पृथ्वी पट गयी है। विध्वंस के विभिन्न ढंगों का आविष्कार हो रहा है। तमाम ज्ञान विनाश को सुनिश्चित करने पर लगे हुए हैं। इसलिए मालवीय जी विद्यार्थियों से कहते हैं- "हिन्दू विश्वविद्यालय की संस्थापना तुम्हारे भीतर शारीरिक बल के साथ धर्म की ज्योति और ज्ञान का बल भरने के लिए हुई है, इसे सदैव स्मरण रखो।"[18] वे 1929 ई0 में हुए अपने दीक्षान्त भाषण में कहते हैं- "दूसरों के प्रति कोई भी ऐसा आचरण न करो जिसे तुम अपने प्रति किए जाने पर अप्रिय समझते हो, जो कुछ तुम अपने प्रति चाहते हो, वैसा ही तुम्हें दूसरों के प्रति भी करना आवश्यक है।" वे ज्ञान और आचरण दोनों के समन्वय के पोषक थे। यह सूत्र उनको भारतीय ऋषियों की अन्तर्दृष्टि से मिला है।

महामना मालवीय जी मूल्यपरक शिक्षा के द्वारा ऐसे विद्यार्थियों का निर्माण करना चाहते थे जो मनुष्य के बीच भ्रातृत्व की भावना का विकास करें। वे उनके अन्दर सहनशीलता, क्षमा तथा निःस्वार्थ सेवा की भावना भरना चाहते थे। वे विद्यार्थियों से कहते थे- "अपने देशवासियों से प्रेम करो तथा उनमें एकता का विकास करो।"[19] विद्यार्थियों के लिए उनका सबसे महत्वपूर्ण संदेश था :-

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्याऽत्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव॥

सत्य से, ब्रह्मचर्य से, व्यायाम से, विद्या से, देशभक्ति से और आत्मत्याग से सदा आदर के योग्य बनो। वे चाहते थे कि इस विश्वविद्यालय से निकलने वाला प्रत्येक विद्यार्थी बलवान्, चरित्रवान्, देशभक्त, विद्वान् और ईश्वरभक्त हो।

उत्तर आधुनिक युग के कुछ विचारक धर्म, दर्शन, साहित्य, कला आदि के प्राचीन मूल्यों से संचालित समाज को अविकसित और पिछड़ा समाज मानते हैं। उनका कहना है कि तकनीकी, संचार, कम्प्यूटर विज्ञान वाला समाज ही असली समाज है। पश्चात्-आधुनिकतावाद में कल्पना, यौनाचार, अलगाव, विभाजन, अबौद्धिकता जैसी हाशिए पर रहने वाली अवधारणाओं को ही स्थान दिया जाता है।[20] महामना के शिक्षा दर्शन में धर्म, दर्शन, साहित्य एवं प्राचीन मूल्यों को विज्ञान और तकनीकी की अपेक्षा अधिक मूल्यवान् माना गया है। धर्म और दर्शन के बिना विज्ञान और तकनीकी अंधे हो जाते हैं। जो समाज स्थायी सुख को लेकर चलना चाहता है उसे धर्म को लेकर चलना पड़ेगा। उनके दर्शन में यौनाचार को नहीं, ब्रह्मचर्य को, अलगाव को नहीं, एकता को, अबौद्धिकता को नहीं, बौद्धिकता को शीर्ष पर रखा गया है। वे प्राचीन एवं नवीन के समन्वय द्वारा एक ऐसा समाज बनाना चाहते हैं जहाँ किसी भी प्रकार का ताप न हो।

संसार आज अति-यांत्रिकीकरण के कारण नाना प्रकार के दुःखों से घिरता जा रहा है। पश्चिमोन्मुख उपभोक्तावादी रंग में सभी बहे जा रहे हैं। ऐसी परिस्थिति में मालवीय जी के चिन्तन की ओर लौटना क्या हमारे लिए श्रेयस्कर नहीं होगा?

सन्दर्भ

1. प्रज्ञा : महामना स्मृति अंक; अंक 39-41 (भाग 1-2), काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वर्ष 1993-96, 'महामना का अभिवादन' विलायत जाते हुए 7.9.31.
2. सीताराम चतुर्वेदी : महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय, (उनकी पचहत्तरहवीं वर्षगाँठ के उपलक्ष्य में), 14 दिसम्बर सन् 1929 को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के बारहवें उपाधि-वितरण महोत्सव के अवसर पर मालवीय जी के दीक्षान्त भाषण से उद्धृत; काशी, संवत् 1993

3. पद्मकान्त मालवीय (संपादक) : मालवीय जी के लेख, पृ0 169, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1962
4. विश्वनाथ प्रसाद तिवारी (संपादक) : दस्तावेज 125, पृ0 10; वर्ष : 32, अंक 1, अक्टूबर-दिसम्बर 2009, बेतियाहाता, गोरखपुर।
5. सनातनधर्म साप्ताहिक, वर्ष 2, अंक 1, तारीख 17 जुलाई, 1934 ई0।
6. पद्मकांत मालवीय, पृ0 87
7. सीताराम चतुर्वेदी : महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का दीक्षान्त भाषण, सन् 1920
8. दीक्षान्त भाषण, 1929
9. एस.एल.दर एवं एस्. सोमस्कन्दन् : हिस्ट्री ऑफ द बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, पृ0 131, बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, 2007
10. वही, पृ0 131
11. वही, पृ0 131
12. पद्मकान्त मालवीय, पृ0 3
13. वही, पृ0 5
14. मुकुट बिहारी लाल : महामना मदन मोहन मालवीय- जीवन और नेतृत्व, पृ0 161, मालवीय अध्ययन संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1978
15. सीताराम चतुर्वेदी, द्वितीय खण्ड, पृ0 15
16. पद्मकान्त मालवीय, पृ0 163
17. दीक्षान्त भाषण, 1920
18. सीताराम चतुर्वेदी : महामना पण्डित मदनमोहन मालवीय, द्वितीय खण्ड, पृ0 15
19. दीक्षान्त भाषण, 1929
20. नित्यानन्द मिश्र : समकालीन पाश्चात्य दर्शन, पृ0 248, मोतीलाल बनारसीदास, वाराणसी, 2007

◆

पं0 मदन मोहन मालवीय के चिन्तन की प्रासंगिकता का प्रश्न

प्रो0 कौशल किशोर मिश्रा *

पं0 मदन मोहन मालवीय की 150वीं वर्षगाँठ पर भारत में उनके चिन्तन का मूल्यांकन हो रहा। जवाहर लाल नेहरू विश्वविद्यालय के मार्क्सवादी विद्वानों ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलगीत और महामना के चिन्तन की प्रासंगिकता का प्रश्न उठाया। महामना का चिन्तन 21वीं शताब्दी के भूमण्डलीकरण के युग में प्रासंगिक नहीं है। प्रश्न यह उठाया गया कि देशव्यापी भ्रष्टाचार और अपराधीकरण की समस्या से जूझने के लिए महामना का चिन्तन कितना प्रासंगिक है? वर्तमान भौतिकतावादी, विज्ञान और तकनीकी के युग में महामना का धर्म और नैतिकता का ज्ञान कितना उपयोगी है? देश ही नहीं, पूरा विश्व मानवाधिकार के प्रश्न से जूझ रहा। महामना के चिन्तन में मानवाधिकार का प्रश्न कहाँ है? देश में विकास का (Development) प्रश्न है। विकास के प्रति महामना की क्या दृष्टि थी? देश और दुनियाँ में आतंकवाद और हिंसा का खतरा बढ़ा है। महामना हिंसा और आतंकवाद पर बात कहाँ करते हैं? क्या महामना महिला अधिकारों के समर्थक थे? महामना भारत के सनातन मूल्यों के प्रति अटूट श्रद्धा रखते थे। भारत के सनातन प्राचीन मूल्यों को क्या आज स्वीकार किया जाना चाहिए? भारत में पश्चिम के अन्धानुकरण की प्रवृत्ति बढ़ी है। हर आदमी पश्चिमी बनने को उतावला है। पश्चिमीकरण और भारतीयकरण के मध्य हो रहे 'सभ्यता-संघर्ष' में महामना कहाँ खड़े हैं? भारत में 'बहुसंस्कृतिवाद' (Multi Culturism) जैसे चिन्तन का ढिंढोरा पीटा जा रहा है। इस नव-चिन्तन पर महामना का क्या दृष्टिकोण था? देश और दुनिया में पर्यावरण का संकट बढ़ रहा। इस पर राजनीति भी हो रही। आधुनिक रूप में इसे 'हरी राजनीति' (Green-Politics) कहा जा रहा है। व्यष्टि और समष्टि के मध्य समन्वय में महामना के विचार कितने प्रासंगिक हैं? भारत में सभ्य-समाज (Civil Society) और सुशासन (Good Governance) की बात होती है। क्या महामना का इस भी कोई दृष्टिकोण था? आधुनिक युग के 'व्यावसायिक शिक्षा' के बारे में महामना ने आखिर क्या कहा? जीवन की मूलभूत आवश्यकताएँ 'रोटी-कपड़ा-मकान' सबको सुलभ करने में महामना का क्या चिन्तन था? ये सभी प्रश्न आधुनिक हैं। महामना के समग्र चिन्तन से इन प्रश्नों का उत्तर खोजने पर ही महामना के चिन्तन की प्रासंगिकता के प्रश्न का उत्तर मिल सकता है। महामना के चिन्तन को परखने की सकारात्मक दृष्टि होनी चाहिए। जिनके पास साफ दृष्टि नहीं, खिचड़ी दृष्टि होगी, वे महामना पर आरोप लगा सकते हैं। जिनके पास निर्लिप्त और यथार्थ दृष्टि है, वे महामना के चिन्तन से प्रश्नों का समाधान खोजते हैं।

वर्तमान भारत की सबसे बड़ी समस्या भ्रष्टाचार है। भ्रष्टाचार अर्थात् भ्रष्ट-आचरण, अर्थात् धर्महीन कार्य देश, समाज और स्वयं के लिए भी घातक है। भारत कोयले से सोना, सोना से सेना तक भ्रष्टाचार की कहानियों से आबद्ध है। कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका में भ्रष्टाचार या धर्महीनता पसरी पड़ी है। सिपाही से लेकर साहब तक, मंत्री से संतरी तक सभी अधर्म के रास्ते से धन के एकत्रीकरण में लिप्त हैं। जयप्रकाश नारायण और अन्ना हजारे जैसे संतों को भ्रष्टाचार के विरुद्ध देश बचाने के लिए संघर्ष करना पड़ा है। क्या अधूरी सम्पूर्ण क्रान्ति या जनलोकपाल से भ्रष्टाचार या धर्मविरुद्ध आचरण का समूल नाश किया जा सकता है? संकट भ्रष्ट आचरण या धर्महीनता का नहीं है, संकट है चरित्र-दोष का। मनुस्मृति कहती है–

एतद्देशप्रसूतस्य शकाशादाग्रजन्मनः।
स्वं स्वं चरित्र शिक्षेरन पृथिव्यां सर्व मानवाः॥

भारत के लोगों का आविर्भाव दुनियाँ के लोगों को चरित्रवान और शिक्षित बनाने के लिए हुआ। क्या भारत के लोगों का चरित्र इतना पवित्र या उत्तम रह गया है कि वे दुनियां के लोगों को चरित्रवान बना सकें? स्पष्ट है कि भारत में भ्रष्टाचार भारतीयों के चरित्र में गिरावट का परिणाम है। 'सत, रज और तम' की परम्परा में भारतीय 'सत् और रज' के परिणाम नहीं 'तम' के ही परिणाम बन के रह गये हैं। सैकड़ों वर्षों की पराधीनता 'तम' युक्त चरित्र का प्रतिफल था। भ्रष्टाचार को केवल आर्थिक दृष्टिकोण से देखना अधूरी सोच है। जीवन के हर क्षेत्र में भ्रष्ट आचरण और धर्महीनता का भाव है। जीवन की मौलिकता लगभग लुप्त हो रही है। भारतीय जीवन लगभग 'खिचड़ी-संस्कृति' का पर्याय बनता जा रहा है। ऐसा लगता है कि पाखंड, अहंकार, स्व-स्वार्थ, करुणहीनता और क्षमाहीनता के वातावरण में कुछ वर्षों में मौलिक भारतीय व्यक्तित्व का मिलना दूभर हो जायेगा। शुद्ध, पवित्र और सार्वभौमिक भारतीय व्यक्तित्व की कमी होना भ्रष्टाचार का मूल कारण है। पुरुषार्थ अर्थात् धर्म, अर्थ, काम के समन्वय का न होना भ्रष्ट आचरण को प्रेरित करता है। इस समन्वय के अभाव में 'मोक्ष' अर्थात् व्यक्तित्व की ऊँचाई की निस्पृहता नहीं दिखाई पड़ रही। स्वतंत्र भारत में विवेकानन्द, अरविन्द, गाँधी, महामना, सावरकर, तिलक, तुलसी, कबीर जैसे व्यक्तित्व क्यों नहीं उभर पा रहे? इसका कारण है कि पारिवारिक स्तर पर ही उदार मौलिक भारतीयता के मूल्यों के प्रशिक्षण के स्थान पर 'एन-केन-प्रकारेण अकूत सम्पत्ति' के एकत्रीकरण का भाव घर करता जा रहा। आगे चल कर यह भारतीय व्यक्तित्व को भ्रष्ट बना दे रहा है। शुचिता और समर्पण का आरोपण परिवार से होता है और परिवार भू-मण्डलीकरण अथवा वैश्वीकरण के पाखंड प्रभाव में दुःषित हो रहा। भारतीय व्यक्तित्व परिवार, समाज से संस्कारित होता हुआ आगे बढ़ता है। जब परिवार और समाज भ्रष्ट है तो भ्रष्टाचार के उन्मूलन की बात बेमानी है।

* राजनीति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

दुर्गासप्तशती के पाँचवें अध्याय में एक मंत्र है– ''ततो देवा विनूर्धूता, भ्रष्ट राज्या पराजिताः।'' अर्थात् भ्रष्ट राज्य पराजित हो जाता है। भ्रष्ट राज्य का निहितार्थ यह है कि राज्य के सभी क्षेत्रों में भ्रष्ट आचरण, धर्महीनता, कर्तव्यहीनता, लोलुपता और स्व-स्वार्थ के भाव का प्रसार। राजनीतिक नेतृत्व, राजनैतिक-संवैधानिक संस्थाएँ, न्यायपालिका और न्यायिक प्रक्रियाएँ, राजनीतिक दल, राजनैतिक समूह आदि में क्या शुचिता का भाव है? क्या भ्रष्ट-आचरण का प्रसार नहीं है? तो क्या यह मान लेना चाहिए कि आधुनिक भारतीय राज्य भ्रष्ट राज्य में परिणत होता जा रहा? क्या इसे पराजित होना है? भारत की भूमि वीरों की रही। यहाँ धन-पूजा नहीं शास्त्र पूजा की परम्परा रही। शस्त्र और शास्त्र अर्थात् वीरता और ज्ञान अर्थात् विद्वत्ता ही धन का आधार था। भारतीय चिन्तन में धन की लूट या भ्रष्टाचार को कभी स्थान नहीं मिला। तब भ्रष्टाचार भारतीय जीवन में इतने गहरे रूप में कैसे जा घुसी? इसके जिम्मेदार हम हैं, विदेशी व्यवस्था का अन्धानुकरण है कि भारत की बदलती मनोवृत्ति है? इसकी खोज आवश्यक है। कौटिल्य ने भारतीय संस्कार की परिभाषा देते हुए कहा ''शस्त्रेण रक्षिते राष्ट्रे, शास्त्र चिन्ता प्रवर्तते।'' शस्त्र अर्थात् शक्ति से राष्ट्र रक्षा होती है, शास्त्र अथवा ज्ञान की चिन्ता बाद में करनी चाहिए। शक्ति रहेगी तो ज्ञान भी रहेगा, राष्ट्र भी रहेगा, धन भी रहेगा। शक्ति अर्थात् शस्त्र नहीं रहेगा तो अराजकता होगी, धन की लूट अथवा भ्रष्टाचार का बोलबाला होगा।

ऐतरेयोपनिषद् त्रिविध ताप (जिसमें भ्रष्टाचार भी समाहित है) से शान्ति की प्रार्थना मन और वाणी के समन्वय के आधार पर करता है। ऐतरेयोपनिषद् के अनुसार– ''ॐ वाङ् में मनसि प्रतिष्ठिता मनो मे वाचि प्रतिष्ठितमविरा वीर्म एधि। वेदस्य म आणीस्थः श्रुतं मे मा प्रहासीः। अनेनाधीतेना होरात्रान्सन्दधामृतं वदिस्यामि। सत्यं वदिस्यामि तन्मामवतु तद्वक्ता रमवतु। अवतु मामवतु वक्तारमवतु वक्तारम्।। ॐ शान्तिः। शान्तिः।। शान्तिः।।।'' अर्थात् मेरी वागिन्द्रिय मन में स्थित हो और मन वाणी में स्थित हो, अर्थात् मेरी वागिन्द्रिय और मन एक-दूसरे के अनुकूल रहें। हे स्वप्रकाश परमात्मन! तुम मेरे समक्ष आविर्भूत होवो हे वाक् और मन! तुम मेरे लिए वेद और संस्कार लाओ। मेरा श्रवण किया हुआ विश्व का कोई मेरा परित्याग न करे। मैं भारत के संस्कार और ज्ञान का अध्ययन और शोध करने में रात-दिन एक कर दूँ। मेरा शोध और अध्ययन अहर्निश चलता रहे। मैं ऋक (वाचिक सत्य) का भाषण करूँ और सत्य (मन में निश्चित किया हुआ सत्य) बोलूँ। वह ब्रह्म मेरी रक्षा करे, वह वक्ता की रक्षा करे। त्रिविध ताप (भ्रष्टाचार और अपराध का ताप सहित) की शान्ति हो।'' उक्त विचार में भ्रष्टाचार और अपराध से लड़ने का विचार है। अपराध और भ्रष्टाचार से देश, समाज और व्यक्ति को शान्ति मिलने का उद्देश्य है। मत्स्यपुराण भ्रष्टाचार और धन लूटने वाले अपराधी को मृत्युदण्ड का विधान करता है। भ्रष्टाचार के विरुद्ध यह उग्रवादी दर्शन है। उसके अनुसार वस्त्र, रोटी, धन, धरोहर को भ्रष्ट आचरण से हड़प जाने वाले व्यक्ति को उसके अपराध की गम्भीरता के आधार पर दण्ड देने से राज्य, राजा या नेतृत्व का धर्म अथवा कर्तव्य नष्ट नहीं होता। जो व्यक्ति धरोहर (राष्ट्र का धन) वापस नहीं करता और जो बिना धरोहर रखे (राष्ट्र के धन की रक्षा किये बगैर) अपना हित साधता है, वे दोनों चोर हैं, दण्डनीय हैं। उनसे पूरा धन वसूल लेना चाहिए। जो व्यक्ति उपधा (छल, डाका, साहस, लूट, भ्रष्टाचार) डाका डालकर या छल-कपट से राष्ट्र का या संस्था का, व्यक्ति का धन चुराता है, उसे अनेक बधो उपायों द्वारा सहायकों सहित प्राणदण्ड देना चाहिए।''[1]

भारत में यदि भ्रष्टाचार जीवन का अंग होता तो अति कठोर दण्ड की वकालत क्यों की जाती? इसका अर्थ है कि भ्रष्टाचार को निकृष्टतम अपराध माना जाता था। महामना भारतीय मूल्यों के प्रति पूर्णतः आस्थावान थे। मनु, कौटिल्य, उपनिषद्, पुराणों में प्रतिपादित मूल्यों के प्रति पूर्ण समर्पण उनके विचारों में है। भ्रष्टाचार के विरुद्ध उनकी दृष्टि इसी से स्पष्ट हो जाती है। उन्होंने भारतीय ग्रन्थों से प्रेरणा लेकर भ्रष्टाचार के विरुद्ध गम्भीर हमला किया। भ्रष्टाचार का विकल्प निस्पृह मानवीय सेवा है। अगर मानवीय सेवा में व्यक्ति राष्ट्र, राजनीतिक संस्थाएँ, समाज पवित्र मन से समर्पित हो जायँ तो भ्रष्टाचार करने, उस पर सोचने का अवकाश कहाँ मिलेगा? मानवीय सेवा में पाखण्ड, अहंकार, स्वस्वार्थ की जगह, कल्याण, परोपकार, दान और हर दुःखी व्यक्ति को अपने भीतर देखने की प्रबल आकांक्षा होनी चाहिए।

उनका यह आदर्श वाक्य कि–

''न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नाऽपुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्ति नाशनम्।।

से भ्रष्टाचार के विरुद्ध उनकी प्रबल व्यावहारिक आकांक्षा नहीं झलकती? जो व्यक्ति राज्य नहीं चाहेगा, स्वर्ग नहीं चाहेगा, मोक्ष की इच्छा भी नहीं करेगा, वह केवल दुःख से संतप्त प्राणियों के कष्टों का नाश करना चाहेगा, वह भ्रष्टाचार में कैसे लिप्त होगा? राज्य की चाक्यचिक्य में लिप्तता, स्वर्ग अर्थात् उस संसाधन, महत्वाकांक्षाओं की अतिरेकता, मोक्ष अर्थात् समाज में अपने को सबसे अलग और शक्तिशाली दिखने की आकांक्षा ही तो भ्रष्टाचार की जननी है। जो व्यक्ति अपने द्वारा अर्जित धन अपने द्वारा अर्जित शक्ति, प्रतिष्ठा, चरित्र और स्वभाव का उपयोग सेवा में खर्च करेगा वह अपराध और चोरी क्यों करेगा? समस्या यह है कि 'येन-केन-प्रकारेण' सम्पत्ति और शक्ति का एकत्रीकरण, उसका सेवा में प्रयोग न कर स्व-स्वार्थ में मात्र प्रयोग करने का। महामना के उक्त आदर्श वाक्य का आधार श्रीमद्भागवत् है, जिसमें कहा गया है–

न कामयेऽहं गतिमीश्वरात् परां
अष्टर्द्धियुक्तां अपुनर्भवं वा।
आर्तिं प्रपद्येऽखिल देह भाजां।
अन्नः स्थितो येन भवन्त्य दुःखा।।

गीता कहती है–

न कांक्षे विजयं कृष्ण, न च राज्यं सुखानि च।
किं नो राज्येन गोविन्द, किं भोगैर्जीविते न वा।।

— गीता, 1/32

महामना मानते थे कि यदि धन को सेवा-भाव और स्वार्थरहित दान से संयुक्त कर दिया जाय तो भ्रष्टाचार का जन्म नहीं हो सकता। यह विचार गाँधी के ट्रस्टीशिप सिद्धान्त से मेल खाता है। उन्होंने इसे अपने जीवन में उतारा और उसका यथार्थवादी उपयोग किया। वे कहते हैं कि-

मरि जाऊँ माँगूं नहीं अपने तन के काज।
परमारथ के कारने मोहिं न आवे लाज॥

अर्थात् परमार्थ ही धन के प्रयोग का मूल है। परमार्थ के लिए भिक्षा मांगने में लज्जा कैसी? लेकिन मात्र अपने स्वार्थ के लिए अपने तन के लिए धन का एकत्रीकरण चोरी है, भ्रष्टाचार है। कोई भी कार्य यदि सेवा भाव से किया जाय, धर्म अर्थात् कर्तव्यशील होकर किया जाय तो भ्रष्ट-आचरण का प्रश्न ही नहीं उठता। वे भ्रष्टाचार का जवाब कौटिल्य के वाक्य से देते हैं–

सर्वे तत्परता मुखे मधुरता दाने समरसाहिता,
मित्रेऽवंचकता गुरौ विनम्रता चित्तेऽति गम्भीरता।
आचारे शुचिता गुणे रसिकता शास्त्रेऽति विज्ञानता,
रूपे सुन्दरता हर भजनिता सत्स्वेतैन संदृश्यते॥

अर्थात् धर्म में तत्परता, मुख में मधुरता, दान में पूर्ण उत्साह, मित्रों के प्रति निष्कपटता, गुरु के प्रति विनय और चित्त में पूर्ण गम्भीरता, आचार में पवित्रता, गुण में रसिकता, शास्त्र में विशेष विद्वत्ता, रूप में सुन्दरता और हरि भजन में प्रवृत्ति, ये सब गुण सत्पुरुषों को अर्थात् चरित्रशील व्यक्ति में ही देखे जाते हैं। ऐसा नेतृत्व, ऐसा व्यक्तित्व, ऐसा कृतित्व भ्रष्टाचार को जड़ से मिटा देता है। महामना ने भ्रष्टाचार के उन्मूलन में चरित्र गठन को 'राष्ट्रीय मॉडल' के रूप में प्रस्तुत किया।

महामना धार्मिक, नैतिक व्यक्ति थे। तब उनका चिन्तन भौतिकवाद की अन्धी दौड़ में, विज्ञान और तकनीकी के युग में कितना उपयोगी है? क्या धर्म और नैतिकता का विज्ञान से कोई सम्बन्ध है? महामना का चिन्तन इस प्रश्न का सटीक उत्तर देता है। भारतीय धर्म कोई पाखण्ड या अवैज्ञानिक नहीं है। धर्म ऋत है। ऋत सत्य है। विज्ञान सत्य की खोज करता है। धर्म के बिना सत्य का उद्घाटन सम्भव नहीं। धर्म केवल सम्प्रदाय या कर्मकाण्ड नहीं है। धर्म व्यष्टि और समष्टि की प्रकृति है। धर्म (Religion) भी नहीं है। धर्म संस्कार है, चरित्र है, नैतिकता है, जीवन की संहिता है। सर्वोत्कृष्टता का उपाय है। धर्म विध्वंसात्मक नहीं, रचनात्मक है। विज्ञान विध्वंसात्मक और रचनात्मक दोनों है। आधुनिक वैज्ञानिक और भौतिकता के युग में धर्म की आवश्यकता पहले से अधिक है। विज्ञान और भौतिकता मानसिक अशान्ति पैदा करता है। धर्म मानसिक शान्ति देता है। विज्ञान प्रकृति को नियंत्रित करने के चक्कर में प्रकृति को नष्ट करने का साधन प्रस्तुत कर रहा है। धर्म और प्रकृति एक-दूसरे के पूरक हैं। धर्म विराट् है, विज्ञान बौना है। धर्म व्यक्ति में मानवीय गुण आरोपित करता है। विज्ञान व्यक्ति में दुर्गुणता और अहंकार पैदा करता है। अहंकारी व्यक्ति और विनयशील व्यक्ति में कौन बड़ा है? इस पर निर्णय विज्ञान नहीं धर्म करता है। महामना का वाक्य था–

स्वस्ति पथाम अनु रेम सूर्या चन्द्रमसाविव।
पुनर्ददाताऽघ्नाता, जानना संगमेमाह॥

अर्थात् हम सूर्य और चन्द्र का अनुसरण करते हुए (स्व-धर्म स्वरूप) पथ पर चलते रहें, तभी हमें परम सुख का लाभ हो सकेगा। हमें चाहिए कि हम सर्वदा उदार स्वभाव वाले, हिंसक-वृत्ति से विमुक्त और ज्ञानवान (सूर्य चन्द्रानुव्रती) सज्जनों, का अनुसरण सर्वदा करते रहें। धर्म हिंसा से मुक्त, उदार और परम सुखकारक है। विज्ञान और धर्म का समन्वय ही हिंसा से मुक्ति और परम सुख का कारक हो सकता है। महामना का महत्वपूर्ण वाक्य "पृथ्वी मण्डल पर जो वस्तु मुझको सबसे अधिक प्यारी है, वह धर्म है और वह धर्म सनातन धर्म है।" इस वाक्य का निहितार्थ है कि सनातन धर्म पृथ्वी माता है, अर्थात्– "माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः" (अथर्ववेद पृथिवी सूक्त)। महामना इस मूल्य के समर्थक थे। क्या विज्ञान पृथ्वी को माता मानने को तैयार है? माता का शोषण अनैतिक है। विज्ञान पृथिवी का शोषण करता है। महामना पृथ्वी को माता मानते हुए राष्ट्र को मातृभूमि स्वीकार किया। अर्थात्–

अपि स्वर्णमयी लंका, न में लक्ष्मण रोचते।
जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसि॥ (रामायण)

तथा–

न भारत समं वर्षं पृथिव्यामस्ति भो द्विजाः॥ (पुराण)

महामना में इस प्रकार के विचारों का एक ऐसा सूक्ष्म रस है, जो ऊपर से न दिखाई पड़ने पर भी सनातन धर्म की समस्त ज्ञान और कर्ममयी पद्धति को सींचता रहता है। जीवन के लिए वह अमृत भूमि है। हम नाम तो धर्म का लेते हैं, पर श्रद्धा और विश्वास का पूरा सम्पुट देश, संस्कृति और उसके जीवन पद्धति के लिए अर्पित करते हैं। फलतः महामना के सनातन धर्म में धर्म, संस्कृति और मातृभूमि के प्रति श्रद्धा– ये तीनों तत्व परस्पर ओत-प्रोत हो जाते हैं। मात्र विज्ञान और अन्ध भौतिकतावाद का आश्रय लेने पर उक्त तीनों तत्व जीवन से च्युत हो जाते हैं। क्या राष्ट्र-समाज के लिए उक्त तीनों तत्वों की आवश्यकता नहीं है? महामना इन तीनों तत्वों को विज्ञान की अपेक्षा अधिक आवश्यक मानते थे। महामना धर्म और सनातन संस्कृति के प्रति कट्टर थे। कट्टरता का अर्थ है– "कट जायेंगे टरेंगे नहीं।" धर्म कूपमण्डूकता, पाखण्ड और मात्र कर्मकाण्ड नहीं है। विज्ञान स्वयं में एक धर्म है।

धर्म को मात्र साम्प्रदायिकता या पंथनिरपेक्षता के चश्मे से देखना गलत है। धर्म निर्मल बाबा की 'कृपा' भी नहीं है। धर्म के बिना विज्ञान विध्वंसक है। घातक हथियारों, परमाणु अस्त्रों का निरस्त्रीकरण करना धर्म है। धर्म के बिना विज्ञान आतंकवाद है। धर्म से ही नैतिकता का जन्म होता है। जिन महापुरुषों ने भी नैतिक भारत की कल्पना की, उन्होंने धर्म को गाली नहीं दी। नक्सलवाद धर्म नहीं है। करुणा धर्म है। विभाजन धर्म नहीं है, एकीकरण धर्म है, क्रूरता धर्म नहीं है,

संवेदनशीलता धर्म है। लोकतंत्र धर्म है लेकिन लोकतंत्र के नाम पर परिवारवादी नेतृत्व धर्म नहीं है। आरक्षण धर्म है, लेकिन आरक्षण के नाम पर योग्यताओं को नष्ट करना धर्म नहीं है। देवता की आराधना करना धर्म है, लेकिन आराधना के नाम पर अन्धविश्वास फैलाना धर्म नहीं है। विकास धर्म है, लेकिन विकास के नाम पर पर्यावरण को ही नष्ट करना धर्म नहीं है। चिन्तन और विचार की सत्यता धर्म है, लेकिन चिन्तन और विचार के नाम पर मिथ्यावादी अहंकार पैदा करना धर्म नहीं है।

विज्ञान की सकारात्मक उपलब्धियों का लाभ मनुष्य को मिले, लेकिन प्रगतिवादी या विज्ञानवादी होने का यह तो अर्थ नहीं कि व्यक्ति अनैतिक हो जाये? धन कमाना या समृद्धिशील बनना तो नैतिक है, लेकिन क्या देश को लूट कर, चोरी करके, भ्रष्ट आचरण से समृद्धिशील बनने की छूट दी जा सकती है? यह तो अनैतिकता ही है। नैतिक मानव भारतीयता का आदर्श रूप है, इसे महामना डंके की चोट पर स्वीकार करते हैं। नैतिकता के ही अभाव में 'समलैंगिकता' (Gayism) जैसे अप्राकृतिक चिन्तन का विकास हुआ है। नैतिकता के ही अभाव में पारिवारिक सम्बन्ध और संस्कार टूट रहे। समर्पण, कर्तव्यनिष्ठा और योग्यता की जगह, चाटुकारिता, अकर्मण्यता और दोगलापन स्थान बना रहा। व्यक्ति नैतिक बने, उदार बने, एक-दूसरे के अधिकारों का अतिक्रमणकारी न बने, महामना के चिन्तन की यह प्रासंगिकता है।

वर्तमान भारत में 'समावेशी' (Inclusive) संस्कृति का ढिंढोरा पीटा जा रहा है। महामना ब्राह्मण थे। ब्राह्मण संस्कार से परिपूरित थे। त्रिकाल संध्या, ईश्वराधना, शास्त्रों का अध्ययन, मनन, ईश्वर की कथा-प्रवचन, शुद्ध शाकाहार, गाय, गंगा और गायत्री के प्रति पूर्ण समर्पण, भिक्षाटन में गौरव का अनुभव, उदारता, सर्व कल्याण की भावना, सत्ता, धन, ऐश्वर्य से निर्लिप्तता, सरस्वती के उपासक, वेद, पुराण, उपनिषद् के मंत्रों के प्रति पूर्ण समर्पण, गीता को अपनी आत्मा से जोड़ना, आध्यात्मिकता, सांस्कृतिक संस्कार का मन, राष्ट्रभक्ति जैसे गुण, उनका वैशिष्ट्य था। आधुनिक समावेशीवादी इन मूल्यों को प्रगति विरोधी और ब्राह्मणवादी मानेंगे। वामपंथी इसे कूड़ा-करकट मानेंगे, लेकिन इन्हीं मूल्यों में पल कर मालवीय जी महामना बने। इनको हीन और पाखण्ड मानने वाले वामपंथी भारत में अप्रासंगिक और स्वयं में कूड़ा-करकट बन गये। मार्क्स और एंजिल्स का चरण चुम्बन कर, और उनके सिद्धान्तों में बिलबिला कर जीने वाले आज तक 'महामना' के पास तक नहीं पहुँच पाये। आखिर कोई तो शक्ति होगी आदर्श ब्राह्मण-मूल्यों में। जो व्यक्ति को देवत्व का आधार देती है। मार्क्स और एंजिल्स व्यक्ति को 'बदबूदार कूड़ा' से अधिक नहीं बनाते। महामना जैसा ब्राह्मण जब समावेश की बात करता है तो कपोल कल्पना नहीं होता। वह आदर्श भी होता है, जीवन का यथार्थ भी। महामना ने 'अन्त्यजोद्धारविधि' पुस्तक लिखी थी। यह पुस्तक शास्त्रों का मंथन कर निकाला था। जिसमें छुआछूत की भावना को भारतीय परम्परा का विरोधी बताया गया है। महामना ने कहा था कि हिन्दू समाज की किसी शाखा में आर्य समाज, सिक्ख सम्प्रदाय, जैन-बौद्ध किसी के साथ कोई वैषम्य नहीं है। उन्होंने उद्धरण देते हुए कहा था कि वाल्मीकि रामायण के प्रथम सर्ग में चारों वर्णों को रामायण पाठ का समान अधिकार दिया गया है। जो ब्राह्मण संकीर्णता दिखाते हैं, वे ब्राह्मण ही नहीं। उन्होंने पंचाक्षर मंत्र की दीक्षा सवर्ण और दलित सभी को साथ मिल कर दिया।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय उनके समवेशी सिद्धान्त का यथार्थ उदाहरण है। क्या महामना के समय में का0हि0वि0वि0 में दलितों और पिछड़े वर्ग के छात्रों को शिक्षा प्राप्त करने पर रोक थी? महामना ने विश्वविद्यालय में गरीब छात्रों को उत्तम शिक्षा देने की सुविधाएँ दीं, उन्हें आर्थिक मदद दिलवायी। गरीब और गरीबी के उन्मूलन में ही वे राष्ट्रसेवा का व्रत स्वीकार करते थे। इसमें कहीं जाति नहीं है। भारत में वर्तमान आरक्षण व्यवस्था जाति पर आधारित है। महामना से आर्थिक संरक्षण का संकेत दिया। भारत में स्वराज्य की स्थापना तभी होगी, जब गरीबी का पूर्ण रूप से उन्मूलन हो जायेगा। क्या यह दर्शन समावेशी दर्शन नहीं है? क्या यह ब्राह्मणवादी दर्शन है? महामना ने समाज के दलितों, पिछड़ों, गरीबों के लिए बहुत कुछ किया। विशेष तौर पर किया। अल्पसंख्यकों को गले लगाया। महामना ने समावेशी दर्शन ही नहीं दिया, समावेशी नेतृत्व और व्यक्तित्व भी प्रस्तुत किया। का0हि0वि0वि0 में उन्होंने देश के जितने भी गम्भीर विद्वानों को आमंत्रित किया, उसमें कितने ब्राह्मण थे? का0हि0वि0वि0 का कुलगीत लिखने वाले प्रतिष्ठित वैज्ञानिक शान्ति स्वरूप भटनागर ब्राह्मण नहीं थे। उनके लिए योग्यता का महत्व था, चरित्र, गुण और व्यक्तित्व का महत्व था। 'जातिवादी समावेश' नहीं। वस्तुतः महामना 'यूटोपीयायी' समावेशी नहीं व्यावहारिक समावेशी थे। अछूतों को मंत्र दीक्षा देकर उन्होंने व्यावहारिकता सिद्ध की थी।

महामना मानव अधिकारों के ही नहीं, सृष्टि में पलने वाले चर-अचर सभी के अधिकारों के समर्थक थे। आधुनिक मानवाधिकार केवल मानव के अधिकारों की बात करता है। क्या सिर्फ मानव के अधिकारों के संरक्षण की बात करना स्वार्थवादी दर्शन नहीं है? मानव के अधिकारों की कीमत पर जीव-जन्तु, वृक्ष, नदी, पहाड़ों के अधिकार समाप्त कर देने चाहिए? यदि मानव को छोड़ सभी चर-अचर के अधिकार को समाप्त कर दिया जाय तो बचेगा क्या? महामना मानव की स्वतंत्रता के उतने ही पक्षपाती थे, जितने पर्यावरण में पलने वाले अन्य जीवों के अधिकारों के। गौ रक्षा, गौ पालन, का उनका सिद्धान्त जीव अधिकार का समर्थन करता है। का0हि0वि0वि0 में वृक्षों की रक्षा, वृक्षों का पालन अचरों के अधिकारों का समर्थन करता है। माता, पिता, वृद्धों के त्याग की प्रवृत्ति का विरोध करना, विधवा पुनर्विवाह का समर्थन करना, महिला, पुरुष के अधिकारों के प्रति उनकी निष्ठा को दर्शाता है। 7 अगस्त, 1930 को जब जुलूस और सभा पर लगी रोक के विरुद्ध आन्दोलन करते गिरफ्तार हुए, तब क्या वह मानवाधिकार का समर्थन नहीं था? महामना एक अद्भुत विचार अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता के समर्थक थे। सनातनधर्मी होने के बावजूद भी उन्होंने कहा

था ''हमारे देश में अछूत प्रथा कभी नहीं थी। हर एक अछूत भाई का उद्धार होना चाहिए।'' यह मानवाधिकारवादी दर्शन है। स्त्रियों को वेद पढ़ने के अधिकार का समर्थन करना उनका मानवाधिकार के प्रति समर्पण है।

महामना जब का0हि0वि0वि0 में विज्ञान और तकनीकी संस्थान खोलते हैं, विद्यार्थियों को साइंस और टेक्नालॉजी पढ़ने को प्रेरित करते हैं तो क्या वे विकास विरोधी और रूढ़िवादितापूर्ण कार्य करते हैं? महामना सतत विकास के समर्थक हैं। वे कौटिल्य के उस मंत्र को स्वीकार करते हैं, जिसमें कहा गया कि ''अलब्ध लाभार्थी, लब्ध परिरक्षिणी, रक्षित विवर्धनी, विर्धेषु तीर्थेषु प्रतिपादिनी'', अर्थात् जो प्राप्त न हुआ हो प्राप्त करना (सतत विकास), जो प्राप्त हो चुका हो, उसे संरक्षित करना (विकास, पर्यावरण और मानव चरित्र), जो रक्षित हो चुका हो, उसे आगे बढ़ाना भावी पीढ़ी के लिए रक्षित करते हुए उसके आगे की पीढ़ियों के लिए वृद्धि करना, जो वृद्धि हो चुका हो, उसे प्रत्येक व्यक्ति तक पहुँचाना, वह भी समानता के आधार पर। महामना का मन्तव्य था कि विकास का लाभ अमीर और गरीब सबको समान स्तर मिलना चाहिए। शोषण और विनष्टवादी विकास नहीं होना चाहिए। वस्तुतः महामना आधुनिक विकासवादी भारत के रोल मॉडल थे।

मालवीय जी हिंसा के विरोधी थे। हिंसा का विरोधी होना, अपने आप में आतंकवाद का विरोध है। हिंसा और आतंकवाद दोनों ही राजनीतिक स्वार्थ की उपलब्धि हैं। महामना निःस्वार्थ राष्ट्रभक्ति के समर्थक थे। चूँकि वे धार्मिक आतंकवादी नहीं थे, इसलिए हिंसा और आतंकवाद का विरोध उनके स्वभाव में था। जालियाँवाला बाग काण्ड सरकारी हिंसा और सरकारी आतंकवाद का उदाहरण है। महामना का छः घंटे का भाषण इस बात का उदाहरण है कि वे किसी भी तरह के हिंसा और आतंकवाद के प्रबल विरोधी थे। उन्हीं के प्रयासों से अंग्रेज सरकार हण्टर कमीशन बिठाने को बाध्य हुई थी। महामना के भाषणों और विचारों के अध्ययन से स्पष्ट है कि वे किसी स्तर पर हिंसा और आतंकवाद समर्थक नहीं थे। इसी आधार पर उन्होंने सावरकर, मुंजे, परमानन्द का विरोध भी किया। चाहे तथाकथित हिन्दू आतंकवाद हो या इस्लामी आतंकवाद, उनके लिये दोनों अग्राह्य है। चूँकि हिन्दू हित सार्वभौम भ्रातृत्व, धार्मिक सहिष्णुता, देशभक्ति, संस्कृति में उनका समर्पण, सनातन दृष्टि की दार्शनिकता से जुड़ा था, इसीलिए वे उसी रूप में समग्र भारत में व्याप्त मूलभूत एकता सनातन धर्म के शान्तिवादी दार्शनिकता के आधार पर प्रस्तुत करते हैं। धर्मनिरपेक्षता जैसे शब्द सत्ता बॉट की अभूतपूर्व प्रतियोगिता के आधार पर जन्मता है। महामना ने इस राजनीति से दूरी बनायी। धार्मिकता के आधार पर सत्ता के लिए राजनीति करने वालों ने ही भारत को विभाजन की ओर पहुँचाया। भारत विभाजन आधार हिंसा और आतंकवाद ही था। महामना ने इसका प्राण प्रण से विरोध किया था। वे समस्याओं का समाधान लोकतांत्रिक तरीके से चाहते थे। पारदर्शिता, जिम्मेदारी और कर्तव्यनिष्ठा ही किसी 'सभ्य समाज' (Civil Society) की विशेषता हो सकती है। साम्प्रदायिकता और धर्मनिरपेक्षता कूटनीतिक शब्द हैं। इसे अंग्रेजों ने अपने राजनीतिक स्वार्थ के लिए प्रयोग किया था। महामना इस सत्तावादी कूटनीतिक जाल से मुक्त थे। महामना सच्चे अर्थों में महात्मा थे। वे दिखावटी महात्मा नहीं थे, सही अर्थों में महात्मा थे, क्योंकि महात्मा के सारे गुण उनमें मौजूद थे–

विपतिधैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ प्रकृति सिद्धिमिदं हि महात्मनाम्॥

विपत्तियों के धीरता, अभ्युदय में क्षमा, सभा में वाक्चातुरी, युद्ध में विक्रम, यश में अभिरुचि, तथा शास्त्र श्रवण में अनुराग ये छः नेतृत्व के गुण हैं। महामना में व्यावहारिक स्तर पर ये गुण थे। जिनमें पास ये गुण होगा वह साम्प्रदायिक कैसे हो सकता है? धर्म के नाम पर विभेदकारी कैसे हो सकता है? धर्म के नाम वोट बटोरने वाले नेतृत्व का स्वामी कैसे हो सकता है? इन गुणों में अल्पसंख्यकवाद या बहुसंख्यकवाद कहाँ है? यह तो पूर्ण मानवतावाद है। जो पूर्णतः मानवतावादी है। वह ब्राह्मणवादी, साम्प्रदायिक, हिंसक, स्वार्थवादी दृष्टिकोण को प्रकट करने वाला हो ही नहीं सकता। जे0 एन0यू0 के तथाकथित प्रगतिवादी विद्वानों को इन मानवतावादी गुणों का निहितार्थ पता है? महामना के 'महात्मा' के गुण नक्सलवाद, आतंकवाद, साम्प्रायिकता से लड़ने का हथियार प्रस्तुत करते हैं।

भारत में धर्म एक है। वह है भारतीय धर्म। भारतीय धर्म का अर्थ है 'अखण्डमण्डलाकारम् व्याप्तम् ऐन चाराचरम्' अर्थात् चराचर में व्याप्त परमेश्वर के प्रति समर्पण का कर्तव्य। हिन्दू, सिख, जैन, बौद्ध, सनातनी, मुस्लिम, पारसी, ईसाई सभी पंथ हैं। परमात्मा के पास पहुँचने के अपने-अपने रास्ते हैं। व्यक्ति के अपने कर्म काण्ड हैं। उद्देश्य जब एक है तो टकराव कैसा? कोई पंथ किसी से ऊँचा या नीचा नहीं है। बलात् धर्म परिवर्तन की कोई आवश्यकता नहीं। धर्मान्तरण जैसी बीमारी राजनीतिक और साम्प्रदायिक साम्राज्यवाद का परिणाम है। अगर कोई अपना पंथ प्रलोभन या जबरदस्ती किसी दूसरे पंथ के अनुयायी पर थोपता है, तो क्या वह परमात्मा के सर्वसमानता के विरुद्ध विद्रोह नहीं करता? जे0एन0यू0 के विद्वानों के आधार पर यदि धर्म या पंथ का मूल्यांकन होगा तो आधुनिक भारत में भी फिर से 'द्विराष्ट्र सिद्धान्त' की पृष्ठभूमि तैयार होगी। महामना के बारे में यह भ्रम पैदा किया जा रहा कि वे केवल हिन्दू पंथ का प्रतिनिधित्व करते हैं, उसमें मुस्लिम या अन्य पंथ से भाई चारा का प्रश्न ही नहीं उठता। जे0एन0यू0 के वामपंथी विचारकों के निश्चित नुस्खें रहे हैं। भारत में जो भी विचारक, चिंतक, नेतृत्व या व्यक्तित्व हिन्दू धर्म, पंथ, दर्शन, इतिहास को आधुनिक सन्दर्भ के साथ जोड़ने का प्रयास करता है, वह उनके लिये प्रतिक्रियावादी, पुनरुत्थानवादी, सम्प्रदायवादी, फासीवादी और मानवता का शत्रु बन जाता है। महामना के सन्दर्भ में इसीलिए वे ऐसे आरोप लगाते हैं। महामना का दृष्टिकोण शुद्ध सनातनी था। भारत को वे समान रूप से सभी पंथों का समवेत राष्ट्र मानते थे। इसमें कटुता का तात्पर्य देश के प्रति शत्रुता है। इन्हें समान रूप से, उनके अनुसार, परस्पर एक दूसरे

के हित का पूरक होना चाहिये। धर्म या पंथ के आधार पर किसी भी प्रकार का संघर्ष धर्म-विरुद्ध है। इसमें स्वयं धर्म का अपमान होता है। इसी मान्य सिद्धान्त के आधार पर महामना ने धर्म या पंथ के आधार पर साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व, साम्प्रदायिक सुविधा, साम्प्रदायिक नीति, साम्प्रदायिक दृष्टि, साम्प्रदायिक नीति और योजना, साम्प्रायिक या वोट बैंकवादी राजनीति का विरोध जीवन पर्यन्त किया। इस मान्यता से राष्ट्रीय भाव के स्थान पर, साम्प्रदायिक अर्थात् बिलगाव का भाव बढ़ता है। महामना मानते थे कि विभिन्न जातियों और धर्मों के समभाव से राष्ट्र का निर्माण करना, सभ्य और नैतिक समाज की स्थापना करना, सुशासन की स्थाना करना आवश्यक है।

वर्तमान भारत में 'महिलावादी दर्शन (Feminist Philosophy) अकादमिक सुख, समृद्धि, स्व अहं की पूर्ति के नये हथियार के रूप में सामने आया है। महिलावादी दर्शन को स्थापित करने में पश्चिमी दृष्टिकोण से पोषित महिलायें ही नहीं, वामपंथी और पश्चिमी अन्धानुकरण से लिप्त पुरुष भी बढ़-चढ़कर भूमिका का निर्वाह कर रहे हैं। आधुनिक महिलावाद 'पुरुष वर्चस्ववादी समाज' का भय दिखाकर, महिला और पुरुष में संघर्ष की रूपरेखा खींचती है। यह पश्चिम की इस धारणा पर आधारित है, महिला पूर्णतः स्वच्छन्द है, उसे पुरुष के सहारे या साथ रहने की आवश्यकता नहीं है। वस्तुतः आधुनिक महिलावाद लैंगिक आवश्यकता नहीं है। आधुनिक महिलावाद लैंगिक विभेद को बढ़ावा देती है। सनातन भारतीय संस्कृति में इस तरह की धारणाओं से मुक्त रही है। सनातन संस्कृति में भारतीय महिलाओं को जो स्थान मिला है वैसा स्थान पश्चिमी महिलावादी दर्शन में नहीं है। भारतीय महिला विष्णु माया, बुद्धि, निद्रा, क्षुधा, छाया, शक्ति, तृष्णा, क्षान्ति, जाति (पहचान) लज्जा, शान्ति, श्रद्धा, कान्ति, लक्ष्मी, वृत्ति, स्मृति, दया, तुष्टि, मातृ, भ्रान्ति और विश्व की चित्त रूप है।[2] जहाँ नारी की पूजा होती है, वहाँ देवता रमते हैं। पूरा भारतीय वाङ्मय नारी समानता के सिद्धान्त पर आधारित है। 'अर्द्धनारीश्वर' की कल्पना इसका उदाहरण है। महामना ने नारी चिन्तन की सनातन भारतीय अवधारणा को स्वीकार किया। 'महिला सशक्तिकरण' उनके चिंतन के मूल में है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में अलग से महिला कालेज की स्थापना करना उसका उदाहरण है। महामना ने महिला शिक्षा, महिला सशक्तिकरण के बारे में उस समय सोचा था जब आधुनिक महिलावादी सिद्धान्त (Faminist Theory) की कल्पना भी नहीं की गयी थी। कन्या भ्रूण हत्या पर आधुनिक महिलावादी खामोश रहती हैं। महामना 'कन्या-पूजन' की परम्परा को स्वीकार करते हैं। महामना महिला अधिकारों के पूर्ण समर्थक थे। वे जानते थे कि महिला अधिकारों के बिना परिवार नामक संस्था का विकास नहीं हो सकता। परिवार जब तक मजबूत नहीं होगा, राष्ट्र नहीं मजबूत हो सकता।

महामना सनातन धर्म के समर्थक थे। सनातन धर्म साम्प्रदायिक धर्म नहीं है। मानवीय धर्म है। व्यक्तित्व के निर्माण का धर्म है। सम्पूर्णता का सार्वभौम धर्म है। आज के वैश्वीकृत भौतिवादी युग में व्यक्ति को सुविधायें तो मिल रही लेकिन व्यक्तित्व और नेतृत्व का निर्माण नहीं हो पा रहा। गला-काट प्रतियोगिता में हर आदमी एक दूसरे के प्रति प्रतियोगितात्मक है। इसे 'Professionalism' का नाम दिया जाता है। इसमें पारिवारिक, सामाजिक, सांस्कृतिक और पर्यावरणिक सभी रिश्ते 'Professional' हो जाते हैं। इसका अर्थ है कि सभी सम्बन्ध स्व-स्वार्थ, स्व-हित और स्व-सुख पर आधारित है। सनातन धर्म में सभी सम्बन्ध परोपकार, दान, सर्वकल्याण, परहित पर आधारित है। क्या परहित का त्याग कर देश समाज और परिवार को संरक्षित किया जा सकता है? सनातन धर्म कहता है-

सर्वे च सुखिनः सन्तु सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिदुःखभाग भवेत्॥

क्या आज के भौतिकवादी और वैश्वीकृत युग में सभी प्राणी सुखी न हों? सभी प्राणी निरोग न रहें? सभी सुख सौभाग्य न देखें? कोई दुःखी न रहे, ऐसा वातावरण न बने? दुनियाँ का कोई ऐसा प्राणी नहीं जो इस मंत्र के पूर्ण भाव को स्वीकार न करें। जब सभी इस मंत्र के भाव को स्वीकार करने को तैयार हैं, तब सनातन धर्म की प्रासंगिकता या अ-प्रासंगिकता का प्रश्न कहाँ उठता है?

सत्यं दानं, क्षमाशीलमानृशंस्य तयो घृणा।
दृश्यते मत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः।

सत्य, दान, क्षमाशील, अहिंसा, तप, दया ये गुण सनातन धर्म के हैं। आज इसकी आवश्यकता बहुत अधिक है। महामना सनातन धर्म के इसी भाव को स्वीकार करते थे। उसे व्यक्ति के व्यक्तित्व और राज्य व्यवस्था पर पूर्णरूप से लागू करना चाहते थे।

पश्चिमीकरण और भारतीयकरण के 'सभ्यता-संघर्ष में महामना सनातन धर्म के पक्ष में खड़े हैं। पश्चिमी अन्धानुकरण भारत के लिये अभिशाप है। अन्धानुकरण से भारत की मौलिक चिन्तन पद्धति बाधित होती है। भारतीय अपना मौलिक स्वरूप खो देते हैं। महामना वैज्ञानिक और औद्योकि शिक्षा के जनक थे। लेकिन वे सफलता और सुरक्षा के मूल-मंत्र सनातन धर्म में ही खोजते हैं। अन्धानुकरण को महामना का जवाब था- 'To be International you don't have to be anti-National' अर्थात् पश्चिमी मूल्य के प्रति जुड़ाव का यह अर्थ नहीं कि भारतीय सनातन धर्म का विरोध किया जाय। महामना की दृष्टि में सनातन धर्म को उपहासास्पद बनाना और उसका स्वार्थपूर्ण ढंग से विरोध करना भारत विरोधी कार्य है।

बहुसंस्कृतिवाद (Multiculturism) भारत में आधुनिक शब्द है। भारत की सनातन संस्कृति से इसका कोई मेल नहीं है। अन्तर की राजनीति का दर्शन (Politics of difference) पहचान की राजनीति का दर्शन और बहुसांस्कृतिकवाद का दर्शन, राजनीति विज्ञान की शब्दावलि में ये सभी शब्द समान स्तर पर खड़े हैं। इनका अर्थ यह है कि राष्ट्र में ऐसे बहुत से धार्मिक, सांस्कृतिक, जातीय समूह हैं जो सम्पूर्ण समाज से बहिष्कृत हैं। वे अपनी पहचान की संस्कृति के साथ, व्यापक समाज से अन्तर रखते हुये व्यापक समाज में समावेशी होना

चाहते हैं, लेकिन अपनी पहचान और संस्कृति को बनाये रखना चाहते हैं। वे सत्ता या राजनीति में अपना निश्चित हिस्सा चाहते हें। यह धारणा इस पर भी आधारित है कि भारत में एक संस्कृति नहीं, संस्कृति की बहुलता है। यह धारणा राष्ट्रीय एकीकरण और राष्ट्रवाद की प्रतिक्रिया है। अगर बहुसांस्कृतिवाद को प्रश्रय दिया जाता है, तो इसका अर्थ है कि राष्ट्रीय एकीकरण और राष्ट्रवाद देश के लिये बेमानी है। तब तो राष्ट्रीय एकीकरण की भावना को ठप्प कर दिया जाना चाहिये? नक्सलवाद या माओवादी हिंसक संघर्ष को मान्यता दी जानी चाहिये? कश्मीर में अलगाववादी आन्दोलन को भी स्वीकार किया जाना चाहिये? महामना बहुसंस्कृतिवाद जैसे अलगावादी भाव वाले दर्शन के विरुद्ध हैं। वे इसका उत्तर सनातन संस्कृति से देते हैं।

भारत की संस्कृति सनातन है। इसमें वर्हिवेशी भाव नहीं है। सभी कुछ समावेशी है। तभी व्यष्टि और समष्टि के समन्वय की बात बार-बार कही गयी है। ब्रिटिशों ने भारतीय समाज में वर्हिवेश का बीज बोया। आधुनिक भारत में भी विकास, योजना और शासन के स्तर पर इसे स्वीकार किया जाता रहा। बहुसंस्कृतिवाद के आधार पर जब शासन चलाया जा रहा तो पहचान का संघर्ष स्वाभाविक है। अनुचित जाति, अनुसूचित जन जाति, आदिवासी अन्य पिछड़ा सभी अपनी पहचान और हित के लिये कटु संघर्ष कर रहे। इससे राष्ट्रीय एकीकरण का भाव कमजोर पड़ रहा। इन्हें भारतीय राष्ट्र से ही सब कुछ लेना है और भारतीय राष्ट्र की भावना को ही दरकिनार कर रहे। बौद्धों और जैनों ने वैदिक संस्कृति के विरुद्ध प्रतिक्रिया की, लेकिन वे भारत की सनातन संस्कृति के अंग बने रहे। बहुसंस्कृतिवाद जैसे सिद्धान्त महामना के विराट राष्ट्रीय अवधारणा में कहीं फिट नहीं बैठते।

पर्यावरण के संकट पर महामना की दृष्टि पैनी थी। गंगा की अविरलता को बनाये रखने के लिये उन्होंने संघर्ष किया था। आज गंगा की अविरलता और उसको प्रदूषण मुक्त करने के लिये जिस तरह संत समाज को तपस्या और संघर्ष का रास्ता अपनाना पड़ रहा है, वह पर्यावरण के प्रति सरकार की संवेदनहीनता का परिणाम है। बढ़ती जनसंख्या से जिस तरह जंगल समाप्त हो रहे, वन्य जीवों को अपने स्वार्थ में जिस तरह मारा जा रहा, 'रीयल स्टेट' में लाभ कमाने के लिये जिस तरह पहाड़ों और उपजाऊ भूमि का सर्वनाश हो रहा क्या उससे पर्यावरण सुदृढ़ हो रहा? इससे देश में व्यक्ति के अस्तित्व पर ही संकट नहीं खड़ा होगा? महामना ने का.हि.वि.वि. में जिस प्रकार पर्यावरण की रक्षा की वह उनके यथार्थ दृष्टिकोण का परिणाम है। महामना मानते हैं कि पर्यावरण सुरक्षित रहेगा तभी जीवन सुरक्षित रहेगा। नदियाँ, कूप, तड़ाग, वृक्ष, वन्य जीव सभी ईश्वर के अंग है। इन्हें नष्ट करने का अधिकार किसी को नहीं। व्यक्ति यदि प्राकृतिक व्यवस्था में अनावश्यक हस्तक्षेप करेगा तो उसका फल भी उसी को भोगना पड़ेगा।

सभ्य समाज (Civil Society) और सुशासन (Good Governance) भी वैश्वीकरण की देन है। क्या भारत के लोग अभी तक असभ्य थे? क्या भारत के लोगों को सुशासन का मन्तव्य पहले कभी नहीं पता था? सभ्य-समाज का सिद्धान्त 18वीं शताब्दी में स्काटलैण्ड के पुनर्जागरण का परिणाम है। एडम, फुर्गुसन, एडम स्मिथ, हीगल जैसे पश्चिमी विचारक इससे जुड़े हैं। 18वीं शताब्दी के पहले भारत में सभ्य समाज का अस्तित्व था। इसे बार-बार नकारा गया। 'सभ्य' शब्द का प्रयोग भारतीय ग्रन्थों में भरा पड़ा है। सनातन धर्म और सनातन संस्कार भारतीय सभ्य समाज की देन है। भारतीय सभ्य समाज (Civil Society) सशस्त्र समाज है। इसका अर्थ है कि प्रत्येक व्यक्ति शास्त्र और शस्त्र से सज्जित है। यह पूर्ण शिक्षित समाज है। इस समाज का नागरिक केवल अधिकार का दावा नहीं करता। जब वह सामाजिक, राष्ट्रीय, पारिवारिक, सांस्कृतिक कर्तव्य का पूर्ण निर्वहन कर लेता है, तब अधिकार का दावा करता है। ऐसे समाज से राजसत्ता भयभीत रहती है। वस्तुतः भारतीय राजनीतिक व्यवस्था पर सभ्य समाज का पूर्ण नियंत्रण है। सभ्य समाज के लोग कार्यपालिका, विधायिका, न्यायपालिका, प्रशासन में सीधी भागीदारी करते हैं। शासन की प्रत्येक नीति सभ्य समाज के निर्देशन में चलती है। वर्तमान भारत में सभ्य-समाज का सिद्धान्त थोपा हुआ सिद्धान्त है। इसकी विश्वसनीयता पर सवाल है। इस थोपे हुये सभ्य समाज को सम्पूर्ण समाज के लोगों का समर्थन प्राप्त है कहना मुश्किल है।

महामना उस सभ्य समाज के सदस्य हैं, उसका नेतृत्व करते हैं जो केवल आर्थिक अधिकार की ही माँग नहीं करता अपने कर्तव्य का निर्वहन भी करता है। महामना का उद्देश्य भारत का नव राष्ट्र निर्माण और परतंत्रता से पूर्ण मुक्ति था। शिक्षित और शक्तिशाली समाज का निर्माण उनका उद्देश्य था। उन्होंने पूर्ण साक्षरता और सम्पूर्ण शक्ति के समन्वय के सिद्धान्त का समर्थन किया। दूध पीने और कसरत करने की जब बात करते हैं तो इसका अर्थ सशक्त समाज ही हुआ। गौ पालन और गौ सेवा का सीधा सम्बन्ध शक्ति से ही है। भारत का वर्तमान सभ्य समाज सत्तापेक्षी है। न राजसत्ता उस पर विश्वास करती है, न वह राजसत्ता पर विश्वास करता है। दोनों में संघर्ष कूटनीतिक है। महामना के सिद्धान्त कूटनीतिक संघर्ष वाले सभ्य-समाज का समर्थन नहीं करता।

महामना का सुशासन (Good-Governance) स्वराज और स्वावलम्बन पर आधारित है। सुशासन तब तक स्थापित नहीं हो सकता जब तक पूर्ण स्वराज और पूर्ण स्वावलम्बन नहीं प्राप्त हो जाता। स्वदेशी, स्वशासन, स्वावलम्बन, आत्मरक्षा, सम्पूर्ण भारतीय शिक्षा, नैतिकता, अहिंसा उनके सुशासन का आधार है। क्या स्वतंत्रता के 65 वर्षों बाद भी हम स्वराज्य प्राप्त कर सके हैं? क्या हम पूर्ण स्वावलम्बी हो चुके हैं? वैश्वीकरण के युग में क्या स्वदेशी की भावना मर नहीं रही? ये प्रश्न महामना की प्रासंगिकता से जुड़े हैं। महामना का उद्देश्य था देश से दरिद्रता, गरीबी का नाश हो। सबको रोटी, कपड़ा और मकान मिले। इसे प्राप्त करने के लिये व्यावसायिक शिक्षा की जरुरत है। महामना ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में सबसे पहले व्यावसायिक शिक्षा की आधार शिला रखी। प्रबन्ध संस्थान, कृषि संस्थान, चिकित्सा विज्ञान, प्रौद्योगिकी संस्थान इसका प्रत्यक्ष उदाहरण है। महामना क्रूर

व्यावसायिकता के समर्थक नहीं, नैतिक, मानवीय और उदार व्यावसायिकता के समर्थक थे।

का.हि.वि.वि. का कुलगीत एक वैज्ञानिक शान्तिस्वरूप भटनागर द्वारा 1922 में लिखी गयी। विश्वविद्यालय के लाखों छात्रों ने उसे गाया। महामना ने उसे सर्वश्रेष्ठ गीत बताया। स्वतंत्रता संग्राम में राष्ट्र गीत बन्दे-मातरम् के साथ उसे गाया गया। 'मधुर मनोहर अतीव सुन्दर यह सर्व विद्या की राजधानी' यह सर्वश्रेष्ठता का आधार है। 1922 में पराधीन भारत में का.हि.वि.वि. और काशी भारत में विद्या की राजधानी थी। आज भी वि.वि. और काशी विद्या की राजधानी है। कबीर, तुलसी, रविदास, जयशंकर प्रसाद, भारतेन्दु, रामचन्द्र शुक्ल से स्वामी करपात्री जी एवं विद्यानिवास मिश्र तक न जाने कितने विद्वानों और चिंतकों ने भारत की चिंतनाशक्ति को उद्घाटित कर देश को गौरवान्वित किया। नरेन्द्र देव और राधाकृष्णन के दार्शनिक चिन्तन को मुहर काशी ने लगाई। क्या का.हि.वि.वि. आज भी सर्वविद्या की राजधानी नहीं है? क्या दुनियाँ के सभी भाषा, विज्ञान, ज्ञान की शिक्षा यहाँ नहीं होती? भारत को स्वतंत्र कराने और स्वतंत्र भारत के नव निर्माण में का.हि.वि.वि. के छात्रों, अध्यापकों की गम्भीर भूमिका नहीं? का.हि.वि.वि. में महामना ने तो कहीं अपना नाम नहीं जुड़वाया। का.हि.वि.वि. भारत की विराटता और समग्रता का परिणाम है। उसके नाम से ही भारत की सनातनता विशालता और हिन्दुत्व की विशाल चिन्तनधारा का बोध होता है। का.हि.वि.वि. के गुलगीत का अपमान करना महामना का ही अपमान नहीं भारत की सनातन महान संस्कृति और परम्परा का अपमान है। जवाहर लाल विश्वविद्यालय के कुछ छद्म बुद्धिजीवियों ने ऐसा करके राष्ट्र के साथ जघन्य पाप किया है।

सन्दर्भ

1. निरक्षेपस्य समं मूल्यं दण्यो निक्षेपभुक् तथा।
   वस्त्रादिकसस्तस्य तदा धर्मो न हीयते।।
   मो निक्षेपं नार्पयति यश्चानिक्षिप्य याचते।
   तावुभौ चोरवच्छास्यौ दाप्यौ वा द्विगुणं धनम्।।
   उपधाभिश्च यः कश्चित् परद्रव्यं हरेन्नरः।
   असहायः स हन्तव्यः प्रकामं विविधैर्वधैः।। मत्स्य पु0 227/1,2,3
2. या देवी सर्वभूतेषु विष्णुमायेति शब्दिता.....।
   या देवी सर्वभूतेषु बुद्धिरूपेण संस्थिता.....।
   या देवी सर्वभूषेतु निद्रारूपेण संस्थिता.....।
   या देवी सर्वभूतेषु क्षुधारूपेण संस्थिता.....।
   या देवी सर्वभेतेषु छाया रूपेण संस्थिता.....।
   या देवी सर्वभूतेषु शक्तिरूपेण संस्थिता.....।
   या देवी सर्वभूतेषु तृष्णारूपेण संस्थिता.....।
   या देवी सर्वभूतेषु क्षान्तिरूपेण संस्थिता.....।
   या देवी सर्वभूतेषु जातिरूपेण संस्थिता.....।
   या देवी सर्वभूतेषु लज्जारूपेण संस्थिता.....।
   या देवी सर्वभूतेषु शान्तिरूपेण संस्थिता.....।
   या देवी सर्वभूतेषु श्रद्धारूपेण संस्थिता.....।
   या देवी सर्वभूतेषु कान्तिरूपेण संस्थिता.....।
   या देवी सर्वभूतेषु लक्ष्मीरूपेण संस्थिता.....।
   या देवी सर्वभूतेषु वृत्तिरूपेण संस्थिता.....।
   या देवी सर्वभूतेषु स्मृतिरूपेण संस्थिता.....।
   या देवी सर्वभूतेषु दयारूपेण संस्थिता.....।
   या देवी सर्वभूतेषु तुष्टिरूपेण संस्थिता.....।
   या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता.....।
   या देवी सर्वभूतेषु भ्रान्तिरूपेण संस्थिता.....। आदि
   (दुर्गासप्तशति से उद्धृत)
3. देखें, मालवीय जी के लेख, सम्पादक-पद्मकान्त मालवीय,
4. अभ्युदय, फरवरी, 1909
5. रिपोर्ट ट्वेन्टीफोर्थ इण्डियन नेशनल कांग्रेस, 1909।
6. प्रोसिंडिंग-गवर्नर जनरल की काउन्सिलिंस, जि0 49।
7. आनरेबुल पं0 मदन मोहन मालवीय, लाइफ एण्ड स्पीचेज।
8. बम्बई भाषण, जुलाई 1917
9. पट्टाभि सीता रमैया, हिस्ट्री ऑफ नेशनल कांग्रेस
10. सीताराम चतुर्वेदी, महामना मदन मोहन मालवीय, दो खण्ड।
11. आजाद, इण्डिया विन्स फ्रीडम,
12. कृपलानी, गाँधीजी,
13. इण्डियन क्वाटर्ली रजिस्टर, 1932
14. जवाहर लाल नेहरु, आटोबायोग्राफी।
15. सुभाष चन्द्र बोस, इण्डियन स्ट्रगल।
16. लीडर, 1934
17. राजेन्द्र प्रसाद, आत्मकथा।
18. महामना मालवीय, बर्थ सेनेटरी कोमेमोरेशन वाल्यूम
19. डॉ0 उमेश दत्त तिवारी, महामना के प्रेरक प्रसंग, 3 खण्ड, वाराणसी।
20. डॉ. उमेश दत्त तिवारी, महामना के भाषण, वाराणसी।

◆

महामना की विश्वदृष्टि में ज्योतिषशास्त्र का महत्व

प्रो0 सच्चिदानन्द मिश्र *

महामना की दृष्टि विश्वाभिप्रायिक दृष्टि है। ज्योतिष की दृष्टि वेदांगों में नेत्र होने से विश्वदृष्टि है। महामना स्वयं ज्योतिषी नही थे, लेकिन उनका हर कार्य व्यवहार दिग्देशकाल एवं पात्र की निष्पत्ति पर आधरित होनें से ज्योतिषीय है। इसके अनेक आख्यानात्मक एवं प्रत्यक्ष प्रमाण मिलते है। यदि समस्त प्रमाणों को एकत्र करें, तो कई महाग्रन्थ बन जायेंगे[1]। पं. रामयत्न ओझा जैसे महान ज्योतिष मर्मज्ञ इनके साथ थे। मानवीय जीवन मूल्य[2], पर्यावरण[3], विश्वसृष्टि, संस्थान संरचना, प्रकृति, गुण, संचारादि क्रम[4] कालांश एवं क्षेत्रांश की निष्पत्ति के अन्तर्गत विश्व[6] दृष्टि, एवं मानवीय दृष्टि[5] का समन्वय काल विधायक ज्योतिष प्रस्तुत करता है।

प्राचीन भारतीय विद्याओं का वर्तमान स्वरूप एवं उनमें वेदाङ्गों में दृष्टि रूप कालविधायक[7] ज्योतिष में अव्यक्त सापेक्ष व्यक्त आयामों में दिग्देशकाल एवं पात्र की निष्पत्ति से ज्योतिष[8] सर्वविध कर्मकाण्ड[9] यन्त्रकाण्ड एवं मन्त्रकाण्ड[10] के महत्व को समझते हुए महामना ने प्राच्य विद्या सम्बद्ध संस्कृत विद्यालय तथा महाविद्यालय की स्थापना-1916 में तब की जब सारा देश गुलामी के जंजीर में जकड़ा था[11]।

यहाँ ध्यातव्य है, कि महामना ने शिक्षण एवं अन्वेषण की केन्द्रीय भूमिका में प्राच्याविद्या संकाय को उस समय रखा तथा इसके पूरकता तथा सम्बद्धता की दृष्टि से अन्य सभी संकायों की स्थापना की । संस्कृतवाङ्मय का20 विंशति महाविद्यात्मक पक्ष इसका प्राचीन प्रमाण है। अतः प्रारम्भ से संस्कृत शिक्षण को व्यवस्थित करते हेतु रणवीर संस्कृत विद्यालय की स्थापना 1918 से पहले की गयी, तथा वहां वेद, व्याकरण, ज्योतिष, साहित्य तथा दर्शन, योग खेलकूद व्यायाम आदि विषयों को अनिवार्य रूप में 10+2 स्तर तक के शिक्षण में निवेशित किया[12]।

महामना की दृष्टि में मानवता तथा राष्ट्रीयता सर्वोपरितथ्य है। लेकिन सर्वाङ्गीण विकसित मानव ही मानवता का उपासक, राष्ट्रभक्त तथा देशभक्त, होकर धर्मनिष्ट होकर परमेश्वर की महिमामय विभूति रूप द्वैतमय मूर्तिमान विश्वरूप का सदुपासक हो सकता है, सभी नहीं[13], लेकिन कैसे सर्वाङ्गीण विकसित मानव का निर्माण हो? यह आज भी विमर्शणीय तथ्य है[14]। सर्वाङ्गीण विकासक शिक्षा नीति का संस्कृत वाङ्मय में इसका स्वरूप आज भी उपलब्ध है। महामना के समस्त वचन तथा कर्म- इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। उनमें निम्नाङ्कित तथ्य विशेष ध्यातव्य है। यथा-

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया ।
देशभक्त्यात्मबोधेन सम्मानार्हो सदा भव ॥

''सत्योपासना तथा सत्यनिष्ट आचरण, ब्रह्मचर्य का पालन एवं आत्म संयम, व्यायाम तथा योगाभ्यास, विद्योपासना अर्थात शास्त्राभ्यास, देशभक्ति तथा आत्मबोध बनाम आत्मज्ञान'' ये मानव को सम्मान के योग्य बनाते हैं। उपर्युक्त वचन में मानवीय सर्वाङ्गीण विकास के सभी मूल निहित है।

विद्या शब्द से परा विद्या तथा अपरा विद्या दोनों का बोध होता है[15]। सत्तासम्बद्ध समस्त विद्याएं अपरा विद्याओं में परिगणित हैं । परा विद्याा सत्तामात्र के कारण का अन्वेषक आत्मविद्या है। वेदादि 18 वा 20 महाविद्याएँ परा तथा अपरा दोनों विद्याओं के समन्वित रूप है। सामान्यतः ''शास्त्र विद्या तथा शस्त्र विद्या'' ये परा तथा अपरा विद्या के प्रत्यक्ष भेद समन्वित है। समन्वित रूप का प्रत्यक्ष प्रमाण पृथ्वीराज के पतन के बाद सुप्त है। सामान्यतः शास्त्र विद्या तथा शस्त्र विद्या में परा तथा अपरा का समन्वित विद्यात्मक प्रत्यक्ष भेद को चाणक्य ने भी कहा हैं[16]।

विद्या शस्त्रस्य शास्त्रस्य द्वे विद्ये प्रतिपत्तये।
आधे हास्याय वृद्धत्वे द्वितीयाद्रियते सदा ॥

अतः शास्त्र सम्बद्ध विद्याएँ उत्तरोत्तर विकसित होकर मानव को आदर तथा सम्मान का पात्र बनाती है। शस्त्र विद्या भी बाद में प्रशिक्षक भूमिका में आ जाती है। अतः शास्त्र तथा शस्त्र दोनों विद्याएँ महत्वपूर्ण हैं, तथा प्रत्येक सद्विद्या का अन्तिम लक्ष्य पूर्णज्ञान तथा मोक्ष वनाम - सर्वतन्त्र स्वातन्त्रय है। शस्त्र सुरक्षिते- देशे शास्त्रचर्चा प्रवर्त्तते[17]।। अतः जो देश शस्त्र से सुरक्षित नहीं, वहां शास्त्रीय विकास स्वरूप मानवीय सर्वाङ्गीण विकास भी संभव नहीं। शरीर के दो शत्रु हैं। प्रथम शत्रुरोग एवं मानसिक विकार तथा द्वितीय शत्रु समाजिक तथा राष्ट्र का शत्रु एवं राष्ट्रीय आन्तरिक कुव्यवस्था, आन्तरिक शोषण, अतिक्रमण एवं परचक्रातिक्रमण रूप वैदेशिक अतिक्रमण भी है। अतः अभेद्य शास्त्रीय रक्षण में संस्कृत वाङ्मय की भूमिका सार्वकालिक तथा महत्वपूर्ण है[18]।

अतः संस्कृतं नाम दैवी वाक के 18 या 20 महाविद्याओं में चार वेद, ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद, अथर्ववेद, व्याकरणादि षडवेदाङ्ग- व्याकरण, ज्योतिष, निरूक्त, कल्प, शिक्षा, छन्द मीमांसा (पूर्व एवं उत्तर मीमांसा), न्याय-वैशेषिक, पुराण तथा धर्मशास्त्र में 14-16 महाविद्याएँ मानवीय सर्वाङ्गिण विकासक मूलाधार तथा अन्तिम लक्ष्य हैं, तथा मानव को धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष रूप चतुर्विध पुरूषार्थ सिद्धि के योग्य बनाती है।[19]

मीमांसा का पूर्व खण्ड कर्मकाण्ड, यज्ञकाण्ड एवं मन्त्रकाण्ड एवं मन्त्रार्थ की समीक्षा के साथ वैदिकमन्त्रों की याज्ञिक प्रयोगाभिप्रायिक समीक्षा भी करती है।

* अध्यक्ष, ज्योतिष विभाग, संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकायः, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

उत्तर मीमांसा-मीमांसा का उत्तरकाण्ड-ज्ञानकाण्ड की सिद्धि तथा मोक्षसिद्धि विधायक वेदान्त संज्ञक हैं। समस्त चतुर्दश विद्यात्मक षेाडशविद्यात्मक क्रम का धर्मशास्त्र में समन्वय हो जाता है[20] । चतुर्दश विद्याात्मकं धर्मशास्त्रमित्याह याज्ञवल्क्यः'' के प्रमाण से धर्मशास्त्र चतुर्दश विद्यात्मक हैं। धर्मतत्त्व का यथार्थ वोध इन विद्यात्मक सीमाओं में सक्षमता प्राप्त किये बिना संभव नहीं है। घृधारणात् धर्मः निः श्रेयस अभ्युदयसाधकः धर्मः'यह धर्म की प्राचीन परिभाषा सार्वकालिक तथा सर्वदेशिक है[21]। इस धर्ममय विश्व की 20 विद्यात्मक क्रम की दृष्टि कालविद्यायक ज्योतिष है। मानवीय भौतिक शरीर,भौतिक शरीरान्तर्गत सूक्ष्म तथा कारण शरीर विद्यात्मक शरीर तथा विश्वात्मक द्वैताद्वैतसंस्थान तथा समग्र हेतु मूल प्रकृतिपुरूषात्मक द्वैताद्वैतविस्तार, ज्ञानमय वेद का सत्तात्मक त्रिगुणात्मकअनन्त विस्तार तथा पिण्ड वा शरीर तथा समग्रद्वैत का हेतु परात्पर परमब्रह्म परमेश्वर रूप बोध-सर्वाङ्गीण विकास गम्य तथ्य हैं ।

ब्राह्मण आरण्यक तथा उपनिषद वेद की त्रिविधव्याख्याएँ एवं त्रिवर्गसिद्धि पुरःसर परम अद्वैत स्वरूप बोधक, क्रमिकविकास की प्रक्रिया है ।

ब्राह्मण समग्र सत्संकल्प सिद्धि के यज्ञात्मक विधान को विश्वविधान से जोड़ कर प्राकृतिक एवं मानवीय दोनों रुप में प्रस्तुत करता है[22]। आज ब्राह्मणोक्त समग्र तत्वों को समझकर-प्रयोग रूप देना विश्व दृष्टि एवं विश्वकल्प बोधाभाव से केवल ग्रन्थगत हो रहा है। आज कुछ कल्पविधान उपलब्ध हैं।

अरण्यक-वानप्रस्थिओं के द्वारा निरूपित् द्वैताद्वैत समन्वय तथा भौतिक, आधिभौतिक, आधिदैविक एवं अध्यात्मिक'' समन्वय का वेद मूलक रहस्यमय महाविज्ञान है। योगनिष्ठ साधना का विश्व सम्बद्ध विस्तार ही अरण्यकों में प्राप्त होते है[23]।

उपनिषद-ब्रह्मज्ञान में एवं ब्रह्मात्मक विश्वसत्ता तथा हेतु गत सम्बन्ध का सप्रयोग समीक्षक विधान है। 11 या 21 या 71 उपनिषद् वेदमूलक है । उपलब्धों में मूल 11 किसी -2 के मत में 30 हैं। इसका भी कोई पक्ष वेद से बहिर्भूत नहीं। 8वीं शताब्दी के बाद निर्मित उपनिषदों में कुछ वैदिक मूल से बहिर्भूत हैं। उपनिषद् के नाम पर भारतीय द्वैताद्वैत समन्वित विधानों को नहीं जानने के कारण इनमें केवल प्राचीन शस्त्रों को कोशा गया है।

आयुर्वेद, धनुर्वेद ये दोनों उपवेद ऋग्वेद तथा यजुर्वेद से सम्बद्ध आन्तरिक तथा बाह्य सुरक्षा से सम्बद्ध दो भेद महत्वपूर्ण हैं। ये रोग दोष एवं राष्ट्रीय रक्षा की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं[24]।

कर्म सापेक्ष ज्ञान तथा ज्ञान सापेक्ष कर्म

कर्मसिद्धि से ज्ञानादि सिद्धि एवं ज्ञान सिद्ध से मुक्ति या भक्ति की सिद्धि सनातन परम्परा में निगमागम सम्मत विधान है। सर्व विद्यात्मक विस्तार में शब्दवर्ग के सर्वशास्त्राभिप्रायिक विस्तार का निरूपक व्याकरण निरूक्त शिक्षा एवं छन्द जन्य गम्यत्व में शब्दजन्य बाह्य तथा अन्तर्दृष्टि तथा विश्व दृष्टि में मानवीय दृष्टि एवं बुद्धि गम्यता का मूल है शब्दवर्ग। गणिताश्रित तर्काश्रित, गोलाश्रित एवं यन्त्राश्रित ज्योतिष काल विधायक है। ज्योतिष वेद का नेत्र होनें से सर्वत्र नेत्र है।

भगवान श्री कृष्ण,-गीता विष्णुपुराण, व्यास, महर्षि पतंजलि,-पातंजलयोगप्रदीप आर्यभट्ट, भास्कर तथा वि.वा. मधुसूदन ओझाजी ने विश्वसारांश के रूप वेद सार ज्योत्यंश एवं शब्दांश की निष्पत्ति को परमार्थसम्बद्धता से ज्योतिमूल से व्यक्त किया है[25]। इसके अनेक प्रमाण है।

अव्यक्त से सत्तात्मक विश्व की प्रवृति–

अव्यक्ताद् व्यक्तयः सर्वाः प्रभवन्त्यहरागमे।
रात्र्यागमे प्रलीयन्ते तत्रैवाव्यक्तसंज्ञके।।[26]

अर्थात् अव्यक्त से समस्त व्यक्त ब्रह्मदिनादि में प्रकट होते है तथा ब्रह्मादिनान्त में उसी अव्यक्त में लय को प्राप्त होते हैं। तम में ज्योतिमय पिण्ड प्रकट होता है। ज्योति दर्शन से दिन की प्रवृत्ति तथा ज्योति का अन्तर्भाव से रात्रि होती है। मानवीय दिवस से ब्रह्म दिवस तक ब्रह्माण्ड, विष्णु दिवस तक महाब्रह्माण्ड एवं शैवदिवस अनन्तमहाब्रह्माण्डों की समष्टि, तथा शाक्तदिवस के रूप में अनन्त महाचक्रात्मक सर्वनिष्ठ शक्तिक्रम में -अनाद्यनन्त क्रम से सृष्टि स्थिति एवं लय चक्रगति से गतिशील है। इसी क्रम को सौरमत ब्रह्माण्ड तथा सौराण्ड क्रम से निम्नाङ्कित रूप में व्यक्त करता है।[27]

अचिन्त्याव्यक्त रूपाय निर्गुणाय गुणात्मने ।
समस्त जगदाधार मूर्त्तये ब्रह्मणे नमः ॥

यहां ब्रह्म को प्रणाम कर उसे अचिन्त्य-अव्यक्त, निर्गुण, गुणात्मन, समस्त जगत् का आधार तथा मूर्तिमान कहा है। यह ब्रह्माण्डीय महाब्रह्मण्डीय तथा परात्परात्परीय महेश्वरात्मक अनादि अनन्त क्रम को भी व्यक्त करता हैं, तो निर्गुणात्मक से त्रिगुणात्मक त्रिदेवात्मक त्रयीविद्यात्मक मूर्तिमान काल के साथ समस्त जगत के आधार के रुप में सगुणब्रह्म सूर्य का भी संकेत करता है। यह सगुण ब्रह्म सूर्य सौर विश्व का,तथा ब्रह्मा ब्रह्माण्ड का आधार मूर्ति भी है।[28]

अव्यक्त से निकलना, (निर्गत होना) तथा अव्यक्त में लीन होना यह त्रिगुणात्मक क्रम है। समग्र द्वैताद्वैत विश्व इस क्रम से सृष्टि, स्थिति संहार (लय) को प्राप्त करता है। ब्रह्मा के दिवसारम्भ में भूः भुवः तथा स्वः सृजित होते हैं -तथा दिवसान्त में लय को (अव्यक्त में) प्राप्त होते है।

यही ब्रह्मा का दिन तथा रात्रि है। ब्राह्म दिन से मानवीय दिन तक तथा सूर्य चन्द्र नाक्षत्र सावन, गौरव, पितृ, देव मानव (प्रजापत्य) एवं ब्रह्माण्डमूलक ब्राहमकाल नवविध काल को व्यक्त करते हैं। ब्राह्म काल जन्य सिद्ध निष्कर्ष समीक्षणीय हैं। यदि इन्हें सूर्यसिद्धान्तादि से ठीक से समझ लें, तो कालविधायक ज्योतिष में प्रवेश एवं आत्मदृष्टि से विश्व दृष्टि तक का आज भी यथार्थ विकास संभव है। ज्योतिष में

प्रवेशार्थ भारतीय आचार्यों ने अपने-अपने समय की क्षमता के अनुसार यथार्थ विधान प्रस्तुत किया है।[29]

विश्वयज्ञ वेद तथा काल का सम्बन्ध –

वेदास्तावद्यज्ञकर्मप्रवृत्ताः कालनुपूर्वाः विहिताश्च यज्ञाः।
यस्मादिदं कालविधान शास्त्रं यो ज्योतिषं वेत्ति सवेदयज्ञान्॥

अर्थात् वेद यज्ञकर्म प्रवृति दर्शक विधान है। पात्र से पिण्ड एवं ब्रह्माण्ड तक सृष्टि स्थिति संहारात्मक यज्ञ तथा मानवानुकृत् विहित यज्ञविधान वेद हैं। समस्त यज्ञ कालाश्रित है। अर्थात् समग्र यज्ञ कालाश्रित एवं कालविधान सम्बद्ध हैं। यह त्रिस्कन्धात्मक ज्योतिष काल विधान शास्त्र है, अतः जो ज्योतिष जानता है, वही वैदिक यज्ञों को एवं उनके कालश्रित कालविधान एवं तदाश्रित त्रिकाल प्रभावों को भी जानता है।[30]

विष्णुपुराण—इसमें भी इस तथ्य को काल को पाचक बनाकर सर्वसृजन, स्थिति एवं संहार मूल तथा मूलाश्रित विश्वविधान के रुप में प्रस्तुत किया है । इसमें ब्रह्माण्डीय उत्पत्ति, स्थिति तथा संहार को ब्रह्मा के आयु से जोड़कर महाब्रह्माण्डीय सापेक्षता से भी जोड़ा है। यथा -

कालः पचति भूतानि सर्वाण्यैव सहात्मना।
कान्ते सपक्वस्तेनैव महाव्यक्ते लयं व्रजेत॥[31]

अर्थात् काल समस्त भूतों का अपने साथ पाक करता है। भूतों का कालजन्य पाक से समस्त सृष्टि स्थिति एवं संहार की प्रक्रिया एकसाथ चलती रहती है । ब्रह्मा के परमायु के अन्त तक समस्त ब्रह्माण्ड का पाकपूर्ण हो जाने पर काल के साथ ही अव्यक्त में लय हो प्राप्त करता है । यहां कालजन्य पाक से भूतों के साथ ब्रह्माण्ड, ब्रह्मा तथा ब्राह्मकाल का भी लय, विशेष संकेत प्रदान करता है। यहां कान्त से ब्रह्मान्त, ब्रह्माण्डान्त, तथा ब्रह्माण्डाधिष्ठित शक्ति विशेष ब्रह्मा का भी लय महाब्रह्माण्डीय अव्यक्त में होना कैसे जाना गया-यह आगम प्रमाण भी अतीन्द्रियगम्य है । आज के वैज्ञानिक विकास से भी इन प्रश्नों का कोई साक्षात् समाधान नहीं होता है । अगर प्रकाशगति के यान से चलें तब भी केवल द्युलोक के द्वितीय स्तर आकाशगंगा (वरूणकेन्द्र) तक पहुंचने में पृथ्वी से 30000 प्रकाश वर्ष लग जायेगे । फिर भूपृष्ठ से इन्हें कैसे जाना गया!' अतः निगमागम जन्याधार की दृष्टि से भी उन्हें केवल अतीन्द्रियता गम्य एवं संघीय दृष्टि से योग गम्यत्वेन साध्य माना है।

ज्योतिष शास्त्र वेदांगों तथा शास्त्राङ्गों में नेत्ररूप–

सभी शास्त्रों की दृष्टि भी ज्योतिष हीं है । दिग्देश काल एवं पात्र की निष्पत्ति से आपिण्ड ब्रह्माण्ड सभी इससे प्रत्यक्ष तथा परोक्ष रूप से जुड़े हैं। यहाँ एक तथ्य ध्यातव्य है कि सभी कर्मव्यवहार एवं आवश्यकता की दृष्टि से सम्बद्ध एक-2 स्वतन्त्र शास्त्र वा एक -2 विद्या है। कालविधान, कालजन्यक्रिया, कालजन्य व्यवहार, काल की आवश्यकता एवं उपयोगिता के समस्त आयाम कालविधायक ज्योतिष प्रस्तुत करता है। अतः इसका त्रिस्कन्धात्मक या पञ्चकन्धात्मक स्वरूप साक्ष्यप्रमाण है।[32]

कालविधान एवं काल प्रभाव –

कालविधान के अर्न्तगत कालप्रभाव भी आता है । सामन्यतः लोगों की आशंका रहती है कि अदृष्ट, अगम्य काल हमें कैसे प्रभावित करेगा? काल की स्वतन्त्र सत्ता दृग्गोचर नहीं होती । दिशा देश और काल ये सापेक्षिक अवयव है। शक्ति और गति ये भी विभिन्न आश्रय से ही प्रकट होते हैं। सूर्य भी हमें प्रकाश तथा शक्ति (ऊर्जा) देता गतिशील आदित्य संज्ञक नक्षत्र है। फिर इसे कालात्मा, कालकृत क्यों कहा जाता है? यह आशंका ठीक भी है, तथा तर्कसंगत भी है।

इसका समाधान सूर्यासिद्धान्तादि सभी सिद्धान्तों में प्राप्त होता है। **''अदृष्ट रूपकालस्य मूर्त्तयो भगणाश्रिताः''** के सौरोक्त प्रमाण से अदृष्ट रूप अव्यक्त विभुकाल गोलीय पिण्डाश्रय से गोलीय भगणाश्रय से व्यक्त होता है। अन्यथा अव्यक्त विभुकाल तथा अव्यक्तमहाकाश का सीमाङ्कन असंभव है। पिण्डहीन शून्याकाश में दिग्ज्ञान देशज्ञान तथा कालज्ञान संभव नहीं । उपर्युक्त अभाव में पात्र वा पिण्ड की सत्ता भी कहाँ से होगी? शक्ति के निष्पत्ति से गति उत्पन्न होती है। द्रष्टव्य भारतीयज्योतिष सृष्टिविद्या।

प्राचीन सिद्धान्त में आकर्षणसिद्धान्त यथा-सूर्यसिद्धान्त–

शीघ्रमन्दोच्चपाताख्याः ग्रहाणां गति हेतवः ॥1॥
तद्वातरश्मिभिर्वद्धास्तैः सव्येतरपाणिभिः ।
प्राक्पश्चादपकृष्यन्ते यथासन्नं स्वदिंग्मुखम् ॥2॥

यहाँ व्यक्तकाल को पिण्डजन्य सम्बन्ध से मूर्तिमान होना तथा अव्यक्त काल का गोलीय पिण्डों के भगणाश्रय से व्यक्त होना मूर्त्त तथा अमूर्त्त को परस्पर सापेक्षिक सिद्ध कर महाकाल तथा महाकाश को अव्यक्त सिद्ध करता हैं।[33]

व्यक्तकाल भेद–

पिण्डभेद से ग्रहादि के भगणाश्रय से व्यक्त तथा मूर्तिमान होते हैं। शीघ्रोच्च, मन्दोच्च तथा पात ग्रहों के गति के कारण है। जिस केन्द्र के चारो ओर गोलीय पिण्ड गतिशील होता हैं, वह शीघ्रोच्च है । इसके अकर्षण के कारण उच्चकेन्द्रिक तथा आकर्षित पिण्ड स्वकेन्द्रिक आकर्षण की निष्पत्ति से मन्दोच्च जन्य तथा क्रान्तिवृत्तीय तथा विमण्डलीय निष्पत्ति से शीघ्रोच्च तथा मन्दकेन्द्रीय विमण्डलीय उक्त निष्पित्ति से छेदन बिन्दु द्वय पात संज्ञक है। इन्हीं तीनों की सापेक्षता तथा निष्पत्ति से ग्रहादि एवं अन्य सभी गोलीय पिण्ड भी गतिशील होते है ।

इनके वातरश्मि से आबद्ध (पिण्डीय आकर्षण एवं विकर्षण से आबद्ध) दक्षिण वाम क्रम से, पूर्व एवं उत्तर-पश्चिम क्रम से यथा सामीप्यानुरोध से आकृष्ट होकर अपनी-अपनी कक्षा में सव्यापसव्यक्रम से सभी गतिशील होते है ।

प्रवह का उच्चकर्तृक आकर्षण–

इसकी पश्चिम गति स्वांगभ्रमण जन्य के साथ 'पूर्वापर आकर्षण, दक्षिणोत्तर आकर्षण का संकेत भी सौरमत में प्राप्त हेाना आश्चर्यवर्द्धक है।[34] यथा—

प्रवहाख्यो मरुत तांस्तु स्वोच्चाभिमुखमीरयेत् ।
पूर्वापरापकृष्टास्ते गतिं यान्ति पृथग्विधान॥3॥
ग्रहात् प्राग् भगणार्धस्थः प्राङ्मुखं कर्षति ग्रहम्।
उच्च संज्ञोऽपरार्धस्थः तद्वद्पश्चान्मुखं ग्रहम्॥4॥

इत्यादि प्रमाण मध्यकालीन बोधाश्रित आकर्षणशास्त्र का निष्कर्ष रूप है ।वेद में आकर्षण के उच्चस्तरीय निष्कर्ष होनें पर भी वे उस समय बोध गम्य नहीं थे। इसी का विस्तार परवर्त्तिकालखण्ड में न्यूटन तथा महामानव आईनस्टाईन नें सापेक्षवाद एवं शून्यनिष्पत्ति तक बढा दिया।

वस्तुतः त्रिस्कन्ध ज्योतिष गणित, गोल, गोलीययन्त्र तथा गोलीयवेध एवं गोलाश्रितगणितीय तर्क के योग से दिग्देशकाल तथा पात्र की दृष्टि से ज्योतिष कैसे विश्वदृष्टि का द्योतक है - इसका केवल संकेत मात्र किया गया है । क्योंकि इसका हर एक सन्दर्भ एक स्वतन्त्र शोध निबन्ध तथा शोधग्रन्थ से गम्य है।

सृष्टिविद्या का मूल तथा विश्वदृष्टि –

सृष्टि स्थिति एवं लय जन्य समस्य दर्शनों का निष्कर्ष भी सूर्य सिद्धान्त के भूगोलाध्याय में प्राप्त होता है। वैष्णवागम, वेदान्त, सांख्ययोग आदि दर्शनों में प्रयुक्त सृष्टिविद्या के निष्कर्ष के रुप में प्रयुक्त सिद्धान्तों को परात्पर परमात्मा, परमब्रह्म, परमेश्वर, वासुदेव से जोड कर एवं परमब्रह्म, वासुदेव के परमधाम से जोड़कर परमपुरूष, अव्यक्त,निर्गुण, शान्त 25 तत्त्वों से परे आदि संज्ञा से प्रारम्भ कर परमअव्यय, प्रकृत्यन्तर्गत, बाहर, भीतर सर्वत्र व्याप्त कहा है। वहां से संकर्षण,से अपस्तत्वात्मकसृजन कर तैजस तत्त्वात्मक वीर्य को अपस्तत्व में निः क्षिप्त किया। यहाँ संकर्षण से अपसत्व के सृजितरूप तत्व में तैजसतत्त्वात्मकवीर्य निःक्षेप सृष्टि विकास का तृतीय एवं चतुर्थ क्रम था। तम से आवृत्त अनादि-अनन्त महाकाश में अपतत्त्व में तैजसतत्त्वात्मक-वीर्यानिःक्षेप तृतीय एवं चतुर्थ क्रम तम से आवृत्त अनादि-अनन्त महाकाश में अपतत्त्व और संकर्षण के वीर्य के संयोग से महतत्वात्मक महाकाश में स्वर्णाण्ड की उत्पत्ति हुइ। यही है ब्रह्माण्डीय मेघ में तैजस्तत्व उत्पत्ति का वैदिक रहस्य है।

इस महास्वर्णण्ड को अनिरूद्ध कहा। यही अनिरूद्ध प्रकट सनातन व्यक्त प्रथम आधार को वैष्णवागम अनिरूद्ध कहते है। वेद में इसे हिरण्यगर्भ कहा है। इसी हिरण्यगर्भ से द्वादशादित्य, एकादशरूद्र, अष्टवसु तथा दो अश्विन्यादि प्रकट हुए।

हिरण्यगर्भ से प्रथम प्रकटीकरण के कारण सभी के आदि में होने से सगुणब्रह्म सूर्य को भी आदित्य तथा प्रसूत होने से सूर्य कहते है। परमज्योति, तमःपारे सूर्य, सविता आदि सूर्य का संज्ञान्तर तथा नामान्तर हैं। भुवनों को भावित करते हुए यह भूतभावन सूर्य भ्रमणशील है। यह प्रकाशात्मा, तमोहन्ता, महान आदि नामों से लोक में विख्यात है। इस प्रकार वासुदेव, संकर्षण, हिरण्यगर्भ, इत्यादि क्रम से विश्व का अद्वैत से द्वैत विश्व तक का विकास वैदिक निष्कर्ष पर आधारित सौर तथ्य है। नवीन सृष्टि विकास का मूल विगवैंगथ्यूरी Bigbang Theory से हिरण्यगर्भसिद्धान्त का साम्य है। भास्करीयगोलाध्याय में इस तथ्य की मैंनें तथा मुझसे पूर्व वि.वा.मधुसूदन 'म. म. गिरीधर लाल, डॉ वासुदेव शरण, आदि ने बहुत पहले इसकी समीक्षा की है।

सनातन प्रथम हिरण्यगर्भ से सौरमण्डलीय प्रथम सूर्य तक के द्वैत विकासक्रम में ऋच को मण्डल केन्द्र, साम को किरणों के मण्डल के चारो ओर मण्डलात्मकविस्तार तथा यजुः को मूर्तिमय 'मण्डलात्मक रूप में त्रयीमय, त्रिगुणात्मक, भगवान कालात्मा, कालकर्त्ता तथा विभु रूप में हिरण्यगर्भ्र से आदित्यसूर्य तक सभी तथ्य सम्बद्ध है। सर्वात्मा, सर्वगत, सूक्ष्म तक, से ये सभी तथ्य सम्बद्ध हैं। सर्वात्मा, सर्वगत, सूक्ष्म, सर्वाधार तथा सभी समग्र द्वैत विश्व इस हिरण्यगर्भ में तथा सौरमण्डलाभिप्राय से समग्र सौरमण्डल सूर्य में प्रतिष्ठित है। यह तथ्य निःसन्देह वैदिक अन्वेषण पर आधरित है। हमारा सौरमण्डल तथा सूर्य का यह सम्बत्सरात्मक चक्र तथा विश्वमय रथ में अर्थात् सम्बत्सरात्मक चक्र में सप्ताश्वयुक्त (सातकिरणों से युक्त) सर्वदा पर्यटन करता है । इस सगुण ब्रह्मसूर्य के मार्ग का तीन पाद अमृत, गुह्य (रहस्यमय) तथा एक पाद (चतुर्थांश) इसका व्यक्त (प्रकटप्रत्यक्ष) हैं। सौर मत में हिरण्यगर्भात्मक अनिरूद्ध से (द्वादशतमसूर्य से) अहंकारात्मक जगत की सृष्टि रचना के लिए ब्रह्मा की उत्पत्ति कहा है। कमलाकर ने इसे सौर मण्डलीय सूर्य से जोड दिया है। इस प्रकार ज्योतिष शास्त्र के प्रवर्त्तकों में सौरमत से ज्योतिष प्रवर्त्तक सौरमण्डलीय तथा ब्रह्ममत ब्रह्माण्डीय क्रम का संकेत करता है। यथा—

सौरसृष्टिक्रम –

वासुदेवः परं ब्रह्म तन्मूर्ति; पुरूषः परः।
अव्यक्तो निर्गुणः शान्तः पञ्चविंशति परोऽव्ययः॥12॥
प्रकृत्यन्तर्गतो देवो बहिरन्तश्च सर्वगः।
सड्.कर्षणो ऽपः सृष्ट्वादौ तासुवीर्यमवाऽसृजत्॥13॥
योगं तदभवद् हैमं सर्वत्र तमसावृत्तम्।
तत्रानिरूद्धः प्रथमं व्यक्तीभूतः सनातनः॥14॥

यह क्रम वैष्णवागम, शाक्तागम तथा शैवागम का समन्वित निष्कर्ष है।

हिरण्यगर्भो भगवानेष छन्दसि पठयते।
आदित्यो आदिभूतत्वात् प्रसूत्या सूर्य उच्यते॥15॥
परं ज्योतिस्तमः पारे सूर्योऽयं सवितेति च।
पर्येति भुवनान्येष भावयन् भूतभावन॥16॥
प्रकाशात्मा तमोहन्ता महानित्येष विश्रुतः।
ऋचोऽस्य मण्उलं सामान्युस्त्रा मूर्तिर्यजुंषि च॥17॥
त्रयीमयोऽयं भगवान् कालात्मा कालकृद्विभुः।
सर्वात्मा सर्वगः सूक्ष्मः सर्वमस्मिन् प्रतिष्ठितम्॥18॥

द्रष्टव्य सूर्य सिद्धान्त श्लो0 12 से 20 भूगोलाध्याय-।

यहाँ हिरण्यगर्भ से सृष्टिक्रम में सभी तथ्य वैदिक संहिताओं ब्राह्मणों, अरण्यकों तथा बोधगम्यत्व की अद्वैतदृष्टि ''जो उपनिषद में पठित है'' उनके यहाँ निष्कर्ष हैं।

प्रकृतिपुरूषात्मक शाश्वत परम अव्यय में विक्षोभ स्वरूप संकर्षण, संकर्षण से अनिरूद्ध(महान विराट) एवं महान से अहंकार के त्रिगुणात्मक समष्टिरूप हिरण्यगर्भ एवं हिरण्यगर्भ से सूर्यादि तथा सौरमण्डल में भूगोलान्त समस्त चराचर सृष्टिक्रम का निरूपण समग्र वैदिक सृष्टि विद्या, आगमोक्त सृष्टि विद्या,तथा पुरोणोक्त सृष्टि विद्या का निष्कर्ष रूप है। यही अनन्त ब्रह्माण्डीय सृष्टि स्थिति एवं संहारचक्र का मूल है । इसे 13 श्लो0 में प्रकृति का शाश्वत निवेश इसे सांख्य दर्शन मूल से, ब्रह्मशब्द वेदान्त मूल से, हिरण्यगर्भ वैदिक मूल से, जोड़ता है। यही हिरण्यगर्भ (महाब्रह्माण्डत्मक अनन्त सनातन महागोल) वीग वैंग के रूप में समीक्षित तथा वर्गीकृत हो रहे। अगर सूक्ष्मदृष्टि से समीक्षा करें, तो पाते है, कि महाभारतकाल तक मन्त्रात्मक, तन्त्रात्मक, यन्त्रात्मक अतीन्द्रियता के प्राचीन दृष्टान्त की दृष्टि से ये तथ्य गम्य थे। यद्यपि भौतिक विकास का महाकाशीय दौर फिर शुरू हो चुका है,। अभी यह केवल यन्त्रात्मक अतीन्द्रियता का दौर है, लेकिन यह अभी भी प्रदूषण मुक्त नहीं है। जब तक सभी यन्त्र सौरांशुचालित नहीं और सर्व सुलभ नहीं होते, तब तक यह यान्त्रिक अतीन्द्रियता हमें दिव्य तक नहीं ले जायेगी।[35] हिरण्यगर्भात्मक विस्तार में समग्र महाब्रह्माण्डात्मक (विराट पुरूषात्मक) कालात्मा, सर्वात्मा, सर्वगतः (एकोदेवः सर्वभूतेषु गूढ़ः - छान्दोग्य) सूक्ष्मः (अन्तश्चरति भूतेषु गुहायां विश्वतो मुखं, त्वं यज्ञस्त्वं वषटकार आपो ज्योति रसोऽमृतम् ।।) के रूप में समग्र द्वैत का सृष्टि स्थिति संहार रुप में सभी चराचर क्रम इसमें प्रतिष्ठित है तथा वह यज्ञादिरुप में सर्वत्र प्रतिष्ठित है। नवीन ज्योति विज्ञान, महाकाशविज्ञान तथा उपग्रहादि विद्या के वर्त्तमानक्रम से भी यह निष्कर्ष रुप संभावित है। सौरकार ने भी कहा है -

रथे विश्वमये चक्रे कृत्वा संवत्सरात्मकम्।
छन्दांस्यश्वाः सप्तयुक्ताः पर्यटत्येष सर्वदा।।19।।
त्रिपादममृतं गुहयं पादोऽयं प्रकटोऽभवत्।
सोऽहंकारजगत्सृष्ट्यै ब्राह्माणमसृजत् प्रभुः।।20।।

यहाँ महाब्रह्माण्ड से ब्रह्माण्ड का प्रवर्त्तन कर समग्र सूर्य विज्ञान संस्थान संचार दर्शक सम्बत्सचक्ररूप द्वैतकालनर का निरूपण भी प्राप्त होता है। सूर्य का भूकेन्द्रिक भ्रमण समग्र भूगोलाभिप्राय से प्रभावदृष्टया प्रतीकात्मक है। वरूण केन्द्रिक समग्र सौरपरिवार के साथ (आकाशगंगाकेन्द्रिक) भ्रमण वास्तविक है। इन तथ्यों के प्रमाण वैदिक वाड.मय में भरे पड़े है । द्रष्टव्य विज्ञान विद्युत् - अक्षरात्मा जगदात्मा सूर्यः । अक्षरब्रह्मसूर्यः । पञ्चाक्षरब्रह्मनिरूपण आदि ये सभी विज्ञानविद्युत ब्रह्मविज्ञानशास्त्रं आदि ग्रन्थों में विद्या वाचस्पति मधुसूदन ओझाजी ने विधिवत निवेशित किया है।[36]

ऋतं च सत्यं चाभिधात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्योऽजायत ततः समुद्रोऽर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसम्वत्सरोऽजायत॥ अहोरात्राणि विदधविश्वस्य मिषतो वशी सूर्यचन्द्रमसौ धाता यथा पूर्वमकल्पयत्॥ यजु0।।[37]

यहां सृष्टिक्रम का विकासक्रम निष्कर्षतः सारभूत पठित है। ऋत-सत्य, तप से उत्पन्न हुए। तप तपनादि, तप-तपोलोक आदि के तप से ऋत् तथा सत्य उत्पन्न हुए। तप से अधितत्त्व एवं इससे रात्रि उत्पन्न हुई। रात्रि से अधि, ऋत् सत्य के तप से विराट अर्णव (महाविश्वसमुद्र समग्र द्वैत मूल) प्रकट हुआ। विश्व महासमुद्र में ऋत सत्य के संकर्षण से अधितत्वात्मक सम्बत्सरचक्र, तथा सूर्य चन्द्र आदि प्रकट हुए । तमसावृत महाब्रह्मण्ड में सनातन हिरण्यगर्भ से रात्रि दिवसात्मक चक्र महाब्रह्माण्ड में तथा सौरमण्डल में सूर्य से दिन के प्रकटीकरण से अहोरात्रात्मक सम्वत्सरचक्र प्रकट हुआ। अतः उपर्युक्त सौरमत का वर्णन स्पष्ट है ।

उस सनातन हिरण्यगर्भ की तरह इस सूर्य का तीन पाद वरूण केन्द्रित भ्रमण से अदृष्ट तथा एक चरण सम्बत्सरचक्र के भू सम्बद्वता से दृष्ट एवं गम्य है। गोलीय भगणोपपत्ति सिद्धान्त से ये तथ्य संघीय शोध से गम्य हैं। सूर्य का वरुणकेन्द्रिक भ्रमण का वैदिक प्रमाण— **''उरू हि राजावरूणश्चकार सूर्याय पन्था मनवे तवायु''** से वरूण केन्द्रिक भ्रमण तथा **''आकृष्णेन रजसा वर्त्तमानो निवेशयनमृतं मर्त्यं च हिरण्यमयेन सविता रथेन देवो याति भुवनानि पश्यन्॥ शुक्लयजुर्वेदः॥** यहाँ अमृत शब्द, देवो याति शब्द, आकृष्णेन रजसा आदि शब्द महत्वपूर्ण है। वरूण केन्द्रिक अटन से अमृत लोक व्यवस्थापित होता है तथा एकपाद से मर्त्यलोक (द्युलोक से अधः भाग) व्यवस्थित होता है।

भूचलन, प्रतिपिण्ड का स्वाङ्ग भ्रमण अग्नितत्त्वात्मक सूर्य, सोमतत्त्वात्मक चन्द्र, पृथ्वी के उपर तथा-अग्नि गर्भापृथिवी एवं सूर्य के ऊपर भी परमेष्ठीचन्द्र,एवं सूर्य का अग्नि, सोम, प्राण, वाक तत्वात्मक अक्षरात्मक स्वरूप, संरचना एवं सगुणब्रह्मात्मक रूप एवं अद्वैत सम्बद्धता भारतीय वाङ्मय के ज्योतिषीय अनुशीलन से गम्य है। द्रष्टव्य विज्ञानविद्युतादिज्योतिर्विज्ञानादि ।[38]

वसत्यस्मिन् जगत समस्तमसौ वा समस्ते जगति वसतीति वासुः। वसते रूणिप्रत्ययः। देवनाद् भासनाद् देवः। वासुःश्चासौ देवश्चेति वासुदेवः'' की व्युत्पत्ति से सौरमत पर वैष्णवागम का प्रभाव मुख्य रूप से जान पड़ता है। बृंहतीति ब्रहम से ब्रह्म सर्वव्यापक है। गीता में कहा भी है[39]—

यस्मात्क्षरमतीतोऽहमक्षरादपि चोत्तमः ।
अतोऽस्मिन् लोके वेदे च प्रथितः पुरूषोत्तमः ॥

क्षर विश्व से परे अक्षर विश्व से भी परे एवं उत्तम होने के कारण लोक तथा वेद दोनों जगह परात्पर परमेश्वर को पुरूषोत्तम कहते है । यहां विश्व का क्षर खण्ड तथा अक्षरखण्ड एवं चर रूप तथा अचर

रूप के संकेत महत्वपूर्ण है। वस्तुतः सर्ववेदात् प्रसिदति'' तथा सर्वं खल्विदं ब्रहम'' वेदाऽखिलोधर्ममूलं' इत्यादि प्रमाण वैदिक वाड्.मय के विश्वाभिप्रायिक महत्व को दर्शातै हैं । इस द्वैताद्वैतात्मक वेद पुरूष की दृष्टि होने से ज्योतिष विश्वदृष्टि है। समस्त द्वैतसत्तात्मक विश्व तथा पक्ष को बाह्य तथा अन्त; दृष्टि कालविधान शास्त्र के रूप में ज्योतिष से मिलती है ।

पुरूष सूक्त का प्रमाण भूगोलाध्याय के 20 श्लोक में निष्कर्षतः पठित हुआ है। जैसे—

पादोऽस्य विश्वाभूतागिनि त्रिपादस्यामृतं दिवि।
त्रिपादूर्ध्वम्मुदैतपुरूषः पादोस्येहा भवत्पुनः।।[40]

इस प्रकार समग्र वैदिक सृष्टि तथा संस्थान मान संचार प्रभृति का स्पष्ट विधान एवं स्पष्टदृष्टि संस्थानाभिप्राय से ज्योतिष शास्त्र में प्राप्त होता है।

सौरमत में हिरण्य गर्भ के अण्ड के मध्य में ब्रह्मा को प्रतिष्ठापित कर वेदादि प्रदानकर हिरण्यगर्भ सूर्य का त्रिलोक को प्रकाशित करते भ्रमण करना बताया हैं। हिरण्यगर्भ से सूर्यान्त सृजित द्वैत विश्व में स्वर्णाण्ड मध्यस्थित अहंकार मूर्ति स्वरूप ब्रह्मा नें मन से चन्द्रमा, नेत्र से सूर्य, एवं आकाश, वायु अग्नि, आप,एवं भूतत्त्व की सृष्टि कर एक -2 गुण वृद्धि की निष्पत्ति से समग्र द्वैत विश्व ब्रह्मा ने सूर्यादि क्रम से मानासिक संकल्प से प्रकट किया ।

सूर्य अग्नि तत्त्व प्रधान, चन्द्र सोमतत्व प्रधान सृजित हुए । एवं तेज से मंगल, भूतत्त्व से बुध, आकाश तत्त्व से गुरू, जलतत्व से शुक्र, वाततत्व से शनि आदि विभिन्नतत्त्वों की प्रधानत्व से प्रकट हुए। ब्रह्मा नें सम्वत्सरचक्र का 12 विभाग 12 राशियों को तथा 27 विभाग कर 27 नक्षत्र पुंजों को भी सौरमण्डल से ऊपर सृजित किया ।

इस प्रकार सौर मत में वैदिक वाड्मय मतानुरूप महाब्रह्माण्ड से ब्रह्मण्ड तक हिरण्यगर्भात्मक तथा ब्रह्माण्डीय स्तर विभाग में सत्य से स्वर्लोक तक तथा नक्षत्र राशि सूर्य ग्रह एवं पृथ्वी तक ब्रह्माण्डीय सृजन का समग्र वर्णन आश्चर्योत्पादक है। ये निष्कर्ष महाभारत काल तक के दिव्यतम एवं उच्चस्तरीय तकनीकि विकास को भी दर्शाते हैं।

अथ सृष्टयां मनश्चक्रे ब्रह्माहंकारमूर्तिभृत् श्लो0 36 तक समग्र भगोल, खगोल ग्रहगोल, चन्द्र, भूगोलीयान्तरिक्ष तथा भूगोल का सम्यक निवेश तथा समग्र भूगोलाध्याय सभी दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह वास्तविक विश्वदृष्टि का संस्थान मान सम्बद्व ज्योतिषीय पक्ष है।[41]

भास्करीय प्रमाण संकेत –

भास्कराचार्य ने सिद्धान्तशिरोमणि गणिताध्याय के मंगलाचरण में सूर्य को सगुण ब्रह्म,सौर विश्व का रक्षक, अन्धकार एवं पाप का नाशक, यज्ञप्रवर्त्तक, द्युलोक का प्रकाशक के साथ योग महाविज्ञान एवं सूर्य विज्ञान के साथ ज्योतिष का समन्वित रूप प्रस्तुत किया है यथा - 42

जयति जगति गुढान्धकारे पदार्थान्
जनघनघृणयायं व्यंजयनात्मभाभिः।
विमिलित मनसां सद्वासनाभ्यासयोगैरपि
च परमतत्त्वं योगिनां भानुरेंकः॥1॥

यहाँ विमलबुद्धि, गोलीय सदवासना एवं योगाभ्यास के साथ सूर्यविज्ञान का समन्वय ध्यातव्य है। ''यत्र त्रातुमिदं जगज्जलजिनी बन्धौ —व्यनक्तु सगिरं गीर्वाण वन्द्यो रविः।।1।। इस मूल मंगलाचरण से भी उपर्युक्त तत्त्व के बोधगम्यता का आधार प्रकट होता है।

भास्कर ने जहां बुद्धि को पारमार्थिक बीज कहा एवं सभी यन्त्रों का मूल कहा, वही यन्त्राध्याय का निवेश कर गोलीय वेध में गोलीययन्त्रों की भूमिका के महत्व को भी दर्शाया। सिद्धान्त लक्षण ग्र0 गणित श्लो0 4 से 6 तक गणित सिद्धान्त का सर्वविध विज्ञानमूलत्व श्लो0 7, काल विधायकत्व एवं वेदाङ्गत्व श्लो0 9 सभी अंगों में ज्योतिष की श्रेष्ठता श्लो0 10 शास्त्रीयदृष्टिहीनता की समस्या से वैदिक वोधहीनता श्लो0 11 तथा धर्म, अर्थ, काम एवं यशपुरः सर मोक्ष प्राप्ति का मूलत्व श्लो0 12 विश्वदृष्टि में ज्योतिष की भूमिका को स्पष्ट कर देता है। त्रुट्यादि प्रलयान्त कालकलना से धर्मार्थकामान् लभते यशश्च के रूप में भास्करीय निरूपण सवासनाभाष्य द्रष्टव्य है ।

सृष्ट्वा भचक्रं कमलोद्भवेन'' से ब्रह्मा से ब्रह्माण्ड का प्रवर्त्तन भी द्रष्टव्य एवं समीक्षणीय तथ्य है। श्लो0 13, 14'' सौरगोलीय प्रकाशप्रसार, सौरगोलीयब्रह्माण्ड की परिधि दृश्य अदृश्य ब्रह्माण्डीय विभाग का सीमाङ्कन तथा कल्पगत ग्रहगति योजन को 1871276, 200000000 योजनात्मक कहना महत्वपूर्ण है। इसे 5, 27 एवं 60 से गुणा करने पर माइल प्रमाण से सौरमण्डलीय ब्रह्मण्ड (द्युलोकान्त) की सीमा पठित करना पूर्वकालीन निष्कर्ष पर आधारित है।[43]

कोटिघ्नैर्नखनन्दषट्कनख भूभृद्धुजद्रेन्दुभिः-
ज्योतिःशास्त्र विदो वदन्ति नभसः कक्षमिमां योजनै॥
.....खकक्षाख्यामिदं मतं नः॥3॥

इससे सौमण्डलीय आकाश पूर्वमूल से भास्कर ने सीमाङ्कित किया है । ग्रहस्पष्टीकरण में समस्त ग्रहों का केन्द्र भूकेन्द्र से अन्यत्र शीघ्रोच्च रूप सूर्य को ठहराया है। यहां ध्यातव्य तथ्य है कि जब शेष विश्व मार-काट में डूबा था, उस समय भी भास्कर ऋषियों के अन्वेषण निष्कर्ष को यथा साध्य बुद्धिबल से अग्रसारित कर हमारा महान उपकार किये। सूर्यादि के भ्रमण भुकेन्द्रिक नहीं के प्रमाण-

''**भूमेर्मध्ये खलु भवलयस्यापि मध्यं यतः स्यात् -**
यस्मिन् वृत्ते भ्रमति खचरो नास्य मध्यं कुमध्ये'' तथा प्रकृतिनिष्ठ शक्ति का प्रतिपिण्डीय स्वरूप तथा भूकेन्द्रिक गुरूत्व शक्ति का'' अन्त्ये कल्प्या चेत स्वशक्तिः किमाद्ये किं नो भूमेश्चाष्ट मूर्तेश्च मूर्तिः'' का गोलाप्यायोक्त निरूपण विश्वदृष्टि का मध्यकालीन नमूना है।

दिग्देशकाल एवं पात्रादि के रूप में सर्वाभिप्रायिककाल के आयाम गणित सिद्धान्तादि क्रम से त्रिस्कन्ध ज्योतिष के आयाम से विश्वदृष्टि के समीक्षा के मूलाधार है।[44]

भास्कर ने प्रभाव शास्त्र का महत्व भी दर्शाया है। ज्योतिष के त्रिस्कन्धात्मक वा पंचस्कन्धात्मक विस्तार का मूल गणित एवं गोल है। कहा भी है—

द्विविधगणितयुक्तं व्यक्तमव्यक्तयुक्तं, तदवगमननिष्ठः शब्दशास्त्रे पटिष्ठः। यदि भवति तदेदं ज्यातिषं भूरिभेंदं प्रपठितुमधिकारी, सोन्यथा नामधारि॥[45]

यहां सगणित शब्दशास्त्र के ज्ञान से अनेंक भेदात्मक ज्योतिष में प्रवेशहोना सार्थक कहा है। अत एव षडवेदाङ्गात्मक विधान विश्वदृष्टि विधायक है।

वेदाङ्गों के शब्दवर्ग एवं कालवर्ग में निवेश तथा सर्वविध मूलत्व परम्परा से स्वीकृत है। योगमहाविज्ञान के प्रवर्त्तक महामुनि पतंजलि ने महाभाष्य में कहा है - ब्राह्मणैः निष्कारणो षडङ्गो वेदोऽध्येयो ज्ञेयश्चेति[46] यह कहकर सर्वविश्वदृष्टि के मूलाधार को प्रकाशित किया है। अतः इन्हीं कारणें से महामना ने आठ विभागों को सर्वविद्या मूल के रूप में सं0वि0ध0वि0संकाय में निवेशित किया। ज्ञान, विज्ञान, कला, दर्शन, तथा अध्यात्म के समेकित मूल का केन्द्रिक निवेश कर इस मूल के युगानुरूप विकास के लिए अन्य समस्त विभागों एवं संकायों को पूरकता की दृष्टि से निवेशित करना उनके विश्वदृष्टि का उद्घाटक है । यद्यपि समग्र विश्वदृष्टि ज्योतिष को महामना ने इस विश्वविद्यालय में उत्कृष्ट स्थान प्रदान कर जो शुरूआत की, उसे विभिन्न तात्कालिक कारणों से स्वतन्त्रता के बाद सही गति इस महान विश्वविद्यालय में भी नहीं दी जा सकी।

ज्योतिष अनेक विद्याओं का संघीभूत निवेश है- इसे नहीं समझनें से अनेक आरोप, प्रत्यारोप एवं विरोध जन्य परम्पराएँ भी स्वतन्त्रता के बाद भी प्रसारित हुई। ज्योतिष के प्रभावशास्त्रीय प्रमाणों में भास्करीय प्रमाण महत्वपूर्ण है। यथा [47]

ज्योतिः शास्त्रफलं पुराण गणकैरादेश इत्युच्यते।
नूनं लग्नबलाश्रितः पुनरयं तत्स्पष्ट खेटाश्रयम्॥
ते गोलाश्रयिणो ऽन्तरेण गणितं गोलो,ऽपि न ज्ञायते।
तस्मात् यो गणितं न वेत्ति सकथं गोलादिकं ज्ञास्यति॥

अर्थात् ज्योतिष शास्त्र फल का (प्रभावशास्त्रज्ञापक विधान) पुराण है । ज्योतिष शास्त्र के फल को प्राचीन गणक आदेश शास्त्र कहते है। लग्न बल,एवं स्पष्ट ग्रहबल से आदेश दिये जाते हैं। क्रान्तिवृत्त का भूक्षितिज सापेक्ष संयोग लग्न तथा ग्रहर्क्षमण्डल, सूर्य ग्रह एवं नक्षत्र गोलीय अवयव हैं। अतः जो गोलज्ञान गोलीय गणित एवं गोलीयवेध को नहीं जानता वह गोलादि एवं गोलीय प्रभावादि को कैसे जानेगा? इतने उच्च स्तरीय निष्कर्ष मध्यकाल तक रहने पर भी समस्त वैज्ञानिक विकास भारत में अवरूद्ध हो गये, इसके प्राप्त अनेक प्रमाण यहां असमीक्षणीय हैं।

समस्त फलित संज्ञक प्रभाव शास्त्र के संहिता, स्वर, शकुन, केरल, होरा, जातक, प्रश्न, सामुद्रिक भेद एवं संहिता क्त्र पञ्चविध निमित्त तथा अष्टविध निमित्त शास्त्रों के साधारत्व, गणिताश्रयत्व, त्रिगोलीय सम्बद्धता एवं विमलबुद्वि गम्यत्व के अनेक प्रमाण भारतीय आचार्यो ने समय-2 पर उदघाटित किये हैं। इन तथ्यों को स्वतन्त्र रूप से यथा समय उद्घाटित किय जायेंगे।[48]

अस्ति त्रैराशिकं पाटी बीजं च विमलामतिः ।
किमज्ञातं सुबुद्धिनामतो ममन्दार्थ मुच्यते ॥ इति भास्कर[49]
ज्योतिः शास्त्रमनेकभेद विषयं स्कन्धत्रयाधिष्ठितम्।
तत्कात्सनयोपनस्य नाम मुनिभिः संकीर्त्यते संहिता॥
स्कन्धेऽस्मिन्गणितेन या ग्रहगतिस्तन्त्राभिधानास्त्वसौ।
होराख्योऽङ्ग विनिश्चयश्च कथितःस्कन्धस्तृतीयोऽपरः॥1॥

वृ.सं.आ. 2 श्लो. 9 इति वराहः -।

विधाता लिखिता याऽसौ ललाटेऽक्षरमालिका ।
दैवज्ञस्तां पठेद्वयक्तं होरा निर्मल चक्षुषा ॥1॥

सारावली अ0 3 कल्याण वर्मा।

अतः अनेक भेदात्मक ज्योतिष शास्त्र त्रिस्कन्धात्मक हैं । त्रिगोलीय समग्र प्रभाव का समग्र भूगोलाभिप्रायिक रूप समहितेति - संहितेति के कारण प्रभाव दर्शक विधान को संहिता मुनियों ने कहा। इस स्कन्ध में गणित से जो ग्रह गति निर्धारित की जाती है, इसे तन्त्र वा सिद्धान्त कहते है। तृतीय स्कन्ध लग्न निश्चय पर आधारित होरा स्कन्ध कहा गया है।

ज्योतिष का शैक्षिक निवेश –

ज्योतिष शास्त्र अपने त्रिस्कन्धात्मक रूप से विश्व दृष्टि तथा मानवीय दृष्टि दोनों का द्योतक है। वैदिक काल से आज तक समग्र विश्व की दृष्टि, ज्योतिष को बताना, नहीं तो निराधार है, नहीं निर्युक्तिक। कालान्तर्गत, कालाश्रित, गोलान्तर्गत, गोलाश्रित एवं गोलीय पिण्ड सापेक्ष दिग्देशकाल एवं पात्र की सापेक्षता से सभी तथ्य व्यक्त (प्रकट) एवं समीक्षित होते हैं । अतः काल विधायक ज्योतिष सर्वाभिप्रायिक दृष्टि प्रदायक होने से विश्वदृष्टि विधायक एवं ज्ञानमात्र तथा समग्रनिवेश मात्र में यह दृष्टि रुप है ।

इतने महत्वपूर्ण विश्वदृष्टि विधायक शास्त्र की शैक्षिक स्थापना महामना ने 1918 में सर्व्रप्रथम प्राच्य विद्या महाविद्यालय में केन्द्रीय दृष्टि विकासार्थ स्वतन्त्र विभाग के रूप में की । इस विभाग में प्रारम्भ में गणित ज्योतिष, फलित ज्योतिष तथा पञ्चाङ्ग प्रकाशन के रूप में तथा तीनों विषय पठन-पाठन तथा शोध की दृष्टि से रखे गये[50]।

ज्योतिष विभाग –

इसमें गणित ज्योतिष के अन्तर्गत प्राचीन भारतीय गणित शास्त्र एवं गणित सिद्धान्तज्योतिष, गोलीययन्त्रपरिचय एवं प्रयोग पञ्चाङ्गगणित आदि ज्योति गणित के पाठयक्रम में रखे गये। इस विषय में आचार्य तक शिक्षण तथा शोध की व्यवस्था भी रखी गयी। आज 24 विषय

एक साथ इसमें समन्वित है । काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ज्योतिष गणित में आचार्य (M.A) तथा विद्याावारिधि (Ph.D) तक उपाधि प्रदान करता है।

इस विभाग में ज्योतिष फलित के अन्तर्गत जातकगणित, होरा, संहिता, 25 विषयविभागाात्मक, प्रश्नतन्त्र 6 भेदात्मक, केरल 8 विभागात्मक, शुभशकुन 8 भेदात्मक, स्वर 10 विषयात्मक, वृष्टि 8 विषयात्मक, वास्तु 5 विषयात्मक, कृषि, मुहूर्त्त आदि सभी प्रभाव सम्बद्ध विषय रखे गये । काशी हिन्दू विश्वविद्यालय ज्योतिष फलित में भी आचार्य (M.A) तथा विद्यावारिधि (Ph.D) तक उपाधि प्रदान करता है।

पञ्चाङ्ग अनुभाग–प्रारम्भ में इसे भी ज्योतिष विभाग के अन्तर्गत व्यापक उद्देश्य से रखा गया था। विश्वविद्यालय सूर्य सिद्धान्त के मूल सूत्रों से निर्मित सारिणी से प्रतिवर्ष विश्वपञ्चाङ्ग निकालता है। पञ्चाङ्ग में पञ्चाङ्गगणित के साथ मानव जीवनोपयोगी सभी विषय दिये जाते है। व्रत, पर्व, उत्सव, व्यवहारिक मुहूर्त्त, मासकृत्य, जयन्तियां पाक्षिक वातावरण, ग्रहर्क्षसंचारोत्पन्न वृष्टियोग, ग्रहण, उदय, अस्त आदि सभी विषय पञ्चाङ्ग में दिये जाते हैं। परन्तु आज पञ्चाङ्गअनुभाग ज्योतिष से अलग चल रहा । इसमें भी कई कलहादि जन्य कारण थे। इसमें कार्य कर रहे विद्वान तृतीयश्रेणी के वेतन पारहे, तथा कई पद वर्षों से रिक्त, तथा इसमें कार्यरत विद्वान उन्नति के अभाव में जीवन यापन कर रहे, फलतः पंचाग जन्य शोध उपेक्षित है।

महामना नें ज्योतिषविभाग की स्थापना के द्वारा गणित, फलित एवं पञ्चाङ्ग के माध्यम से विश्वदृष्टि विस्तार को गति दी, लेकिन इनके उपर्युक्त लक्ष्य तथा दृष्टि को समयोचित विकासक गति विभिन्न कारणों से स्वतंत्रता के बाद भी नहीं मिल सकी ।प्राचीनशास्त्र के रक्षण तक हीं निवेश रहा गया। इसके सैकड़ों वैज्ञानिक शाखाएँ बीज रूप में संरक्षित अवश्य होते रहे है, लेकिन इनके समुचित विकासार्थ स्वतंत्र शाखा (Branch) के रूप में स्नातक, स्नात्तकोत्तर एवं शोध में समुचित निवेश राष्ट्रीय स्वतन्त्रता के बाद भी नहीं हो सका।

ज्योतिष गणित में 25 मुख्य विषयों का सामावेश है, जिसे एक विषय विभाग के अन्तर्गत छात्र क्रम से आचार्य तक पढ़ते है।

ज्योतिष फलित में संहिता के 25 विभाग होरा तथा जातक के 5 विभाग चिकित्सकीय ज्योतिष, स्वर, शकुन, प्रश्न, सामुद्रिक-वृष्टि,वास्तुस्थापत्य आदि समस्त विषयों को छात्र ज्योतिष फलित के अन्तर्गत एक-2पत्र के रुप में पढ़ते है। अभी भी केवल रक्षण क्रम से प्राचीन विषयों की रक्षा करते रहनें की बाध्यता है । फलतः इन विषयों के समुचित विकास में कई बाधाएँ है ।इनमें प्रत्येक विषय ज्योतिषमूलक होनें पर भी स्वतन्त्र विषय हैं । अतः इन विषयों में एक व्यक्ति एक साथ विशेषज्ञता हासील नहीं कर पाता ।यह युग विशेषज्ञता का है। फलतः युगानुरुप समुचित विकास नहीं हो पा रहा। इन विषयों में शोधकार्य भी होते हैं, लेकिन खगोलीयवेधशाला (Astronomical Observetry & Other astroeffect indicating system & Lab) तथा नवीन सम्बद्धता का घोर अभाव है ।

इस प्रबन्ध में ज्योतिष का कालविधायक तथा मानवीय जीवन समबद्धता से वेदांगों दृष्टिरुप शास्त्र होने से कैसे विश्वदृष्टि है, इसे यथा साध्य सिद्ध करनें की मैं नें चेष्टा की है।

ज्योतिष एवं कल्प की सम्बद्धता तथा समस्त कर्मकाण्ड यज्ञकाण्ड मन्त्रकाण्ड एवं मन्त्रकल्प से भी युक्त विश्व दृष्टि बोधक नेत्रसंज्ञक वेदांग है। अतः इस मानवजीवन केन्द्रिकसमग्रविश्व सम्बद्ध वेदांगशास्त्र ज्योतिष को सप्रयोग अनिवार्य, स्वशास्त्र, स्वशास्त्रसम्बद्ध, ऐच्छिक, के रूप में संगठित कर विकासोन्मुख बनाने, एवं उच्चस्तरीय शोध तथा सर्वाभिप्रायिक व्यवहार को भी विश्वदृष्टि के मानक पर यथार्थ विकासार्थ यथार्थ विकासार्थ निवेश जरुरी है। अभी तक केवल रक्षण क्रम हीं सर्वत्र चलाया जा रहा। ज्योतिष विभाग के समुचित विकासार्थ उपर्युक्त परिप्रेक्ष्य में संगठित तथा संसाधन युक्त करना जरुरी है। इसका प्रमाण बृहत्संहिता द्वितीयाध्याय में वराह तथा सिद्धन्त शिरोमणि में भास्कर नें विधिवत् किया है । ज्योतिष कैसे समस्त ज्ञान विज्ञान कला दर्शन तथा अध्यात्म रुप विद्यात्मक विकास में शरीर मन बुद्धि एवं आत्मा को जोड़ने वाली केन्द्रियविद्या तथा विश्वदृष्टि है, यह उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है। वैदिक, वराहोक्त, भास्करोक्त तथा महामना के निरुपण से भी स्पष्ट है। इन तथ्यों का यहाँ केवल संकेत मात्र प्रदान किया हूँ। प्रत्येक तथ्य की समीक्षा से यह विषय अति विस्तृत हो जायेगा।

संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय एवं ज्योतिष-एवं अन्य महत्वपूर्ण निवेश-

इसमें ज्योतिष, गणित, फलित पञ्चाङ्ग (ससंस्कृत) रखना तथा ''विद्यावतां भागवते परीक्षा'' के उक्ति को प्रत्यक्ष करने हेतु मालवीय भवन में भागवत परायण एवं भागवत कथा के क्रम का व्यवस्थापन तथा वेद एवं वैदिक वाङ्मय की कुंजी, ज्ञान, कर्म एवं भक्ति के साथ 18 महायोगों की समष्टि भगवद्गीता के उपदेश का मालवीय भवन का नियमित उपक्रम महामना की विश्वदृष्टि के साक्षात् प्रमाण हैं ।

महाकालेश्वरशिव की आराधाना को निरन्तर विश्वनाथ मन्दिर के रूप में प्रवार्तत करना मानवीय सर्वाङ्गीण विकास एवं अध्यात्मिक विकास का मूल सोपान भी है।

श्रीमद्भागवत महाब्रह्माण्डाधिपाति महाविष्णु के महिमा कृष्णावतार का महत्व, भक्तियोग तथा ज्योतिर्विज्ञान तथा शब्दशास्त्रीय विकास की पराकाष्ठा का द्योतक है। शिशुमारचक्रादि का निरूपण इसका साक्ष्य है।

श्रीमद्भावद्गीता में भी विभिन्न योगों के साथ विश्वसंस्थान सृष्टिस्थिति संहार, गुणत्रय विभाग तथा आत्मज्ञान के सोपान ज्योतिर्वैज्ञानिक योगाश्रित तथ्य हैं। इनमें प्रत्येक विषय स्वतंत्र होने पर भी काल विधायक ज्योतिषीय विश्व दृष्टि से सम्बद्ध हैं। मैं केवल इनका संकेत मात्र किया हूँ।

प्रयुक्त विवरण

1. बृहत्संहिता-अ02-वराह सिद्धान्तशिरोमणि-ग्रहगणित -अ.1-श्लोक 1-9 भास्कर, गोलाध्याय-गोलप्रशंसा

   श्रीमद्भगवद्गीताा-अ09 -17 भगवान श्रीकृष्ण,

2. प्रज्ञा -मानवजीवनमूल्य विशेषांक-अंक 56-2010-11

   बृहत्संहिता -अ051-60 -वराह,

3. प्रज्ञा -पर्यावरण विशेषांक -का.हि.वि.वि.वाराणसी -

4. भारतीयज्योतिषे संस्थानविद्या -भारतीयविद्यासंस्थान-वाराणसी -2, वृहत्संहिता -100विद्यात्मक निवेश -सं.सं.वि.वि.वाराणसी-2, अयनांशविमर्श-भारतीय विद्यासंस्थान-वाराणसी -2,

5-6. पराशर, जैमिनी, व्यास, आर्यभट, वराह,अनवमदर्शी, भद्रबाहू, ब्रहमगुप्त, मुंजाल, श्रीपति, भास्कर, बल्लालसेनदेव, केशव, गणेश, मुनीश्वर, कमलाकर, रामदीन, म0 सुधाकर, वि0 वामधुसूदनओझा, नीलाम्बर, बापूदेव, अर्कसोमयाजी, मुरलीधर, दयानाथ, रमानाथ आदि के गोलीय अन्वेषण तथा अवदान द्रष्टव्य हैं ।प्रभाव शास्त्र के समवेत आयाम में महर्षि याज्ञवल्क्य से महामना तक के क्रम के अन्दर इस युग में प्रकट महापुरुषों में स्वामी रामकृष्ण परमहंस, स्वामी विशुद्धानन्द, योगीराज अरविन्द, स्वामी विवेकानन्द, म.म.गोपीनाथ कविराज, सुश्रुत एवं महर्षि पतंजली से सत्यनारायण त्रिपाठी एवं भगवान श्रीकृष्ण से श्यामाचन्द तक के अवदानों की समीक्षा मानवता, राष्ट्रीयता, वैज्ञानिकता एवं विश्वशान्ति तथा सर्वाभिप्रायिक सुरक्षा के लिए जरुरी है । ज्योतिष वास्तु शिल्प एवं शान्तिकल्प के परम्परा के साथ सुरक्षाशास्त्रीय परम्परा की समीक्षा भी जरुरी है ।

7-8. भारतीय ज्योतिष -दीक्षित-अनु-शिवनाथ झारखण्डी

   गणकतरंगिणी -म.म.सुधाकर, भारतीय ज्योतिष -डाँ नेमीचन्द, भारतीय ज्योतिष का इतिहास -डॉ0 गोरखप्रसाद

   भारतीय ज्योतिष -संहितास्कन्ध का इतिहास-आचार्यसच्चिदानन्द, ज्योतिषस्येतिहासः-लोकमणिदहालः,

   भारतस्य सांस्कृतिको निधिः-डॉ0 रामजी उपाध्यायः, वैदिकविज्ञान एवं भारतीयसंस्कृति -म.म गिरिधरशर्मा चतुर्वेदी,

9. अनुष्ठानप्रकाशः-, शान्तिकल्पद्रुमः, शान्तिप्रकाशः, पुरश्चर्यार्णवः, भगवन्तभास्करः, कृत्यसारसमुच्चयः, कर्मठगुरुः, बृहत्संहिता, भारद्वाजस्य यन्त्रसर्वस्वम्, प्रभृतिः,

10. वैदिकसंहिताएँ एवं उनके ब्राह्मणादि-ऋग्वेदादि, ऐतरेयादि, आगमोक्त संहिताएँ-शाक्तागमादि, पौराणिकस्तोत्र एवं मन्त्र, मन्त्रमहार्णवादि, बृहद्स्तोत्ररत्नाकरादि, साबरमन्त्रादि, अन्य साम्प्रदायिक स्तोत्र एवं मन्त्र संस्कृतेतर भाषा में सनातनेतर धार्मिक सम्प्रदायों के मिलते हैं ।

11. भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम का इतिहास-आधुनिक इतिहास से ।

12. महामना मदनमोहन मालवीय -जीवन और नेतृत्व-प्रो0मुकुटविहारी लाल,

13. श्रीमद्भगवद्गीता-अ.16-17-18-भगवान श्रीकृष्णः-,

14. पातंजलयोगप्रदीपः -महामुनि पतंजली, शिवस्वरोदयः -भगवानशिव, नरपतिजयचर्या स्वरोदयः-नरपतिः, सर्वतोभद्रचक्रम् -, प्रभृतिः ,

15. सनातनधर्मोद्धार-भाग-1-2, प.उमापतिद्विवेदी ,

16. चाणक्यनीतिदर्पण -चाणक्य, -

17. चाणक्यनीतिदर्पण -चाणक्य, -

18. संस्कृतवाड.मय का विंशतिमहाविद्यात्मक क्रम -

19. मनुस्मृतिः- अ02 -मनुः,

20. याज्ञवल्क्यस्मृतिः-याज्ञवल्क्यः -

21. मीमांसाकारिका - जैमिनी -ईश्वरकृष्णः,

22. ब्रह्मविज्ञानशास्त्रम् -वि.वा.मधुसूदन ओझा ,

23. बृहदारण्यकोपनिषद्- याज्ञवल्क्यः ,

24. आयुर्वेद-अष्टांग, धनुर्वेद-अष्टांग,-ये दोनों ऋग्वेद तथा यजुर्वेद के उपवेद हैं। शरीर की रोगादि एवं आक्रमणकर्त्ता से रक्षा, शरीर से राष्ट्र तक की रक्षा एवं आन्तरिक उपद्रव से रक्षा में इन उपवेदों की भूमिका इनके मुख्यप्रतिपाद्य हैं।

25. विज्ञानविद्युत्, ब्रह्मविज्ञानशास्त्रम -वि.वा.मधुसूदन ओझा, सिद्धान्त शिरोमणिः -भास्कर,

26. श्रीमद्भगवद्गीता-अ.2.भगवान श्रीकृष्णः-,

27. सूर्यसिद्धन्तः-अ. 1. श्लोक-1, मयासुर-सूर्यांशपुरुष संवादरुप श्रीमद्भगवद्गीता-अ. 16-17-18-भगवान श्रीकृष्णः-

28. सूर्यसिद्धन्तः-अ. 1. श्लोक-2-20 कालमान, मयासुर-सूर्यांशपुरुष संवादरूप

29. सूर्यसिद्धन्तः-अ. 1. श्लोक-22-40. मयासुर-सूर्यांशपुरुष संवादरुप

30. सिद्धन्त शिरोमणिः -अ. 1. श्लोक-6-भास्कर : ,

31. विष्णुपुराणम -व्यासः

32. सिद्धन्त शिरोमणिः -भास्कर : ,अ.1.श्लोक -

33. सूर्यसिद्धन्तः-अ. 2. श्लोक-1-2-. मयासुर-सूर्यांशपुरुष संबादरुप

34. सूर्यसिद्धन्तः-अ. 2. श्लोक-3-4. मयासुर-सूर्यांशपुरुष संवादरुप

35. सूर्यसिद्धन्तः-अ. 2. श्लोक-12-18. मयासुर-सूर्यांशपुरुष संवादरुप

36. सूर्यसिद्धन्तः-अ. 2. श्लोक-19-20. मयासुर-सूर्यांशपुरुष संवादरुप

37. शुक्लयजुर्वेदः - माध्यन्दिनी शाखा-सायणभष्य

38. विज्ञानविद्युत् -वि.वा.मधुसूदन ओझा

39. श्रीमद्भग्वद्गीता-अ. 11-15 -श्रीकृष्णः

40. शुक्लयजुर्वेदः -माध्यन्दिनी शाखा-सायणभष्य -पुरुषसूक्तः-

41. सूर्यसिद्धन्तः-अ. 2. श्लोक-21-36. मयासुर-सूर्यांशपुरुष संबादरुप

42. सिद्धन्त शिरोमणिः -अ. 1. श्लोक-1-भास्कर, एवं वासनाभाष्य का मंगलाचरण-

43. सिद्धन्त शिरोमणिः -ग्र.ग.अ.1. कक्षामानाध्यायःश्लोक- 1-16-भास्कर,

44. सिद्धन्त शिरोमणिः -गोलाध्याय मध्यगतिवासना .श्लोक- -भास्कर : ,

45. सिद्धन्त शिरोमणिः -गोलाध्याय गोलप्रशंसा .श्लोक- -भास्कर : ,

46. पातंजलयोगप्रदीप -महामुनि पतंजली -चित्तवृत्तिनिरोध से सूर्येसंयमाद्भुवनज्ञानं चन्द्रेसंयमान्नक्षत्रव्यूह ज्ञानमित्यादि,

47. सिद्धन्त शिरोमणिः- गोलाध्याय भुवनकोशः. श्लोक-1 तः -भास्कर : ,

48. भारतीयज्योतिषस्य साम्प्रतिकत्वनिर्धारणम् -प्रज्ञा -का.हि.वि.वि.वाराणसी -वर्ष -2008-09

49. भास्करीयबीजगणितम् -प.देवचन्द्रझा -चौखम्भा -

50. प्रज्ञा -महामना विशेषांक -महामनसां विश्वदृष्टि : 2012-51. बृहत्संहिता अ. 2 द्रष्टव्य।

◆

मालवीय मूल्यों के परिप्रेक्ष्य में गोपालन एवं दुग्ध उत्पादन का महत्व

प्रोफेसर दिनेश चन्द्र राय एवं डॉ0 विनोद कुमार पासवान

''गो-दुग्ध के बिना राष्ट्र की संतानों का समुचित सिंचन व विकास नहीं हो सकता। संतानों के कुपोषित होने से राष्ट्र का वर्तमान एवं भविष्य दोनों कमजोर होगा।''

—महामना पंडित मदनमोहन मालवीय

महान युगद्रष्टा महामना पंडित मदन मोहन मालवीय की गोपालन, गोरक्षा एवं गोभक्ति के प्रति उत्कंठा को व्यक्त करते ये विचार इंगित करते हैं कि वे राष्ट्र के विकास में गोपालन एवं दुग्ध उत्पादन के महत्व को सर्वोपरि मानते थे। उनका विचार था ''भारत के लिए वह परम सौभाग्य का दिन होगा, जब देश के कोने-कोने में गो संस्थाए स्थापित होंगी, जिसका मुख्य काम होगा जन-सामान्य को शुद्ध एवं सस्ता दूध पहुँचाना।'' इन्हीं उत्कट इच्छा के कारण वे आजीवन गोपालन, गोरक्षा एवं गो-हित से संबंधित अन्य कार्यों में अपना योगदान देते रहे। वे इस तथ्य से भली-भाँति परिचित थे कि ''ऐसे खाद्य पदार्थ जो अकेले सम्पूर्ण आहार के काम में आ सकते हैं, उनमें दूध सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। इसलिए दूध सदा बड़ा आदरणीय समझा जाता रहा है। इसके अन्दर जीवन को स्थिर रखने तथा बढ़ाने के लिए आवश्यक सभी तत्व सुपाच्य रूप में विद्यमान हैं। आज तक किसी ऐसे दूसरे स्वतन्त्र आहार का पता नहीं चला, जिसका प्रयोग दूध के स्थान पर किया जा सके।''

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्रों के लिए संदेश में महामना ने कहा

दूध पियो कसरत करो, नित्य जपो हरिनाम।
मन लगाई विद्या पढ़ो, पूरेंगे सब काम॥

महामना एवं गोरक्षा आन्दोलन

चूँकि महामना का प्रिय ग्रंथ ''श्रीमद्भागवत्'' था, जिसका वे नित्य पाठ करते थे। इसीलिए महामना ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के स्थापना के तुरन्त बाद ही स्वतंत्र गोशाला की स्थापना किया। महामना ने गौ को शारीरिक, आत्मिक एवं आर्थिक उन्नति का आधार बताते हुए गो-रक्षा आन्दोलन को मानव रक्षा आन्दोलन की संज्ञा दी। वस्तुतः महामना का गोरक्षा आन्दोलन न केवल धार्मिक एवं आर्थिक मूल्यों पर आधारित था, वरन् वह शारीरिक एवं चारित्रिक विकास से भी प्रेरित था। उनका विचार था कि ''मनुष्य बिना मांस के भी काम चला सकता है, किन्तु दूध उसके लिए अपरिहार्य है जिसका स्थान कोई नहीं ले सकता है।'' 15 मार्च 1936 को नासिक में पंचवटी पिंजरपोल का उद्घाटन करते हुए महामना ने कहा था। ''हिन्दुस्तान के कल्याण के लिए गो-रक्षा अनिवार्य है, इसके बिना यह देश पुरुषार्थ को प्राप्त नहीं कर सकता।'' 1934 में गोरक्षा के सम्बन्ध में आपने एक अपील प्रकाशित की ''देश के हित में गोरक्षा आवश्यक है और गो-हत्या बन्द होना चाहिए। गोरक्षा के लिए महामना के विभिन्न स्तरों पर विभिन्न संगठनों द्वारा कई कार्य किये हैं। उन्होंने सबसे पहले सन् 1889 में प्रयाग के कीडगंज मुहल्ले में एक गोशाला स्थापित की थी। 25 अक्टूबर 1925 को गोपाष्टमी के दिन काशी में आपने 39वें गो-रक्षा अधिवेशन का सभापतित्व किया। सन् 1928 में आपने वृन्दावन एवं मथुरा में पर्याप्त गोचर-भूमि (करीब एक हजार एकड़) छुड़वा कर एक प्रसिद्ध गो-रक्षक श्री हंसानन्द के नाम पर 'हंसानन्द गोचर भूमि ट्रस्ट' की स्थापना में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी। सन् 1932 में गोरखपुर जनपद और हरियाणा में भीषण अकाल के समय आपने बड़ने पैमाने पर पशु—चारे का प्रबन्ध कराया और दिल्ली में गो-रक्षा मण्डल की स्थापना की।

सन् 1941 में आपने काशी में एक 'भारतीय गो-रक्षा मण्डल' गठित कर उसकी रजिस्ट्री करायी और नगर के उत्तरी भाग में स्थित शिवपुर में 65 बीघा जमीन क्रय कर उसमें च्यवनाश्रम नाम से एक गोशाला स्थापित की थी। उक्त मण्डल की स्थापना होते ही उत्तर प्रदेश, बिहार, बंगाल एवं मध्य प्रदेश में गो-रक्षा के कार्यक्रम बड़े पैमाने पर शुरू हुए। सैंकड़ों समर्पित कार्यकर्त्ता लगाये गये, अनेक जगह गोशालाएँ खुलीं, प्रतिवर्ष गो-सप्ताह मनाने के कार्यक्रम आरम्भ हुए। आपने मिर्जापुर, लखीमपुर, झाँसी आदि जिलों में हजारों एकड़ गोचर भूमि छुड़वाई। सन् 1939 में विश्वयुद्ध के बाद केन्द्रीय खाद्यमंत्री सरदार योगेन्द्र सिंह से कहकर आपने गो-वध पर प्रतिबन्ध लगवाया। इसके पूर्व आपने प्रान्तीय गवर्नर से कहकर गो-वध रोकने की राजाज्ञा जारी करवा चुके थे।

कलकत्ता विश्वविद्यालय के उपकुलपति सर आशुतोष मुखर्जी की अध्यक्षता में सन् 1908 में **गोरक्षा संघ** की स्थापना की गई थी। मालवीय जी तो आरम्भ से ही गो-रक्षा सम्बन्धी कार्यों में संलग्न थे। इस संघ की स्थापना से उनको प्रोत्साहन प्राप्त हुआ और उन्होंने भारत के नगरों में घूम-घूमकर इस आन्दोलन का संचालन किया और उसके परिणामस्वरूप देशभर में शताधिक पिंजरापोल, गोशालायें और गो-रक्षक मंडलों की स्थापना की गई। बीसवीं शती के आरम्भ में यह आन्दोलन देशव्यापी आन्दोलन बन गया था। गो-रक्षा संघ की स्थापना के दस वर्ष बाद सन् 1918 में हरिद्वार में इस संघ का विशाल सम्मेलन आयोजित किया गया था उसमें यह प्रस्ताव सर्वसम्मति से पारित हुआ था कि समस्त देश में स्थान-स्थान पर गोशालाएँ स्थापित की जाए। उसका सुपरिणाम यह हुआ कि भारत के सभी हिन्दू राज्यों में पिंजरापोल और गोशालायें खुल गई। ग्रामों में गोचर भूमि की व्यवस्था की जाने लगी।

* पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221005

चित्र 1 : गोमाता के साथ महामना एवं महात्मा गांधी का दुर्लभ चित्र

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एवं गोशाला

मालवीय जी का सपना था कि आने वाले वर्षों में बढ़ती हुई आबादी के भरण-पोषण के लिए, कृषि एवं दुग्ध उत्पादन के क्षेत्र में वैज्ञानिक-पद्धतियों को अपनाकर कृषि का विकास करना बहुत ही आवश्यक होगा। अतः काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के परिसर में, कृषि अनुसंधान संस्थान एवं गो-शाला की स्थापना भी आवश्यक है। इससे यहाँ के विद्यार्थियों, कर्मचारियों एवं अध्यापकों को दुग्ध-विज्ञान की भरपूर जानकारी के साथ ही साथ, उनको भरपूर मात्रा में शुद्ध दूध मिल सकेगा। इसके लिए गोशाला/पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान विभाग की स्थापना की गयी।

इस पुनीत कार्य को मूर्त्त रूप देने के लिए उन्हें विभिन्न स्त्रोतों से सहयोग राशि प्राप्त हुई। इस क्रम में सर्वप्रथम 11,000 रु0 सेठ जुगल किशोर बिरला से प्राप्त हुआ। तदोपरान्त 50,000 रु0 बनारस के सेठ गौरी शंकर गोयनका ने भेंट दिया और फिर 20,000 रु0 उत्तर प्रदेश सरकार ने दिए। आज यह गोशाला अपने विकास के चरम पर है और इसमें लगभग 300 गायें, बछड़े, बछिया, भैंस तथा उनके बच्चे हैं। गोशाला का दुग्ध उत्पादन लगभग 900 लीटर प्रतिदिन है और इसमें उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है।

गोपालन एवं दुग्ध-उत्पादन में वृद्धि की आवश्यकता

महामना ने अपने लेख 'गो-रक्षा के साधन' में गोपालन एवं दुग्ध-उत्पादन में वृद्धि की आवश्यकता पर बल दिया। उक्त आलेख में आपने गोपालन का गाँवों में ही केन्द्रित होना तथापि दूध का अधिक मूल्य होने के कारण ग्रामीणों द्वारा दुग्ध क्रय करने की असमर्थता की कसक स्पष्ट शब्दों में जाहिर किया है। उन्होंने कहा कि किसी समय

चित्र 2 : गोमाता के शरीर में देवी-देवताओं के निवास होने का आध्यात्मिक चित्र

इस देश में दूध बहुत अधिक मात्रा में मिलता था। किन्तु अब यह सोचकर बड़ा खेद होता है कि मनुष्य के आहार के ऐसे आवश्यक पदार्थ की खपत प्रति व्यक्ति इस देश में शायद अन्य सभी सभ्य देशों की अपेक्षा कम है। भारत के पशु-व्यवसाय की वृद्धि तथा भारत में दूध के व्यवसाय के सम्बन्ध में प्रकाशित हुई रिपोर्टें में अनेक परामर्श दिये गये हैं, जो विचार करने योग्य हैं तथा जिन्हें ऐसे परिवर्तनों के साथ जो स्थानीय परिस्थिति के अनुसार आवश्यक हों व्यवहार में लाना चाहिए।

उन्होंने कहा ''व्यवसाय की दृष्टि से दूध तथा दूथ से बने हुए पदार्थों की माँग केवल शहरों में ही अधिक है। यद्यपि दूध देने वाले पशुओं में पंचानबे प्रतिशत से अधिक गाँवों में ही पाये जाते हैं तथा भारत की नब्बे प्रतिशत से अधिक जनता गाँवों में रहती हैं, तो भी गाँवों में दूध के ग्राहक अधिक नहीं है। इसके कई कारणों में एक तो यह है कि दूध खाने वालों में से बहुतों के घर में ही दूध होता है, दूसरे नगरवासियों की अपेक्षा गाँवों के किसानों में दूध खरीदने की सामर्थ्य कम होती हैं, उनमें से अधिकांश दूध या दूध से बने हुए पदार्थ खरीद कर नहीं खा सकते हैं वहाँ बहुत से लोगों को तो, जिनमें बच्चे भी सम्मिलित हैं, कभी दूध मिलता ही नहीं। यहां तक कि ऐसे इलाकों में भी, जहाँ दूध का व्यवसाय होता है और जहाँ बहुत अधिक मात्रा में दूध होता है, सोलह प्रतिशत परिवार दूध या दूध से बने पदार्थों का बिल्कुल उपयोग नहीं करते। ऐसी दशा में जहाँ दूध बहुत कम होता है, ऐसे भारतीय देहातों में तो दूध से बने पदार्थों को खरीद कर खाने की सामर्थ्य और भी कम हो जाती है।''

आपने स्पष्ट कहा कि ''यदि भारतीय जनता यह चाहती है कि उसे भोजन में दूध पर्याप्त मात्रा में मिले तो सबसे पहले यह आवश्यक है कि देश में दूध का उत्पादन बहुत अधिक मात्रा में बढ़ाया जाय। यह अनुमान किया गया है कि न्यूनतम आवश्यकता की पूर्त्ति के लिए भी

दूध का उत्पादन कम से कम दुगुना करना पड़ेगा। किन्तु उत्पादन की इस वृद्धि से तब तक उद्देश्य-सिद्धि न होगी जब तक कि दूध का भाव न घटा दिया जाय, अथवा जनता की औसत आय में वृद्धि न हो। दूसरा उद्देश्य, जिसे सदा ध्यान में रखना होगा, यह है कि दूध का भाव इतना मंदा रहे कि उसे अधिकांश जनता खरीद सके।''

गोपालन एवं दुग्ध-उत्पादन की समस्याएँ एवं मालवीय जी के विचार

महामना ने अपने विभिन्न आलेखों में गोपालन एवं दुग्ध उत्पादन के विकास में बाधक समस्याओं का विस्तार से जिक्र किया है। उन्होंने पशुओं के चारे की कमी, गोचर भूमि की अनुपलब्धता को दूध-वृद्धि में सबसे बड़ी समस्या माना। उन्होंने तर्क दिया कि इन्हीं कारणों से हमारी गायें किसानों के घर तो कम दूध दोती हैं, परन्तु जब वे सरकारी फार्मों पर खूब अच्छी देखभाल एवं सन्तुलित आहार पाती हैं, तो अत्यधिक दूध देती हैं। पुनः उन्होंने भारतीय गायों के नस्ल में सुधार की आवश्यकता पर बल दिया और विदेशी नस्लों के उपयोग जैसे जर्सी, होल्स्टीन फ्रीजीयन इत्यादि का समर्थन किया। अपने आलेख ''गोरक्षा के साधन'' में उन्होंने गोपालन एवं दुग्ध-उत्पादन के विकास हेतु कुछ सारगर्भित उपाय सुझाए थे जो वर्तमान संदर्भ में भी उतने ही सार्थक हैं।

1. सारे देश में खेती एवं गोपालन की सम्मिलित प्राणी (Mixed farming) को प्रचलित करने के लिए देशव्यापी प्रयत्न होना चाहिए।
2. प्रत्येक किसान को एक या एक से अधिक गाय अपने घर में तथा गाय और बैलों की नस्ल बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन तथा सहायता दी जानी चाहिए। अधिक जनसंख्या वाले नगरों में लोगों को सामुदायिक प्रयत्न से गोशाला अथवा डेयरियाँ स्थापित करने के लिए उत्साहित करना चाहिए।
3. प्रत्येक जिले में 'चारा तथा पशु-चारण समितियों की स्थापना होनी चाहिए।
4. गाँव के पशुओं के चरने के लिए यथेष्ट गोचरभूमि कानूनन अलग छूटी रहनी चाहिए।
5. काफी बड़े परिमाण में अच्छे साँड़ों की नस्ल बढ़ाने के कार्य को प्रोत्साहन देना चाहिए।
6. व्यस्क गायों के वध को रोकने के लिए ही नहीं, वरन् बूढ़ी गाय, साँड़ और बैलों के वध को भी रोकने के लिए कानून बनना चाहिए।
7. बड़े शहरों में रहने वाले लोगों की माँग पूरी करने के लिए नगरों की सीमा के बाहर दूध व्यवसाय के क्षेत्रों की स्थापना होनी चाहिए।
8. पशु—चिकित्सालय तथा दातव्य औषधालयों का प्रबन्ध पर्याप्त संख्या में होना चाहिए।
9. 'अधिक दूध उत्पन्न करो और खूब पियो' का आन्दोलन सारे देश में चलना चाहिए।
10. अधिक दूध उत्पन्न करने, खपत करने और गो-वध को बंद करने की आवश्यकता के विषय में सरकारी महकमों तथा गैर-सरकारी संस्थाओं को परस्पर मिलकर शिक्षात्मक प्रचार करना चाहिए।
11. सरकार तथा सार्वजनिक संस्थाओं को चाहिए कि वे वर्तमान या भावी गोशालाओं के उपयोग के लिए निःशुल्क गोचर-भूमि प्रदान करें।

यदि ये उपाय काम में लाये गये तो राष्ट्र के स्वास्थ्य तथा भारतीय जनता की आर्थिक उन्नति के लिए एक नया युग उत्पन्न हो जायेगा।

गोपालन एवं दुग्ध उत्पादन की वर्तमान स्थिति

देश मालवीय जी के उपायों का अनुशरण करके गोपालन एवं दुग्ध उत्पादन की उचाइयों को छू रहा है। हमारे देश में लगभग 198 मिलयन गायें हैं और हम गायों की जनसंख्या में पूरे विश्व में दूसरे स्थान पर हैं। हमसे आगे केवल ब्राजील है, जहाँ गायें अधिक हैं। अगर हम अपने गोवंश की संख्या में 103 मिलियन भैसों को भी सम्मिलित करलें तो हमारे पास विश्व की सर्वाधिक गोवंशीय पशुओं की संख्या है। उसी के अनुरूप हम प्रतिवर्ष 121 मिलियन टन दुग्ध उत्पादन के स्तर पर पहुँच चुके हैं और विश्व में दुग्ध उत्पादन में हमारा प्रथम स्थान है। हम श्वेत क्रान्ति के विभिन्न चरणों से गुजर चुके हैं और देश में प्रति व्यक्ति 50 ग्रा0 से कम दुग्ध उपलब्धता के स्तर से आज प्रति व्यक्ति 258 ग्रा0 दुग्ध उपलब्धता के स्तर पर पहुँच चुके हैं। वस्तुतः हम अच्छे पशु चारे के प्रयोग, उन्नत संकर नस्ल की गायों के उपयोग, कृत्रिम गर्भाधान के उपायों, अच्छी स्वास्थ्य एवं चिकित्सा सुविधाओं के प्रयोग से दुग्ध उत्पादन में विश्व में प्रथम स्थान पर स्थापित हैं। इसी प्रकार उत्तर प्रदेश भी देश का लगभग 20 प्रतिशत दुग्ध उत्पादन के साथ राज्यों में प्रथम स्थान पर स्थापित है। इन सब विकास की बातों के बावजूद दुग्ध-उत्पादन के विकास में कुछ मूल समस्याएँ हैं। हमारी सर्वाधिक दुग्ध उत्पादन सर्वाधिक पशुओं के कारण है। वस्तुतः ब्रिटेन, फ्रांस, डेनमार्क जैसे देशों की दुग्ध उत्पादकता 6000-7000 लीटर प्रति गाय प्रति वर्ष है। इसी प्रकार इजरायल में गायों की दुग्ध उत्पादकता 11,000 ली0 प्रति वर्ष है। जबकि भारतीय गायों की उत्पादकता केवल 987 ली0 प्रति वर्ष है। यह पूरे विश्व के औसत उत्पादन (2038 ली0 गाय प्रतिवर्ष) से भी काफी कम है। वर्तमान समय में भी शादी ब्याह तथा त्योहारों के अवसर पर दूध की कमी एक आम समस्या है। दूध का बढ़ता मूल्य, तथा उसमें मिलावट आज की जटिल समस्या है। वस्तुतः हमें गोपालन एवं दुग्ध-उत्पादन के क्षेत्र में और भी अधिक विकास की आवश्यकता है और इस संदर्भ के महामना मालवीय जी के विचार, उनके द्वारा सुझाए गए उपाय आज भी प्रासंगिक हैं।

◆

सत्य का निहितार्थ एवं महामना की दृष्टि

प्रो0 हरीश्वर दीक्षित *

सत्य कोई मूर्त वस्तु नहीं जिसे देखा जा सके। सत्य आचरण का विषय है, कर्त्तव्य का विषय है, व्यवहार का विषय है, धर्म और अध्यात्म का विषय है। सत्य का सम्बन्ध दैवी सत्ता (Devine Power) से है, देवता इसके प्रतीक हैं।[1] हमारे मनीषियों ने जब सत्य का उपदेश किया तो **'सत्यं वद्'** कहकर रूक नहीं गये, इसके आगे कहा **धर्मं चर्, स्वाध्यायान्माप्रमदः, यान्यनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि, यान्यस्माकं सुचरितानि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि।**[2] '' इससे लगता है कि सत्य का संबन्ध केवल बोलने तक ही सीमित नहीं अपितु बोलने **'सत्यंवद्'** से आगे जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में बहुत दूर-दूर तक गहराई तक तथा **जीवन के अंतिम क्षणों तक है** तभी तो अन्तकाल में लोग कहते हैं राम नाम सत्य है। यहाँ यह विचारणीय है कि राम सत्य है, कि राम का नाम सत्य है, कि राम नाम दोनों मिलकर सत्य है, कि राम ही सत्य है कि सत्य ही राम है। यहाँ राम दैवी सत्ता के प्रतीक हैं। वह दैवी सत्ता जो सत्य की संवाहिका है, सत्यस्वरूपा है।

राम का निहितार्थ क्या है? क्या दशरथ के राम की बात करें या **''जाके बल बिरंचिहरि ईशा पालत सृजत हरत दशशीशा-** रामचरितमानस-तुलसी की बात करें, या **साहब सो सब होत हैं वन्दे ते कछु नाँइ**- कबीर की बात करें या -

पायो जी मैं तो राम रतन धन पायो- मीरा

मेरे तो गिरधर गोपाल दूसरो न कोई - मीरा की बात करें

'या किलकत कान्ह घुटुरुवनि आवत'। - सूरदास की बात करें, या जगदगुरुशंकराचार्य, विवेकानन्द, गाँधी, मालवीय जी, रसखान, रैदास, मुहम्मद साहब, ईसा मसीह तथा गुरुनानक जैसे महापुरूषों के आचरण में दीखने वाले सत्य की बात करें।

आखिर सत्य कहाँ है? दीखता क्यों नहीं ? सत्य को कहाँ ढूंढे? **महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय जी** कहकर चले गये–

सत्येन- ब्रह्मचर्येण, व्यायामेनाथ विद्यया ।

देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव ॥ - पूज्य महामना वाणी।

सत्य स्वयं सत्य में है, **ब्रह्मचर्य** आचरण में है **व्यायाम** शक्तिसंचयन एवं परोपकार में है। **विद्या-दान- ईमानदारी** पूर्वक शिक्षा देने और शिक्षा ग्रहण करने, दाता और ग्रहीता के अर्थ में है, **देशभक्ति** देश के लिए ईमानदारी पूर्वक जो कुछ भी कर सको उसमें सत्य है, तथा **आत्म-त्याग** अर्थात अपने (Self) बारे में कुछ मत सोचो, स्वार्थी मत बनो, हमेशा दूसरों के हित में सोचो – दूसरों के दुःख को दूर करो उसमें सत्य के दर्शन होंगे, दूसरों के दुःखों को दूर कर जो आत्मसंतोष मिलेगा उसमें सत्य के दर्शन होंगे। दूसरों की अविद्या दूर कर जो आत्मसंतोष होगा, उसमें जो सत्य का दर्शन होगा वह सत्य है, **दूसरों को कुशल एवं योग्य बनाने के बाद जो आत्म संतोष होगा उसमें जो सत्य का दर्शन होगा वह सत्य है। शायद इसी भावना से महामना ने इतने बड़े विश्वविद्यालय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की थी।** मानव को मानव बनाओ उसमें जो सत्य का दर्शन होगा वह सत्य है। सत्य के कई रूप हैं—

सार्वभौमिक सत्य (Universal Truth)

वास्तविक सत्य (Real Truth)

तात्कालिक सत्य (Present Truth)

परिस्थिति जन्य सत्य (Conditional Truth)- गौ हत्या, कसाई, झूठ बोलना इत्यादि।

व्यावहारिक सत्य (Practical Truth) –

सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात् न ब्रूयात् सत्यमप्रियम्।
प्रियं च नानृतं ब्रूयात् एष धर्मः सनातनः॥

सतयुग का सत्य (Truth of Satyuga)

त्रेता का सत्य (Truth of Treta)

द्वापर का सत्य (Truth of Dwaper)

कलियुग का सत्य (Truth of Kaliyuga)

(क) कचहरी का सत्य (न्यायालय का सत्य)

(ख) गीता का सत्य – कलियुग के सन्दर्भ में

(ग) उपनिषद् का सत्य – कलियुग के सन्दर्भ में

आदमी का सत्य (Truth of Man) – कलियुग के सन्दर्भ में

इहाँ आदमी के कमी नइखे, लेकिन आदमी आदमी नईखे।
आदमी ऊपर से आदमी बा, आदमी भीतर से आदमी नइखे॥

जानवर का सत्य (Truth of Animal) (वफादारी)

ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या (वेदान्त) का सत्य

राम नाम सत्य है का सत्य (अन्तिम सत्य)[3]

भारतीय तत्त्व चिन्तन परम्परा में सत्य का मूल रूप ईश्वरमय है और वह हिरण्यमय विशिष्ट पात्र रूपी रहस्य के आवरण से आच्छादित है। सत्य के संबन्ध में अत्यधिक मतभेद है। सत्य धर्म-स्वरूप है या धर्म सत्य-स्वरूप है या यों कहें कि धर्म और सत्य या सत्य और धर्म एक ही परम सत्ता (ईश्वर) के दो नाम हैं, क्योंकि वैदिक ऋषि **'पूषन्'** देवता से प्रार्थना करता है कि – **''सत्य-धर्म या धर्म-सत्य का मुख हिरण्यमय पात्र से ढका है, हे पूषन्! उस हिरण्यमय पात्र को हटाओ (खोलो), जिससे कि हम उस ईश्वरमय धर्म-सत्य या सत्य-धर्म का दर्शन कर सकें।''**

---

* पूर्व अध्यक्ष एवं वर्तमान प्रोफेसर, वेद विभाग, संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान सङ्काय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी। मो0 नं0 09450085521

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितम् मुखम् ।
तत् त्वं पूषन् अपावृणु सत्यधर्माय दृष्टये ॥

ईशावास्योपनिषद् मंत्र -15

चूँकि सम्पूर्ण वेद धर्म का मूल है और वेद ईश्वर का निःश्वसित है अतः धर्म का सीधा सम्बन्ध परमतत्त्व सत्य स्वरूप ईश्वर से है और ईश्वर का कोई लौकिक स्वरूप नहीं है, वह दिखाई नहीं पड़ता। वह अज, अनादि, अगम्य, अगोचर, अनुपम, शुभ, परात्पर, चैतन्य, सत्यंशिवम् सुन्दरम् की भावना से अनुप्राणित सत्चित् आनन्द स्वरूप है। अतः उसका कोई एक आकार नहीं है। जिस तरह उस परम तत्त्व (ब्रह्म या ईश्वर) को नहीं जाना जा सकता उसी तरह सत्य के स्वरूप को भी जानना असंभव है। जिस तरह वह परम तत्त्व (सत्य, शिव, ब्रह्म-ईश्वर) अगोचर है अज्ञेय है उसी तरह सत्य भी अज्ञेय है। यह सामान्यजन के मस्तिष्क या ज्ञान के साक्षात्कार का विषय नहीं है। उस सत्व तत्त्व वैदिक ज्ञान ईश्वर की विमलवाणी वेद मंत्रों का साक्षात्कार ऋषियों ने अपनी उत्कृष्ट तपः-समाधि में किया -

पूर्ण विमल परमार्थ तत्त्व जिन देवों ने प्रत्यक्ष किया ।
सदा सत्य शिव सिद्धि प्राप्त कर आत्मा को अध्यक्ष किया॥

– तत्त्वचिन्तामणि की टीका में उद्धृत।

सत्य आत्मा स्वरूप है और इसी सत्यस्वरूप आत्मा का साक्षात्कार करने के लिए **कठोपनिषद् के प्रथम अध्याय** में नचिकेता को यमराज से एक लम्बा संवाद करना पड़ा। सत्य ब्रह्म स्वरूप है, सत्य आत्मा स्वरूप है, वह कठिनाई से देखे जाने वाले गुफा में स्थित है। **(कठोपनिषद् प्रथम अध्याय, नचिकेता-यम संवाद)**

सर्वप्रथम सत्य का साक्षात्कार देवताओं ने अपने तप के माध्यम से किया –

यज्ञेन यज्ञमयजन्त देवास्तानि धर्माणि प्रथमान्यासन ।
ते ह नाकं महिमानः सचन्त यत्र पूर्वे साध्याः सन्ति देवा ॥

— (ऋग्वेद-पुरुषसूक्त-10/90/16)

सत्यस्वरुपा वाक्-तत्त्व (वाणी) स्वयं वेद के रूप में प्रकट हुई, अतः वह प्रत्यक्ष ज्ञान का विषय नहीं अपितु अनुभूति का विषय है, सदाचरण का विषय है, ईश्वर के प्रति श्रद्धा और विश्वास का विषय है। **यहाँ यह ध्यातव्य है कि पाश्चात्य दार्शनिकों जैसे प्रो0 टायलर, शिलियर मेकर, मार्टिन्यू, हॉफडिंग, गैलवे, कान्ट, फ्लेडरर एवं विलियम ने भी ईश्वर के प्रति श्रद्धा और विश्वास एवं तज्जन्य सत्कर्म को ही सत्य एवं धर्म का स्वरूप माना है।**[4]

यह सर्वमान्य तथ्य है कि सत्य के स्वरूप के सम्बन्ध में पर्याप्त मतभेद है। सत्यस्वरूप विषयक एक धार्मिक सर्वेक्षण अभियान के तहत सत्य के स्वरूप विषयक जो विविध पक्ष, विविध विचार सामने आये वे इस प्रकार हैं :- सत्य का स्वरूप कैसा हो? सत्य का स्वरूप क्या है? हम जो कुछ करते हैं वह सत्य एवं धर्म सम्मत है या नहीं? इस विषय में तमाम प्रश्न हैं जैसे : क्या **गीतानिष्ठभूतवैशिष्ट्य** सहज कर्म ही धर्म है? या निष्काम कर्म धर्म है या ज्ञान धर्म है? या जितेन्द्रियजन्य स्थितप्रज्ञता की स्थिति धर्म है?[5] इस प्रकार सत्त्व, रज और तम इन तीनों की भिन्न-भिन्न प्रकृति भिन्न-भिन्न अवस्थाओं में क्या सत्य नहीं है क्या सत्त्व रज के बिना या रज सत्त्व के बिना ठहर सकता है? क्या कमल का कमलत्व धर्म नहीं है, जो उसे गुलाब इत्यादि अनेक पुष्पों से अलग करता है? क्या नियतिकृत नियमरहित अनन्यपरतन्त्र कवि की सृष्टि काव्यभारती क्या कवि का नियति जन्य सत्य नहीं है? शब्दार्थ प्रतिपत्ति में क्या शब्दार्थ संबन्ध में सत्य नहीं है[6] क्या जाति में सत्य नहीं है। जैसे- दुग्ध का श्वेतपन, श्वेतकमल, श्वेतवस्त्र, श्वेतअश्व इत्यादि में श्वेतपन का धर्म नित्यत्व क्या सत्य नहीं है?[7] इस प्रकार सत्य के स्वरूप के विषय में प्रश्न प्रति प्रश्न होते रहेंगे पर सदा मौन ही इसका उत्तर है क्योंकि यह अनुभूति का विषय है वाणी का विषय नहीं, अभिव्यक्ति का विषय नहीं। अपितु मानवता, नैतिकता, सदाचरण, सत्कर्म, धर्म एवं अध्यात्म का विषय है। **सत्य आचरण में दिखाई देता है।**

इस प्रकार सत्य सर्वतोभावेन ईश्वर के प्रति श्रद्धा और विश्वास का विषय है जिसमें तर्क का कोई स्थान नहीं है। इस प्रकार सर्वतोभावेन ईश्वर के प्रति श्रद्धा और विश्वास जन्य सत्य के अन्तर्गत ज्ञान, भावना, कर्म, मानवीय मूल्य, ईश्वर-स्तुति, कीर्तन, उपवास, व्रत, प्रार्थना, भक्ति, भगवान की मूर्ति की पाद सेवा, यज्ञ, दान, तप, जप परोपकार, सत्यवचन, अहिंसा, कूप, जलाशय खुदवा देना, वृक्ष लगाना इत्यादि ये सभी सत्य के विविध आयाम हैं।

सत्य का उद्देश्य अधोगति अथवा पाप अथवा विनाश से बचाकर अभ्युदय पूर्वक निःश्रेयस् अर्थात् मोक्ष की प्राप्ति कराना है। **इस प्रकार धर्मशास्त्रीय दृष्टि से अभ्युदय तथा निःश्रेयस् का साधक तथा जगत् का धारक तत्त्व ही सत्य है।** सत्य प्रवृति-निवृति कारक होता है सत्य मनुष्य को बुरे कार्यों से निवृत्त कराकर अच्छे कार्यों में प्रवृत्त कराता है। सत्य का उद्देश्य मानव में जीवन व्यापी चेतना का परिष्कार है, जिससे समस्त प्राणियों के प्रति मनसा वाचा कर्मणा, सौमनस्य, सौहार्द्र, परोपकार, क्षमा, दया, दान इत्यादि उत्कृष्ट मानवीय मूल्यों का तथा तन्निष्ट भाव-संवेदना का जागरण लोककल्याणार्थ हो वही सनातन सत्य है, वही धर्म है तथा वही त्यागमूला भारतीय संस्कृति का आधार है।

द्विवेदी युगीन हिन्दी के प्रसिद्ध साहित्यकार **बाबू श्याम सुन्दर दास** ने अपने निबन्ध **कर्त्तव्य और सत्यता** में सत्य को कर्त्तव्य से जोड़कर देखा है **सरदार पूर्ण सिंह** ने **आचरण की सभ्यता** नामक निबन्ध में आचरण से सत्य को जोड़ा है, बाबू श्यामसुन्दर दास लिखते हैं कि –

''कर्त्तव्य वह वस्तु है जिसे करना हमारा परम धर्म है, और जिसे न करने से हम समाज की नजरों से गिर जाते हैं।'' इसी में सत्य का निहितार्थ है। **सत्य वह अलौकिक तराजू है जो हमारे व्यवहार को, आचरण को, कर्मों को सन्तुलित रखने का कार्य करता है।** कर्म दो तरह के होते हैं–(1) सत्कर्म (2) दुष्कर्म।

जब तक सत्य कर्म से सम्पृक्त रहता है तब तक हम गलत कर्म नहीं कर सकते। जब सत्य कर्म से असंपृक्त होता है उसी अवस्था में हम गलत कर्म की तरफ प्रवृत्त होते हैं। अतः हम जो भी कर्म करें सत्य के साथ करें उसमें कोई त्रुटि नहीं होगी। वर्तमान परिस्थितियों में आज खेद जनक स्थिति है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में जिस आदर्श सत्य, सदाचरण एवं सत्कर्म का स्वप्न पूज्य महामना ने देखा था आज वह उस स्थिति में नहीं है। यह कहने और स्वीकार करने में सत्य के धरातल पर हमें कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि इसमें गिरावट आयी है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के **कुलगीत के रचयिता प्रो0 शान्ति स्वरूप भटनागर** ने तो यहाँ तक कह दिया है कि -

यहाँ की है यह पवित्र शिक्षा, कि सत्य पहले फिर आत्म रक्षा।

यहाँ पर एक सिद्धान्त का टकराव होता है कि **आत्मानं सततं रक्षेत् दारैरपि धनैरपि,** अपनी रक्षा पहले करनी चाहिए। अब प्रश्न यह है कि पहले अपनी रक्षा करें कि पहले सत्य की रक्षा करें। अब यह ध्यातव्य है कि अपनी रक्षा में हम झूठ का सहरा लेने लगते है और यह झूठ हमें अधः पतन की ओर ले जाता है और हम नष्ट हो जाते है। शास्त्र का यह वचन है कि **''धर्मो रक्षति रक्षितः,** अर्थात **'रक्षितः धर्मः रक्षति'** इसे यदि और स्पष्ट करें तो निहितार्थ अन्वय होगा **सत्येन रक्षितः धर्मः अस्माकं रक्षति'**।। सत्य से रक्षित धर्म ही हमारी रक्षा करता है। निहितार्थ यह है कि हमें अलग से अपनी रक्षा करने की आवश्यकता नहीं है। हम यदि सत्य की रक्षा करते हैं तो सत्य स्वयं हमारी रक्षा करता है या यूँ कहें कि सत्य की रक्षा करने से स्वतः ही हमारी रक्षा हो जाती है। सत्य ही धर्म है और धर्म ही सत्य है अर्थात सत्य धर्म से समन्वित है तथा धर्म सत्य से समन्वित है दोनों एक दूसरे से नित्य सम्बन्ध से जुड़े हुए हैं। सुभाषित रत्नकोष में कहा भी गया है—

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते ।
मृजया रक्ष्यते रूपं कुलं वृत्तेन रक्ष्यते॥

अर्थात सत्य से धर्म की, योग (अभ्यास) से विद्या की, मृजया (सफाई) से रूप (सौन्दर्य) की, तथा चरित्र से कुल की रक्षा करनी चाहिए।

सत्य धर्म से जुड़ा है धर्म कर्म (कर्त्तव्य) से जुड़ा है। इसी को हमारे मनीषी आचार्य कहते हैं **सत्यं वद्, धर्मं चर्,** सत्य बोलो और धर्म का आचरण करो'। हमारे आचार्य केवल **सत्यं वद्** कहकर रूक नहीं गये, क्योंकि वे जानते थे कि केवल सत्य बोलने से सत्य का वास्तविक स्वरूप सामने दिखायी नहीं देगा, इसलिए सत्य के स्वरूप को सामने लाने के लिए, सत्य के प्रत्यक्ष दर्शन के लिए **धर्मं चर्,** (धर्म का आचरण करो) आवश्यक है। **सत्य धर्म में ही परिलक्षित होता है, दिखाई पड़ता है।** धर्म से तात्पर्य धर्मगत आचरण से है धर्म क्या है? वेद में - **'वेद विहित कर्म ही धर्म है'** वेद विहित कर्म क्या है? **'वेद विहित कर्म है यज्ञ'** अतएव यज्ञ ही धर्म है **''यागादिरेव धर्मः''** कहकर यागादि कर्म को धर्म बताया गया है। यागादि कर्म की पहली शर्त है। यजमान की पवित्रता। पवित्रता आचमन से आती है। आचमन जल से करते हैं। जल से आचमन क्यो करते हैं? क्योंकि जल पवित्र है, मनुष्य अपवित्र है। **पवित्रोवै आपः, अमेध्यो वै पुरुषः यदनृतं वदति ।** (श. ब्रा. 1.1.1.1) मनुष्य झूठ बोलता है अतः मनुष्य अपवित्र है। अतः अपवित्र मनुष्य के ऊपर पवित्र जल से जल छिड़क कर तथा आचमनी कराकर पवित्र करके उसे यज्ञ करने के योग्य बनाया जाता है। बिना सत्य स्वरूप हुए यज्ञ नहीं किया जा सकता है। अतः पहले जल से पवित्र करके मनुष्य में सत्य का आधान किया जाता है। सत्य का आधान हो जाने के बाद मनुष्य पवित्र होता है और तब यज्ञ करने के योग्य होता है। **यहाँ यह ध्यातव्य है कि यागादिरेवधर्मः से धर्म का तात्पर्य केवल होम यज्ञादि तक ही सीमित नहीं है अपितु धर्म का तात्पर्य सत्कर्म से है और सत्कर्म में सत् (सत्य) शब्द पहले से सम्पृक्त है।** सम्पृक्त का अर्थ है इस तरह से जुड़ा हुआ जिसे अलग नहीं किया जा सके जैसे – पानी मिश्रित दूध में दूध और पानी तथा शरबत में जल और चीनी। जो कर्म सत्य से रहित है वह कर्म नहीं, वह कर्म की श्रेणी में आता ही नहीं। हमारे ऋषियों ने **''सत्यं वद् धर्मं चर्''** तक ही कहकर छोड़ नहीं दिया अपितु आगे सत्य के धरातल को कर्म से सम्पृक्त कर और साफ करते हैं कि **''यानि अनवद्यानि कर्माणि तानि सेवितव्यानि, नो इतराणि । यानि, अस्माकं सुचरितानि तानि सेवितव्यानि नो इतराणि''** अर्थात जो हमारे निर्दोष कर्म हैं उन्हीं का अनुकरण करो, इससे इतर नहीं, अर्थात दोषयुक्त कर्मों का नहीं । जो हमारे अच्छे आचरण हैं उन्हीं का अनुकरण करो इससे इतर नहीं, अर्थात हमारे बुरे आचरणों का अनुकरण मत करो। इससे स्पष्ट है कि हमारे वैदिक ऋषि सत्य के प्रति अत्यन्त सचेष्ट थे, वे अपनी अगली पीढ़ी के प्रति भी अत्यन्त सचेष्ट थे। **सत्य का धरातल धर्मविहित है, सदाचरण एवं सत्कर्म का है।**

ऋषियों का जीवन सत्यमय था, सत्य की रक्षा के लिए जीवन जीया और सत्य की रक्षा में ही जीवन का पर्यवसान किया । हमें भी सत्य के इस निहितार्थ को समझते हुए आचरण करना चाहिए।

'तन्मे मनः शिवसंकल्पमस्तु॥'

सन्दर्भ

1. सत्या वै देवा अनृतम्मनुष्याः । - (श.ब्रा. 01.01.01.04)
2. तैत्तिरीयोपनिषद् शिक्षावल्ली - एकादशोऽनुवाकः ।
3. श्रीमद्भगवद्गीता - 08/05-06, 02/72
4. (क) पाश्चात्यदर्शन – सी0डी0 शर्मा
   (ख) पाश्चात्यदर्शन – हरेन्द्र सिन्हा
5. श्रीमद्भगवद्गीता – द्वितीय अध्याय
6. वाक्यपदीय ब्रह्मकाण्ड - कारिका – 23
7. न्यायमञ्जरी – जयन्तभट्टभाष्य।

◆

पं. मदन मोहन मालवीय एवं पर्यावरणीय चेतना

प्रो0 शशि भूषण अग्रवाल, दिव्या पाण्डेय** एवं मधूलिका अग्रवाल****

युगदृष्टा पं. मदन मोहन मालवीय एक ओजस्वी राष्ट्रनेता एवं दूरदर्शी शिक्षाविद् के रूप में विश्वविदित हैं। भारत की स्वाधीनता, राष्ट्रनिर्माण एवं विकास के आंदोलन में उनकी भूमिका अद्वितीय है। तत्कालीन परिस्थितियों में भारत के सम्मुख प्रमुख चुनौतियाँ थीं- अर्थव्यवस्था को सुदृढ़ करना, सामाजिक उत्थान करना, शिक्षा की सम्यक् व्यवस्था करना एवं एक वृहद् राष्ट्र के सफल संचालन हेतु उचित प्रावधान का निर्माण करना। मालवीय जी की दृष्टि इन सभी चुनौतियों के समाधान के साथ-साथ देश एवं संपूर्ण मानव समाज के संपोषित विकास पर भी केन्द्रित थी जो उनके अनेक भाषणों, लेखों एवं वक्तव्यों में परिलक्षित होती है।

रियो सम्मेलन, 1992 में यह माना गया कि संपोषित विकास का मूल आधार सामाजिक, आर्थिक एवं पर्यावरणीय घटकों के समन्वय में है। ब्रिटिश काल में पराधीन भारत सामाजिक एवं आर्थिक रूप से कमजोर था। महामना द्वारा एक बहुआयामी विश्वविद्यालय की स्थापना करना, भारत की सम्पोष्यता की दिशा में किया गया अतुलनीय योगदान है। महामना का भारतीय कृषि, वन, उद्योग एवं वाणिज्य की सुदृढ़ता में भी उल्लेखनीय योगदान रहा है। 'द इण्डियन इण्डस्ट्रीज कमीशन' के कार्यकलापों पर दिये गये उनके भाषण भारतीय कृषि, लघु उद्योगों, वनों पर अनुसंधान आदि की चिंता से समन्वित थीं जो वर्तमान पर्यावरणीय चुनौतियों के ही समान महत्वपूर्ण है। इंग्लैण्ड से जुड़े एक वक्तव्य में उन्होंने बताया था कि सन् 1750 में जलावन लकड़ी के लिये हुई वनों की कटाई के कारण इंग्लैण्ड का स्टील उद्योग बेहद कमजोर पड़ गया था। उनका यह उदाहरण यह व्यक्त करता है कि वे प्राकृतिक संसाधनों के प्रति दूरदर्शी थे। उन्होंने यह भी महसूस किया कि वन एवं सामाजिक परिस्थितियाँ आपस में जुड़ी हुई हैं। वनों की कटाई के कारण जलावन की कीमतें अत्यधिक बढ़ गईं और गरीब लोगों की पहुँच से बाहर हो गईं। उस समय महामना ने पंजाब वन विभाग के 40,000 एकड़ भूमि पर वन लगवाने के दावों पर सवाल किये। वन अनुसंधान संस्थान, देहरादून के प्रो0 पूरन सिंह के स्वतंत्र अनुसंधान का उन्होंने समर्थन किया क्योंकि वन पर्यावरण एवं राष्ट्रीय विकास दोनों के लिए आवश्यक है। महामना ने भारत में बढ़ रही अकाल की समस्या का विश्लेषण कर यह पाया कि वनों की अंधाधुंध कटाई न केवल पर्यावरणीय दृष्टि से अपितु, अनाज की कीमतें एवं उद्योगों के विघटन के भी मुख्य कारण हैं। सन् 1800-1900 के बीच 29 भयंकर अकाल पड़े। उन्होंने यह पाया कि नील उद्योग का ह्रास, तकनीकी शिक्षा की कमी, कच्चे माल का निर्यात, चीनी उद्योग का विघटन देश की समस्या के मुख्य कारण थे। उन्होंने यह स्पष्ट किया कि गरीबी उल्मूलन के बिना पर्यावरणीय चुनौतियों का सामना करना असंभव है। कृषि बैंकों की अवधारणा का स्वागत करते हुए उन्होंने ब्रिटिश सरकार के कृषि हेतु जलापूर्ति के प्रयासों का समर्थन किया। यह दर्शाता है कि महामना देश की भौगोलिक सीमा से ऊपर उठ कर एक सच्चे राष्ट्रवादी एवं मानवता के समर्थक थे। जहाँ उन्होंने ब्रिटिश राज की दमनकारी नीतियों का विरोध किया वहीं सामाजिक हितकर कार्यों का पुरजोर समर्थन भी किया। वर्तमान पर्यावरणीय संगोष्ठियों में यह प्रवृत्ति बिरला ही देखने को मिलती है। क्योटो प्रोटोकॉल का अब तक गैरप्रभावी रहना इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की संकल्पना एवं उसकी स्थापना हेतु महामना का संघर्ष इसलिए भी बढ़ गया था कि वे भारतीय भाषाओं को शिक्षा का माध्यम रखते हुए वैदिक ज्ञान को राष्ट्रनिर्माण के लिए वांछनीय मानते थे। भारतीय वैदिक दर्शन अत्यंत वैज्ञानिक माने जाते हैं, जिसमें प्रकृति के सम्मान एवं पर्यावरण के संरक्षण के साथ ही संसाधनों के न्यायोचित प्रयोग की प्रेरणा दी गई है। विश्वविद्यालय के सर्वप्रथम पाठ्यक्रमों में वेद, विज्ञान, वाणिज्य, तकनीकी एवं कृषि थे। शिक्षा के ये घटक महामना की दृष्टि से राष्ट्र के संपोषित विकास के लिये आवश्यक थे। महामना ने विश्वविद्यालय के अपने प्रस्ताव में कहा था कि भारतीय कृषि, अर्थव्यवस्था एवं प्राकृतिक संसाधनों का उचित प्रयोग आवश्यक है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की रूपरेखा अत्यंत वैज्ञानिक एवं व्यावहारिक रूप से पर्यावरणीय संरक्षण के लिये महत्वपूर्ण है। विश्वविद्यालय परिसर में लगाये गये वृक्ष मनोरम वातावरण बनाये रखते हैं। उनके साथ ही पावस में नाचते मोर तथा वृक्षों पर तरह-तरह के पक्षी, साफ-सुथरी सड़कों पर बस दोनों तरफ पेड़ ही पेड़। सामान्यतः उगाये जाने वाले शोभाप्रद वृक्षों की बजाय क्षेत्रीय मूल के वृक्षों का रोपण किया गया जिसमें आम, जामुन, मौलश्री, कचनार, नीम, इमली, अशोक, बेल, पीपल आदि शामिल हैं। ये वृक्ष न केवल पारम्परिक रूप से महत्वपूर्ण हैं अपितु, इनका पर्यावरणीय महत्व भी है। विश्वभर में बाहर से लाकर लगाये गये पौधे एक विकराल समस्या का रूप ले रहे हैं, क्योंकि ऐसे अधिकतर पौधे अपना वर्चस्व स्थापित कर मूल वनस्पतियों के साथ ही पारिस्थितिकी को भी नुकसान पहुँचाते हैं। ये वृक्ष स्वास्थ्य की दृष्टि से भी प्रतिकूल होते हैं। हरे-भरे पेड़-पौधों का प्रकृति में क्या योगदान है, यह मालवीय जी भली-भाँति समझते थे, तभी उन्होंने विश्वविद्यालय की संरचना करते हुए पर्यावरणीय योजनाओं

* प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005.

** वनस्पति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005.

*** प्रोफेसर, वनस्पति विज्ञान विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-221 005.

को विशेष महत्व दिया था। विश्वविद्यालय की कुछ सड़कें ही 'जमुनिया लेन', 'शीशम लेन', 'इमली लेन' आदि के नाम से विख्यात है। विश्वविद्यालय में वायु प्रदूषण को कम करने तथा हवा को शुद्ध रखने में इन वृक्षों का विशेष महत्व है। मालवीय जी ने इसके अलावा औषधीय उद्यान की स्थापना का भी ध्यान रखा था ताकि इन पौधों का उपयोग उत्तम औषधी बनाने मे इस्तेमाल हो सके। उन्होंने जैवविविधता का ध्यान विशेष तौर पर रखा था, इसी कारण आज परिसर में बहुत ऐसे पेड़ व पौधे एवं जीव बहुतायत में मिलते हैं जो आमतौर पर शहरों में नहीं देखे जाते। महामना ने ऊर्जा संरक्षण की आवश्यकता को, स्थापना के समय ही पहचान लिया था। चूँकि विश्वविद्यालय की भूमि गाँवों से ली गयी थी, इसलिए लोकमान्यताओं से जुड़े महत्वपूर्ण स्थलों का संरक्षण किया गया। अनेक जलाशयों का भी संरक्षण किया गया जो भूमिगत जलस्तर को बनाये रखने के साथ ही वृक्ष के जल का सरंक्षण करते थे। इन सबके अलावा, परिसर का नक्शा एवं भवन ऐसे बनाये गये कि प्राकृतिक रोशनी एवं हवा का भरपूर प्रयोग किया जा सके। समानांतर रखे गये छात्रावास एवं विभागों के बीच की दूरी बिना वाहन के भी आराम से तय की जा सकती थी। स्वयं की सुनियोजित जलापूर्ति, विद्युत प्रबंधन, दुग्ध उत्पादन, कृषि उद्यान, चिकित्सालय एवं कूड़ा निस्तारण सेवाओं के कारण विश्वविद्यालय स्वयं में एक संपोषित क्षेत्र का प्रारूप माना जा सकता है।

कुल मिलाकर महामना के विचारों में एवं उनके किये गये कार्यों में प्रकृति के प्रति आदर एवं उसके दूरदर्शी उपयोग की चिंता स्पष्ट झलकती है। उनके कार्य, भारत के लिये एक संपोषित विकास का मार्ग तो प्रशस्त करते ही हैं, साथ ही वे संपूर्ण विश्व के समक्ष एक उदाहरण भी प्रस्तुत करते हैं। महामना को पर्यावरण का एक सजग प्रहरी कहें तो अतिशयोक्ति न होगी।

महामना ने छात्रावासों, अध्यापकों एवं कर्मचारियों के निवास की संरचना इस प्रकार की थी कि छात्रों तथा अध्यापकों को संबंधित विभागों तक पहुँचने में किसी वाहन का इस्तेमाल न करना पड़े। उन्होंने विश्वविद्यालय में गऊशाला का भी प्रावधान रखा था ताकि इससे छात्रों व कर्मचारियों को शुद्ध दूध तो मिले ही और साथ ही गोबर उन्नत कृषि के काम आ सके। आज काशी की एक बड़ी जनसंख्या विश्वविद्यालय परिसर में प्रातः भ्रमण पर आती है और स्वास्थ्य लाभ प्राप्त करती है। परिसर के विशाल और असंख्य वृक्ष विभिन्न प्रकार के प्रदूषकों को दूर करते हैं और साथ ही अपनी प्रकाशसंश्लेषण प्रक्रिया द्वारा वातावरण में उपस्थित कार्बन डाइऑक्साइड को अपने में समाहित कर वायु के शुद्धीकरण का कार्य भी करते हैं। इससे वातावरण के तापमान में गिरावट आती है और गर्मी के मौसम में शीतलता का विशेष अनुभव होता है। यहाँ की हरियाली की वजह से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के परिसर का तापमान शहर के तापमान से हमेशा 1 से 2^0 सेल्सियस कम रहता है।

वातावरण शुद्ध रहने से परिसर वासी भी स्वस्थ हैं, क्योंकि स्वास्थ्य का सीधा संबंध स्वच्छ वायु से है। मालवीय जी मानते थे कि पर्यावरण सीधे तौर पर प्राणी के जीवन को प्रभावित करता है, अतः पूरे विश्वविद्यालय की स्थापना में उन्होंने इसका विशेष ध्यान रखा था। आज पूरा विश्व पर्यावरण की समस्या को लेकर चिन्तित है। महामना की दूर दृष्टि का परिणाम है कि उन्होंने विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ ही इसके महत्व को समझ लिया था। उन्होंने प्रकृति को सदैव वंदनीय माना। एक अवसर पर उन्होंने कहा था, 'कौन चाहता है मुक्ति, कौन चाहता है स्वर्ग? मैं तो चाहता हूँ कि प्रेत बनकर इस विद्या मन्दिर के शिखरों को छूता रहूँ। पेड़ों से, पत्तों से, लताओं से, तृणों से बातें करता रहूँ। यहीं रहूँ।' मालवीय जी की सोच थी कि परिसर इस प्रकार विकसित होना चाहिए कि पक्षी कहे कि यह मेरा घर है, फूल कहे कि यही हमारे खिलने और खिलाने और फूलने की जगह है, तितलियाँ विचरें और यह अनुभव करें कि हम बस यहीं रहेंगे।

◆

महामना मदन मोहन मालवीय : कृतित्व एवं सदुपदेश

*डॉ0 विश्वनाथ पाण्डेय**

महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय भारतीय राष्ट्रवाद के प्रारम्भिक नेताओं में प्रमुख हैं। उनके सार्वजनिक जीवन का प्रारम्भ 1886 से होता है जब वे अपने गुरू पण्डित आदित्यराम भट्टाचार्य के साथ कलकत्ता में आयोजित भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के द्वितीय अधिवेशन में शामिल होते हैं। उन्होंने राजनैतिक सुधारों पर एक सारगर्भित भाषण दिया, जिसका अधिवेशन की अध्यक्षता कर रहे श्री दादाभाई नौरोजी एवं संस्थापक श्री ए. ओ. ह्यूम ने सराहना की। प्रोफेसर बिपिन चन्द्रा ने कांग्रेस की स्थापना के पीछे धार्मिक नेताओं के प्रभाव की विस्तार पूर्वक चर्चा की है। अपने गुरू के साथ मालवीय जी कांग्रेस में धार्मिक प्रेरणावश शामिल हुए या नहीं इसका पता नहीं है तथापि वे 1886 से लगायत अपने तिरोधान 1946 तक कांग्रेस से सम्बद्ध रहे और उसका नेतृत्व करते रहे। उन्होंने 1909 (लाहौर) और 1918 (दिल्ली) में आयोजित कांग्रेस अधिवेशनों की अध्यक्षता की। हमारे राष्ट्रीय आन्दोलन के दौरान इतने बड़े खण्डकाल में काम करने वाला मालवीयजी के अलावा और कोई दूसरा नेता नहीं हुआ। उग्रवादी साम्प्रदायिक राजनीति के कारण मालवीयजी ने अपने खराब स्वास्थ्य की दुहाई देते हुए 1938 में अपने को सक्रिय राजनीति से अलग कर लिया था।

अपने दीर्घकालीन राजनैतिक और सामाजिक सेवाओं के कारण महामना पंडित मदन मोहन मालवीय को इतिहास श्रद्धापूर्वक रेखांकित करता है। तथापि कतिपय इतिहासकारों ने उनके सनातनी धार्मिक दृष्टिकोण एवं हिन्दुओं के कल्याण के लिए किए गए योगदान पर प्रश्न उठाएँ हैं। मालवीय जी ने कहा है, ''पृथ्वी मण्डल पर मुझको जो वस्तु सबसे अधिक प्यारी है, वह धर्म है और वह धर्म सनातन धर्म है।''

प्रोफेसर वासुदेवशरण अग्रवाल ने कहा है कि, ''जो इस देश का विराट् चिन्तन है, जो यहाँ का शिष्टाचार प्रदान महान कर्म है, जो इस देश की उत्कृष्ट संस्कृति है और नाना भाषाओं, धर्मों और जनों से भरी हुई जनपद और काननों वाली भूमि है, उन सबका प्रतीक, एकान्त निष्ठा, भक्ति और सेवा का मूर्त रूप ही मालवीय जी का व्यक्तित्व था। सनातन धर्म की परिभाषा के अनुसार जड़ चेतन, गुण-दोष इन दोनों के मिलने से विश्व की रचना हुई है। सनातन धर्म, जिसके प्रतिनिधि व्याख्याता मालवीय जी थे, जहाँ एक ओर गुणों का स्वागत करता है वहीं दूसरी ओर जहाँ जीवन में त्रुटियाँ हैं वहाँ उनके लिए भी अपने को ही उत्तरदायी मानता है। ज्योति और तम जैसे विश्व में हैं, वैसे ही मानव और समाज में भी है। 'अन्धकार को हटाकर प्रकाश की स्थापना' यही सनातन धर्म का संघर्ष पक्ष है। इसी सूत्र में उसके विकास की कथा है।''

सर्वेपल्ली राधाकृष्णन् ने मालवीय जी के सनातन धर्म की व्याख्या अभय, अहिंसा और असंग के रूप में की है। यही सनातनी भारतीयता का उत्कर्ष है। सम्प्रति समाज वैज्ञानिकों ने भी महामना मालवीय जी के सनातन धर्म और समधर्म समभाव के लक्ष्य को समान

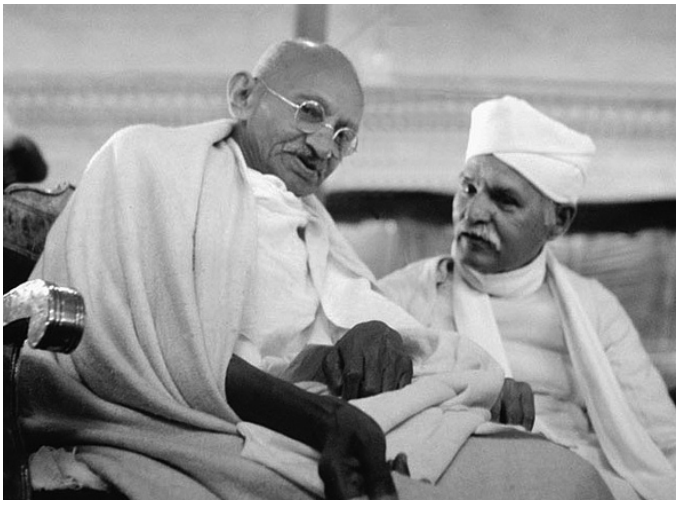

महात्मा गाँधी एवं महामना मालवीय जी

माना है। इसके प्रमुख व्याख्याता पण्डित जवाहर लाल नेहरू हैं। फ्रांसिसी सिद्धान्तकार प्रोफेसर पियरे रोजनवाला, प्रोफेसर टी एन मदन, प्रोफसर ज्ञानेन्द्र पाण्डेय, प्रोफेसर राजीव भार्गव तथा प्रोफेसर निराचन्डोक आदि भी इस मत का समर्थन करते हैं।

महामना मालवीय

ईश्वर-भक्ति और देश-भक्ति मालवीय जी के जीवन के दो मूलमन्त्र थे। इन दोनों का उत्कृष्ट संश्लेषण, ईश्वर-भक्ति का देश-भक्ति में अवतरण तथा देश-भक्ति की ईश्वर-भक्ति में परिपक्वता उनके व्यक्तित्व के विशिष्ट सद्गुण थे। उनकी धारणा थी कि ''मनुष्य के पशुत्व को ईश्वरत्व में परिणत करना ही धर्म है।'' मनुष्यत्व का विकास ही ईश्वरत्व और ईश्वर है और निष्काम भाव से प्राणिमात्र की सेवा ही ईश्वर की सच्ची आराधना है।

वे सार्वजनिक कार्यों के लिए जीवनभर साधन जुटाने को और 'प्रिन्स एमंग बेगर्स' 'भिक्षुओं में राजकुमार' कहलाए। वे महान् देशभक्त, सात्विक जीवन जीने वाले मनीषी, जनसाधारण के सेवक, करुणा, सद्भावना और दया की मूर्त्ति, विदग्ध और उच्चकोटि के वक्त प्राणिमात्र से प्रेम करने वाले, शील के पर्याय, ललित कलाओं के प्रेमी और आहार-विहार में सरलता एवं सात्विकता के प्रतीक थे।

गाँधी जी का कहना था कि ''मालवीयजी के साथ देश-भक्ति में कौन मुकाबला कर सकता है।'' राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन के विचार में मालवीयजी ''आदर्श मनुष्य थे जिन्होंने राजनीति और शिक्षा दोनों क्षेत्रों में परिवर्तक, युगप्रवर्तक का काम किया।'' सुप्रसिद्ध वैज्ञानिक सर प्रफुल्लचन्द्र राय का विचार था कि ''गाँधी जी के बाद कोई दूसरा ऐसा मनुष्य मिलता कठिन है, जिसने इतना अधिक त्याग किया हो और बहुमुखी कार्यों का एक ऐसा प्रमाण प्रस्तुत किया हो जैसा कि मालवीयजी ने।''

* सूचना एवं जनसम्पर्क अधिकारी, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

श्री सी. वाई. चिन्तामणि का विचार है कि ''मालवीयजी ही एक ऐसे व्यक्ति हैं जो साबरमति के मनीषी (गाँधी जी) को कोष्ठक में रखने योग्य हैं।'' पण्डित हृदयनाथ कुँजरू का विचार है कि ''गाँधीजी को छोड़कर उनसे बड़ा भारतीय कोई नहीं हुआ।''

इसीलिए सारे देश ने उन्हें 'महामना मालवीय' कहकर अपने दिलों में स्थान दिया। महामना की जन्मशताब्दी जयन्ती के अवसर पर प्रधानमंत्री जवाहर लाल नेहरू ने कहा—

''ऐसे मौके पर जब याद करते हैं एक महापुरुष को, तो उनकी जीवनी से हम लाभ उठाएँ, सीखें। बहुत कुछ हम सीख सकते हैं एक थाती में। दुनिया का इतिहास क्या है? बहुत बाते हैं दुनिया के इतिहास में, एक थाती में कहा जाये तो दुनिया का इतिहास दुनिया के जो बहुत ऊँचे तबके लोग हैं, उनकी जीवनियाँ हैं, वही इतिहास है। एक थाती में यह ही बात है और बातें भी हैं, लेकिन असल में शायद सबसे जरूरी बात यही है।''

''हमारे सामने तो मालवीयजी के जीवन की कई ऐसी मिसालें हैं जिनसे हम सीख सकते हैं। उनके सामने जो लक्ष्य था, जैसे उन्होंने काम किया और सफलता पायी, इन सबसे हम सबक ले सकते हैं हम मूर्तियाँ खड़ी करें, संस्थाएँ बनाएँ यह तो ठीक है, लेकिन आखिर में सबक सीखें उनकी जिन्दगी से, उनके काम से और सीखकर उसी रास्ते पर चलें और आगे बढ़ें, तो यही उनका सबसे बड़ा स्मारक हो सकता है। यह अच्छा है कि जब आज समय आया है उनकी शताब्दी मनाने का, तो पुराने और नये लोग फिर सोचें, विचार करें और सीखें कि वे क्या क्या बातें थीं, जिससे मालवीयजी इतने ऊँचे महापुरुष हुए, कैसे उन्होंने भारत को आजादी के रास्ते में, अपनी संस्कृति का आदर करने के रास्ते में सबको आगे बढ़ाया और यह भी कि उनके बतलाए रास्ते पर चलकर भारत की सेवा हम किस तरह करें और आगे बढ़ें।'' (सम्पूर्ण भाषण के लिए देखें-परिशिष्ट)

शिक्षा : सम्पूर्ण व्यक्तित्व का विकास

महामना पं0 मदनमोहन मालवीय शिक्षा को मानव विकास का मूल मानते थे। लेकिन उनकी शिक्षा की परिकल्पना मात्र डिग्री प्राप्त करने तक नहीं बल्कि व्यक्तित्व के सर्वांगीण विकास के उद्देश्य निर्धारण हेतु व्यापक थी। इसकी बुनियाद समग्र व्यक्तित्व, भौतिक एवम् आध्यात्मिक, दोनों पक्षों के विकास से प्रेरित थी। महामना की दृष्टि भारतीय परंपरा से ओतप्रोत नैतिकता तथा धार्मिक आचरण, भावनात्मक रूप से गुरुजनों के प्रति आदर, कला और सौन्दर्य के प्रति आदर, कला और सौन्दर्य के प्रति स्वाभाविक प्रवृत्ति तथा देशभक्ति से ओतप्रोत पीढ़ियों के निर्माण की थी। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय उनकी इसी परिकल्पना का जीवन्त मन्दिर है। उन्होंने इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर बड़े खेल के मैदान, व्यायामशालाओं, गौशाला, गीता व्याख्यानमाला तथा मूल उद्देश्य के रूप में पाठ्यक्रम में धार्मिक शिक्षा को शामिल किया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय विधेयक को तत्कालीन वायसराय की विधिक परिषद् (1915) द्वारा मंजूरी देते समय कतिपय सदस्यों ने धार्मिक शिक्षा की अनिवार्यता के प्रति संदेह व्यक्त किया था। महामना का प्रत्युत्तर 'सर्वधर्म-समभाव' का सार्वकालिक प्रतिस्थापन है तथा उससे सभी सदस्य संतुष्ट हो गये। उन्होंने कहा कि प्रस्तावित विश्वविद्यालय 'मतान्ध' नहीं होगा तथा यहाँ 'संकुचित साम्प्रदायिकता को आश्रय नहीं दिया जायेगा, वरन् उन व्यापक और उदार धार्मिक भावनाओं को प्रोत्साहित किया जायेगा जो मनुष्य के बीच भ्रातृत्व की भावना का विकास करें।

महामना ने आशा व्यक्त की कि ''ज्योति और जीवन का यह केन्द्र जो अस्तित्व में आ रहा है, उन छात्रों को तैयार करेगा जो ज्ञान में संसार के दूसरे मार्गों के छात्रों के समान ही नहीं होंगे, वरन् उत्तम जीवन बिताने में ईश्वर-भक्ति व देश-प्रेम में भी परिशिक्षित होंगे।'' 1929 में दीक्षांत भाषण देते हुए महामना ने छात्रों से कहा ''जो शिक्षा तुमने यहाँ प्राप्त की है वह व्यर्थ है, यदि उसने तुममें अपने देश को स्वतंत्र और स्वशासित देखने की उत्कट आकांक्षा नहीं पैदा की।'' यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि महामना मालवीय जी ने विश्वविद्यालय स्थापना की मूल दृष्टि में 'राष्ट्रनिर्माण' को मूल लक्ष्य रखा था। इसी उत्कट उद्देश्य से प्रौद्योगिकी तथा अभियांत्रिकी, विज्ञान, कृषि, मानविकी, विधी तथा अन्य ऐसी सभी विधाओं के शिक्षण की व्यवस्था की थी जिनकी राष्ट्र को जरूरत थी। हम गर्व के साथ कह सकते हैं कि जितनी देश की सेवा काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के छात्रों ने की है वह अतुलनीय है। उन्होंने देश की आधारभूत संरचना को निर्मित करने में प्रभूत योगदान किया है, तथापि महामना गुरुजनों का आदर, विश्वविद्यालय की सेवा, उसकी मान-मर्यादा और गौरव की रक्षा छात्रों के लिए परम आवश्यक समझते थे। उनका उद्देश्य और आशीर्वाद था :

ज्योतिरात्मनि नान्यत्र समं तत् सर्वजन्तुषु।
स्वयं च शक्यते द्रष्टुं सुसमाहितचेतसा॥ (वेदव्यास)

अर्थात् ब्रह्म की ज्योति अपने भीतर ही है। वह सब जीवधारियों में समान है। मनुष्य मन को अच्छी तरह शान्त और सुसमाहित कर उसे देख सकता है।

महामना मालवीयजी स्त्री-शिक्षा के प्रबल पक्षधर थे। उनके विचार से स्त्री-शिक्षा पुरुषों से अधिक जरूरी है, क्योंकि यह पीढ़ियों का निर्माण करती है। उनका कथन है—''वे हमारे भावी राजनीतिज्ञों, विद्वानों, तत्त्वज्ञानियों, व्यापार तथा कला-कौशल आदि की प्रथम शिक्षिकाएँ हैं।'' विधायी परिषद् में बोलते हुए उन्होंने कहा था कि ''एक राष्ट्रीय कार्यक्रम के आधार पर स्त्रियों को इस तरह शिक्षित किया जाय कि उनमें प्राचीन तथा नवीन सभ्यताओं के सभी सद्गुणों का समन्वय हो और जो अपनी शिक्षा द्वारा भावी भारत के पुनर्निर्माण में पुरुषों से पूर्णरूप से सहयोग कर सकें।'' सन् 1911 के गोखले विधेयक पर बोलते हुए उन्होंने कहा था, ''समाज के आधे भाग को ज्ञान की ज्योति से तथा उस उत्कृष्ट जीवन से जो ज्ञान द्वारा संभव है, वंचित रखना बहुत दुःखदायी होगा।'' उनके विचार में विद्यार्थियों का चरित्र-निर्माण शिक्षा का प्राथमिक लक्ष्य है। सज्जनता विहीन ज्ञान उनकी दृष्टि में, निरर्थक है। वे जीवनोत्कर्ष और राष्ट्र की उन्नति, दोनों के लिए चरित्र-निर्माण को बौद्धिक तथा व्यावसायिक विकास से कहीं अधिक आवश्यक समझते थे। उनकी तो धारणा थी कि 'पारस्परिक सद्भाव तथा सहयोग के बिना व्यावसायिक उन्नति हो ही नहीं सकती और जीवन में सद्भाव और सहयोग को विकसित करने के लिए चरित्र का निर्माण आवश्यक

है।' उनके विचार में चरित्र ही मनुष्य को बनाता है, सदाचार मनुष्य का परम धर्म है, उसकी रक्षा मनुष्य का पुनीत कर्तव्य तथा उसकी वृद्धि उसका परम पुरुषार्थ है। मालवीयजी का कहना था कि 'राष्ट्र के प्रत्येक व्यक्ति को आचार के ही शासन से सदा शासित तथा प्रभावित रहना चाहिए, तभी उनमें विश्वास, मृदु भाषण तथा व्यवहार की सच्चाई और सद्गुणों का विकास हो सकता है।'

आचरण की शुद्धि, पुष्टि और परिपक्वता के लिए मालवीयजी धर्म, नागरिकता और नैतिकता की शिक्षा आवश्यक समझते थे। उनकी धर्म की व्याख्या नैतिकता से ओतप्रोत और नागरिकता से समन्वित थी। वे देशभक्ति को धर्म का महत्त्वपूर्ण अंग स्वीकार करते थे। उनकी नैतिकता बहुत अंशों में धर्मग्रन्थों में प्रतिपादित नैतिक आदर्शों पर आश्रित थी। आत्मोपम व्यवहार तथा निःस्पृही लोकसेवा उसके सर्वोत्तम सद्गुण थे और वे दोनों श्रीमद्भगवद्गीता द्वारा प्रतिपादित समत्व, निष्काम सेवा तथा ईश्वरार्पण सत्कर्म के सिद्धान्तों पर आधारित थे। उनकी नागरिकता की व्याख्या लोकतांत्रिक थी। वह पाश्चात्य विद्वानों द्वारा प्रतिपादित लोकतांत्रिक सिद्धान्तों पर आधारित थी। उनके विचार जड़ता से रहित और आधुनिकता से प्रभावित और समन्वित थे। उनकी मूलधारणाएँ निर्विवाद थीं। वे कहते थे कि—''सद्भावनाओं से अनुप्राणित, सदाचार से विभूषित जीवन ही आत्मोत्कर्ष और जनकल्याण का उत्तम साधन हो सकता है। देश-प्रेम की शिक्षा ही राष्ट्र का उद्धार कर सकती है। निःस्पृह देशभक्त ही राष्ट्र की सच्ची ठोस सेवा कर सकता है। लोकतान्त्रिक चरित्र और नागरिकता के मूल सिद्धान्तों पर आधारित लोकतान्त्रिक चरित्र और व्यवहार ही लोकतन्त्र को स्थायी, सुदृढ़ और जनोपयोगी बना सकता है।''

मालवीयजी के विचार में मानव के सर्वांगीण विकास तथा उत्कृष्ट आनन्दमय जीन के लिए विकासोन्मुखी व्यापक शिक्षा तथा चरित्र निर्माण के साथ-साथ स्वस्थ निर्मल जीवन, ज्ञान-विज्ञान का विस्तार, ललित कलाओं के प्रति अभिरुचि तथा सुख-साधन की भौतिक सुविधाएँ भी आवश्यक हैं। स्वास्थ्य की रक्षा, शारीरिक शक्ति की पुष्टि को वे मानव का पुनीत कर्तव्य मानते थे। वे शरीर की रक्षा और पुष्टि के लिए 'युक्त आहार-विहार' तथा 'ब्रह्मचर्य' और 'व्यायाम' आवश्यक समझते थे। वे चाहते थे कि प्रत्येक विद्यार्थी पच्चीस वर्ष तक ब्रह्मचर्य का पालन करे तथा नित्य नियमित रूप से व्यायाम करें। उनका कहना था कि ''ब्रह्मचर्य ही हमें वह आत्मबल देता है जिसके द्वारा हम संसार में सभी कष्टों और बाधाओं का साहस के साथ सामना कर सकते हैं।'' वे प्रत्येक विद्यालय में व्यायाम के साधनों का समुचित प्रबन्ध आवश्यक समझते थे। उनके विचार में कतिपय प्राचीन और अर्वाचीन क्रीड़ा और व्यायाम के उपकरण स्वास्थ्य की रक्षा और शरीर की पुष्टि के साथ-साथ मनोरंजन तथा पारस्परिक सद्भाव और सहयोग की क्षमता की वृद्धि के उत्तम साधन भी बन सकते हैं और उनका प्रबन्ध विशेष रूप से वांछनीय है।

मालवीय जी यह भी चाहते थे कि विद्यालयों में संगीत, काव्य, नाट्यकला, चित्रकला, वास्तुकला तथा मूर्तिकला आदि ललित कलाओं की शिक्षा का भी प्रबन्ध हो, और उनमें से कम से कम किसी एक कला में विद्यार्थी अवश्य ही दिलचस्पी लें। उनके विचार में कलाविहीन जीवन शुष्क और नीरस है, जबकि ललित कलाओं का ज्ञान उनको परखने की क्षमता तथा शुद्ध भावनाओं के साथ उनके प्रति अभिरुचि और समयानुकूल उनका अभ्यास जीवन को सरस और आनन्दमय बनाता है।

मालवीयजी को अपने पूर्वजों की सांस्कृतिक देन पर गर्व था। वे चाहते थे कि भारतीय विधाओं के अध्ययन, अध्यापन तथा अनुसंधान का समुचित प्रबन्ध हो तथा सभी विद्यार्थियों को उनकी रूपरेखा की जानकारी करायी जाये। उनकी धारणा थी कि वह शिक्षा-पद्धति अपूर्ण ही नहीं, निरर्थक और हानिकर है जिसके द्वारा नवयुवक को अपने देश और समाज की बौद्धिक समृद्धि की ठीक ठीक जानकारी न हो सके। उनके विचार में वह व्यक्ति क्या शिक्षित है, जिसका जीवन अपने पूर्वजों के सद्गुणों से अनुप्राणित नहीं, जिसे अपने पूर्वजों की महत्त्वपूर्ण देन का कोई ज्ञान नहीं, जिसे अपने देश के इतिहास की सही-सही जानकारी नहीं, जिसमें अपने जीवन को जनता से आत्मसात् करने की क्षमता नहीं। यद्यपि मालवीयजी भारतीय वाङ्मय का अध्ययन-अध्यापन, पूर्वजों की कीर्ति की रक्षा और पुष्टि सामाजिक उन्नति के लिए आवश्यक समझते थे, तथापि उनका सांस्कृतिक दृष्टिकोण, उनकी बौद्धिक मान्यतायें व्यापक और उदार थीं। वे ज्ञान को किसी विशिष्ट जाति या देश की बपौती नहीं समझते थे। वे यह कभी नहीं मानते थे कि हमारे पास सब कुछ है, हमें दूसरों से कुछ लेना नहीं है। वे स्वीकार करते थे कि हमारे पूर्वजों की तरह दूसरे देश के विद्वानों ने भी अपनी प्रतिभा और योग्यता से संसार को अलंकृत किया है। सभी विद्वानों का आदर तथा ज्ञान का आदान-प्रदान वे मानव प्रगति और राष्ट्र की उन्नति के लिए आवश्यक समझते थे। वे दूसरे देशों के विद्वानों के युक्तियुक्त समाजोपयोगी विचारों को ग्रहण करने को सदा तैयार रहते थे। वे मनु, भीष्म, वशिष्ठ, शुक्र आदि विद्वानों के इस विचार से सहमत थे कि हमें अपने गुरुओं और पूर्वजों के सद्गुणों को ग्रहण करते हुए सब विद्वानों के युक्तियुक्त विचारों को, शुभ ज्ञान को विनयपूर्वक स्वीकार करना चाहिये, उनका अध्ययन-अध्यापन करना चाहिए।

इस तरह मालवीय जी भारतीय विद्यार्थियों के लिए प्राचीन भारतीय दर्शन, साहित्य, संस्कृति और अन्य विधाओं के साथ साथ अर्वाचीन नीतिशास्त्र, समाज-विज्ञान, मनोविज्ञान, विधिविज्ञान, अर्थशास्त्र और राजनीति का अध्ययन आवश्यक समझते थे। वास्तव में वे इन सब विषयों के प्राचीन भारतीय और अर्वाचीन पाश्चात्य विद्वानों के विचारों का तुलनात्मक और समन्वयात्मक अध्ययन आवश्यक समझते थे। वे विश्वज्ञान का समन्वय तथा विश्व के विद्वानों के सहयोगात्मक प्रयासों को मानव उन्नति के लिए आवश्यक समझते थे।

मालवीयजी का अपना काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एक प्रकार से उनकी अपनी कल्पना का प्रतीक है। वह प्राच्य और अर्वाचीन विद्याओं का संगम, विश्व ज्ञान का विद्यामंदिर है। वर्तमान सभ्यता की अनुकरणीय तथा लाभदायक बातों के साथ भारतीय सभ्यता का उचित सामंजस्य उसका उद्देश्य है। प्राचीन भारतीय आयुर्वेद के साथ अर्वाचीन शल्यशास्त्र की शिक्षा का मेल, आयुर्वेदिक औषधियों का वैज्ञानिक परीक्षण तथा उन पर अनुसंधान, विभिन्न विषयों पर प्राच्य और अर्वाचीन ज्ञान का तुलनात्मक और समन्वयात्मक अध्ययन, प्राचीन भारतीय संस्कृति,

दर्शनशास्त्र, साहित्य और इतिहास के गम्भीर अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ आधुनिक मनोविज्ञान, नीतिविज्ञान, दर्शनशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीतिविज्ञान आदि का अध्ययन-अध्यापन, वेद, वेदांग तथा संस्कृतसाहित्य और वाङ्मय की शिक्षा के अतिरिक्त आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, धातुविज्ञान, खननविज्ञान, विद्युत् इंजीनियरिंग, कृषि विज्ञान आदि का अध्ययन इसकी विशेषता है। यहाँ ईश्वर-भक्ति के साथ-साथ देश-भक्ति की शिक्षा दी जाती है और विद्यार्थियों को राष्ट्र के जीवन का ज्ञान कराया जाता है। उन्हें समाज की सेवा के लिए प्रोत्साहित कराया जाता है। मालवीय जी की कामना थी कि उनका विश्वविद्यालय जीवन और ज्योति का केन्द्र बने और यहाँ के विद्यार्थी ज्ञान में संसार के दूसरे प्रगतिशील देशों के विद्यार्थियों के समान हों, तथा उत्कृष्ट जीवन बिताने के योग्य बनें, देशभक्ति और भगवद्भक्ति से अपने जीवन को अनुप्राणित कर समाज की सेवा करें।

मालवीय जी चाहते थे कि जिस तरह प्राचीनकाल में भारत में गुरु सर्वसम्मानित थे, उसी तरह अब भी सरकार, अधिकारी और विद्यार्थी गुरुओं के मान की रक्षा तथा उनके गौरव की वृद्धि अपना कर्त्तव्य समझें। इसके बिना शिक्षा की सुव्यवस्था असंभव है।

मालवीय जी का विद्यार्थियों को उपदेश था—

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाय विद्यया।
देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव॥

अर्थात् सत्य, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, विद्या, देशभक्ति, आत्मत्याग द्वारा अपने समाज में सम्मान के सदा योग्य बनो।

वे चाहते थए कि विद्यार्थी सदा सभ्यतापूर्ण आचरण करें, ब्रह्मचर्य और व्यायाम द्वारा अपनी जीवन शक्ति को परिपुष्ट करें, नियमित रूप से विद्याध्ययन कर अपनी बौद्धिक शक्ति का विकास करें, स्वयं में अपने कुटुम्ब तथा अपने राष्ट्र की सेवा करने की क्षमता पैदा करें, सदा शुद्धता से रहें और शील का पालन करें, अपने सदुव्यवहार से अपने विद्यालय का गौरव बढ़ायें, गुरुजनों का आदर करें, सहपाठियों के साथ सौहार्दपूर्ण व्यवहार करें, छोटे कर्मचारियों के साथ सहानुभूति और प्रेम का व्यवहार करें, अपने से छोटों की सेवा अपना कर्तव्य समझें, दूसरों के प्रति किया जाना अनुचित समझें, उन कार्यों से डरें जो निकृष्ट और त्याज्य हैं, मातृ-भूमि से प्रेम करें, जनता की सुखवृद्धि करें, जहाँ कहीं भी अवसर मिले भलाई करें। वे चाहते थे कि विद्यार्थी अपने अवकाश तथा छुट्टियों में गाँवों में जाकर गाँव वालों के साथ काम करें, अविद्या रूपी अन्धकार को, जो हमारी अधिकांश जनता को आच्छादित किये हुए हैं, ज्ञान के प्रकाश से उसे दूर कर दें। वे चाहते थे कि भारतीय शिक्षित सहनशीलता, क्षमा तथा निःस्वार्थ सेवा के भाव को अपने जीवन में विकसित कर अपने छोटे भाइयों के उत्थान के लिए अधिक से अधिक अपना समय तथा शक्ति लगायें, उनके साथ मिलकर काम करें, उनके शोक तथा आनन्द में उनका हाथ बटायें और उनके जीवन को दिनोंदिन सुखमय बनाने का प्रयत्न करें। वे तो वास्तव में यह भी चाहते थे कि हम ईश्वर का स्मरण रखें, तथा यह विश्वास रखते हुए कि ईश्वर सभी प्राणियों में विद्यमान है अपने अन्य जीवधारी भाईयों से अपना सच्चा सम्बन्ध प्रतिष्ठापित करें।

धर्माधृत मानवता

मालवीय जी की श्रीमद्भागवत पर दृढ़ निष्ठा थी। भागवत में प्रतिपादित अद्वैतवाद और ईश्वरवाद का तथा भक्ति और निष्काम सेवा का सामंजस्य उन्हें स्वीकार था। ईश्वर पर उनकी अचल, अगाध श्रद्धा थी। नित्य नियमित रूप से उसकी आराधना तथा सदा उसका स्मरण, वे प्रत्येक मानव का पुनीत कर्तव्य समझते थे। वे ईश्वर को सम्पूर्ण सृष्टि का कर्ता, नियन्ता तथा व्यवस्थापक, सारे विश्व का ''साक्षात्कारकर्ता'' समझते थे। उनके विचार में वह ''अद्वितीय शक्ति'' निःसन्देह ''अविनाशी'', ''सर्वव्यापक'' ''सत्यज्ञानस्वरूप'' एवं ''अनन्त'' है। वह सभी धर्मों का मूलाधार तथा आराध्यदेव है। वे ''एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म'' के सिद्धान्त को स्वीकार करते थे : ''ज्योतिरात्मनि नान्यत्र समं तत् सर्वजन्तुषु'' अर्थात् यह ज्योति अपने भीतर ही है, अन्यत्र नहीं और सब जीवधारियों में एक, सम है। वे चाहते थे कि हम यह समझकर कि 'वह सभी में विद्यमान हैं', अपने अन्य जीवधारी भाईयों से अपना ''सच्चा सम्बन्ध'' स्थापित करें। इस तरह वे ''सर्वभूतेष्वात्मदेवताबुद्धिः'' के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए प्राणिमात्र के साथ 'आत्मोपम व्यवहार' को ही न्यायसंगत तथा धर्मनिष्ठों का पवित्र कर्तव्य समझते थे। वे इस सम्बन्ध में श्रीमद्भागवद्गीता के इस श्लोक को बार-बार दुहराते थे :

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन!।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥6.32॥

'हे अर्जुन! जो व्यक्ति, चाहे दुःख हो चाहे सुख, सब स्थितियों में सबको अपने समान देखता है, वह परम योगी है।'

समत्व के सिद्धान्त को वे सनातन-धर्म का ऐसा मूलमन्त्र स्वीकार करते थे जिसकी सिद्धि को ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, मनोयोग, नीतिशास्त्र सबने निःश्रेयस अर्थात् आत्मोत्कर्ष और मोक्ष के लिए आवश्यक बताया है। समदृष्टा ही ज्ञानी, योगी, भक्त और सत्यनिष्ठ हो सकता है।

मालवीयजी कहते थे कि समत्व की आध्यात्मिक कल्पना कोरा सिद्धान्त नहीं है, वह तो साधना का मूलमन्त् है। जीवन में उसका अवतरण सिद्धि के लिए आवश्यक है। आत्मौपम्य निष्पक्ष व्यवहार तथा प्राणिमात्र के प्रति सद्भावना उसका व्यावहारिक पक्ष तथा सामाजिक लक्ष्य है, जिसके बिना किसी भी सामाजिक व्यक्ति के लिए समत्व की सिद्धि असम्भव है।

वे हमें बताते थे कि शास्त्रों में कहा गया है :

यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत्।

जो जो बात मनुष्य अपने लिए चाहता हो, उसे चाहिए कि वही बात औरों के लिए भी स्पृहणीय सोचे।

'आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्'

—विष्णुधर्मोत्तरपुराण 3.255.44

दूसरों के प्रति हमको वह काम नहीं करना चाहिए, जिसको यदि दूसरा हमारे प्रति करे तो हमको खटके। संक्षेप में यही धर्म है, इसे अतिरिक्त दूसरे सब कर्म किसी बात की कामना से किये जाते हैं।

मालवीयजी पूजापाठ के विधि-विधान पर तथा शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित कर्मकाण्ड पर विश्वास करते थे तथा धर्मजिज्ञासुओं के लिए

उनकी थोड़ी बहुत व्याख्या भी करते रहते थे। उन्हें पशुबलि आदि हिंसात्मक प्रयोगों पर विश्वास नहीं था। वे उसे तामसिक प्रक्रिया समझते थे। समत्व और निष्काम लोकसेवा पर आश्रित कर्मयोग एवं ईश्वर को सब सत्कर्मों का समर्पण और उनके द्वारा भगवान् की आराधना ही उनको सर्वप्रिय थी। उनकी दृष्टि में भक्तियुक्त लोकसेवा ही अभ्युदय और निःश्रेयस की सिद्धि का सर्वश्रेष्ठ मार्ग है। सबमें समान रूप से अवस्थित ईश्वर का सद्भाव देखें, सबमें मित्रता का भाव रखें, और सबका हित चाहें। वे चाहते थे कि हम ''दीन निर्धन देशवासियों की सेवा द्वारा ईश्वर की उपासना करें तथा सार्वजनीन प्रेम से, इस सत्यज्ञान के प्रचार से ईश्वरीय शक्ति का संगठन और विस्तार करें, जगत् से अज्ञान को दूर करें, अन्याय और अत्याचार को रोकें और सत्य, न्याय और दया का प्रचार कर मनुष्यों में परस्पर प्रीति, सुख और शान्ति बढ़ावें।

वे कर्मकाण्ड और नैतिकता दोनों को धर्म का अंग स्वीकार करते थे और उन्हें दोनों ही प्यारे थे फिर भी धर्मविहित नैतिकता का प्रसार तथा उसके आधार पर सामाजिक व्यवहार का और वैयक्तिक चरित्र का परिशोधन और नवनिर्माण ही उनका मुख्य काम था। अपने चरित्र और उपदेशों द्वारा इसका विस्तार ही उनकी जीवनचर्या थी।

मालवीय जी बार-बार कहते थे कि मनु के अनुसार—

धृतिः क्षमादमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्।।-मनुस्मृति 6.92

धैर्य, क्षमा, बुरी वृत्तियों का दमन करना, शौच (अन्तः एवं बाह्य), आत्मनिग्रह, विवेक, विद्या, सत्य, क्रोध न करना-ये धर्म के दश लक्षण हैं।

तप की व्याख्या करते हुए मालवीय जी लिखते हैं-''तप अपने उद्देश्य, प्रयोजन या गरज से अच या बुरा, ऊँचा या नीचा, तामसिक, राजसिक और सात्विक एवं कायिक, वाचिक और मानसिक कहलाता है।'' जो काम निष्काम भाव से, फल की इच्छा त्यागकर, शम, दम से सम्पन्न होकर श्रद्धा और धैर्य के साथ मन, वाणी या शरीर से किया जाता है, वह **''सात्विक तप''** कहलाता है। मन को जीतना अर्थात् काम-क्रोध, लोभ-मोह से बचना और शुद्ध संकल्प युक्त रहना, किसी विषय-वृत्ति के कारण विक्षिप्त होकर भी उस पर विजय प्राप्त करना, व्यवहार कार्य में छल-कपट, धोखा और फरेब से मन को दूर रखना, मन को सात्विक बनाना **''मन द्वारा सात्विक तप''** करना है। वाणी का सात्विक तप यह है कि जो वाक्य असत्य, दुःखदायी, अप्रिय और खोटा हो उसको किसी भी समय किसी भी अवस्था में मुँह से निकालना, बल्कि प्रिय, सत्य, मीठे और मधुर वचन बोलना-यह **''वाणी द्वारा सात्विक तप''** करना है। शरीर से अर्थात् शरीर के अवयवों से, हस्तपादादि कर्मेन्द्रियों के द्वारा दूसरों की सहायता और सेवा करना, गिरे हुओं को उठाना और कष्ट की परवाह न कर, बल्कि यदि आवश्यकता हो तो धर्म और परोपकारार्थ प्राण अर्पण कर देना, यह **''शरीर का सात्विक तप''** है। परन्तु अपनी स्तुति, मान, पूजा, सत्कार, प्रतिष्ठा और नाम या भोग-विलास के लिए के लिए इन्हीं सब कामों को मन, वाणी या शरीर द्वारा करना इनको राजसी बना देता है। जो तप अविवेक से, दूसरों को हानि पहुँचाने, दिल दुखाने, द्वेष और शत्रुता से किया जाता है—**''वह तामसी है।''** अभ्युदय के सम्पादकीय में उन्होंने लिखा-''इन रूपों का भिन्न-भिन्न वर्णन करने से अभिप्राय यह है कि लोग अपने अपने मन, वाणी, शरीर की परीक्षा करें और सात्विकतपों को ग्रहण करते हुए राजसी और तामसी को त्याग दें।''

वे कहते थे :

निन्दन्तु नीतिनिपुणा यदि वा स्तुवन्तु
लक्ष्मीः समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टम्।
अद्यैव वा मरणमस्तु युगान्तरे वा
न्याय्यात् पथः प्रविचलन्ति पदं न धीराः।।

नीति निपुण लोग निन्दा करें या प्रशंसा, लक्ष्मी जाय या रहे, आज ही मृत्यु हो या युगान्तर में, परन्तु धीर पुरुष न्याय के मार्ग से विचलित नहीं होते।

सदाचार की महिमा का वर्णनकरते हुए वे कहते थे :

वाञ्छा सज्जनसंगमे परगुणे प्रीतिर्गुरौ नम्रता
विद्यायां व्यनं स्वयोषिति रतिर्लोकापवादाद् भयम्।
भक्तिश्चक्रिणि शक्तिरात्मदमने संसर्गमुक्तिः खले
येऽप्येते निवसन्ति निर्मलगुणास्तेभ्यो नरेभ्यो नमः।।

सज्जनों के सत्संग में इच्छा, पराये गुणों से प्रीति, गुरु के साथ नम्रता, विद्या में व्यसन, अपनी स्त्री में प्रीति, लोकनिन्दा से भय, विष्णु की भक्ति, आत्मदमन की शक्ति, दुष्टों के संसर्ग से मुक्ति, ये निर्मल गुण जिनमें बसते हैं, उन महापुरुषों को नमस्कार है।''

भारतीय शास्त्रों द्वारा प्रतिपादित नैतिक नियमों तथा सदाचार की महिमा का विस्तृत दिग्दर्शन कराते हुए वे कहते हैं कि सदाचार के सेवन से, सत्कर्म करने से, शूद्र भी द्विजत्व को पहुँच सकता है और दुराचार अर्थात् बुरे कर्म के करने से ब्राह्मण भी नीचे गिर शूद्रता को पहुंच सकता है।

मालवीय जी ने बताया कि महाभारत में कहा गया है—

वर्णोत्कर्षमवाप्नोति नरः पुण्येन कर्मणा।
यथाऽपकर्षं पापेन इति शास्त्रनिदर्शनम्।।
शूद्रोऽपि शीलसम्पन्नो गुणवान् ब्राह्मणो भवेत्।
ब्राह्मणोऽपि क्रियाहीनः शूद्रात् प्रत्यवरो भवेत्।।
सत्यं दानं क्षमा शीलमानृशंस्यं तपो दया।
दृश्यन्ते यत्र नागेन्द्र स ब्राह्मण इति स्मृतः।।
यस्तु शूद्रो दमे सत्ये धर्मे च सततोत्थितः।
तं ब्राह्मणमहं मन्ये वृत्तेन हि भवेद् द्विजः।।

मनुष्य पुण्यकर्म से वर्ण के उत्कर्ष को, पापकर्म से अपकर्ष को अर्थात् पतन को प्राप्त करता है, यह शास्त्र का निर्देश है। शील-सम्पन्न शूद्र भी गुणवान् ब्राह्मण के समान हो जाता है। क्रियाहीन ब्राह्मण भी शूद्र से गिरा हो जाता है। सत्य, दान, क्षमा, शील, कटुता का अभाव तप और दया जहाँ दिखाई दें, नागेन्द्र, वह ब्राह्मण है-ऐसा स्मृतियों का कहना है। जो शूद्र आत्मसंयम, सत्य, धर्म में सदा प्रगति करता हुआ हो, उसे मैं ब्राह्मण मानता हूँ। सदाचरण से ही द्विज होता है।

श्रीमद्भागवत् में भी सातवें स्कन्ध में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के अलग अलग गुणों का वर्णन करते हुए नारद जी ने कहा है—

यस्य यल्लक्षणं प्रोक्तं पुंसो वर्णाभिव्यञ्जकम्।
यद्यन्यत्रापि दृश्येत तत्तेनैव विनिर्दिशेत्।। 7.11.35।।

पुरुष में वर्ण को प्रकट करने वाला जो लक्षण कहा है, जहाँ दूसरों में भी वही लक्षण दिखाई दे तो उसको उसी गुणवाले वर्ण के नाम से बताना चाहिए।

मालवीय जी के विचार में ''इन वचनों से यह स्पष्ट है कि यदि जन्म से ब्राह्मण होने वाला भी अपने धर्म से रहित हो जाय या कुकर्म करने लगे तो वह शूद्र से भी नीचे गिर जाता है और शूद्र भी यदि अच्छे आचरणों को ग्रहण करे और ऊँचा पवित्र जीवन व्यतीत करने लगे तो वह भी ब्राह्मण के समान मान पाने योग्य हो जाता है।''

मालवीयजी ने ''अन्त्यजोद्धारविधि'' पुस्तक में बहुत सी कथाओं और माहात्म्यों का उदाहरण देते हुए लिखा है कि इन सबका तात्पर्य यही है कि ''मनुष्य चाहे पहले कैसी ही स्वाभाविक या नैमित्तिक दोषों से युक्त क्यों न हो, यदि वह मन्त्रदीक्षा, भक्तिभावना और सदाचार से सम्पन्न हो जाता है, तो वह दोषनिर्मुक्त होकर सम्मान्य, आदरणीय और स्वर्ग का सामाजिक साधारण धर्माधिकारी हो जाता है। इतना ही नहीं, बल्कि उसकी बीज सम्बन्धी और शरीर सम्बन्धी अपवित्रता चली जाती है। वे यह भी चाहते थे कि ''सार्वजनिक स्थानों से वर्णभेद का प्रश्न हटा दिया जाय।''

हिन्दू धर्म के प्रति मालवीय जी की दृढ़ निष्ठा थी। वे अपने सनातन-धर्म को सर्वश्रेष्ठ समझते थे, पर उनकी निष्ठा, सहिष्णुता से समान्वित थी। वे समान रूप से सब धर्मों, धर्मग्रन्थों, धर्मगुरुओं का आदर करना, सब धर्मनिष्ठ व्यक्तियों का कर्तव्य समझते थे। वे ''मन्दिर, गुरुद्वारा, मस्जिद, गिरजाघर सबको सम्मान के काबिल'' समझते थे और वे कहते थे कि ''जब मैं किसी गिरजाघर या मस्जिद के पास से गुजरता हूँ, तब मेरा सिर सम्मान से झुक जाता है।'' यद्यपि उन्होंने शुद्धि आन्दोलन को प्रोत्साहित किया, अपने धर्म का व्यापक प्रसार और शास्त्रसंगत प्रचार हिन्दुओं का कर्तव्य बताया, फिर भी उन्होंने कभी किसी दूसरे धर्म, धर्मगुरु या धर्मग्रन्थ की निन्दा नहीं की। उनका कहना था कि ''मैं सदैव अपने धर्म का दृढ़ विश्वासी और पाबन्द हूँ, किसी के धर्म का अपमान करने का ख्याल तक मेरे दिल में कभी नहीं आया।'' वे चाहते थे कि धर्मप्रचार का काम बहुत शान्ति और धैर्य से होना चाहिए। वह इस रीति से करना चाहिए कि जिससे किसी को क्लेश न पहुँचे। एक दूसरे को कटुवचन कहने से रोकना चाहिए और ऐसे उपाय सोचना चाहिए जिनसे प्रीति और मित्रता बढ़े। उन्होंने अपने धर्म की कतिपय प्रचलित पद्धतियों की यदा-कदा समीक्षा भले ही की हो, पर उन्होंने किसी दूसरे धर्म की आलोचना कभी नहीं की। वे यह स्वीकार करते थे कि सत्य और ईश्वर की आराधना सब धर्मों का मूलाधार है, कतिपय मूलभूत सद्गुण सभी धर्मों में विद्यमान है, जीवनसिद्धि के अनेक मार्ग हैं, मानव अपनी रुचि और परम्परा के अनुकूल अपना मार्ग निश्चित अपना मार्ग निश्चित कर दृढ़ निष्ठा से उस पर चलकर सद्गति प्राप्त कर सकता है। वे चाहते थे कि हिन्दू ''पक्का हिन्दू'' और मुसलमान ''पक्का मुसलमान'' बने, दोनों ईश्वर भक्त हों, सब अने धर्म के सिद्धान्तों को अच्छी तौर पर समझें। उनकी धार्मिक सहिष्णुता ने वास्तव में धार्मिक सद्भावना का ऐसा अपूर्व रूप धारण कर लिया था कि उन्होंने सत्तर वर्ष की आयु में समुद्र यात्रा करते हुए जहाज में बाइबिल हाथ में लेकर पूर्ण निष्ठा के साथ ईसाईयों की उपासना में निःसंकोच भाग लिया। वे मनुष्यता को जाति-पाति और साम्प्रदायिक भेदों से ऊँचा समझते थे।

मालवीयजी स्वीकार करते थे कि शास्त्रविहित विधियों का यन्त्रवत् अनुकरण निःसन्देह हानिकर है तथा हमारे नित्यकर्मों में कई प्रथाओं का समावेश हो गया है जो किसी प्रकार शास्त्रविहित नहीं है। वे परम्पराओं का परिशोधन तथा प्रगति का नियमन, समाजोत्थान और जीवनोत्कर्ष के लिए परमावश्यक समझते थे पर उनके विचार में आधुनिक सामाजिक परिस्थिति के संदर्भ में शास्त्रों का गूढ़ अध्ययन करने पर प्रचलित परम्पराओं को शास्त्र के आधार पर भी बहुत हद तक संशोधित किया जा सकता है और उन्होंने स्वयं सुधार के काम में इसी प्रथा का सदा अनुसरण किया। उनका कहना था-''मैं शास्त्र की रस्सी थाम कर चलता हूँ और मैं जो कुछ कहता हूँ शास्त्र के आधार पर कहता हूँ।'' उनकी धारणा थी कि प्राचीन भारतीय संस्कृति के विश्वजनीन आदेशों का अनुसरण प्राचीन परम्पराओं की जटिलताओं को दूर कर सकता है, जीवन को मानवीय, प्रगतिशील और समाजोपयोगी बना सकता है।

मालवीयजी की धार्मिक अवधारणाएँ मानव कल्याण की भावना से अनुप्राणित थीं। कल्याण की वृद्धि को वे सब वर्णों और आश्रमों का लक्ष्य स्वीकार करते थे। उनके विचार में निष्काम भाव से समाज की सेवा ही परम तप और परम धर्म है। निष्काम भाव के महत्त्व की व्याख्या करते हुए वे कहते थए कि ''जो लोग निष्काम भाव से काम नहीं करते-उन लोगों में परस्पर ईर्ष्या और द्वेष उत्पन्न हो जाते हैं और कार्य सफल नहीं होने पाता है, किन्तु जहाँ निष्काम भाव से कार्य होता है वहाँ लोग दूसरे की सफलता देखकर प्रसन्न होते हैं और एक दूसरे के प्रति प्रेम और सहानुभूति का भाव उत्पन्न होता है, और कार्य में शीघ्र ही सफलता प्राप्त होती है। निष्काम भाव से काम करने वाले लोग यह समझकर कि जो काम हम करते हैं, वह ईश्वर का काम ही है और इसमें ईश्वर हमारा सहायक है, किसी विघ्न या बाधा से पीछे नहीं हटते।'' तप की व्याख्या करते हुए उन्होंने कहा कि सच्चे तप का भाव उस देशभक्त में है जो अपने देश एवं अपनी जाति के गौरव और प्रतिष्ठा, कीर्ति और मान, सम्पत्ति और ऐश्वर्य की वृद्धि और उन्नति के लिए दृढ़ इच्छा रखता है। अनेक प्रकार के दुःखों, संकटों और कष्टों को सहन करने कठिन से कठिन मेहनत और श्रम को उठाने और विघ्नों का मुकाबला करने के लिए उद्यत रहता है। सच्चे देशप्रेमी, देशानुरागी कल्याण की इच्छा करके, तप का अनुष्ठान करके तथा आत्मा और मन को धर्माचरण रूपी प्रचण्ड अग्नि में दग्ध करके अपने और अपने देश की अपवित्रता, मलिनता और अन्य अशुद्धियों को दूर कर जाति को आरोग्य एवं सुख-सम्पत्ति की योग्यता प्रदान करते हैं।

◆

महामना मालवीय जी के कार्य : कांग्रेस एवं साम्प्रदायिक निर्णय पर उनका दृष्टिकोण

डॉ0 वाचस्पति त्रिपाठी *

मालवीय जी ने अपने देश, धर्म तथा समाज को उन्नत बनाने के लिए अथक प्रयत्न किया। यद्यपि महामना जी के पास सम्पत्ति तो नही थी, परन्तु भगवान ने उन्हें यह कार्य करने के अद्भुत वाक्शक्ति, दृढ़ चरित्र, विद्वता एवं स्वस्थ शरीर दिया। महामना जी का हिन्दी, अंग्रेजी तथा संस्कृत भाषा पर पूर्ण अधिकार था। भारत के विश्वविख्यात व्याख्यानदाताओं में महामना जी प्रधान समझे जाते थे और उनके भाषण को सुनने के लिए विरोधी भी लालायित रहते थे।

महामना जी एक सफल अध्यापक, पत्रकार तथा वकील थे। उन्होंने शैक्षिक, सामाजिक, धार्मिक तथा राजनैतिक जगत् में अपनी अनमोल छाप छोड़ी। मालवीय जी के ही प्रयत्न से कचहरियों में सर्वप्रथम सरकारी कामों के लिए हिन्दी भाषा का व्यवहार करने का कानून बना। इसके पहले केवल उर्दू का उपयोग होता था। महामना जी को धन और ख्याति प्राप्त होने पर भी उन्हें अपना कार्य अधिक रूचिकर नहीं लगा। उनका मूल उद्देश्य परमार्थ साधन और लोक कल्याण था। जिसके अन्तर्गत देश, समाज व धर्म का निःस्वार्थ सेवा करना था। देश को अंग्रेजो की पराधीनता से छुड़ाकर स्वतंत्र बनाने का मालवीय जी सदैव सम्भव प्रयत्न करते रहे।

सन् 1885 में श्री ए0 ओ0 ह्यूम ने कांग्रेस की स्थापना की। प्रारम्भ में कांग्रेस का ध्येय अंग्रेजों के अनुकूल रहकर उनकी सहायता और समर्थन से भारतीय जनता का यथासंभव हित करना था। भारतीय स्ववंत्रता-संग्राम में लड़ने वाली कांग्रेस से ह्यूम की कांग्रेस सर्वथा भिन्न थी। सन् 1887 में महामना जी कांग्रेस के पश्चिमोत्तर प्रान्त एवं अवध प्रान्तीय शाखा के सहामंत्री नियुक्त हुए।

मालवीय जी सन् 1900 से इलाहाबाद म्युन्सिपल बोर्ड के सदस्य चुने गये। तत्पश्चात् प्रान्तीय विधान परिषद् के सदस्य 1913 तक बने रहे। इस बीच 1910 में भारतीय विधान परिषद् के लिए भी सदस्य मनोनीत हुए तथा लगातार महत्वपूर्ण विषयों पर मालवीय जी का जोरदार भाषण होता रहा। मालवीय जी अंग्रेजों में Silver – tounged orator के नाम से जाने जाते थे।

1909 में महामना जी पहली बार कांग्रेस के 24 वें वार्षिक अधिवेशन, लाहौर कांग्रेस के अध्यक्ष चुने गये। इसके बाद पुनः दिल्ली और कलकत्ता कांग्रेस के अधिवेशन के सभापति बनाए गए। कांग्रेस के कार्य को सफल बनाने में मालवीय जी ने जीवन भर पूर्ण सहयोग दिया और जेल यात्रा भी किया।

भारतीय स्वतंत्रता, धर्म और संस्कृति के मालवीय जी सच्चे पुजारी थे। नवयुवकों में पाश्चात्य सभ्यता के बढ़ने और देशभक्ति-देशप्रेम, भारतीय धर्म संस्कृति व आचार-विचार के उपेक्षा के कारण मालवीय जी बहुत चिन्तित थे और इसका उन्हें असह्य कष्ट था। जिसके लिए उन्होंने प्राच्य धर्म शिक्षा केन्द्र व काशी विश्वविद्यालय की स्थापना सन् 1916 में बसन्त पंचमी के दिन काशी के पवित्र गंगा के तट पर तत्कालीन वायसराय लार्ड हार्डिग द्वारा देश के राजा, महाराजा, गणमान्य व्यक्तियों के समक्ष शिलान्यास किया। महामना जी की छात्रो के प्रति विशेष शुभकामना थी **''सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाय विद्यया। देश भक्तयात्मत्यागेन, सम्मानार्हः सवा भव''** अर्थात् विद्यार्थी सत्य, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, विद्या, देशभक्ति, आत्मत्याग गुणों के कारण विश्व में सदा सम्मान प्राप्त करें। 11 मार्च 1931 को विश्वविद्यालय में एक भव्य श्री विश्वनाथ मंदिर का शिलान्यास कार्य, चैत्र कृष्ण अष्टमी बुधवार को तपो निधि श्री कृष्णाश्रम स्वामी जी महाराज के पवित्र कर कमलों द्वारा सम्पन्न कराया गया।

विदेशी सरकार इस विश्वविद्यालय से सदैव आतंकित रहती थी एवं यहाँ के स्नातक, इन्जिनियरों पर उसकी वक्र दृष्टि रहती थी। 1942 के स्वतंत्रता आन्दोलन में अंग्रेजों का ख्याल था कि यहाँ बम बनाने का कारखाना है। उस समय अंग्रेजो ने यहाँ छापा मारकर विश्वविद्यालय को अपने अधिकार में कर लिया था। मालवीय जी कांग्रेस के प्रधान स्तम्भ थे। यद्यपि महात्मा गांधी जी से कई बातों में मालवीय जी का मतैक्य नही था फिर भी गांधी जी उनको अपने बड़े भाई की तरह सम्मान करते थे। पं0 जवाहरलाल नेहरू से मालवीय जी का उसी प्रकार स्नेह था जैसा पिता-पुत्र में होता है। गोलमेज कान्फ्रेस में भाग लेने के लिए गांधी जी और मालवीय जी बाम्बे से लन्दन के लिए 29 अगस्त 1931 को साथ-साथ गये। लन्दन में गोलमेज बैठक के उपरान्त गांधी जी भारत आकर कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के साथ, मालवीय जी को भारत आने के पहले, 2 जनवरी 1932 को सविनय अवज्ञा के लिए 12 सूत्रीय कार्यक्रम निश्चित किया और उसके कारण 4 जनवरी 1932 को प्रातः काल गांधी जी व सरदार पटेल जी को गिरफ्तार कर लिया गया और कांग्रेस और सम्बद्ध संस्थाए गैर कानूनी घोषित कर दी गई और उनकी चल-अचल सम्पत्तियाँ जब्त कर ली गयी। इतना ही नहीं अंग्रेजों द्वारा 4 नये अध्यादेश जारी किये गये जो पहले से और अधिक कड़े, तीव्र और व्यापक थे।

मालवीय जी दिनांक 14 जनवरी 1932 को भारत लौटने पर इन सब बातों को जानने के बाद अत्यन्त दुःखी हुए और उन्होंने उपरोक्त दमन नीतियों को तत्काल त्यागने हेतु वायसराय को पत्र लिख कर अनुरोध किया कि काले कानूनों को वापस लें। परन्तु, वायसराय

* अध्यक्ष-समृद्ध भारत न्यास, महासचिव-प्रो0 एस0 एन0 त्रिपाठी मेमोरियल फाउण्डेशन, 71, कृष्णबाग, नगवा, वाराणसी-221005

ने नहीं सुना और दमन नीति चलती रही। इसके बाद महामना जी ने 29 मई 1932 को अखिल भारतीय स्वदेशी दिवस मनाया और अखिल भारतीय स्वदेशी संघ बनाया।

यहाँ एक बात स्पष्ट है कि जहाँ गांधी जी अंग्रेज सरकार के खिलाफ सविनय अवज्ञा आन्दोलन कर अपना विरोध व्यक्त किया और विदेशी वस्तुओं व आज्ञा का बहिष्कार किया। वहीं महामना जी ने स्वदेशी अपनाओ, अभियान शुरू कर अपना देश, अपनी चीजें और अपने लोगों को बढ़ावा, बल व मजबूती देने हेतु आन्दोलन शुरू किया। सविनय अवज्ञा के घातक परिणाम ऊपर लिखे हैं। जहाँ महामना जी ने उन्हीं अंग्रेंजों से पूर्व में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना 1916 में करायी। कानूनी कार्य मे हिन्दी का उपयोग करवाया व 1932 में भारत के मंत्री सर सामुएल होर ने पार्लियामेण्ट में घोषित किया कि सरकार भारतीयों का सहयोग करेगी। वहीं बापू गांधी के कार्यवाही से भारतीयों के विरूद्ध कठोर कानून बने व कांग्रेस पर प्रतिबंध लगा। फिर भी स्वतंत्रता के मुद्दे पर देश एक था। अंग्रेजों का विरोध, उनके बढ़ते दमनकारी नीतियों से और बढता गया। जिससे उनकी पकड भारत में कमजोर होने लगी। तब उन्होंने भारतीयों को बांटने का कुचक्र शुरू किया और अंग्रेजों ने देश की बागडोर पर अपनी पकड़ कमजोर देखते हुए देश बाँटने, शासन करने के सूत्र को अपनाना शूरू किया। जिसके तहत केन्द्रीय और प्रांतीय लेजिस्लेटिव कौंसिल (विधान परिषदों) के सदस्यों के निर्वाचन में सम्प्रदाय व जाति आधारित वितरण करना शूरू किया। मताधिकार सिद्धान्त व्यापक नहीं रहा, मताधिकार निर्वाचन की शर्तें भिन्न-भिन्न, अपने स्वार्थ हेतु बनाए।

मालवीय जी ने सम्प्रदाय और सम्पति पर आधारित निर्वाचन पद्धति का विरोध किया। 17 अगस्त 1932 को ब्रिटेन के प्रधानमंत्री मेकडोनाल्ड ने साम्प्रदायिक निर्णय Communal award घोषित किया। इसके अन्तर्गत भारतीय निर्वाचकों को मुसलमान, दलित वर्ग, पिछड़ा वर्ग, भारतीय इसाई, सिक्ख, व्यावसायिक और औद्योगिक वर्ग जमींदार, मजदूर आदि वर्ग में विभाजित कर दिया और इस सबके लिए पृथक-पृथक निर्वाचन पद्धति द्वारा पृथक प्रतिनिधित्व की व्यवस्था बना दी।

इसके पूर्व ही 11 मार्च 1932 को जेल से ही गांधी जी ने भारत मंत्री सर सैमुएल को चेतावनी दिया कि यदि पृथक निर्वाचन क्षेत्रों द्वारा हरिजन के प्रतिनिधित्व की व्यवस्था की जाएगी तो वे आमरण अनशन करेंगे।

गांधी जी का मत था कि हरिजनों के लिए पृथक निर्वाचन क्षेत्र करना हिन्दू समाज को विघटित कर देगा। यह हरिजनों के लिए भी हानिकारक होगा गांधी जी ने कहा कि दलित वर्गों के लिए पृथक चुनाव देश की स्थापना में मुझे विष के इंजेक्शन का बोध होता है जो हिन्दू समाज को नष्ट करने के लिए अभिकल्पित है और जो दलित कार्यों का हित करने वाला नहीं है।

17 अगस्त 1932 को साम्प्रदायिक निर्णय घोषित होने के बाद गांधी जी ने 18 अगस्त 1932 को ब्रिटिश प्रधान मंत्री मेकडानल्ड को सुचित किया कि वह 20 सितम्बर को दोपहर से आमरण अनशन करेंगे और यदि ब्रिटिश सरकार साम्प्रदायिक निर्णय Communal award को त्याग देगा तो वह अनशन नहीं करेंगे। परन्तु मेकडोनाल्ड ने गांधी जी की यह बात नहीं मानी। इसके पश्चात् गांधी जी ने 20 सितम्बर 1932 को दिन में 12 बजे अनशन आरम्भ कर दिया। मालवीय जी भी साम्प्रदायिक निर्णय मानने को तैयार नहीं थे परन्तु साम्प्रदायिक निर्णय में एक घटक जिसमें अस्पृश्यता का कलंक हिन्दू समाज पर लगता था, के समाप्ति हेतु एक समझौता हुआ जिसे ''पूना पैक्ट'' के नाम से जानते हैं। इसे अंग्रेंजों ने 26 सितम्बर 1932 को स्वीकार किया तदन्तर गांधी जी ने 26 सितम्बर को प्रातः काल अपना अनशन समाप्त कर दिया। परन्तु सभी सम्प्रदायों में एकता लाने हेतु महामना जी प्रयासरत थे और इलाहाबाद में एकता कान्फ्रेंस का आयोजन हुआ। जिसमें अध्यक्ष कांग्रेस के वायोवृद्ध नेता विजयराधवाचार्य जी रहे जिसके तहत 24 दिसम्बर 1932 को सर्वसम्मति से समझौता पास किया। इस बीच ब्रिटिश मंत्रीमण्डल में भारत मंत्री सर सामुएल ने घोषित कर दिया कि भारत के केन्द्रीय असेम्बली में पृथक निर्वाचन द्वारा मुसलमानों के लिए एक तिहाई स्थान सुरक्षित किये जायेगें। इस घोषणा का मुसलमानों में व्यापक स्वागत हुआ और एकता सम्मेलन के सब निर्णय निरर्थक हो गये और स्पष्ट हो गया कि ब्रिटिश सरकार हिन्दू मुस्लिम एकता नही चाहती थी।

उधर 29 मई 1932 को महामना जी द्वारा अखिल भारतीय स्वदेशी दिवस मनाया गया और इधर 29 मई 1933 को गांधी जी द्वारा हरिजन दिवस मनाया गया। ज्ञात हो कि महामना जी 1923, 1924 में सनातन धर्म सभा के द्वारा कथित अस्यपृश्यता में एकता प्रेम बढ़ाने का कार्य किया और सभी वर्णों और जातियों के हिन्दुओं को मंत्र दीक्षा दिया। महामना जी ने हरिजनोद्धार के निमित्त अन्त्यजोद्धारविधि नाम से एक पुस्तक लिखा।

4 जनवरी 1932 को कांग्रेस पर प्रतिबन्ध होने के बाद भी, परिस्थितियों ने तात्कालिक कांग्रेस अध्यक्षा श्रीमती सरोजनी नायडू ने अन्य कांग्रेस कार्यकर्ताओं से बातचीत करने के बाद निर्णय किया कि शीध्र ही 24 अप्रैल 1932 को दिल्ली में वार्षिक अधिवेशन किया जाए जिसके अध्यक्ष मालवीय जी हों।

यद्यपि इस आन्दोलन को रोकने का अथक प्रयास किया गया परन्तु सम्पूर्ण भारत से दिल्ली में कार्यकर्ता जुटे और अंग्रेजों का प्रतिबन्ध होने के बावजूद भी, दबाव बना। परिणामस्वरूप, भारत मंत्री सर सामुएल होर ने पार्लियामेण्ट में घोषित किया कि सरकार भारतीयों का सहयोग करेगी।

मालवीय जी अपनी योजना और कार्य नीति से बराबर अंग्रेजों पर दबाव बनाते रहे और अंग्रेंजो को आभास होने लगा कि मालवीय

जी संघर्ष पर उतारू हो रहे हैं। 31 मार्च 1933 को कांग्रेस का अधिवेशन कलकत्ता में होना तय हुआ जिसकी अध्यक्षता के लिए भी मालवीय जी ही चुने गये। प्रतिबन्ध कायम होने के कारण अवरोध हुए फिर भी श्रीमती नेल्ली सेन गुप्ता की अध्यक्षता में वार्षिक अधिवेशन सम्पन्न हुआ।

मालवीय जी हर एक बात को बड़ी गहराई, गम्भीरता एवं सावधानी के साथ विचार करने के पश्चात् ही अन्तिम निर्णय पर पहुँचते थे। कांग्रेस के इतिहासकार डॉ0 पट्टाभिसीता रामाय्या ने लिखा है कि सन् 1932, 1933 के संकट काल में मालवीय जी अपने दुर्दमनीय आत्मबल और अपूर्व शक्ति द्वारा कांग्रेस के कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहित और अनुप्राणित करते रहे। संदेह और कठिनाई के अवसरों पर कांग्रेस के कार्यकर्ता मालवीय जी के पास जाते थे और कभी निराश होकर नहीं लौटते थे।

इस बीच गोलमेज कान्फेन्स के तीसरे सत्र द्वारा ब्रिटिश सरकार ने 17 मार्च 1933 को एक श्वेत पत्र प्रकाशित किया। 9 मई 1934 को मालवीय जी ने लाहौर से इस श्वेत पत्र की आलोचना किया। जून 1934 में कांग्रेस कार्य समिति ने ब्रिटिश सरकार के श्वेत पत्र और साम्प्रदायिक निर्णय पर एक प्रस्ताव पास किया। श्वेत पत्र का विरोध किया, परन्तु मेकडोनाल्ड के साम्प्रदायिक निर्णय की, परिस्थितियों को ध्यान में रखते हुए निश्चित किया कि कांग्रेस साम्प्रदायिक निर्णय को न तो मंजूर करती है और न रद्द करती है।

मालवीय जी को कांग्रेस कार्यकारिणी समिति के जून 1934 का निर्णय पसन्द नहीं था। वे चाहते थे कि कांग्रेस ब्रिटिश प्रधानमंत्री के साम्प्रदायिक निर्णय को स्पष्ट शब्दों में रद्द करे और उसकी घोषणा करें।

कांग्रेस का नेतृत्व मालवीय जी के इच्छानुसार अपने निर्णय को परिर्वतन करने हेतु तैयार नहीं था। जो मालवीय जी के लिए एक असहनीय चोट थी क्योंकि वह जानते थे कि अंग्रेजों द्वारा थोपा गया साम्प्रदायिक निर्णय किसी भी प्रकार से हिन्दु समाज के लिए लाभकारी नही था और जिसके विरूद्ध में गांधी जी ने भी कहा था कि ''यह विष के समान इन्जेक्शन है''। ऐसे परिस्थितियों में मालवीय जी ने तात्कालिक कांग्रेस पार्लियामेन्ट बोर्ड से और उनके सहयोगी एम0 एस0 अणे ने कांग्रेस कार्यकारिणी समिति से त्याग पत्र दे दिया। दोनों ने ही निर्णय व निश्चय किया कि राष्ट्रहित को ध्यान में रखते हुए साम्प्रदायिक निर्णय का जोरदार विरोध तुरन्त आरम्भ कर देना चाहिए।

18 और 19 अगस्त 1934 को कलकत्ता में मालवीय जी की अध्यक्षता में आयोजित राष्ट्रवादियों की सभा में ''कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी'' बनाने का निश्चय किया गया। इस पार्टी की आवश्यकता क्यों हुई इसका स्पष्टीकरण देते हुए मालवीय जी ने एक विस्तृत वक्तव्य प्रकाशित किया जिसमें उन्होंने बताया कि-

1. कांग्रेस पार्लियामेन्टरी बोर्ड की सदस्यता से उनके त्यागपत्र का यह आशय नहीं है कि उन्होंने कोंग्रेस से चिरकाल के लिए एकदम सम्बन्ध त्याग दिया है। कांग्रेस से सांप्रदायिक निर्णय के अतिरिक्त और किसी बात में उनका मतभेद नहीं है।
2. कांग्रेस की कार्यकारिणी समिति तथा पार्लियामेंटरी बोर्ड ने इस साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में जिस नीति को स्वीकार किया है, कांग्रेस की उस नीति और सिद्धान्त के सर्वथा प्रतिकूल है जिसका पालन और पोषण कांग्रेस अपने जन्म-दिन से कर रही है। यह नीति अवश्य ही देश के कल्याण के लिए 'घोर घातक' और 'विशेषतः हिन्दुओं के लिए दोषपूर्ण और अग्राह्य'' है।
3. जिस दल को वे संघटित करना चाहते हैं वह केवल राष्ट्रीय भाव के आधार पर काम करेगा, और उस प्रयत्न को सर्वथा साथ देगा जो साम्प्रदायिक प्रश्न का सर्वसम्मत निर्णय करने के लिए प्रयत्नशील रहेगा।
4. उनका दल 'नेहरू रिपोर्ट' की संस्तुतियों का समर्थन करता है और वह साम्प्रदायिक प्रश्न पर बातचीत के समय जुलाई सन् 1931 की कांग्रेस की उस योजना पर काम करेगा जिसे महात्मा गांधी ने गोलमेज कान्फरेन्स के सामने रखा था और जिसका समर्थन राष्ट्रीय विचार के देश के सभी मुसलमानों ने किया था।

महामना जी ने 26 से 28 अक्टूबर 1934 में कांग्रेस के अधिवेशन में बोला कि साम्प्रदायिक निर्णय के सम्बन्ध में कांग्रेस की अनिश्चित धारणा का अन्तिम परिणाम उसकी परोक्ष स्वीकृति ही होगी परन्तु समर्थन और विरोध के बीच अन्त में कांग्रेस ने साम्प्रदायिक निर्णय को न स्वीकार किया और न ही रद्द किया।

बहुत से लोगों ने मालवीय जी का समर्थन किया। कई व्यक्तियों ने कड़ा विरोध किया। अन्त में कांग्रेस ने भारी बहुमत से मूल प्रस्ताव को स्वीकार कर लिया जिसमें कहा गया था कि कांग्रेस उस समय तक जब तक मतभेद बना रहता है, साम्प्रदायिक निर्णय को नही स्वीकार कर सकती है, न रद्द कर सकती है।

सरदार पटेल ने मालवीय जी से अनुरोध किया कि वे कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी को विघटित कर दें, परन्तु वे उसके लिए सहमत नहीं हुए। उन्होंने स्पष्ट कर दिया कि साम्प्रदायिक निर्णय के विरूद्ध उनका अभियान जारी रहेगा। नेशनलिस्ट पार्टी का गठन करते समय ही गांधी जी की सलाह मालवीय जी ने मान ली थी कि वे कांग्रेस से अलग न हो, परन्तु साम्प्रदायिक निर्णय के विरूद्ध कार्य कर सकते हैं और उसे निरस्त करने के लिए प्रयत्न कर सकते हैं।

कांग्रेस के बम्बई अधिवेशन के बाद ही केन्द्रीय असेम्बली के सदस्यों का चुनाव था। बिहार, संयुक्त प्रान्त, पंजाब, महाराष्ट्र के बहुत से कांग्रेस कार्यकर्ता साम्प्रदायिक निर्णय पर मालवीय जी के विचार का ही समर्थन करते थे। परन्तु इन प्रान्तों में कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी का संघटित करने के लिए समय नहीं था। केवल बंगाल में ही उस समय तक मालवीय जी अपनी पार्टी का संघटन कर पाये थे। वहाँ उनकी पार्टी का चुनावों में अच्छी सफलता प्राप्त हुई। कुल मिलाकर कांग्रेस

पार्टी को 44 स्थान प्राप्त हुए। कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी 11 स्थान पर विजयी रही। चुनाव के बाद भी साम्प्रदायिक निर्णय के विरूद्ध मालवीय जी का प्रचार जारी रहा। मालवीय जी के प्रेरणा से 23-24 फरवरी 1935 को दिल्ली में साम्प्रदायिक निर्णय के विरूद्ध एक सम्मेलन आयोजित हुआ। इस प्रकार पूरे वर्ष देश में साम्प्रदायिक निर्णय के विरूद्ध तीव्रता से कार्य हो रहे थे।

अन्त में मालवीय जी की प्रेरणा से 23-24 फरवरी 1935 को दिल्ली में साम्प्रदायिक निर्णय के विरूद्ध एक सम्मेलन आयोजित हुआ। 1937 में विधान सभाओं का चुनाव होना था। 14-16-1936 तक जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में हुई कांग्रेस के वार्षिक अधिवेशन में निश्चय हुआ कि कांग्रेस अधिक से अधिक संख्या में जीत कर आये।

अगस्त 1936 में कांगेस का चुनाव घोषणा पत्र प्रकाशित कर दिया गया, जिसमें साम्प्रदायिक निर्णय को देश के छिन्न-भिन्न करने वाला और घातक शक्तियाँ पैदा करने वाला बताया गया था। कहा गया कि इस निर्णय से आर्थिक विकास रूक जायेगा और समाज की प्रगति कुन्द हो जाएगी। राष्ट्रीय विकास में बाधा उपस्थित होगी और हिन्दुस्तान की एकता पर कुठराघात होगा। इससे हिन्दुस्तान के किसी सम्प्रदाय या जाति को कोई वास्तविक लाभ नहीं होगा। इसका अन्तिम परिणाम उस जाति के लिए भी हानिकारक होगा जिसके लाभ के ख्याल से यह बनाया जा रहा है। इससे तीसरे दल को लाभ होगा जो हम पर शासन कर रहा है और हमे लूट रहा है।

आगे चलकर घोषणा पत्र में यह भी कहा गया- ''इस साम्प्रदायिक निर्णय से जो स्थिति पैदा हो गयी है, उसका उचित ढंग से मुकाबला करने के लिए हमें स्वाधीनता के संग्राम को और भी संगीन बनाना चाहिए और साथ ही साथ इस समस्या को सुलझाने के लिए कोई उपाय ढूँढ़ निकालना चाहिए जो सभी जातियों और सम्प्रदायों को कबूल हो, और जिससे भारत की एकता की नींव मजबूत हो''। कांग्रेस ने यह भी स्पष्ट कर दिया कि उसके सदस्य साम्प्रदायिक निर्णय के विरूद्ध आवश्यक होने पर वोट करेंगे।

कांग्रेस की यह घोषणा मालवीय जी की महत्त्वपूर्ण विजय थी। कांग्रेस और कांग्रेस नेशनलिस्ट पार्टी के बीच केवल साम्प्रदायिक निर्णय के प्रश्न पर ही मतभेद था। अब वह मतभेद दूर हो गया। केन्द्रींय असेम्बली में नेशनलिस्ट पार्टी साम्प्रदायिक निर्णय के प्रश्न को छोड़कर और सब मामलों में कांग्रेस के साथ ही थी।

1936 में गांधी जी के कहने पर महाराष्ट्र के खानदेश जिले में फैजपुर स्थान पर कांग्रेस का वार्षिक अधिवेशन हुआ। वहाँ भी महामना ने सारगर्भित भाषण दिया, जब कि वह बीमार थे। उन्होंने कहा कि ''क्या कोई भी भारतीय ऐसा है, जिसका हृदय भारत की दुर्दशा देखकर बार-बार न रोता हो? सामर्थ्य और बुद्धि रखते हुए भी हम लोग अंग्रेजों के गुलाम हैं, क्या हमें लज्जा नहीं आती? हम ब्रिटेन से मित्रता चाहते हैं। यदि ब्रिटेन हमारी मित्रता चाहता है, तो हम तैयार हैं, किन्तु यदि वह हमें अपने अधीन रखना चाहता है, तो हम उसकी मित्रता नहीं चाहते। आप स्मरण रखें कि जब तक अंग्रेज आप से डरेंगे नहीं, तब तक यहाँ से नही भागेंगे। अपनी कायरता को दूर भगा दो, बहादुर बनों और प्रतिज्ञा करों कि आजाद होकर ही हम दम लेंगे। ''और फिर कहा मैं पचास वर्ष से कांग्रेस के साथ हूँ। संभव है, मैं बहुत दिन तक न जीऊँ और अपने जीवन में यह कलंक लेकर मरूं कि भारत अभी भी पराधीन है। फिर भी मैं आशा कर सकता हूँ कि मैं इस भारत को स्वतंत्र देख सकूंगा''।

फैंजपुर कांग्रेस अधिवेशन के समय मालवीय जी अपने जीवन के छिहत्तरवें वर्ष में प्रवेश कर चुके थे। इसी के साथ उन्होंने सक्रिय राजनीति से छुट्टी ले ली। परन्तु अनेक सामाजिक और धार्मिक संस्थाओं के संचालन की चिन्ता तो उन्हे बनी ही रही।

◆

महामना दर्शन एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय

डॉ. सुमन जैन *

भारत को अभिमान तुम्हारा, तुम भारत के अभिमानी !
पूज्य पुरोहित थे हम सबके, रहे सदैव समाधानी !
तुम्हें कुशल याचक कहते हैं किन्तु कौन तुम सा दानी !
अक्षय शिक्षा-सत्र तुम्हारा हे ब्राह्मण-ब्रह्मज्ञानी ![1]

अनन्य देशभक्त, अनुपम समाज सुधारक, कर्मठ हिन्दी सेवक, क्रान्तिदर्शी शिक्षा विशारद और विश्वप्रसिद्ध काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक महामना मालवीयजी का जन्म पौष कृष्ण अष्टमी, बुधवार, विक्रमी संवत् 1918 अर्थात् 25 दिसम्बर 1861 को प्रयाग के एक सुशिक्षित मध्यवर्गीय सनातनी परिवार में हुआ था। आपके पिता पंडित ब्रजनाथजी मालव के गौड़ ब्राह्मण थे। संस्कृत और हिन्दी के विख्यात विद्वान। गीता, भागवत, महाभारत और रामायण की व्याख्या करने में वे निपुण थे। अतः मालवीयजी को संस्कृत, हिन्दी का ज्ञान पिता से धरोहर के रूप में प्राप्त हुआ। माता मूनादेवीजी सरलता, वात्सल्य की प्रतिमूर्ति थीं। दीन-दुःखी के प्रति उनकी शीलता अनुपम थी।

पाँच वर्ष की उम्र में बालक मदनमोहन ने अपनी बुनियादी शिक्षा प्रारंभ की। उनका नाम स्थानीय 'धर्मज्ञानोपदेश पाठशाला' में लिखा दिया गया। यह पाठशाला मूल्य और नैतिकता के प्रति समर्पित है। वहाँ विद्यार्थियों को नित्य ही मनुस्मृति, गीता एवं नीति के श्लोक कंठस्थ कराये जाते थे। महामना ने श्लोक नीति पाठ को अपना मूलधन माना है।

उन्होंने लिखा है- ''मुझे कुछ श्लोक और स्तोत्र पिताजी ने याद करा दिये थे और कुछ गुरु हरदेवजी की पाठशाला में याद हो गये थे। आज तक हमारी मूलधन पूँजी वही है।''

पाठशाला के प्रधानाचार्य पं. देवकीनन्दनजी एक बार सन् 1869 में माघ मेले के अवसर पर मदन मोहन मालवीय को तीर्थयात्रियों के बीच ले गये और उनको कुछ बोलने का आदेश दिया। मदन मोहन ने पूरी तन्मयता के साथ घंटा भर संस्कृत श्लोकों का पाठ किया। महामना का यह प्रथम सार्वजनिक वक्तव्य था, जिसकी प्रशंसा चारों ओर हुई।

बालक मालवीयजी को 7 वर्ष की अवस्था में अंग्रेजी माध्यम की शिक्षा के लिए उन्हें स्थानीय जिला हाईस्कूल में भेजा गया। यहाँ चौथी कक्षा में आपकी भर्ती हुई। आपकी संस्कृत शिक्षा भी जारी रही। जिला स्कूल फीस तो नाम मात्र की थी परन्तु उसे भी भरने के लिए घर के बजट से कटौती करनी पड़ती थी। एक बार तो पैसे के अभाव में पुत्र शिक्षा से वंचित न हो इसलिए माता मूनादेवी ने अपने कंगन गिरवी रखे। इस घटना का मालवीयजी पर गहरा प्रभाव पड़ा। महामना गरीब विद्यार्थियों की बहुत मदद करते थे। इसका कारण बताते हुए वे कहते थे।

''मैं गरीब माता-पिता का पुत्र हूँ, इससे गरीब विद्यार्थियों के कष्ट को समझता हूँ। जिनके माता-पिता की मासिक आय तीन-चार रुपये भी न हो वे विश्वविद्यालय की लम्बी फीस न दे सकने के कारण विद्या से वंचित हो जाये, यह बात मुझे बड़ी पीड़ा पहुँचाती है।''

बालक मालवीय घर में अध्ययन हेतु स्थान की कमी होने पर बस्ता और लालटेन लेकर घर से कुछ दूर सोहनलाल की बगिया में चले जाते थे। अध्ययन के बाद मालवीय जी कभी-कभी वहीं सो जाते और सुबह घर आते थे।

8 वर्ष की अवस्था में आपका यज्ञोपवीत संस्कार हुआ। पिता ने गायत्री मंत्र की दीक्षा दी। धार्मिक भावों की ओर मालवीयजी का झुकाव बपचन से ही था। स्कूल जाने से पहले रोज हनुमानजी का दर्शन करने जाते और यह श्लोक नियम से पढ़ते

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्।
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि।।[2]

बालक मालवीय बचपन से ही आचार-विचार, रहन-सहन, एवं खान-पान में काफी संयमी रहे।

युवा काल से आपने एक विशेष वेशभूषा अपनायी। वह आजीवन बनी रही। महामना ने जीवन में कभी कोई नशा नहीं किया, चाय तक कभी नहीं ली। सन् 1913 में विद्यार्थियों को सम्बोधित करते हुए कहा था

''मनुष्य को परमात्मा ने सबसे बड़ी वस्तु बुद्धि दी है। जो वस्तु बुद्धि को मैला करती है, या सुमति हर लेती है, उसको मादक, अर्थात् नशीली वस्तु कहते हैं। मनुष्य के लिए उचित है कि किसी प्रकार का नशीला पदार्थ कभी ग्रहण न करें।

सन् 1878 में प्रवेश परीक्षा उत्तीर्ण कर मालवीयजी ने उच्च शिक्षा के लिए स्थानीय म्योर सेन्ट्रल कालेज, इलाहाबाद में प्रवेश लिया। यहाँ इण्टरमीडिएट, बी.ए. उत्तीर्ण कर सन् 1811 में एल.एल.बी. में प्रवेश लिया। फ्रेन्ड्स डिबेटिंग सोसायटी में आपने पहला भाषण अंग्रेजी में दिया। प्रिन्सिपल ने आपके भाषण से प्रभावित होकर फीस माफ की और एक मासिक वजीफा भी देना आरम्भ कर दिया। कॉलेज में शिक्षा लेते समय मालवीयजी छुट्टियों में संस्कृत पढ़ने अपने एक चाचा पंडित गदाधर जी के पास मिरजापुर चले जाते थे।

महामनाजी की स्मरण शक्ति बचपन से ही अत्यन्त तीव्र थी, जो जीवन भर रही। तीव्र मेधा और अनुपम धारणा शक्ति के कारण ही आप देश के महानतम वक्ता कहलाए। डॉ. राधाकृष्णन ने मालवीयजी के लिए कहा—''He was the greatest orator in both hindi and english.''

* एसो. प्रोफेसर, हिन्दी विभाग, महिला महाविद्यालय, **काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-5**

सन् 1919 में रोलेट एक्ट के खिलाफ शिमला कौन्सिल में मालवीयजी ने तीन दिन तक भाषण दिया था। जनरल डायर के लोमहर्षक अत्याचारों पर आपका भाषण इतना मार्मिक था कि भाषण के बीच में सरकारी सदस्य भी रो पड़े थे। दर्शन दीर्घा में बैठ विदेशी पत्रकारों ने रिपोर्टिंग की थी -

''एक व्यक्ति जो न तो अंग्रेज है और न जिसकी भाषा अंग्रेजी है, वह बिना किसी तैयारी के और अपनी बात को बिना दुहराये, इतनी गहराई और विस्तार के साथ अंग्रेजी में लगातार इतना लम्बा भाषण दे सकता है। आश्चर्य है इसकी स्मृति मेधा पर।''

महामनाजी की अंग्रेजी और हिन्दी दोनों भाषाओं पर गहरी पकड़ थी। आप इन दोनों भाषाओं में धाराप्रवाह बोलते थे। यह असाधारण क्षमता आपको युवा काल में ही प्राप्त हो चुकी थी।

महामना के भाषण से प्रभावित होकर ही विद्वान् पंडित नन्दराम जी ने अपनी कन्या कुन्दन देवी का विवाह सन् 1878 में आपके साथ कर दिया।

मालवीयजी की अपने माता-पिता एवं गुरु के प्रति असीम भक्ति थी। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय स्थित मालवीय भवन के अपने शयन कक्ष के सामने अपने माता-पिता, गुरु पं. ब्रजनाथ जी व्यास और गुरु पं. आदित्यराम भट्टाचार्य के चित्र निश्चित स्थान पर लगा रखे थे। वे कहते थे- ''हमारे माता-पिता बड़े धर्मात्मा, पवित्र और निःस्वार्थ ब्राह्मण थे, उन्हीं के प्रसाद से मैं इतना काम कर सका हूँ।''[3]

स्नातक होने के बाद मालवीयजी अपना पूरा समय धर्म-प्रचार और देश-सेवा में लगा देना चाहते थे लेकिन परिवार की आर्थिक स्थिति उसके अनुकूल नहीं थी। जिस गवर्नमेन्ट हाईस्कूल से मालवीयजी ने शिक्षा ग्रहण की थी, उसमें उन दिनों अध्यापक की जगह खाली हुई। पहले तो उन्होंने नौकरी के लिए मना कर दिया परन्तु माता की डबडबाई दृष्टि देखी तो मना न कर सके। महामना ने कहा- ''आज तक माँ की वह डबडबाई आँखें मेरे हृदय में धँसी हुई हैं। मैंने कहा—माँ मुझसे कुछ मत कहो। मैं नौकरी कर लूँगा।''

जुलाई सन् 1885 में महामना ने जिला हाईस्कूल में अंग्रेजी अध्यापक का दायित्त्व स्वीकार कर लिया। उन्हें 40 रुपये माहवार मिलते थे। उन्होंने लिखा है—''मैं बड़े प्रेम तथा परिश्रम से अंग्रेजी पढ़ाने लगा। मैं ग्रंथों से नये-नये ज्ञान का अर्जन करता और उन्हें अपने छात्रों में बाँट देता था। बड़ा सुखद था हमारा अध्यापकीय जीवन।''

दिसम्बर सन् 1886 में कलकत्ता में आयोजित काँग्रेस के द्वितीय अधिवेशन में देश की राजनीति में मालवीयजी की माँग और सक्रियता काफी बढ़ गई।

अध्यापन के बाद मालवीयजी ने पत्रकारिता के क्षेत्र में कदम रखा। कालाकांकर से निकलने वाले हिन्दी दैनिक 'हिन्दोस्थान पत्रिका' के आप प्रथम संपादक रहे। यह पत्र पहले अंग्रेजी में सन् 1883 में इंग्लैण्ड से निकलना शुरू हुआ था। सन् 1886 से इसका साप्ताहिक हिन्दी संस्करण भारत से निकला। आपके प्रयत्न से 'हिन्दुस्तान' चमक उठा प्रतियों की संख्या बढ़ गयी।

हिन्दुस्तान के बाद 'इण्डियन ओपिनियन' के सह संपादक रहे। 'अभ्युदय' और 'लीडर' के आरम्भिक संपादक भी मालवीयजी रहे। 'अभ्युदय' सन् 1915 से दैनिक बना और 1948 तक निकलता रहा। सन् 1919 में इसकी 11 हजार प्रतियाँ निकलती थीं। राजर्षि पुरुषोत्तम दास टंडन, सत्यानन्द जोशी, कृष्णकान्त मालवीय, गणेश शंकर विद्यार्थी, वेंकटेश नारायण तिवारी और पंडित पद्मकान्त मालवीय इसके अन्य संपादकों में रहे। 'लीडर' के लिए महामना की संपादकीय टीम में नागेन्द्रनाथ गुप्त, सी.वाई. चिन्तामणि आदि थे। सन् 1927 में इसकी 30 हजार प्रतियाँ निकलती थीं।

मर्यादा, हिन्दुस्तान टाइम्स, सनातन धर्म जैसी अनेक पत्र-पत्रिकाओं का संपादन करते हुए आपने संपादन कला को समृद्ध किया। पत्रकारिता आपके लिए एक मिशन थी।

महामना ने एक वर्ष तक जिला कचहरी में प्रैक्टिस करने के बाद सन् 1892 में हाईकोर्ट इलाहाबाद से वकालत आरम्भ की। आप एक कुशल वकील के रूप में विख्यात हुए। यदि आप एकनिष्ठ होकर इस पेशे में लगे रहते तो देश के सर्वाधिक वैभवशाली विधिवेत्ताओं में आपकी गिनती होती किन्तु आपने अपना जीवन राष्ट्र के नाम समर्पित कर दिया।

4 फरवरी सन् 1922 के चौरी चौरा काण्ड के अभियुक्तों के पक्ष में जिरह कर आप ने 156 लोगों को फाँसी के फंदे से बचाया। महामना के वकालत की कुछ खास विशेषतायें थीं। गरीबों के केस या सार्वजनिक हित के मामलों में फीस न लेना। ऐसा केस हाथ में न लेना, जिसमें झूठ बोलना पडे। हमेशा सफेद गाउन धारण करना। विधिवेत्ता सर तेज बहादुर सप्रू के अनुसार—

''वकालत में मालवीयजी तीव्र मेधा वाले वकील के रूप में प्रसिद्ध थे।'' सन् 1901 से 1916 तक आप म्युनिसपैलिटी में क्रमशः सदस्य, उपाध्यक्ष, अध्यक्ष पद पर सक्रिय रहे।

महामना मालवीय स्वदेशी आन्दोलन के अग्रणी नेताओं में थे। आपने जीवन भर विदेशी वस्त्र धारण नहीं किये। उन दिनों मालवीयजी की एक सार्वजनिक अपील हुआ करती थी—

वस्त्रहि के कारण बढ़ौ इहाँ विदेशी राज।
तजो विदेशी वस्त्र को जो तुम चहो स्वराज।।[4]

सन् 1906 में प्रयाग संगम पर आयोजित सनातन धर्म महासभा सम्मेलन में महामना ने प्रत्येक स्त्री-पुरुष से देश में स्वतंत्रता और समृद्धि के लिए अपने हाथ से बने खद्दर के वस्त्र पहनने की अपील की।

सन् 1932 में मालवीयजी ने 'अखिल भारतीय स्वदेशी संघ काशी' की स्थापना कर आन्दोलन को और तेज किया। स्वदेशी महामना के लिए कोई नारा नहीं बल्कि देश के सर्वतोमुखी विकास का एक स्वप्न था।

14 वर्ष के युवा काल में भारतेन्दु मण्डली के एक सशक्त कवि के रूप में प्रतिष्ठित मालवीयजी ने हिन्दी भाषा लिपि के संरक्षण और संवर्धन हेतु सन् 1848 में 'हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि सभा' का गठन किया। यही आगे चलकर सन् 1893 में 'काशी नागरी प्रचारिणी सभा' का अधिष्ठान बनी।

महामना ने सन् 1900 में देश की सेवा प्रतियोगिता परीक्षाओं में हिन्दी माध्यम से परीक्षाएँ लिये जाने की माँग सरकार से की थी, जो स्वीकृत हुई। विविध साहित्य सम्मेलनों के आप अध्यक्ष, सभापति रहे।

कांग्रेस को बनाने-बढ़ाने वालों में महामना का नाम विशेष आदर से लिया जाता है। कांग्रेस से उनका संबन्ध जीवन भर रहा। डॉ. पट्टाभिसीतारमैया के अनुसार - ''सन् 1932-33 के संकटकाल में मालवीयजी अपने आत्मबल और अपूर्व शक्ति द्वारा कांग्रेस के कार्यकर्ताओं को प्रोत्साहित-अनुप्राणित करते रहे।

असहयोग आन्दोलन की विफलता के बाद सन् 1921 में गाँधी जी ने दिल्ली में मौलाना मुहम्मद अली के घर पर 21 दिन का उपवास किया। उस समय मालवीयजी ने गाँधीजी को एक सप्ताह तक भागवत कथा सुनाई थी। पूरा देश इस समाचार से चकित था।

29 अगस्त सन् 1931 द्वितीय गोलमेज सम्मेलन में भाग लेने हेतु आपने गाँधीजी और सरोजनी नायडू के साथ लंदन प्रस्थान किया। भारत की राजनैतिक और संवैधानिक मामलों पर वार्ता के लिए आहूत इस ऐतिहासिक बैठक में कोई ठोस नतीजे नहीं निकल सके। महामना ने संतप्त हृदय से कहा- ''यहाँ भारत की समस्या पूरी तरह नहीं समझी गई। हम भारतीय जनता की दयनीय दशा से तब तक नहीं उबर सकते, जब तक हमारे हाथ में प्रबन्धन का अधिकार न हो।''

महामना ने जीवन भर हिन्दू-मुस्लिम एकता के प्रयास किये। सन् 1935-36 में जिस समय काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में मात्र 7-8 मुस्लिम विद्यार्थी थे, मुस्लिम त्यौहारों पर अवकाश की घोषणा महामना ने ही किया था। वे सभी धर्मों का आदर करते थे। सितम्बर सन् 1922 में मुल्तान में भयंकर दंगा हुआ। हृदय विदारक दृश्य देखकर मालवीय जी फूट-फूटकर रो पड़े। उन्होंने कहा-

''सब अत्याचारी धर्महीन और नास्तिक हैं।''

सरकारी संरक्षण में ईसाई मिशनरियों द्वारा किये जा रहे हिन्दू धर्म परिवर्तन और हिन्दू धर्म संस्कृति के उपहास से उनका मन विचलित था। इसलिए उन्होंने हिन्दुत्त्व संगठन और सांस्कृतिक नवजागरण का कार्य किया। मध्य हिन्दू समाज, भारत धर्म महामण्डल निगमागम मण्डली, सनातन धर्म महासभा, हिन्दू महासभा जैसे महत्त्वपूर्ण संगठन बनाये। समाज के हाशिये पर उपेक्षित अन्त्यज वर्ग को समाज की मुख्य धारा से जोड़ने के लिए मालवीयजी ने सन् 1921 में 'अन्त्यजोद्धार सभा' का गठन कर मंत्र दीक्षा का अभिनव प्रयोग किया। 25 दिसम्बर सन् 1932 में बम्बई में आपने अन्त्यजोद्धार सभा की अध्यक्षता की। अछूतों ने, उन्हें चन्दन लगाया और माला पहनाई। उक्त सभा में अस्पृश्यता निवारण के कई प्रस्ताव पास किये गये।

महामना का गोरक्षा आन्दोलन धार्मिक, आर्थिक एवं स्वास्थ्य तीनों कारणों से प्रेरित था। विद्यार्थियों के लिए आपका संदेश था

दूध पियो कसरत करो, नित्य जपो हरिनाम।
मन लगाय विद्या पढ़ो, पूरेंगे सब काम॥[5]

स्त्री शक्ति और सुरक्षा को लेकर उनके विचार सर्वदा प्रासंगिक रहेंगे। उनका कहना था- ''मैं चाहता हूँ हमारे देश की सभी स्त्रियाँ अंग्रेज महिलाओं की भाँति पिस्तौल और बन्दूक रखें और चलाना भी सीखें ताकि वे किसी भी आक्रमण में अपने सतीत्व की रक्षा कर सकें।'' महामनाजी स्त्री शिक्षा को पुरुष शिक्षा से भी ज्यादा महत्त्वपूर्ण मानते थे। इसके लिए उन्होंने प्रयाग में 'गौरी पाठशाला' और काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में 'महिला महाविद्यालय' की स्थापना किया।[6]

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय महामना की अनुपम एवं महान कृति है। इसकी स्थापना के लिए मालवीयजी ने सन् 1884 में ही संकल्प ले लिया था। 4 फरवरी सन् 1916 को तत्कालीन वायसराय लॉर्ड हार्डिंग ने इसका शिलान्यास किया। 1 अप्रैल सन् 1916 से बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी ऐक्ट काम करने लगा। विद्यार्थियों के लिए महामना का दिया हुआ यह संदेश स्मरणीय है

हिन्दू विश्वविद्यालय की यह फैली हुई भूमि, यह मखमली दूब से भरे सुहावने बड़े-बड़े खेल के मैदान, स्वच्छन्द उन्मुक्त वायु, माँ पतित पावनी गंगा का पुनीत पावन तट, संसार में कहीं ऐसा दूसरा स्थान तुम्हारे लिए नहीं, यहाँ के पवित्र वातावरण से हृदय पवित्र हो जाता है। महामना ने एक ऐसे विश्वविद्यालय का स्वप्न साकार किया जहाँ संस्कृत, ज्योतिष, हिन्दू धर्म-दर्शन के अलावा विज्ञान और प्रौद्यौगिकी सहित आधुनिक विषयों का अध्ययन-अध्यापन और शोध किया जा सके। महामना ने सन् 1929 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के दीक्षान्त भाषण में कहा- ''इस विश्वविद्यालय का आदर्श एक ऐसे शिक्षा केन्द्र के निर्माण से था जहाँ भारतवर्ष के प्राचीन गुरुकुल तक्षशिला तथा नालन्दा के उन विश्वविद्यालयों की उच्चतम प्रणाली का पुनरुत्थान किया जा सके, जिनमें हिन्दू महात्माओं ने दस हजार विद्यार्थियों को एक ही साथ पढ़ाया तथा भोजन दिया था और जहाँ वर्तमान पश्चिमी विश्वविद्यालयों की श्रेष्ठतम संस्कृति तथा प्रणाली के अनुकरण के साथ-साथ कला, विज्ञान और शिल्पादि कला संबन्धी उच्चतम शिक्षा का भी सुन्दर संयोग है।''

इस प्रकार विश्वविद्यालय के निम्नांकित ध्येयों की रचना हुई —

1. हिन्दू शास्त्र तथा संस्कृत भाषा के अध्ययन की वृद्धि, जिसके द्वारा भारतवर्ष की प्राचीन सभ्यता में जो कुछ भी श्रेष्ठ और महत्त्वपूर्ण था उसकी तथा हिन्दुओं की प्राचीन संस्कृति तथा भावनाओं की रक्षा और मुख्यतः हिन्दुओं में और सार्वजनिक रूप से सर्वसाधारण में उसका प्रचार हो सके।
2. कला और विज्ञान की सर्वतोमुखी शिक्षा तथा अन्वेषण की वृद्धि।
3. आवश्यक प्रयोगात्मक ज्ञान के साथ-साथ विज्ञान शिल्पादि कला

कौशल तथा व्यवसाय संबन्धी ऐसे ज्ञान की वृद्धि, जिससे देशीय व्यवसाय तथा धन्धों की उन्नति हो।

4. धर्म और नीति को शिक्षा का आवश्यक अंग मानकर युवकों में सदाचार का संघटन या चरित्र निर्माण का विकास करना।

ऐसे श्रेष्ठ विश्वविद्यालय के लिए उन्होंने काशी को चुना। संयोग से शिक्षा के प्रति समर्पित शिक्षाविद् समाजसेविका डॉ. एनी बेसेण्ट से उनकी मुलाकात हुई। उनके सहयोग से सन् 1916 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की गई।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय सर्वविद्या की स्थली है। यहाँ प्राच्यविद्या, कला, सामाजिक विज्ञान, संगीत, फाइन आर्ट से लेकर प्रोद्यौगिकी और मेडिकल की शिक्षा उपलब्ध है। विश्वविद्यालय में प्रोद्यौगिकी, चिकित्सा विज्ञान, कृषि विज्ञान, पर्यावरण एवं संपोष्य विकास नाम से चार संस्थान हैं। परिसर में ही पन्द्रह संकाय, महिला महाविद्यालय व मालवीय शिशु विहार है। डी.ए.वी. पी.जी. कॉलेज, बसंत कन्या महाविद्यालय (कमच्छा), वसंत कॉलेज राजघाट व आर्य महिला पी.जी. कॉलेज, सेन्ट्रल हिन्दू ब्वायज स्कूल, सेन्ट्रल हिन्दू गर्ल्स स्कूल, रणवीर संस्कृत विद्यालय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से सम्बद्ध हैं।

समय की माँग को देखते हुए विश्वविद्यालय में विविध संकायों की स्थापना होती चली जा रही है। कला संकाय पहले सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज के नाम से जाना जाता था। संस्कृत कॉलेज अथवा वर्तमान में संस्कृत विद्या धर्म विज्ञान संकाय व शिक्षा संकाय में सन् 1918 में पढ़ाई प्रारंभ हुई। बनारस इंजीनियरिंग कॉलेज (बेंको) की स्थापना सन् 1919 में हुई थी। सन् 1923 में कॉलेज ऑफ माइनिंग एण्ड मेटलर्जी (मिनमेट) व सन् 1932 में कॉलेज ऑफ टेक्नोलॉजी (टेक्नो) की स्थापना हुई। सन् 1968 में बेंको, मिनमेट व टेक्नो को मिलाकर आई.टी बनाया गया और सन् 1971 से जेईई के माध्यम से बी.टेक में प्रवेश लिया जाता है।

लॉ स्कूल की स्थापना सन् 1921 में व सामाजिक विज्ञान संकाय की स्थापना सन् 1971 में हुई थी। सन् 1950 में कॉलेज ऑफ म्यूज़िक एण्ड फाइन आर्ट्स की स्थापना हुई जो बाद में मंचकला संकाय और दृश्यकला संकाय के रूप में दो विभागों में विभक्त हुआ। सन् 1960 में वाणिज्य संकाय बना तो सन् 1968 में प्रबन्ध संकाय की स्थापना हुई। सन् 1918 में आयुर्वेद का अध्ययन-अध्यापन शुरू हुआ। सन् 1928 में सर सुन्दरलाल चिकित्सालय की स्थापना हुई। जिसमें 1200 बिस्तरयुक्त चिकित्सालय है, जो पूर्वांचल के साथ आस-पास के प्रदेशों की 20 करोड़ जनसंख्या को उच्च चिकित्सा सुविधा मुहैया कराता है। सन् 1960 में आधुनिक चिकित्सा महाविद्यालय बना, जो सन् 1971 में चिकित्सा विज्ञान संस्थान के रूप में उच्चीकृत किया गया। परिसर में अन्तर्राष्ट्रीय स्तर का संग्रहालय भारत कला भवन भी है। विश्वविद्यालय में इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय का क्षेत्रीय केन्द्र भी है। परिसर में मालवीय भवन, मानव मूल्य अनुशीलन केन्द्र भी स्थित है, जहाँ उच्चस्तरीय माननीय मूल्यों का पठन-पाठन की कार्यशाला, योग का प्रशिक्षण भी शिक्षकों, विद्यार्थियों को दिया जाता है। बनारस के अगल-बगल में रोजगार और शिक्षण के अवसर बढ़े इसलिए मिर्जापुर में राजीव गाँधी दक्षिणी परिसर की स्थापना की गई। परिसर में तरणताल, पेट्रोल पम्प, जिम्नेजियम, केन्द्रीय ग्रंथालय की भी सुविधा उपलब्ध है।

विश्वविद्यालय के स्थापना स्थल पर केन्द्र सरकार के अनुदान से ट्रामा सेन्टर का भी निर्माण किया जा रहा है।

विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने बी.एच.यू. को उत्कृष्टता की क्षमता वाले विश्वविद्यालय के रूप में सूचीबद्ध किया है। सन् 2010-11 में शैक्षणिक सुधार के कई कदम उठाये गये हैं। इस शैक्षणिक सत्र से विश्वविद्यालय के सभी संकायों में सेमेस्टर व्यवस्था व च्वॉयस बेस्ड क्रेडिट सिस्टम लागू करने की योजना है। आधारभूत संरचनाओं के सुदृढ़ीकरण, प्रभावशाली अध्यापकों को आकर्षित करने, प्रशासनिक सुधार, अनुसंधान प्राथमिकताओं का निर्धारण आदि पर विशेष बल दिया जा रहा है। परिसर में कुल 65 छात्रावास हैं, जिनमें लगभग 12 हजार विद्यार्थियों के ठहरने की व्यवस्था है। इनमें से 20 महिला छात्रावास है जिनमें 2800 छात्राओं के रहने की व्यवस्था है। सभी छात्रावासों में मेस व अतिरिक्त इंडोर गेम, इंटरनेट आदि की व्यवस्था है।

महामना के यश और प्रताप से आज काशी हिन्दू विश्वविद्यालय भारत के सर्वश्रेष्ठ विश्वविद्यालय की भूमिका में अग्रिम शिखर पर है।

महामना की सेवायें अनन्त हैं। 5 जनवरी सन् 1937 को अपने 75वें जन्मोत्सव पर आपने कहा था- ''देश की दशा बुरी हो गई है, इस दुःख के उमड़ते समुद्र में क्या मुझे मरने का अवकाश है?'' महामना के लिए कुछ भी असंभव नहीं था। 12 नवम्बर सन् 1946 को महामना का महाप्रयाण हुआ। महामना ने कहा '' मुझे राज्य की कामना नहीं, मुझे स्वर्ग की कामना नहीं, मुझे मोक्ष भी नहीं चाहिए मेरी एकमात्र कामना बस यही है कि मैं दुःखी प्राणियों के दुःख दूर करूँ, अंधेरी आँखों को रोशनी दूँ- आजीवन इसी संकल्प के साथ देश के प्रति सेवा में अपने को पूर्णतया समर्पित कर दिया।

घट घट व्यापक राम जप रे।

सन्दर्भ

1. मैथिलीशरण गुप्त
2. आनन्द रामायण
3. महामना
4. महामना
5. महामना
6. महामना

◆

महामना की संस्कृत-निष्ठा

*डॉ0 सी0 के0 राय**

सृष्टि और संसार की मीमांसा में चिन्तनरत मेधावी मनीषियों द्वारा दृष्ट व्यवस्था में भिन्न-भिन्न कालों में परिस्थितियों की आवश्यकता के अनुसार महादेव परमात्मा के दिव्य कलांशों से समन्वित दिव्य पुरुष धरती पर अवतरित होते रहे हैं। सृष्टि के सन्तुलन के प्रयत्न में यह अवतार विशेष प्रयोजन का साधक होता है।

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नाऽपुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ॥

महामना पं0 मदनमोहन मालवीय के इस कथन में पृथ्वी पर उनके आविर्भाव के सविशेष प्रयोजन का ज्ञान होता है। श्रीमद्भगवद्गीता के दैवासुरसम्पद्विभागयोग नामक षोडश अध्याय में दैवी प्रकृति के महापुरुषों का लक्षण बताया गया है –

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम्॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम्।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम्॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत॥

महामना में ये सभी गुण समग्र रूप से विद्यमान थे। उन्हें किसी प्रकार का भय नहीं था। अन्तःकरण राग-द्वेष, मोह-मत्सर आदि विकारों से अछूता, निर्मल, परिशुद्ध था। इनके पिता जी गंगा जी के तट पर भागवत तथा भगवान् की भक्तिपूर्ण कथाएँ सुनाया करते थे। जो द्रव्य कथा-श्रोताओं से प्राप्त होता था, उसी से मालवीय जी का भरण-पोषण हुआ। शुद्ध अन्नादि से पुष्ट उनके शरीर में निर्मल बुद्धि का स्फुरण हुआ। महामना परमात्मा के ध्यान में सदा स्थित रहते थे। अन्न, वस्त्र, विद्या का योग्य पात्र को दान देना उनकी दिनचर्या में सम्मिलित था। राष्ट्र के स्वातन्त्र्य तथा मानवमात्र के साथ-साथ प्राणिवर्ग के कल्याण के लिए जितेन्द्रियता का आचरण करते हुए तथा गुरुजनों, देवता-ब्राह्मणों, अतिथि-महात्माओं की शास्त्रविधि से सपर्या करते हुए वे सावधान होकर अपने धर्म का पालन करते थे। वेद-पुराणों तथा उपनिषद् आदि का स्वाध्याय करते हुए वे अपनी वक्तृता, सहिष्णुता, धीरता तथा सरल व्यवहार से सबको प्रभावित कर लेते थे। शरीर-मन-वाणी से किसी का अहित नहीं करना, सत्यवादिता, क्रोधरहित तथा त्यागपूर्ण, अभिमानरहित व्यवहार महामना की सामान्य से विशेष कोटि में प्रतिष्ठा का कारण बनता था। महामना का अन्तःकरण सात्त्विक प्रसाद का अधिष्ठान था। अपैशुन अर्थात् परनिन्दा का आभास भी उनकी प्रकृति से परे था। सभी प्राणियों के प्रति दयाभाव, अलोलुपता, अन्तःकरण, वाणी और व्यवहार में मृदुता तथा लोक-शास्त्रविरुद्ध आचरण में संकोच अथवा ह्री का भाव, अचापल्य अर्थात् संयत आचरण उन्हें दिव्य लक्षणों से समलंकृत करते थे। इसी प्रकार उनके व्यक्तित्व में तेजस्विता, क्षमाशीलता, धैर्य, पवित्रता, अद्रोह तथा अहम्मन्यता का अभाव-ये दिव्य सम्पदाएँ सम्यक् समाहित थीं।

भारतवर्ष की पवित्र भूमि पर अवतीर्ण महामना मदन मोहन मालवीय वह दिव्य विभूति थे जो संस्कृत-शास्त्रों की शिक्षा तथा धर्म के तात्त्विक उपदेश द्वारा सनातन विद्या के संस्कारों से समन्वित, सभ्य एवं स्वस्थ मानव का निर्माण कर भौतिक एवम् आत्मिक उन्नति के यथार्थ मार्ग पर आरोहण का स्वप्न देखते थे। श्रीधर्मज्ञानोपदेश संस्कृत महाविद्यालय, प्रयाग में प्राथमिक शिक्षा प्राप्त कर मालवीय जी ने सनातन धर्म तथा संस्कृविद्या का ज्ञान प्राप्त किया था। वैदिक संहिताओं तथा संस्कृत-शास्त्रों में समग्र विद्याओं का मूल, धर्म और सदाचरण की पद्धति विद्यमान है। भारतीय संस्कृति के मूलाधाररूप संस्कृत-शास्त्रों, वेद-पुराण-षड्दर्शन, धर्मशास्त्र इत्यादि के संरक्षण तथा अध्ययन-अध्यापन द्वारा विद्यार्थियों के चारित्रिक विकास के लिए महामना ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ संस्कृत महाविद्यालय की आधारशिला रखी ।

हिन्दू संस्कारों तथा कर्मकाण्ड एवं पौरोहित्य की शिक्षा प्राप्त कर कुशल ऋत्विज, पुरोहितगण श्रौत, गृह्य एवं स्मार्त कर्मों का सविधि सम्पादन कर सकें, इस प्रयोजन से वेद-वेदाङ्ग एवं धर्मशास्त्र के शिक्षण का प्रबन्ध महामना के संस्कृतशिक्षण-विषयक चिन्तन का परिणाम था। ज्योतिष एवं कर्मकाण्ड के कुशल ज्ञाता देश-विदेश में अनुष्ठानों का सफल सम्पादन कर संस्कृतविद्या की गरिमा और सार्थकता को प्रमाणित करते रहे हैं। अपरिष्कृत जीवनशैली तथा अशुद्ध उच्चारणादि दोष से श्रौत एवं स्मार्त कर्म अपेक्षित अभीष्ट सिद्ध नहीं कर सकते । अतः वैदिक एवं संस्कृतशास्त्रीय विद्या के गौरव को सुरक्षित रखते हुए, उसके अभ्यास और कर्मविधान से लोक को परिचित एवं सन्तुष्ट करने हेतु इस विद्या की अध्ययन-परम्परा आवश्यक थी। इस गम्भीर प्रयोजन को ध्यान में रखते हुए महामना ने पारम्परिक रूप से संस्कृत तथा राष्ट्रभाषा एवं अन्य भाषाओं के माध्यम से भी संस्कृतविद्या के अध्ययन-अध्यापन का समुचित प्रबन्ध किया।

वर्तमान समय में समाप्त हो चुके किन्तु कुछ वर्षों पूर्व तक संचालित, प्रत्येक विद्यार्थी के लिए आवश्यक '**धर्मपरीक्षा**' तथा '**गीतापरीक्षा**' के आयोजन भी महामना की संस्कृतविद्या, धर्म एवं संस्कृति के प्रति गुणग्राहिता के प्रत्यक्ष प्रमाण रहे हैं। रविवासरीय गीता-

* निवास–फ्लैट नं0 208, सम्पूर्णानन्द विहार, जगतगंज, वाराणसी।

प्रवचन की अविच्छिन्न परम्परा तथा स्वेच्छा से विद्यार्थियों के लिए 'योग' के लघु पाठ्यक्रम के प्रशिक्षण का प्रबन्ध भी संस्कृतशास्त्रों में महामना की गम्भीर अभिरुचि तथा मानवमात्र के चारित्रिक उत्थान द्वारा राष्ट्र को सुदृढ़, सुस्थिर बनाने के उनके संकल्प को उजागर करते हैं।

प्राचीनकाल में भारत वर्ष की जनभाषा रह चुकी संस्कृतभाषा का विशाल साहित्य राज्याश्रय की उपेक्षा तथा राजनैतिक विसंगतियों के कारण आधुनिक समय में उपेक्षा का विषय बन चुका है। संस्कृतशास्त्रों की आचारपद्धति प्रशिक्षण के अभाव, उदासीनता और प्रमाद के कारण विस्मृत होती जा रही है। भारतीय संस्कृति के आधारभूत इन शास्त्रों का अनभ्यास समाज में नाना प्रकार की समस्याओं को जन्म दे रहा है। भारत वर्ष की ज्ञान- परम्परा, भारतीय शास्त्रों की मर्यादा से विरत होकर पाश्चात्त्य जीवन-पद्धति का अनुसरण करते हुए वैयक्तिक, सामाजिक तथा राष्ट्रीय स्तर पर उत्थान की कल्पना नहीं की जा सकती। परतन्त्रता की शृंखला में जकड़े हुए भारतवासियों को भौतिक रूप से स्वतन्त्र बनाने हेतु आन्दोलन में सम्मिलित होते हुए पं0 मदनमोहन मालवीय ने उन्हें आत्मबल से पुष्ट करने के लिए संस्कृत-शिक्षा को अनिवार्य बताया था। विद्यार्थियों के लिए महामना का उपदेश होता था-

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव॥

सम्पूर्ण भारतवर्ष से वेदविद्या तथा संस्कृतसाहित्य के पारङ्गत विद्वानों को आदरपूर्वक आमन्त्रित कर मालवीय जी उन्हें आचार्य पद पर प्रतिष्ठित करते थे। प्राचीन गुरु-शिष्य-अध्ययनपरम्परा के अनुरूप- **''तेजस्वि नावधीतमस्तु मा विद्विषावहै''** – इस उपनिषद्-सन्देश के अनुसार वे गुरु-शिष्यसम्बन्धों में मर्यादा की स्थापना तथा अधीत विद्या की सर्वाङ्ग सार्थकता का स्वप्न देखते थे।

प्राचीन भारतीयों के सुकृत से विश्व में प्रतिष्ठित भारतवर्ष के गौरव का स्मरण कर वे राष्ट्र को विद्या की आराधना द्वारा पुनः उत्कर्ष के शिखर पर स्थापित करना चाहते थे। उनके उदात्त चिन्तन में भारतभूमि को अपनी मातृभूमि समझने वाला हिन्दू है। अन्तर्राष्ट्रीय पटल पर भारतवर्ष के गौरव की वृद्धि के लिए उन्होंने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना कर प्राच्य एवं प्रतीच्य- उभयविध ज्ञान-परामपराओं के अध्ययन-अध्यापन का प्रबन्ध किया तथापि वे संस्कृत-शास्त्रों में निहित धर्म, दर्शन एवं व्यवहार की शिक्षा को शीर्षस्थानीय तथा भौतिक विज्ञान की शिक्षा को अधराङ्ग के रूप में निरूपित करते थे। संस्कृतभाषा तथा उसमें निबद्ध हिन्दू शास्त्रों के अध्ययन द्वारा वे प्रत्येक देशवासी में भारतीय परम्परा तथा भारतीय सांस्कृतिक चेतना को जगाना चाहते थे। संस्कृत भाषा के अध्ययन में विद्यार्थियों को प्रवृत्त करने के लिए वे राजा भोज के शासन-काल का स्मरण करते थे, जब श्रमिक, धीवर और जुलाहे भी संस्कृत-भाषा का व्यवहार करते थे तथा अशुद्ध भाषण होने पर भाषा का संशोधन किया करते थे –**''न तथा भारो बाधते यथा बाधति बाधते''।**

ऋषि-मनीषियों के तप एवं विश्वकल्याणभाव से उद्भूत वैदिक ज्ञान एवं संस्कृतशास्त्रों के प्रति महामना की श्रद्धा और आस्तिकता सर्वविदित थी। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के भवनों के निर्माण में उन्होंने संस्कृतशास्त्रों के वास्तुशास्त्रीय सिद्धान्तों का ध्यान रखा। भारतीय न्यायव्यवस्था में गुण-दोष के आधार पर विचार के समय धर्मशास्त्रीय स्थापनाओं एवं विधि-विमर्श को प्रमुखता प्रदान की। सुगठित समाज तथा सुदृढ़ राष्ट्र के भावी प्रतिनिधि के रूप में विद्यार्थियों को शरीर से बलिष्ठ होने के लिए व्यायाम की आवश्यकता बताया तो प्रातः प्रणायाम, सन्ध्यावन्दन, योगासन द्वारा ब्रह्मचर्य और संयम के संस्कार प्राप्त कर उन्हें चारित्रिक स्तर पर सबल बनने का उपदेश दिया।

धर्मशास्त्रीय वर्णव्यवस्था के हिमायती होते हुए भी वे जाति-पाति और उच्च-नीच का विचार त्याग कर सबको शिक्षित और उत्कृष्ट बनाने की कामना करते थे। वासुदेवशरण जी अग्रवाल के शब्दों में ''पं0 मदनमोहन मालवीय भारतीय संस्कृति के सच्चे प्रतिनिधि थे। प्राचीन ऋषियों की प्रतिभा उनमें दिखाई पड़ती थी। वे भगवान् के भक्त और धर्मनिष्ठ थे। उनके लिए भगवान् की भक्ति का अर्थ मानवमात्र की सेवा करना था।'' दशाश्वमेध घाट की सीढ़ियों पर बैठकर अन्त्यजों के लिए ''ॐ नमः शिवाय'' मन्त्र का उपदेश देकर उनके आत्मिक उद्धार तथा चित्त के स्थैर्य के लिए प्रयत्न करते थे तो विश्वविद्यालय तथा अन्य स्थलों पर व्यासपीठ पर आरोहण कर श्रीमद्भागवत और श्रीमद्भगवद्गीता का प्रवचन कर प्रबुद्धजनों के लिए अध्यात्म एवं लोक-व्यवहार के मध्य सामंजस्य का मर्म समझाते थे। ''सहस्रं तु पितॄन् माता गौरवेणातिरिच्यते'' (मनु02/145)-माता गौरव में पिता से सहस्रगुणा बढ़कर है- इस मनुस्मृति के वचन को स्मरण करते हुए वे माता के रूप में अपनी सशक्त भूमिका के निर्वाह हेतु स्त्रीवर्ग को शिक्षित कर सबल बनाना चाहते थे। अपाला, घोषा, वाणाम्भृणी इत्यादि मन्त्रद्रष्ट्री ऋषिकाओं के दर्शन को आत्मसात् करते हुए महामना ने स्त्रीशक्ति के भौतिक एवम् आध्यात्मिक उत्कर्ष की सर्वविध सम्भावनाओं का समादर किया।

स्त्री-शिक्षा के लिए उन्होंने राष्ट्रीय स्तर पर योजना बनाने की आवश्यकता प्रकट की जिससे अनुकूल अवसरों पर शिक्षा-दीक्षा ग्रहण कर बालिकाएँ शरीर-मन और बुद्धि से सशक्त, समर्थ हो सकें। उनके शब्द हैं- ''पुरुषों की शिक्षा से स्त्रियों की शिक्षा अधिक महत्त्वपूर्ण है क्योंकि वे ही भारत की भावी सन्तानों की माता हैं। वे हमारे भावी राजनीतिज्ञों, विद्वानों, तत्त्वशास्त्रियों, व्यापार तथा कला-कौशल के मर्मज्ञों आदि की प्रथम शिक्षिका हैं।''

नालन्दा तथा तक्षशिला की प्राचीन गुरुकुल-शिक्षापद्धति के अनुसार काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में भी महामना मालवीय सनातन विद्या की ज्ञानार्जन-परम्परा को सुदृढ़ बनाना चाहते थे। सन् 1929 में विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह में विश्वविद्यालय की स्थापना के उद्देश्य को रेखांकित करते हुए उन्होंने नालन्दा तथा तक्षशिला की समृद्ध शिक्षाप्रणाली का स्मरण किया है। गुरुकुलों की इस राष्ट्रीय पद्धति को

संरक्षित करने के लिए ही उन्होंने विश्वविद्यालय में संस्कृत के विद्यार्थियों के लिए निःशुल्क शिक्षा, आवास तथा भोजन की व्यवस्था करायी थी। संस्कृत भाषा को महामना ने पैतृक सम्पत्तियों में सबसे अधिक मूल्यवान् बताया क्योंकि इस भाषा में ही भारत का पवित्र साहित्य,धार्मिक तत्त्वज्ञान, प्राचीन सभ्यता और संस्कृति का सम्पूर्ण कलेवर सुरक्षित है।

उनकी दूरदृष्टि से विश्वविद्यालय की शिक्षा-नियमावली में संस्कृत तथा हिन्दू तत्त्वशास्त्र (ब्रह्मविद्या) को प्रथम स्थान दिया गया था। वार्षिक उपाधि-वितरण-महोत्सव के अवसर पर उन विद्यार्थियों को सर्वोच्च स्थान दिया जाता था, जिन्होंने संस्कृत भाषा तथा हिन्दू तत्त्वशास्त्र का अध्ययन किया हो। अपने जीवन-काल में विश्वविद्यालय में प्रतिवर्ष दीक्षान्त समारोह में उपस्थित होकर विद्यार्थियों को उपाधि वितरण करते हुए महामना वैदिक-परम्परा के अनुसार तैत्तिरीय उपनिषद् की ''शीक्षावल्ली'' के मन्त्र-भाग का उच्चारण करते हुए उन्हें गम्भीर, संयत वाणी में उपदेश देते थे—

सत्यं वद। धर्मं चर। स्वाध्यायान्मा प्रमदः। आचार्याय प्रियं धनमाहृत्य प्रजातन्तुं मा व्यवच्छेत्सीः। सत्यान्न प्रमदितव्यम्। स्वाध्यायप्रवचनाभ्यां न प्रमदितव्यम्। देवपितृकार्याभ्यां न प्रमदितव्यम्। मातृदेवो भव। पितृदेवो भव। आचार्यदेवो भव। अतिथिदेवो भव । यान्यनवद्यानि कर्माणि। तानि सेवितव्यानि। नो इतराणि। यान्यस्माकं सुचरितानि। तानि त्वयोपास्यानि। नो इतराणि।

अर्थात् ''सत्य बोलना। धर्म का आचरण करना। स्वाध्याय में प्रमाद नहीं करना। आचार्य (गुरुजन) के लिए प्रिय धन देने की प्रवृत्ति रखते हुए (गृहस्थ जीवन में) सन्तति-परम्परा को अवरुद्ध नहीं करना। (सम्पूर्ण जीवन में) सत्य व्यवहार में प्रमाद नहीं करना। विद्याभ्यास एवं उसके उपदेश में प्रमाद नहीं करना। देवोपासना एवं पितृकार्य में प्रमाद नहीं करना। माता में देवबुद्धि रखते हुए सेवा करना। पिता में देवबुद्धि रखते हुए सेवा करना। आचार्य (गुरु) में देवबुद्धि रखते हुए सेवा करना। अतिथि में देवबुद्धि रखते हुए सेवा करना। जो (हमारे) अनवद्य (प्रशस्त) कर्म हैं, उन्हीं का आचरण करना, दूसरों का नहीं। जो (हमारे) सुचरित हैं, तुम्हें उन्हीं को आचरण में लाना चाहिए, (हमारे) अन्य चरितों को नहीं।''

इन दीक्षान्त-मन्त्रों में शास्त्रीय मर्यादा के अन्तर्गत लोकहित का सम्पादन करते हुए तथा गुरुजनों की सम्यक् शुश्रूषा करते हुए सदाचारपूर्ण जीवन-निर्वाह करने का प्रेरक सन्देश निहित है जिसका अनुपालन होने पर प्रति व्यक्ति अथवा मानव-समाज से कदाचार का निराकरण हो सकता है।

महामना की दूरदर्शिता तथा लोक एवम् अध्यात्म के प्रति उनकी प्रेरणा से भरे सन्देश विश्व के कल्याण के लिए, आतंक और भ्रष्टाचार के निर्मूलन के लिए आज भी अत्यन्त प्रासंगिक तथा अनुसरणीय हैं।

◆

मालवीय जी द्वारा धार्मिक और सांस्कृतिक धरोहरों की रक्षा का अभियान

डॉ. स्कन्ध जी पाठक

मालवीय जी उच्च कोटि के देशभक्त थे। देश की स्वतन्त्रता, राष्ट्र गौरव की अभिवृद्धि, जनता का सर्वांगीण उत्कर्ष उनकी देशसेवा के मुख्य लक्ष्य थे। उनका कार्य क्षेत्र बहुत ही विस्तृत था। समाज सेवा का कोई भी ऐसा क्षेत्र नहीं था, जो महामना के प्रतिभाशाली व्यक्तित्व से अछूता रहा हो। सनातन धर्म का प्रचार-प्रसार, प्राचीन हिन्दू संस्कृति का समर्थन, देश की स्वतन्त्रता, गौ-सेवा, सामाजिक कुरीतियों का विरोध, शिक्षा का विस्तार, मल्लशालाओं का निर्माण, स्त्री-उत्कर्ष, अछूतोद्धार, आदि सभी क्षेत्रों में उन्होंने महत्त्वपूर्ण योगदान किया। उनका प्रत्येक कार्य निष्काम भाव से अनुप्राणित था। दैवी विभूति से विभूषित मालवीय जी का जीवन अपने धार्मिक धरोहरों के प्रति भी संवेदनशील था। श्रीकृष्ण जन्मभूमि के उद्धार की बात हो या काशी के घाटों के जीर्णोद्धार की वे हमेशा इस शुभ कार्य के लिए तैयार रहते थे। उनके द्वारा किये गये धार्मिक सांस्कृतिक धरोहरों की रक्षा के कुछ कार्यों को यहाँ पर उद्घाटित करने का प्रयास किया जा रहा है।

श्रीकृष्ण जन्मभूमि एवं अन्य मंदिरों का उद्धार

मथुरा की कृष्ण-जन्म भूमि पर मुसलमानों ने कब्जा कर लिया था, उसकी मुक्ति के लिए मालवीय जी ने सरकार के विरुद्ध मुकदमा लड़ा और उन्हें सफलता मिली। भूमि का एक हिस्सा हिन्दुओं के लिए भी दिया गया। बिड़ला जी के आर्थिक सहयोग से और हनुमान प्रसाद पोद्दार जी के श्रम से वहाँ एक भव्य कृष्ण-मन्दिर का निर्माण कराया गया, जो आज भी महामना जी की कीर्ति-पताका फहरा रहा है।

इसी प्रकार विश्वविद्यालय की स्थापना से पूर्व मालवीय जी ने काशी के दुर्गाकुण्ड के पास स्थित 'बनकटी हनुमान जी' के मंदिर का भी निर्माण कराया। वहाँ आज भी मालवीय जी के द्वारा हस्ताक्षरित शिलालेख लगा हुआ है। मालवीय जी ने ही उस मंदिर को ''सेनापति बनकटी हनुमान जी का मंदिर'' नाम दिया था। जो अब काशी के महत्त्वपूर्ण मंदिरों में गिना जाता है। इसको प्रमाणित करने वाला ग्रन्थ भारत कला भवन ग्रन्थागार में उपलब्ध है। इस पुस्तक का नाम है- "The children of ASSI" इसी प्रकार विश्वविद्यालय के तथा आस-पास के गाँवों के अनेक प्राचीन देवस्थानों के पुनर्निर्माण में मालवीय जी का सहयोग रहा है।

घाटों की मरम्मत

मालवीय जी के जीवन-काल में काशी के कई घाट ध्वस्त हो चुके थे। सन् 1926 में इन घाटों की सुरक्षा के लिए मालवीय जी की प्रेरणा से ''काशी तीर्थ सुधार'' नामक ट्रस्ट बनाया गया। उच्चकोटि के इंजीनियरों ने सुधार की योजना और उसके ऊपर होने वाले खर्च का अनुमान सन् 1931 में एक पुस्तिका के माध्यम से प्रस्तुत किया। इनके जीर्णोद्धार पर कितना खर्च होना था, इसका अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि उन दिनों अकेले 'तुलसीदास घाट' के जीर्णोद्धार का अनुमान 1.5 लाख रुपये और 'मणिकार्णिका' का दो लाख रुपये था। उस समय सौ घाटों के सुधार की आवश्यकता थी, जिनकी लागत 1.5 करोड़ रुपये अनुमानित थी। इनमें से तुलसीदास घाट का ऐतिहासिक महत्त्व था। सन् 1933 में महामना ने इसके लिए दान देने का एक निवेदन प्रसारित किया। महाराज सयाजीराव गायकवाड़ (बड़ौदा) ने 52 हजार रुपये का दान दिया। दूसरे नरेशों ने भी इस योजना में सहयोग किया। बनारस मण्डल के आयुक्त श्री पन्नालाल ने मालवीय जी के कर-कमलों से शिलान्यास का कार्यक्रम 11 जनवरी सन् 1937 को सम्पन्न कराया और इस प्रकार सिंधियाघाट और तुलसीघाट का जीर्णोद्धार सम्पन्न हुआ।[1] दशाश्वमेध घाट पर भी कुछ सुधार किया गया। इस प्रकार महामना के सहयोग से यह महत्त्वपूर्ण कार्य पूरा हुआ।

पुरातन साहित्य-संरक्षण

महामना अपने प्राचीन साहित्य को संरक्षण दिये जाने के भी पक्षधर थे और उन्होंने यथासमय 'वैदिक कोश' तैयार किये जाने के लिए, पुराणों के संशोधन के लिए और 'सूरसागर' के एक अच्छे संस्करण के लिए आर्थिक व्यवस्था की।[2] सन् 1903 से आचार्य विश्वबंधु (जो ब्रह्म महाविद्यालय'-लाहौर एवं 'विश्वेश्वरानन्द' वैदिक शोध संस्थान, होशियारपुर-पंजाब) से सम्बद्ध थे तथा वैदिक कोश का सम्पादन भार संभाल रहे थे, उनके समक्ष आर्थिक व्यवस्था का (जिसका अनुमानित व्यय उस समय 20 लाख रुपये के आस-पास था) प्रश्न उठ खड़ हुआ। जब मालवीय जी के समक्ष इस समस्या को प्रस्तुत किया गया तो उन्होंने संपादक महोदय से कहा कि ''आप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आ जाएँ और वहाँ एक अलग से विभाग खोलकर 20 लाख रुपये की व्यवस्था कर दी जायेगी।'' यह बात सन् 1924 की है। इस महनीय संरक्षण के लिए आचार्य विश्वबंधु ने धन्यवाद एवं साधुवाद दिया और यह कार्य पूर्ण हुआ। मालवीय जी पुराणों के अस्त-व्यस्त संस्करणों को और उनके अस्पष्ट अनुवादों को देखकर खिन्न थे। अतः वे चाहते थे कि समूचे स्मृति वाङ्मय, पुराणों और धर्मशास्त्रों को सम्पादित करके नये संस्करण निकाले जाएँ। मंदिर और घाट आदि बनवाने के साथ-साथ इस कार्य की भी आवश्यकता है। इस योजना के लिए भी मालवीय जी ने यथासम्भव आर्थिक सहायता और मार्गदर्शन प्रदान किया। एक बार कालाकाँकर रियासत के पूर्व राजकुमार कुँअर सुरेश सिंह स्वतन्त्रता आन्दोलन के क्रम में रावलपिण्डी में जब मालवीय जी के साथ थे और उनके जेल जाने की बारी आई तो मालवीय जी

* पूर्व शोध-छात्र, हिन्दी विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

ने उन्हें अत्यन्त मधुर राग में गाकर 'सूरसागर' के कुछ पद सुनाये और आदेश दिया ''अब तो तुम जेल जा रहे हो, सूरदास जी के सुन्दर पदों का एक अच्छा संकलन कर डालो। जेल में ऐसे कार्यों के लिए अच्छा अवसर मिलता है।'' उन्होंने महामना की आज्ञा शिरोधार्य की और उस संकलन को पूरा किया।

गंगा नहर और बाँध पर विवाद

सरकारी नहर विभाग ने हरिद्वार में गंगा के प्रवाह को कुछ रोककर नहर निकालने का प्रयत्न किया, परन्तु प्रवाह को 'कुछ' न रोक कर गंगा का इतना जल नहर के लिए दे दिया गया कि जिससे प्रयाग और काशी जैसे स्थानों में जल का अभाव-सा हो गया। अतः सन् 1916 ई0 में पुनः अविच्छिन्न धारा के लिए आन्दोलन प्रारम्भ हुआ[3], क्योंकि अंग्रेज सरकार ने अपना वादा पूरा नहीं किया था। उधर अंग्रेजों का प्रयास था कि लगभग 1000 मील तक फैले नहरों के जाल को पर्याप्त जल देना है और कुछ पानी हिन्दुओं के धार्मिक आयोजन के निमित्त भी छोड़ना है, लेकिन इनका कुछ पानी प्रत्यक्षतः अत्यल्प के रूप में ही था।

''गंगा नहर'' के साथ दूसरी कठिनाई यह थी कि उस नहर को पार करने के लिए न कोई पुल था न घाट। अतः यह प्रश्न स्नानार्थियों और गंगा नहर के आर-पार जाने वालों के लिए बड़ा ही कष्टकारक था। लोगों की इच्छा थी कि गंगा में इतना पानी अवश्य होना चाहिए कि कुंभादि पर्वों पर हजारों-लाखों मनुष्य स्नान कर सकें और लोगों को शुद्ध जल मिल सके। इसलिए पहला प्रश्न तो यह था कि गंगा नदी में आद्यन्त इतना शुद्ध जल होना चाहिए कि गंगा में जल का अभाव न हो। इस समस्या के समाधान के लिए ग्यारह अप्रैल सन् 1933 को ''गंगा सभा'' और नहर विभाग के अधिकारियों की एक बैठक हुई। इसमें मालवीय जी भी उपस्थित थे। ''गंगा सभा'' की शिकायत थी कि सरकार ने 1916 के समझौते का पालन नहीं किया, जिससे हरकी पौढ़ी पर पर्याप्त जल नहीं पहुँच रहा है और सर्दी के दिनों में तो जल की मात्रा और भी कम हो जाती है। चूँकि मालवीय जी की अध्यक्षता में गंगा सम्बन्धी समझौते हुए थे। जो मुख्यतः गंगा जल के अविरल प्रवाह और उसकी मात्रा के सम्बन्ध में थे। अतः उन्हें इस विषय में विशेष सक्रियता दिखानी पड़ी। यहाँ तक कि मालवीय जी पर 'नरम दिलवाले', 'सरकार से दबने वाले', 'जेल से दूर भागने वाले' और कुर्सी वाले राजनीतिक' तक कह कर कीचड़ उछाला जाने लगा था।

सन् 1924 ई0 में लगे कुम्भ के अवसर पर जब प्रयाग में मेला जुटा तो उस वर्ष संयोगवशात् मुख्य धारा के स्थान बदल देने के कारण त्रिवेणी संगम पर स्नान करना कठिन हो गया। प्रान्तीय सरकार ने आदेश निकाला कि इस वर्ष त्रिवेणी संगम पर स्नान नहीं होगा। अतः मालवीय जी ने इस आज्ञा के विरोध में सत्याग्रह करने का निश्चय किया और बताया ''कि यह हिन्दू जाति का अपमान है। अतः वे स्वयं अपने साथ बहुत बड़ी भीड़ लेकर गंगाजी में गोता अवश्य लगाएँगे'', परन्तु पुलिस ने मालवीय जी को ऐसा करने से रोक दिया। मालवीय जी और जवाहरलाल नेहरू सत्याग्रह पर बैठ गये। जवाहर लाल जी ऐसे किसी कार्यक्रम में पहली बार सम्मिलित हुए थे। सत्याग्रही दोहपर तक वहाँ डटे रहे। ऊपर सूर्य तप रहा था और नीचे गरम रेत पीड़ित कर रही थी, लेकिन कोई भी सत्याग्रही टस से मस नहीं हुआ। तभी नेहरू जी उठे और बाँसों तथा बल्लियों से बना घेरा तोड़कर उन्होंने बाँध पर झण्डा फहरा दिया। घुड़सवार पुलिस लोगों को धक्का दे रही थी और डण्डे भी घुमा रही थी, परन्तु सत्याग्रही सहसा आगे बढ़ गये। तब तक महामना जी चुपचाप बैठे थे। कुछ देर बाद वे सहसा उठे और घुड़सवारों तथा पैदल पुलिस के बीच से निकल गये और उनके पीछे-पीछे अन्य लोग भी दौड़े तथा सभी नदी में कूद पड़े। इधर-उधर डण्डे घुमाकर पुलिस भी पीछे हट गयी और सत्याग्रहियों की जीत हो गयी।

अप्रैल सन्1927 को हरिद्वार में कुम्भ होने वाला था। ''गंगा सभा'' के बहुत अनुरोध पर भी मेले के अधिकारी नहीं माने और हरकी पौढ़ी पर उन्होंने एक पुलिया बना ली, जिस पर अधिकारी लोग और अंग्रेज जूता पहन कर आते-जाते थे। मालवीय जी ने अधिकारियों से बातचीत की, परन्तु वे पुल हटाने को तैयार नहीं थे।

मालवीय जी की इस धमकी का भी कुछ असर नहीं हुआ कि 'यदि पुल नहीं तोड़ा जायेगा तो सत्याग्रह होगा।' साथ ही मालवीय जी ने 1300 शब्दों का एक लम्बा-चौड़ा तार भी गवर्नर के यहाँ भेजा। 26 नवम्बर सन् 1926 ई0 की सभा के सभापति और चार अन्य सदस्यों ने गर्वनर साहब से भेंट की। वे उनके निवेदन पर मात्र इतना ही राजी हुए कि ''सरकारी अधिकारियों के अतिरिक्त पुल पर कोई नहीं जा सकेगा। और न कोई यहाँ पर सिगरेट पीयेगा और न थूँकेगा।'' चमड़े के जूते पहनकर भी पुल के ऊपर जाने की मनाही हो गयी। अफसरों के प्रयोग के लिए कपड़े से बना जूता देने का प्रस्ताव भी कृष्टी महोदय (गवर्नर) ने स्वीकार कर लिया। परन्तु 'इन्स्पेक्टर जनरल ऑफ पुलिस' ने इस आदेश को स्वीकार नहीं किया और कपड़े के जूते पहनने वाली बात भी टाल दी गयी। जनता के मत को जानबूझकर अस्वीकार करने की हद हो गयी और हिन्दुओं में गहरी उत्तेजना फैल गयी। मालवीय जी ने इसके विरुद्ध अपनी आपत्ति लिखित रूप में दी और कहा कि ''अहिन्दू और सरकारी कर्मचारी चमड़े का जूता पहनकर पुल पर बैठते हैं और उसी पुल के नीचे महात्मा जन, यात्री, स्त्री और पुरुष स्नान करते हैं। ऊपर बैठे हुए लोग स्नान करने वाली अर्द्धनग्न स्त्रियों को देखते और आपत्तिजनक शब्दों का उच्चारण करते हैं, इसलिए गवर्नर महोदय को चाहिए कि वे तत्काल कोई कारगर कदम उठाकर अपमानमूलक परिस्थिति पैदा होने से बचाएँ।'' मालवीय जी ने अपने पत्र के माध्यम से कृष्टी साहब (गवर्नर) को यह भी बताया कि अगर इस पुल को काम में लाया जाएगा तो यात्रियों और अफसरों में मुठभेड़ भी हो जाएगी। उनके इस पत्र का अन्ततः परिणाम यह हुआ कि गवर्नर ने मेले के अधिकारियों को पुल का प्रयोग न करने का निर्देश दे दिया।

टिहरी बाँध की भयावहता

जिस समय टिहरी बाँध बनाने की योजना कार्यान्वित हो रही थी, मालवीय जी वृद्धावस्था के कारण इसको रोकने के लिए बहुत सक्रिय नहीं हो पा रहे थे। मालवीय जी ने माननीय कैलाशनाथ काटजू (पूर्व न्यायाधीश, हाईकोर्ट, इलाहाबाद) से टिहरी बाँध के विषय में बात करते हुए कहा था ''कि महाराज भगीरथ ने इतना अधिक प्रयास करके गंगा का पृथ्वी पर अवतरण कराया था। अब बहुत बड़ा बाँध बनाकर उनकी धारा को रोकने का प्रयास चल रहा है। अब मेरे जीवन का अंतिम काल आ गया है। मुझे भय है कि मेरी मृत्यु के बाद गंगा की अविरल धारा को रोकने का पुनः प्रयास होगा। मेरी तुमसे आशा है कि अविरल धारा रुकावट डालने की योजना का तुम विरोध करोगे।[4]''

इसके कुछ ही समय बाद महामना का स्वर्गवास हो गया। काटजू जी और प्रसिद्ध पर्यावरणविद् श्री सुन्दरलाल बहुगुणा ने टिहरी बाँध के सम्बन्ध में जो आकलन प्रस्तुत किया, संक्षेप में उसका भाव इस प्रकार है- हरिद्वार से 110 किमी0 ऊपर मनेरी नामक स्थान के निकट भागीरथी को रोककर 260 मीटर ऊँचा टिहरी बाँध बनाया जा रहा है। इससे गंगा 42 वर्ग किलोमीटर की झील में कैद हो जायेगी। बिजली पैदा करने के बाद इस झील का पानी समानान्तर गंगा नहर से दिल्ली ले जाया जायेगा। अगर कभी किसी कारण यह बाँध टूटा तो इसका सब पानी 22 मिनट में खाली हो जायेगा और ऋषिकेश से लेकर बुलन्दशहर तक अर्थात् 270 किमी0 की दूरी तक भूमि जलमग्न हो जायेगी, इससे धन-जन की इतनी हानि होगी कि जिसका आकलन भयावह है।

सन्दर्भ सूची

1. उमेशदत्त तिवारी, महामना के प्रेरक प्रसंग, भाग-2
2. रामनरेश त्रिपाठी, मालवीय जी के साथ तीस दिन, पृ0 37
3. मुकुट बिहारी लाल, महामना मदनमोहन मालवीय जीवन और नेतृत्व, पृ0 303
4. पद्मकान्त मालवीय, मालवीय जी जीवन झलकियाँ, पृ0 21

◆

महामना की आर्थिक दृष्टि एवं उनकी स्वदेशी चेतना

श्रीमती उषा त्रिपाठी *

महामना मदन मोहन मालवीय अद्वितीय प्रतिभा के धनी थे। उनके व्यक्तित्व के कई पहलुओं जैसे सामाजिक, राजनैतिक, शैक्षिक, धार्मिक, आर्थिक आदि के चित्र हमारे सामने जीवन्त उपस्थित हैं। इस लेख में आर्थिक पहलू पर उनके विचारों को व्यक्त किया गया है।

महामना के इन कथनों को देखिए : ''वित्त-व्यवस्था केवल अंकगणित नहीं है, वह एक बड़ी नीति है। निर्दोष वित्त-व्यवस्था, बिना निर्दोष शासन के संभव नहीं।'' या फिर ''कौशलपूर्ण व्यय, लाभयुक्त और न्यायसंगत कर तथा आय और व्यय का पूर्ण सामंजस्य तभी संभव है, जब विवेकशील तथा परिश्रमी जनसमुदाय उस पर अपने विचारों का शासन करें।'' इन कथनों से यह उजागर होता है कि वे एक महान अर्थ-शिक्षा-शास्त्री भी थे। महामना तत्कालीन देश की आर्थिक व्यवस्था से बहुत ही क्षुब्ध थे। अंग्रेजों द्वारा बड़े पैमाने पर भारत का आर्थिक शोषण किया जा रहा था, जिसने देश की आर्थिक काया को पूरी तरह जर्जर बना दिया था। यह सब मालवीय जी को असहनीय था। अतीत में मुसलमान आक्रान्ताओं ने भी भारत को लूटा एवं बर्बाद किया था लेकिन अंग्रेजों ने तो अपनी राजनीतिक एवं बौद्धिक कूटनीति के सहारे इस देश की अर्थव्यवस्था को पूरी तरह से नष्ट कर दिया। वे हमारे देश के धन-वैभव के साथ-साथ हमारे कला-कौशल, औद्योगिक एवं व्यावसायिक ज्ञान वैभव भी लूट ले गये। परिणामस्वरूप हमारी जीविका का एकमात्र आधार अवैज्ञानिक एवं साधनहीन खेती ही रह गयी थी, जो विभिन्न तरह के सरकारी एवं गैर-सरकारी करों के शोषण और अत्याचार के कारण असहाय सी हो गयी।

सन् 1896 के कांग्रेस अधिवेशन में पं0 मालवीय जी ने देश में व्याप्त निर्धनता, अकाल एवं भुखमरी की स्थिति के विषय में कहा था-''यदि सरकार ने भारत में कला-कौशल तथा उद्योग-धन्धों को प्रोत्साहित और पुष्ट किया होता, तो देश की दशा बुरी न होती।'' सन् 1893 के कांग्रेस अधिवेशन में भी उन्होंने कहा- ''पाँच करोड़ भारतीय भुखमरों जैसा दुःखी जीवन व्यतीत करते हैं और लाखों प्रतिवर्ष भुखमरी के शिकार हो रहे हैं। पिछले पचास वर्षों में 22 अकाल पड़े, जिनमें 2 करोड़ 90 लाख लोगो की मृत्यु हुई तथा पिछले 11 वर्ष में 55 लाख व्यक्ति प्लेग से मरे। पर 20 वर्ष से मजदूरी में कोई बढ़ोत्तरी नहीं हुई। महँगी शासन-व्यवस्था, देशी-कला एवं व्यवसाय की अवनति तथा किसानों पर आपत्तिजनक अधिक लगान, निर्धनता के मूल कारण है।'' इनसे मुक्ति पाने के लिए मालवीयजी ने स्वदेशी आन्दोलन को अपनाने पर जोर दिया, क्योंकि उनका विचार था कि ''स्वदेशी आन्दोलन का मुख्य उद्देश्य देश की आर्थिक-दशा को सुधारना है। देश की दशा में तभी सुधार हो सकता है, जब देश में देशी चीजों का व्यापार बढ़े और जो हमारे नित्य की आवश्यक चीजें हैं, वे यहाँ बनने लगें। हमारे देश में व्यवसाय और शिल्प अभी नवजात हैं। इनकी रक्षा और वृद्धि बड़ी सावधानी से करनी पड़ेगी। जिन देशों में स्वराज्य हैं, उन देशों में इनकी रक्षा गवर्नमेंट कर लगाकर और रूपया देकर करती है। पर इस देश में इस सम्बन्ध में गवर्नमेंट से बहुत आशा नहीं की जा सकती। स्वार्थ-त्याग कर हमें इनकी रक्षा स्वयं करनी पड़ेगी।''

युवा काल से ही मालवीयजी स्वदेशी के प्रबल समर्थक रहे। उन्होंने कुटीर उद्योग के साथ-साथ व्यापक औद्योगीकरण की आवश्यकता पर बल दिया, जिससे बेकारी की समस्या दूर हो सके। हिन्दू विश्वविद्यालय का प्रारूप (1905 में) तैयार करते समय देश की आर्थिक विपन्नता का सम्पूर्ण चित्र मालवीयजी के समक्ष स्पष्ट था इसीलिए उन्होंने अपने विश्वविद्यालय में पूरब और पश्चिम की सभी विद्याओं तथा देश के निर्माण के लिए आवश्यक वैज्ञानिक, इंजीनियरिंग एवं तकनीकी विद्याओं को प्राथमिकता दी। इसी विश्वविद्यालय में भारत का सर्वप्रथम खनन और रासायनिक आभियांत्रिकी विभाग स्थापित किया गया। उस समय आस-पास के राज्यों में मेकेनिकल, इलेक्ट्रिकल, फार्मास्यूटिक्स तथा अन्य तकनीकी विद्याओं के अध्ययन की कोई व्यवस्था नहीं थी। यद्यपि उस समय इन विद्याओं का हमारे देश के लिए कोई खास उपयोग नहीं था, कारण कि ब्रिटिश सरकार की नीतियों के फलस्वरूप देश के किसी भी उद्योग को पनपने नहीं दिया गया। यत्र-तत्र छिट-पुट छोटे-मोटे उद्योग थे यथा गुजरात और बम्बई में कपड़ा उद्योग तथा बिहार में इस्पात उद्योग। इनके अलावा देश में उद्योग के विकास को ब्रिटिश सरकार ने कोई प्रोत्साहन नहीं दिया बल्कि वह इसके प्रति उदासीन बनी रही और यथासम्भव हमारे देश के प्रचुर भौतिक संसाधनों का दोहन अपने विकास के लिए करती रही। जिससे प्राचीन काल में सोने की चिड़िया कहा जाने वाला हमारा देश भारत ब्रिटिशकाल में आर्थिक दृष्टि से एक गरीब देश बनकर रह गया।

मालवीयजी एक संवेदनशील व्यक्ति थे। वे अंग्रेजों द्वारा भारत का आर्थिक शोषण किया जाना देखकर बहुत व्यथित रहते थे और समय-समय पर इसके विरूद्ध आवाज उठाते रहते थे। इसी सन्दर्भ में सर टी0 एच0 हॉलैण्ड की अध्यक्षता में 19 मई, 1916 को गठित 'भारतीय औद्योगिक आयोग' द्वारा सन् 1918 में प्रस्तुत 483 पृ0 के प्रतिवेदन के साथ संलग्न 52 पृ0 के एक अतिरिक्त नोट द्वारा भी मालवीयजी के आर्थिक दृष्टिकोण का सुन्दर परिचय मिलता है। इस 'नोट' से देश की तत्कालीन अर्थव्यवस्था को समझने में काफी सहायता मिलती है।

उक्त 'नोट' में 'प्रस्तावना' के बाद मालवीय जी ने इस बात का उल्लेख किया है कि प्राचीन भारत जहाँ कृषि और औद्योगिक कुशलता दोनों में प्रमुख था, वहीं आधुनिक भारत केवल एक कृषि-प्रधान देश बनकर रह गया है। उन्होंने आंकड़ों के आधार पर यह बताया है कि

* शोध अधिकारी, मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

देशी साधनों पर अत्यधिक कर लगाया गया था जिससे स्पष्ट होता है कि ब्रिटिश सरकार भारत से कोई भी तैयार माल विदेश जाने देना नहीं चाहती थी। वे यह अवश्य चाहते थे कि भारत से कपास का निर्यात हो, किन्तु कपड़े का नहीं। बल्कि वहाँ के निर्मित कपड़ों का भारत आयात करे। इस प्रकार की नीति का परिणाम यह हुआ कि देशज उद्योगों का विनाश त्वरित हो गया।

भारत के व्यावसायिक और आर्थिक इतिहास को जानने में उक्त 'नोट' का निःसन्देह काफी महत्त्व है। 'आयोग' के एक सदस्य के रूप में उन्होंने देश के विभिन्न हिस्सों का भ्रमण किया था। उनके प्रस्तुत विवरणों से स्पष्ट है कि देश में गरीबी एवं पिछड़ेपन के प्रमुख कारण निम्नलिखित थे- (1) कच्चे माल का सस्ते दर पर निर्यात और इंग्लैण्ड में तैयार माल का भारत में उन्मुक्त व्यापार (2) देशी उत्पादनों पर अत्यधिक करारोपण, फलस्वरूप देशी उद्योगों का विनाश (3) वैज्ञानिक, तकनीकी एवं मैनेजमेण्ट की शिक्षा का नितान्त अभाव (4) आधुनिक नवीन तकनीकी के कल-कारखानों का अभाव (5) देशवासियों का मूलतः कृषि पर आधारित रह जाना। (6) बैंकिक व्यवस्था का न होना, जिससे देश का धन इंग्लैण्ड के बैंकों में जमा होता था और उसका मुनाफा ब्रिटेन की सरकार लेती थी, उसका उपयोग अपने हित में करती थी (7) नौकरी-पेशे के उच्चपदों पर भारतीयों को नियुक्त न किया जाना (8) खर्चीली प्रशासनिक एवं सैन्य-व्यवस्था, आदि।

'आयोग' ने अपने वृहद् प्रतिवेदन द्वारा देश में प्रारम्भिक शिक्षा की अनिवार्यता के साथ व्यापार प्रसार, औद्योगिक शिक्षा के समुचित प्रबन्ध, शिल्प, इन्जीनियरिंग आदि की शिक्षा को अधिक प्रयोगात्मक बनाने, श्रमिकों के स्वास्थ्य, आवास आदि की सुविधा पर ध्यान देने, औद्योगिक बैंक खोलने, कुटीर उद्योगों की वृद्धि, औद्योगिक सहकारिता को प्रोत्साहन, रेल-भाड़ा नीति में परिवर्तन, कृषि के आधुनिक तरीकों के विकास, आदि के लिए संस्तुति की थी। पं0 मालवीयजी ने अपने नोट में सरकार की व्यापारिक, औद्योगिक एवं वित्तीय नीति की कड़ी एवं विस्तृत समीक्षा लिखी है।

सन् 1907 में प्रान्तीय कौंसिल के अपने वक्तव्य में पं0 मालवीयजी ने कहा था-'शुद्ध कृषि प्रधान देश व्यावसायी और उद्योग-धन्धों देश की अपेक्षा अधिक समुन्नत और आत्म-संरक्षण योग्य नहीं हो सकता।' किन्तु इसके साथ-साथ वे इस बात से अच्छी तरह सहमत थे कि 'सर्वांड्गपूर्ण कृषि सभी व्यापार तथा व्यवसाय की जननी है तथा राज्य की आर्थिक उन्नति का कृषि-व्यवसाय की उन्नति से गहरा संबंध है।' वे पुराने देशी उद्योगों के विकास के साथ-साथ अत्याधुनिक उपकरणों से समृद्ध बड़े-बड़े उद्योगों के विस्तार के भी पक्ष में थे। उनकी दृष्टि में कृषि के पिछड़ने या उसके प्रति किसानों की उदासीनता के कुछ निम्नलिखित प्रमुख कारण थे-(1) लगान का अधिक होना (2) कास्तकारी की अवधि की अस्थिरता (3) मालगुजारी का अस्थायी बन्दोबस्त (4) जमींदारों द्वारा लगान की बलपूर्वक उगाही (5) सरकार एवं जमींदारों द्वारा अत्यधिक करारोपण (6) साहूकारों के ऋण का किसानों पर बोझ (7) सिंचाई का कुप्रबन्ध (8) महँगाई (9) कृषि-पैदावार का अनुचित मूल्यांकन (सस्ते दाम पर बिकना) (10) कृषकों पर तरह-तरह के अत्याचार एवं उन्हें हीन दृष्टि से देखा जाना आदि।

राज्य की अर्थव्यवस्था में सर्वाधिक योगदान करने वाले किसानों की दशा बिगाड़ने में, मालवीयजी के अनुसार-''एक तो सरकारी विभाग का हाथ था, दूसरे सरकारी समर्थक जमींदारों का'। सन् 1903 के प्रान्तीय कौंसिल में 'बुन्देलखण्ड हस्तान्तरण विधेयक' पर बोलते हुए उन्होंने किसानों पर कर्ज के बोझ का प्रमुख कारण लगान का अधिक निर्धारण तथा जबर्दस्ती उगाही बताया। 22 फरवरी 1927 को लार्ड लिनलिथगो की अध्यक्षता में गठित 'कृषि आयोग' के समक्ष मालवीयजी ने किसानों की दारूण दशा का दर्दनाक चित्र प्रस्तुत किया था और माँग की थी कि लगान का बोझ कम किया जाय, किसानों को अपनी मेहनत से पैदा की गई खेती से अधिक लाभ उठाने दिया जाय, सरकारी अफसरों एवं जमींदारों द्वारा की गई कर-वृद्धि से उनकी रक्षा की जाय, लगान में पच्चीस-तीस प्रतिशत की कटौती की जाय।'' आगे उन्होंने कहा-''यह प्रतियोगिता का युग है, इसमें हमारे किसानों को संसार से टक्कर लेनी है। इस प्रतियोगिता का मुकाबला करने के लिए उन्हें शारीरिक, बौद्धिक तथा नैतिक दृष्टि से पुष्ट बनाने में सहायता करनी चाहिए। अधिक आत्म-सम्मान और निर्भरता और उचित गौरव की भावना का उनमें पोषण किया जान चाहिए। उन्हें सरकारी प्रशासनिक, न्यायिक पुलिस अफसरों तथा जमींदारों एवं उनके कारिन्दों की ओर सिर उठाकर देखने की सीख देनी चाहिए। उन्हें बताना चाहिए कि नागरिकता के वे सभी अधिकार उन्हें भी प्राप्त हैं जो सम्पन्न लोगों को प्राप्त हैं।''

'कमीशन' के सदस्य हेनरी लॉरेन्स के प्रश्नों का जवाब देते हुए पं0 मालवीयजी ने कहा था-''कास्तकार इस समय छोटा आदमी समझा जाता है। मैं चाहता हूँ कि एक कास्तकार का उतना ही सम्मान हो जितना कि वकील एवं डाक्टर का, क्योंकि वह राष्ट्रीय सम्पत्ति में योगदान देता है।...दूसरे सम्मानित पुरूषों की तरह कास्तकारों को भी दरबारों में आमंत्रित किया जाय, उनके साथ ईमानदार संगी-साथियों का सा बर्ताव किया जाय, जो देश के भरण-पोषण के लिए सब कठिनाईयों को सहते हुए खेत जोतते हैं, जिनके लिए सब आभारी हैं।'' इसके लिए उन्होंने एक 'शाही कृषक औद्योगिक संस्थान' खोलने का सुझाव दिया, जिनकी शाखाएँ प्रत्येक जिले में हो और जिनकी बैठकों तथा सम्मेलनों में किसान ससम्मान आमंत्रित किये जाएँ। इस प्रकार किसानों को राजनीतिक मंच पर लाने का सर्वप्रथम प्रयास मालवीय जी ने ही किया था। सन् 1918 के कांग्रेस अधिवेशन में मालवीयजी की ही प्रेरणा से विभिन्न प्रान्तों के लगभग 50 जिलों के 688 किसान प्रतिनिधि उपस्थित हुए थे। कांग्रेस-मंच से वह देश की प्रथम जनजागृति थी, जिसका नेतृत्त्व पं0 मालवीयजी ने किया था।

मालवीयजी देश में पूँजीवादी व्यवस्था तथा उसके अंग स्वरूप औद्योगीकरण के विरूद्ध नहीं थे, परन्तु वे इस बात के प्रबल पोषक एवं समर्थक थे कि उत्पादन तथा उसके लाभ में उत्पादकों की उचित साझेदारी हो। इसी प्रकार मालवीयजी क्रमिक आयकर को उत्कृष्ट रूप

में न्याय संगत समझते थे। वे कर नीति का ऐसा पुनर्गठन करना चाहते थे जिससे गरीबों पर से कर का बोझ हल्का हो और समृद्धिशाली व्यक्तियों पर उसका भार अधिक पड़े। जिससे समाज में फैली आर्थिक असमानता कम हो एवं गरीब और गरीब तथा अमीर और अमीर न बने। उनका कहना था कि, ''यह तो स्वयं-सिद्ध सिद्धान्त है कि जो व्यक्ति शासन से सबसे अधिक लाभ उठाता है, उसे उसके संभरण के लिए अपनी आय के अनुपात में सर्वाधिक अंशदान करना चाहिए।''

भारत के आर्थिक विकास के निमित्त मालवीयजी स्वच्छन्द व्यापार नीति का त्याग तथा सकारात्मक औद्योगिक नीति का अनुसरण आवश्यक समझते थे। उनकी माँग थी कि सरकार देश के औद्योगीकरण पर समुचित ध्यान दे, क्योंकि वे जानते थे कि कृषि और किसानों की दशा बिगाड़ने में ब्रिटेन की औद्योगिक क्रान्ति, उसकी वित्तीय एवं व्यावसायिक नीति का बहुत बड़ा हाथ था। उसने अपने उद्योगों की रक्षा के लिए हिन्दुस्तानी माल पर बहुत अधिक आयात कर लगा दिया था, इसीलिए मालवीयजी का कहना था कि हमें अपने उद्योग-धन्धों को यथासम्भव स्वतन्त्र करने का प्रयत्न करना चाहिए, और उस समय तक सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए, जब तक हम वे सब चीजें तैयार न कर सकें जिनकी हमें जरूरत है और जिनको तैयार करने के लिए आवश्यक भौतिक साधन देश में मौजूद न हो; वे यह भी चाहते थे कि भारत सरकार रेलों का प्रबन्ध अपने हाथ में ले क्योंकि भारत की धरती पर रेल चलने से भारतीय कृषक-व्यापारियों का कोई विशेष लाभ नहीं था। बल्कि ब्रिटिश सरकार ने उसे अपने लाभ के लिए चलाया था। कच्चे मालों की ढुलाई के लिए उसे रेलवे की आवश्यकता थी। भारतीय व्यापारियों के लिए रेलवे किराये-भाड़े बढ़ा दिये गये, जिससे एक जगह से दूसरी जगह माल पहुँचाना मुश्किल था। साथ ही अत्यधिक सीमा-शुल्क के कारण उसे बाहर भी भेजना कठिन था। इस प्रकार देशज रोजगार ठप्प पड़ गये। अब केवल कृषि एवं दस्तकारी ही जीविका के साधन बने रहे। सिंचाई की सुविधा के अभाव में फसल सूख गयी, दस्तकारी में उत्पादन की कमी हुई। फलस्वरूप प्रतिवर्ष अकाल, भुखमरी जैसी स्थिति का सामना करना पड़ा ।

आयात-निर्यात और उत्पादन शुल्कों पर भारत का पूर्ण वित्तीय स्वशासन न होना, देशी उद्योगों को संरक्षण न दिया जाना, देशी सामनों पर अत्यधिक उत्पाद कर, रेल का प्रबन्ध कम्पनी के हाथ में होना, भारत में बैंकिंग व्यवस्था का न होना आदि देशी अर्थ-व्यवस्था को जर्जर बनाने वाले कारण तो थे ही, साथ ही प्रतिवर्ष देश के करोड़ो रूपये नौकरी-पेशे से वेतन एवं पेंशन के रूप में ब्रिटेन जाते थे। व्यवसाय एवं शिल्प की तरफ देशवासियों का कम ध्यान जा रहा था। इसके दो प्रमुख कारण थे-एक तो उनका कोई खास लाभदायक पहलू सामने नहीं था; दूसरा, अंग्रेजों ने उसे अपने औद्योगिक क्षमता के बल पर उखाड़ फेंका था। अतः सरकारी नौकरी अथवा स्वतंत्र व्यवसाय जैसे वकालत, डॉक्टरी आदि की ओर ही भारतीयों का अधिक ध्यान जाता था। किन्तु नौकरी की स्थिति बड़ी विचित्र थी। 1892 में 'पब्लिक सर्विस कमीशन' की संस्तुतियों की आलोचना करते हुए मालवीय जी ने कहा था-''यद्यपि पार्लियामेण्ट ने कानून द्वारा महारानी विक्टोरिया ने अपनी शाही घोषणा द्वारा यह निर्धारण कर दिया है कि भारतवासी हर उस स्थान पर बेरोकटोक भरती किये जायेंगे, जिसके लिए उनमें पर्याप्त योग्यता एवं न्याय-निष्ठा हो। पर वास्तविक व्यवहार में जानबूझकर और निर्लज्जता के साथ उनके दावे की अवहेलना की जाती है और पारिश्रमिक के उन स्थानों पर जिन्हें भरती करने की अपनी योग्यता और चरित्र से भारतीय पूरी तरह सक्षम हैं, यूरोपियन नियुक्त कर दिये जाते हैं।'' सन् 1889-90 में नौकरी में भारतीय एवं विदेशियों का प्रतिशत क्या था, यह मालवीयजी द्वारा प्रस्तुत आँकड़ों से स्पष्ट है कि सबसे कम वेतन के पदों पर ही भारतीयों को रखा गया था और प्रतिवर्ष कुल वेतन एवं पेशन के रूप में जहाँ साढ़े चौदह करोड़ रूपये विदेशों में जाता था, वहाँ सिर्फ 3 करोड़ 10 लाख रूपये ही भारतीयों के पास थे। इस तरह सिर्फ नौकरी पेशे के माध्यम से देश के 11 करोड़ रूपयों का निर्गम हो जाता था। मालवीयजी ने बताया कि-''संसार का कोई भी ऐसा देश नहीं, जो हिन्दुस्तान से अधिक गरीब हो और जहाँ प्रशासकों का वेतन यहाँ से अधिक हो।''

ब्रिटिश-सैन्य व्यवस्था से भी भारतीयों को कोई विशेष लाभ नहीं था, यद्यपि उसका सारा खर्च भारतीय राजकोष को ही वहन करना पड़ता था। मालवीयजी ने 26 मार्च 1927 को लेजिस्लेटिव असेम्बली में कहा था-''ब्रिटेन का सैनिक कार्यालय एक तानाशाह है, जो भारत पर अत्याचार करता है, मनमाने ढंग से अपनी आक्रमणशील साम्राज्यशाही योजनाओं को भारत पर लाद देता है, उसे साम्राज्यिक युद्धों में भाग लेने और उनका खर्च वहन करने पर मजबूर करता है।'' उन्होंने सरकार की 'अग्रवर्ती नीति' को 'आक्रमणशील नीति' की संज्ञा दी थी और कहा था ''इससे भारत की रक्षा का कोई सम्बन्ध नहीं है, वह विशुद्ध रूप में साम्राज्यिक नीति है, ब्रिटिश साम्राज्य का विस्तार उसका लक्ष्य है।'' सरकार ने अफगान युद्ध तो अपने हित में लड़ा था, किन्तु उसका सारा खर्च भारत के मत्थे मढ़ दिया। मालवीयजी ने इसका पुरजोर विरोध किया था और यह भी कहा था कि – ''ब्रिटिश सेना के अंग रूप में ही तथा ब्रिटिश साम्राज्य के हित में ही गोरी सेना भारत में रहती है, इसलिए उसका सब खर्चा ब्रिटेन को ही वहन करना चाहिए।'' सन् 1917 में सरकार ने युद्ध के लिये भारत से 10 करोड़ पाउण्ड (डेढ़ अरब रूपये) लेकर युद्ध-कोष में जमा करने का निश्चय किया, सरकार के समर्थक भारतीय सदस्यों ने इसका समर्थन किया। किन्तु मालवीयजी ने विरोध में कहा कि इसे चुकाने के लिए 30 वर्ष तक 9 करोड़ रूपये वार्षिक अतिरिक्त कर लगाने होंगे और इससे पूरी एक पीढ़ी तक के बहुत आवश्यक किस्म के आन्तरिक सुधार कार्य भी बाधित होंगे। अन्य सदस्यों के पक्ष में होने के कारण मालवीयजी ने अपना विरोध अन्ततः वापस ले लिया था। उक्त राशि के 60 करोड़ रूपये भारतीय जनता से सख्ती से वसूले गये थे।

मालवीयजी ने सेना के बजट में कटौती करने की माँग की। ब्रिटिश बैंकिंग व्यवस्था भी भारतीयों के शोषण का एक विशिष्ट साधन था। देश की पूँजी ब्रिटेन-स्थित बैंकों में जमा होती थी, उससे ब्रिटेन में औद्योगीकरण को लाभ मिलता था। देश की अर्थ-व्यवस्था को

कमजोर करने में ब्रिटिश नौकरशाहों की तड़क-भड़क विलासितापूर्ण जिन्दगी आदि भी बदहाली के विशेष कारणों में थे। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ में जो आर्थिक निर्गम 30 लाख पाउण्ड का था, वह बाद में बढ़कर 3 करोड़ पौण्ड तक हो गया। इन 25-30 वर्षों में सरकारी खर्च भी दुगुना हो गया था।

शिक्षा की व्यवस्था की त्रुटियों की ओर भी मालवीयजी ने सरकार का ध्यान आकृष्ट किया था। उन्होंने कहा कि, 'अधिकांश जनता अब भी अशिक्षित है, और उसका अज्ञान उन्नति में बाधक है। सरकार ने वायदा किया था कि प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क कर दी जायगी, पर अभी तक इस वायदे को पूरा नहीं किया गया है। जबकि ब्रिटेन में सन् 1870 में ही प्रारम्भिक शिक्षा निःशुल्क और अनिवार्य बना दी गयी है, हिन्दुस्तान किस कारण से इस व्यवस्था के लाभ से वंचित रखा जा रहा है?' उन्होंने औद्योगिक और शिल्प शास्त्र सम्बन्धी शिक्षा के विस्तार की आवश्यकता पर जोर देते हुए कहा था कि भारतीय बुद्धि और पराक्रम में किसी से कम नहीं है, पर शिल्प-ज्ञान की कमी के कारण वे विदेशी उद्योगपतियों का मुकाबला नहीं कर पाते हैं। उनके अनुसार ''इस वर्तमान शिक्षा-प्रणाली का सबसे बड़ा दोष यह है कि बीस वर्ष की शिक्षा के बाद भी भारतीय नवयुवक अपना, अपने स्त्री-बच्चों तथा निर्धन माता-पिता के निर्वाह के लिए कुछ नहीं कर पाता। अतः वर्तमान शिक्षा-प्रणाली जड़ से ही दोषयुक्त है और इसमें आमूल सुधार की आवश्यकता है, इसके लिए सामूहिक एवं राजकीय प्रयत्न होने चाहिए।

मालवीयजी ने जनता की दशा सुधारने के लिए प्रशासनिक और सैन्य व्यय को कम करने पर, तथा वित्तीय विकेन्द्रीकरण पर जोर दिया। उन्होंने कहा कि देश की दशा तब तक नहीं सुधर सकती जब तक राजस्व का एक बहुत बड़ा भाग जनता के हित से सम्बन्धित कामों में प्रान्तीय सरकार द्वारा नहीं लगाया जाता। वे आयात प्रतिरोधक शुल्क के अतिरिक्त दूसरे सम्भावित उपायों द्वारा भी देश के उद्योग, व्यवसाय और व्यापार का संरक्षण और संवर्धन करना सरकार का कर्त्तव्य समझते थे। वे चाहते थे कि सरकार सक्रिय रूप से देश की आर्थिक उन्नति को प्रोत्साहित करे तथा कृषकों, औद्योगिकों और व्यापारियों की यथोचित सहायता कर प्रगति में बाधक कठिनाइयाँ दूर करे, एवं जनकल्याण की रक्षा और वृद्धि के लिए आर्थिक व्यवस्था और क्रियाकलापों का नियमन और नियंत्रण करें। राज्य द्वारा सिंचाई के साधनों का विस्तार, कानून द्वारा श्रमिकों के हितों का संरक्षण और सुखसुविधाओं का प्रबन्ध, उच्चतम कृषि शिक्षा तथा व्यापारिक शिक्षा और आधुनिक शिल्पविज्ञान की शिक्षा की राज्य द्वारा व्यवस्था, देश के आर्थिक उत्कर्ष के निमित्त विश्वविद्यालयों में व्यावसायिक और वैज्ञानिक अनुसंधान का समुचित प्रबन्ध, सहकारी संस्थाओं द्वारा जनोपयोगी सेवाओं का विस्तार, राज्य द्वारा स्टेट बैंक की स्थापना, रिजर्व बैंक का शेयर-होल्डर बैंक के बजाय स्टेट बैंक के रूप में गठन, और उसके द्वारा राजकोष का औद्योगिक उन्नति में उपयोग, तथा राष्ट्रहित में सम्पत्ति का नियमन-मालवीयजी की आर्थिक चिन्ता के कतिपय महत्त्वपूर्ण बिन्दु थे।

वे कानून द्वारा सम्पत्ति के अधिकार का संरक्षण आवश्यक समझते थे। उनके विचार में सम्पत्ति की ऐसी व्यवस्था हो कि कोई व्यक्ति सरकार द्वारा मनमाने ढंग से अपनी निजी सम्पत्ति से, अपने न्यायसंगत अधिकार से, वंचित न किया जा सके; राष्ट्रहित में पारित कानून द्वारा ही निजी सम्पत्ति का नियमन हो सके, सरकार उसे अधिग्रहण कर सके।

इस तरह मालवीयजी सामाजिक न्याय के आधार पर मिश्रित अर्थतन्त्र द्वारा जनहितकारी अर्थनैतिक व्यवस्था प्रतिष्ठित करना चाहते थे। उनकी इच्छा थी कि देश की आर्थिक उन्नति के निमित्त निजी देशज उद्योगों का आयात शुल्क द्वारा संरक्षण हो, भारतीय पूँजीपतियों और शिल्पकारों को नये-नये उद्योगों को चालू करने के लिए प्रोत्साहित किया जाय, श्रमिकों के हितों और अधिकारों की समुचित रक्षा की जाय, उन्हें मानवोचित वेतन दिलाने का प्रबन्ध किया जाय, देशहित की दृष्टि से यथावश्यक निजी व्यापार के क्षेत्र में सहकारिता प्रोत्साहित की जाय, सार्वजनिक क्षेत्र में वृहद् उद्योगों तथा अन्य वित्तीय संस्थानों का गठन किया जाय, तथा औद्योगीकरण के निमित्त सरकार द्वारा समुचित व्यवस्था की जाय एवं आर्थिक व्यवस्था से संबंधित सभी लोग न्यासिता की भावना से अनुप्राणित हों, देश के सारे भौतिक वैभव को राष्ट्र की सम्पत्ति और धरोहर समझ सामाजिक उत्तरदायित्व का निर्वाह करें; संक्षेप में, वहीं करें जो राष्ट्रहित में हो।

मालवीयजी पूँजीपतियों के एकाधिपत्य की तुलना में राष्ट्रीयकरण को अधिक जनहितकारी समझते थे। मालवीय जी चाहते थे कि भारतीयों द्वारा भारत के हित में, भारत के गौरव और समृद्धि की वृद्धि के निमित्त ही देश का औद्योगिक विकास हो। उनकी इच्छा थी कि भारतीय उद्योग मूलतः भारतीय औद्योगिकों, विशेषज्ञों तथा अधिकारियों द्वारा भारतीय पूंजी और श्रमिकों के सहयोग से संचालित हों, विदेशी पूंजी और विदेशी विशेषज्ञों का योगदान यथासंभव गौण हो। मालवीयजी भारत में चालू विदेशी उद्योग व्यापार के सम्बन्ध में यह आश्वासन दिये जाने के पक्ष में थे कि कोई ऐसा कानून या आदेश जारी नहीं किया जायेगा जो समान रूप से भारतीय उद्योगों और व्यापारों पर लागू न हो। भूमि-व्यवस्था के सम्बन्ध में मालवीयजी के विचार कुछ हद तक समकालीन कांग्रेसी नेताओं के विचारों के अनुकूल थे। अन्य नेताओं की तरह मालवीयजी भी मालगुजारी के स्थायी बन्दोबस्त के पक्ष में थे। यद्यपि मालवीयजी ने जमींदारी-उन्मूलन की कोई चर्चा स्वयं नहीं की पर दिसम्बर सन् 1928 में सर्वदलीय सम्मेलन के कलकत्ता अधिवेशन में उन्होंने स्वीकार किया कि भारतीय विधानसभाएं यदि चाहें तेा न्याय की प्रतिष्ठा तथा देश के हित में कानून द्वारा मुआवजा देकर जमींदारी का उन्मूलन कर सकती हैं।

इस प्रकार हम पाते हैं कि मालवीयजी के आर्थिक विचार भारतवासियों एवं भारत के हित के लिए ही थे। उनकी दृष्टि में देश का विकास ही सर्वोपरि था।

सन्दर्भ

1. महामना मोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व, प्रो0 मुकुट बिहारी लाल
2. भारत भूषण महामना पं0 मोहन मालवीय, डॉ0 उमेश दत्त तिवारी

◆

भाषा और शिक्षा : माध्यम की भाषा के उन्नयन में पंडित मदन मोहन मालवीय का योगदान

डॉ0 कुमारी मीनाक्षी दूबे *

मनुष्य को उस राह पर चलना चाहिए जो राह असत्य की तरफ न ले जाकर सत्य की राह पर ले जाए, वह मार्ग नहीं जो तुम्हें मृत्युपथ की ओर खींचें, अपितु उस मार्ग पर चले जो अमृत तत्व की राह बनें और वह मार्ग भी नहीं जो तुम्हें अन्धकार में भटकाए बल्कि वह मार्ग जो तुम्हें प्रकाश-पथ की ओर ले चलें—इसीलिए तो उपनिषदों में कामना की गई—

''असतो मा सद्गमय,
तमसो मा ज्योतिर्गमय,
मृत्योमाऽमृतं गमय॥''

ऋषियों की यह वाणी संसार को उस कर्त्तव्य पथ की ओर चलने के लिए कहती है, जो उसके लिए इस सृष्टि ने निर्धारित किए हैं। मानव जन्म अमूल्य है। उसका जन्म केवल रोटी, कपड़ा और मकान के दायरे में सिमटा नहीं होना चाहिए, क्योंकि इन आवश्यकताओं की पूर्त्ति तो संसार के समस्त प्राणी किसी न किसी रूप में प्राप्त कर ही लेते हैं। पर मनुष्य की आत्मा में बसता ईश्वर रूपी ज्योति पुंज उसे अन्य प्राणियों से विलक्षण बना देता है।

मनुष्य यह जान लें कि उसका कर्त्तव्य मार्ग क्या है? उसके जीने का उद्देश्य क्या है? तो कर्त्तव्य मार्ग में चाहे कितनी भी बाधाएँ आए, वह एक न एक दिन अपने उद्देश्य की प्राप्ति कर ही लेता है।

''उदार चरितानाम तू वसुधैव कुटुम्बकम्''

यह विश्व धरा उसके लिए एक 'घर' परिवार बन जाता है। फिर वह स्वयं के लिए बल्कि संसार के समस्त प्राणियों के लिए अपने जीने का उद्देश्य बना लेता है।

समय-समय पर इस धरा पर महापुरुषों मार्गदर्शकों एवं ज्ञानीजनों का अवतरण होता रहा है, जिन्होंने अपने वचनों से, ज्ञान से समाज का मार्गदर्शन किया है। मार्ग से भटके, आशा निराशा के भँवर में फँसे प्राणियों को नयी दिशा दिखलाई है, चाहे मार्ग अलग-अलग रहें हों, लेकिन उद्देश्य एक था मानवता के उच्च शिखर की प्राप्ति। समस्त विश्व जगत् को आलोकित करने वाला, जगत का कल्याण करने वाला, मानव सभ्यता का यदि कोई मार्ग था तो वह था ''शिक्षा''। शिक्षा सतत् जीवन में चलने वाली वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्तित्व का विकास स्वप्रयास से किया जा सकता है। शिक्षा शब्द संस्कृत के शिक्ष् धातु से लिया गया है। इसी को लैटिन भाषा में एजुकेयर (पालन-पोषण करना या विकसित करना)। अंग्रेजी भाषा 'एजुकेशन' सीखना और सिखाना दोनों ही क्रियाएं इसके अन्दर समाविष्ट हैं। इसी के माध्यम से व्यक्ति के आन्तरिक शक्तियों का उद्घाटन होता है।

समाज और देश को विश्व पटल पर स्थापित करने वाले दृढ़संकल्पनिष्ट भारतीय संस्कृति के पुरोधा पण्डित मदन मोहन मालवीय ने कर्त्तव्य पथ पर चलते हुए सत्यम्, शिवम्, सुन्दरम् की स्थापना की। उन्होंने श्रीमद्भागवत प्रवचनकारी परिवार में जन्म लेकर पारिवारिक दायित्वों का निर्वाह करते हुए तत्कालिन परिस्थितियों में देश की आजादी व भारतीय संस्कृति की आजादी के लिए जीवन पर्यन्त संघर्ष कर भारतीय जीवन मूल्यों की स्थापना करना अपने जीवन का ध्येय बना लिया। तत्कालीन परिस्थितियों में देश को स्वतंत्र करना भारतीय होने के नाते उनका प्रथम कर्त्तव्य था। एक तरफ स्वामी विवेकानन्द युवकों को सन्देश देते हुए कहते हैं—''अपने पैरों पर खड़े हो जाओ, देर न करो, क्योंकि जीवन क्षण अस्थायी है, वकील बैरिस्टर बनने की अभिलाषा ही जीवन की सर्वोच्च अभिलाषा नहीं है, इससे ऊँची अभिलाषा रखो और अपनी जाति, देश, राष्ट्र और मानव व समाज के कल्याण के लिए आत्मोत्सर्ग करना सीखो, जीवन की अवधि अल्प है, परमात्मा, अजर अमर अनन्त है और मृत्यु अनिवार्य है। इसलिए आओ हम अपने आगे एक महान् आदर्श खड़ा करें और उसके लिए अपने जीवन का उत्सर्ग कर दें।

मालवीय जी उसी उच्च आदर्श के परिप्रेक्ष्य में कहते हैं—''भारत, भगवद्गीता, भारती भाषा और भारत वर्ष में भक्ति करो जिन बातों से देश में सम्पत्ति बढ़े उसके विषय से सचेत रहो। देश के निवासियों का सब ओर से उदय हो, स्थायी सुख सम्पत्ति तथा प्रभाव एवं धर्म रक्षित हों''।

सनातन धर्मी होने के कारण मालवीय जी की हिन्दू धर्म में गहरी आस्था थी। 'हिन्दू' उनके लिए केवल एक शब्द या धर्म तक ही सीमित नहीं था। ऐसा नहीं बल्कि हिन्दू शब्द की राष्ट्रीय अवधारणा में भारतीय जीवन शैली का वह उद्दात स्वरूप है, जो विश्व के अन्य राष्ट्रों में परिलक्षित नहीं होता।

भारतीय जीवन पद्धति चिर पुरातन रही है। सनातन काल से इसका यशोगान होता रहा है। इसकी रक्षा करना हर भारतीय का प्रथम कर्त्तव्य है—अतः जब वे भारत, भगवद्गीता, भारती, भाषा और भारतवर्ष के विषय पर बोलते हैं, तो उनका आशय भारतीय संस्कृति की उन मान दण्डों की ओर है जिसके कारण उसे सर्वश्रेष्ठ कहा गया है।

भारत वह देश है जिसके हम मूल निवासी हैं। भरत वह आदर्श चरित्र जिसने अपने जीवन में ऐसे नैतिक मूल्यों की स्थापना की जिसके कारण इस देश का नाम भारतवर्ष पड़ा। भरत का शाब्दिक अर्थ करे तो भ+रत अर्थात् 'भृ' धातु अर्थात् भ होना भरण पोषण करने वाला 'रत्' प्रत्यय अर्थात् रमने वाला; तात्पर्य यह कि वह व्यक्ति जो प्राणिमात्र

* वरिष्ठ प्रवक्ता, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (भारत सरकार), आगरा।

का भरण-पोषण करने में ही जीवन की सार्थकता समझता हो। वह चाहे चन्द्रवंशी हो या सूर्यवंशी। 'भरत' जीवन का मंथन है जिसकी आग में तपकर ही व्यक्ति की पहचान बनती है। व्यक्तित्व जीवन सत्य के कठोर चक्रों से गुजरकर ही निखरता है। वह राष्ट्र का निर्माता कहलाता है देश उसके नाम से जाना जाता है।

मालवीय जी की संकल्पना का ''भारत'' आदर्श चरित्र के नैतिक मूल्यों की स्थापना करने की रही। वे प्रत्येक भारतवासी के नैतिक उत्थान के प्रति कटिबद्ध रहे हैं। नैतिक मूल्यों की स्थापना तभी हो सकती है, जब चारित्रिक शक्तियों का विकास हो, इसके लिए वे ऐसी शिक्षा पद्धति पर बल देते हैं जो सर्वग्राही है। सभी के लिए सुलभ हो, जिसकी नींव बचपन में ही रख देनी चाहिए, क्योंकि वर्तमान शिक्षा जिसकी स्थापना लार्ड मैकाले ने की थी, वह भारतीय संस्कारों एवं भारतीय निजता पर प्रहारक बन रही थी। देश का पढ़ा-लिखा वर्ग भारतीय नैतिक मूल्यों के धरातल से कटता चला जा रहा था। उसकी शिक्षा का विस्तार सीमित क्षेत्र तक ही रह गया था। व्यक्तित्व आत्मकुंठित होता जा रहा था। देश और समाज उसके लिए गौण होते जा रहे थे।

'भगवत् गीता' मालवीय जी के लिए एक ग्रन्थ या धार्मिक ग्रंथ न होकर जीवन दर्शन हैं। यह सत्य की राह पर चलते हुए कर्म मार्ग पर अग्रसर कराती है। दुविधा का मार्ग राह में चाहे कितने भी रोड़े अड़काए कभी भी सत्य के मार्ग का त्याग नहीं करना चाहिए।

''अथ चितं समाधातु न शक्नोधि मयि स्थिरम्।
अभ्यास योगेन तो मामिच्छारतुं धनंजय।'' गीता (12.9)

अतः अभ्यास और योग सत्य मार्ग पर चलने का वह साधन है जिसके माध्यम से व्यक्ति अपने जीवन लक्ष्यों की प्राप्ति कर लेता है।

करत-करत अभ्यास के, जड़मति होत सुजान।
रसरी आवत जात ते सिल पर पड़त निसान॥

''अभ्यास'' जड़मति को सुजान अर्थात् ज्ञानवान बना देता है। इसलिए ''गीता'' व्यक्तित्व का विकास करती है। व्यक्ति को संस्कारवान बनाती है। उसे चरित्रवान् बनाकर सामाजिक, आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक जीवन मूल्यों की स्थापना करती है। यह योग पथ पर मानव को अग्रसर करती है। 'योग' साधना का वह बिन्दु है जहाँ व्यक्ति की शारीरिक, मानसिक शक्तियों का विकास होता है।

मालवीय की प्रारम्भिक शिक्षा संस्कृत पाठशाला से प्रारम्भ हुई थी। उन्होंने प्राचीन संस्कृत ग्रन्थों का गहरा अध्ययन भी किया था। उतनी ही निष्ठा से आगे की पढ़ाई अंग्रेजी भाषा के भी माध्यम से किया था। कानून की पढ़ाई करते समय ऊर्दू भाषा का भी अध्ययन किया था। फिर भी 'भाषा' के सम्बंध में वे हिन्दी भाषा को ही राष्ट्र भाषा के पद पर प्रतिष्ठित देखना चाहते थे। कारण स्पष्ट है हिन्दी अखण्डता एकता और समन्वय की भाषा है। पूरब से पश्चिम, उत्तर से दक्षिण इसके बोलने और समझने वाले लोग मिल जायेंगे। यह धार्मिक, राजनैतिक, सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक स्तर पर देश को जोड़ने का कार्य करती है। उसी तरह, जिस तरह एक समय संस्कृत भाषा का था। 'संस्कृत' शब्द मूलतः 'संस्कार' को परिभाषित करता है और भाषा तो परिवर्त्तनशील रहती है। समय देश, और काल के अनुसार मनुष्य व प्रकृति का आचार विचार-व्यवहार बदलना स्वाभाविक है। भूलना मनुष्य का स्वभाव रहा है। चूँकि प्रारम्भिक काल में स्मरण करने की परम्परा रही इसलिए वेद छन्दबद्ध है। यह एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक इसी रूप में ग्रहण किए जाते रहे हैं। अतः इसमें विकार आना स्वाभाविक था। पाणिनी ने सर्वप्रथम संस्कृत को इसी रूप में प्राप्त किया था। अष्टाध्यायी के व्याकरण सूत्रों के द्वारा ग्रन्थ में उसे व्याकरण सम्मत बनाया, जिससे भाषा में कोई विकार उत्पन्न न हों। पाणिनी का ध्येय सिर्फ बोले जाने स्वरूप को सुव्यवस्थित करने का था। अतः संस्कृत शिष्टता की पहचान बनी तो सामान्य जन के जीवन का प्रतिरूप लौकिक संस्कृत प्राकृत पालि अपभ्रंश भाषाओं का संवाहिका के रूप में जानी-पहचानी गई। ''हिन्दी'' निजता की पहचान है, भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के शब्दों में यदि कहे तो—

''निज भाषा उन्नति अहैं, सब उन्नति को मूल
बिनु निज भाषा ज्ञान के, मिटत न हिय को शूल।''

''हिन्दी'' के सम्बध में भारतेन्दु जी की व्यापक धारणा से मालवीयजी भी सहमत थे, इसीलिए उन्होंने जब पत्रकारिता को अपना मिशन बनाया तो उसकी भाषा भी हिंदी ही थी। उन्होंने सन् 1825 से 1887 इण्डियन यूनियन पत्र, सन् 1887 में कालाकॉकार के राज साहब के कहने पर 'हिन्दुस्तान' साप्ताहिक सामाचार पत्र का सम्पादन किया। सन् 1808 में स्वयं 'अभ्युदय' नामक समाचार पत्र एवं सन् 1933 गुरु पूर्णिमा के दिन 'सनातन धर्म' नामक साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन किया।

सन् 1892 में जब मालवीय जी हाइकोर्ट के वकील बने तब उन्होंने पाया कि कचहरी की सारी कार्यवाही में उर्दू भाषा का ही प्रयोग किया जा रहा है। यहाँ तक कि यदि आप मुन्सिफ या न्यायाधीश बनना चाहते हों तो आपको उर्दू परीक्षा पास करनी होगी, क्योंकि अब तक न्यायालयों की सारी कार्यवाही उर्दू, फारसी में होती है। न्यायालयों के प्राचीन दस्तावेज भी उसी भाषा में लिखे गये हैं। महामना को यह उचित नहीं लगा। उर्दू लिपि और उर्दू भाषा में उन्होंने अंग्रेजों के समक्ष इस समस्या के समाधान के लिए निवेदन प्रस्तुत किया कि जब न्यायालय की कार्यवाही लिपि में लिखी जाती है तो फारसी और अरबी शब्दों का व्यवहार क्यों हो रहा है? जबकि न्याय पाने वाला आम जन तो सामान्यतः उन शब्दों से परिचित भी नहीं इन शब्दों का व्यवहार वह दैनिक जीवन में करता भी नहीं। अंग्रेजी हुकुमत ने मालवीय जी के इस निवेदन को स्वीकार करते हुए एक जनवरी सन् 1900 ई0 से यह आदेश पारित कर दिया कि न्यायालयों की सारी कार्यवाही उर्दू के साथ-साथ देवनागरी लिपि में ही की जाय।

शिक्षा का माध्यम भी हिंदी बने वह इसके पक्षधर थे, क्योंकि ''भविष्य में हिन्दुस्तान की उन्नति हिंदी को अपनाने से ही हो सकती है।

मैं गांधी को विश्वास दिलाता हूँ कि जैसे-जैसे हिंदी की पुस्तकें तैयार होती जायेंगी, हम हिंदी को अपनाते जायेंगे''। इसके लिए स्कूल-कालेज के स्तर पर हिन्दी पठन-पाठन की बात करते हैं। उन्होंने कहा—''जो स्कूल कालेज स्थापित किए गए हैं, उनमें लड़के हिन्दी पढ़ें। यूरोपीय इतिहास, काव्य, कला-कौशल आदि की पुस्तकें हिंदी में अनुदित हों। हिन्दी में उपयोगी ग्रन्थों की संख्या बढ़ाई जाय, सरकार ने स्कूलों में हिंदी जारी कर दी है। अब हमें चाहिए कि हम हिंदी की उत्तमोत्तम पाठ्य-पुस्तकें तैयार करें। (विश्व के श्रेष्ठ शिक्षा-शास्त्री पृ0 313)।

पुस्तकें ज्ञान की अमूल्य निधि होती हैं, जिसके अध्ययन से एक तरफ जहाँ ज्ञान का विकास होता है वहीं देश-विदेश में घटने वाली घटनाओं की विस्तृत जानकारी प्राप्त होती है। स्कूली शिक्षा और विश्वविद्यालय स्तर पर मालवीय जी पाठ्यक्रम इस प्रकार का बनाना चाहते थे, जिसमें भारतीय शिक्षा पद्धति के साथ अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र राजनीति शास्त्र, भारतीय कला दर्शन, विदेशी शिक्षा, तकनीकी शिक्षा, वैज्ञानिक शिक्षा, भाषा संस्थान, आयुर्वेद, यूनानी शिक्षा के साथ-साथ एलोपैथी की शिक्षा की उचित व्यवस्था हो।

महामना का मानना था, यदि राष्ट्र को मजबूत बनाना है तो सर्वप्रथम हमें राष्ट्र की नींव को मजबूत बनाना होगा। किसी भी राष्ट्र के मेरूदंड बच्चे होते हैं, इसलिए शिक्षा व्यवस्था में बालक को ऐसी शिक्षा देनी चाहिए जिससे शारीरिक, मानसिक, बौद्धिक शक्ति के विकास के साथ-साथ चारित्रिक विकास भी हो। शिक्षा का उद्देश्य केवल साक्षरता तक ही सीमित न हो बल्कि वह वैयक्तिक और सामाजिक मूल्य परक हो। शिक्षा के तीन स्तर प्रारम्भिक, माध्यमिक, उच्च एवं विशेष शिक्षा के प्रमुख आधार स्तंभ होने चाहिए।

◆

कृषि विज्ञानः महामना की दूरदर्शिता

डा0 ओम प्रकाश मिश्र एवं प्रकाश कुमार झा*

''जो समय का नाग नथते हैं, वृन्दावन उनके पीछे चलता है। भारती होतीं स्वयं धन्य, युग उनका अभिनन्दन करता है।''

ऐसे ही युग पुरुष **महामना पं0 मदनमोहन मालवीय जी** के 150वीं जन्म जयन्ती के अवसर पर कृषि विज्ञान संस्थान परिवार की तरफ से उन्हें हम नमन करते हैं।

आज हम भारत को एक उत्तम गौरवशाली देश के रूप में विकसित करने के लिए नाना प्रकार के प्रयास आर्थिक एवं सामाजिक क्षेत्रों में कर रहे हैं, परन्तु वास्तविक सामाजिक मानवीय प्रगति के लिए इन सभी प्रयासों का आधार नैतिक एवं मानवीय मूल्य ही हो सकते हैं। पिछले दो सदियों में भारतवर्ष ने जिन असाधारण व्यक्तियों को जन्म दिया, उनमें **'पं0 मदन मोहन मालवीय जी'** का स्थान अग्रणी श्रेणी में आता है।

जब भी मानवीय मूल्य एवं चरित्र निर्माण, उद्देश्यपरक शिक्षा व्यवस्था की बात होती है, तो अनायास ही सिर्फ एक प्रतिमूर्ति मन में प्रतिबिम्बित होती है; वो हैं, **'महामना'** । अपने मानवीय गुणों एवं सार्थक सेवाओं के कारण ही वे **'महामना'** कहलाये । जिन-जिन क्षेत्रों में उन्होंने सेवाएँ दी, सभी क्षेत्रों को अपनी उपस्थिति से आदरणीय बनाया।

'महामना' की महान कृति काशी हिन्दू विश्वविद्यालय से जुड़े रहकर हम एक विशेष प्रकार के गर्व का अनुभव करते हैं, एवं असंख्य देशवासियों एवं प्रशंसकों के साथ इस असाधारण विभूति की **150 वीं जन्म जयन्ती** के अवसर पर पुनीत श्रद्धा सुमन अर्पित करते हैं।

महामना का शिक्षा-दर्शन

मालवीय जी की कल्पना शक्ति बड़ी अनूठी थी। उन्हें इस बात का आभास था कि भविष्य की सबसे बड़ी आवश्यकताओं की पूर्ति उत्तम शिक्षा और चरित्र निर्माण से ही संभव है। शैक्षिक रूप से परिवर्तित होकर कोई व्यक्ति समाज को परिवर्तित करता है, क्योंकि सामाजिक परिवर्तनों में शिक्षा की महत्त्वपूर्ण भूमिका होती है।

महामना ने राष्ट्रीय शिक्षा के पाँच माध्यम बताएँ हैं :-

(1) लोक शिक्षण (2) संस्कार शिक्षण (3) बाल शिक्षण (4) शक्ति संवर्धन शिक्षण (5) सुपोषण शिक्षण

इस विषय में उनका एक श्लोक बहुचर्चित है :-

''ग्रामे ग्रामे सभा कार्या ग्रामे ग्रामे शुभा कक्षा।
पाठशाला मल्लशाला गवां सदन मेव च ॥''

उपरोक्त श्लोक को उद्धृत कर उन्होंने आचार्यों से गाँवो में जनसभा का लोकशिक्षण, व्यायामशाला में शक्ति संवर्धन शिक्षण और गोशालाओं में सुपोषण शिक्षण देने पर बल दिया।

मालवीय जी के मन में समग्र शिक्षा की कल्पना गांधीजी की बुनियादी शिक्षा से थोड़ी अलग थी। तात्कालिक शिक्षा व्यवस्था में खण्डित करके जो ज्ञान दिया जा रहा था, उससे एक दरिद्र अभिमान की उत्पति हो रही थी; इसे तोड़ने का काम मालवीय जी ने किया। उनकी कल्पना थी कि ज्ञान-विज्ञान की आधुनिकता एवं समरसता एक गुरूकुल में हो, जो अंकुरित होकर **काशी हिन्दू विश्वविद्यालय** के रूप में अवतरित हुआ।

उत्तम स्वदेशी शिक्षा, जो चरित्र-निर्माण केंद्रित था, का सपना संजोए मालवीय जी ने विश्वविद्यालय की स्थापना का संकल्प लिया। यह विचार समकालीन प्रबुद्धजनों को भी प्रारम्भ में केवल काल्पनिक ही लगता था, परन्तु महामना के पुरुषार्थ से उनका सपना मूर्त रुप लेता गया। महामना ने न केवल इसे वास्तविक रूप दिया, अपितु इसे ऊँचाइयों तक पहुँचाने की एक समुचित नींव भी उन्होंने प्रदान की।

अपने किसी स्वप्न को साकार होते देखना, साथियों-सहयोगियों के साथ मिलकर उसे गढ़कर संवर्धित करना विरले लोगों का भाग्य बनता है। जन-जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में कार्य करते हुए शिक्षा को अपनी सेवाओं का विषय बनाना शायद महामना की सर्वोच्च देन हैं।

महामना की अनूठी सोचः कृषि विज्ञान

कोडनुस्यादुपायोडत्र येनाहं दुःखितामनाम्।
अन्तः प्रविश्यभूतानां भवेयं दुःखभाक् सदा॥

''वह कौन सा उपाय है, जिसके द्वारा मैं दुःखी जीवों के अन्तःकरण में प्रवेश कर उनके दुःखों से दुःखी होउँ और उनके दुःख को दूर करने में प्रवृत्त हो जाउँ ।''

बीसवीं सदी के पहले दशक में, महामना अपनी राजनीतिक यात्राओं के दौरान, उत्तर भारत एवं पूर्वांचल की दयनीय स्थिति देखकर काफी द्रवित हुए। उनकी परिकल्पना थी कि इस संसार में सुख की इच्छा रखने वाले बुद्धिमान व्यक्ति को चाहिए कि वह आहार, आचार और सभी प्रकार की चेष्टाओं में हितकर वस्तु का सेवन करने में अधिक प्रयत्न करे। अतैव उत्तम आहार निहित है, उत्तम कृषि व्यवस्था में जो कि उत्तम कृषि शिक्षा से पल्लवित एवं पुष्पित होती है। इस लिए अपनी समग्र शिक्षा व्यवस्था में उन्होंने कृषि विज्ञान को अहम भूमिका प्रदान की।

* सह प्राध्यापक, प्रसार शिक्षा विभाग, कृषि विज्ञान संस्थान, का0हि0वि0वि0, वाराणसी

पूर्वांचल क्षेत्रों की उर्वरता एवं उपजाऊ क्षमता और समुचित संसाधनों का अभाव जैसे महत्त्वपूर्ण कारणों ने उन्हें कृषि शोध की जरूरत महसूस कराई और 1931 में कृषि शोध संस्थान की स्थापना हुई। कृषि विकास से संबद्ध उनके उत्तम विचार ने उन्हें राजकीय कृषि आयोग का सदस्य बनाया एवं तत्पश्चात आयोग की सिफारिशों के अनुरूप कृषि शोध संस्थान की स्थापना इस विश्वविद्यालय में हुई। उनकी सोच थी कि उत्तम शोध से कृषि की नई-नई किस्में, उन्नत तकनीकी एवं संसाधन प्रबंधन से न ही सिर्फ इस क्षेत्र की पैदावार बढ़ेगी और लोग आत्मनिर्भर होंगे, अपितु कृषि शिक्षा एक अलख जगाएगी और कृषि क्षेत्र में नई क्रांति लाएगी।

कृषि विज्ञान संस्थान : विश्वविद्यालय का हृदय-स्थल

महामाना की दूरदर्शिता एवं अदुभुत प्रतिभा के हम सभी कायल हैं। वे कृषि को सदैव कर्म का पर्याय मानते थे। इसलिए उन्होंने **श्री विश्वनाथ मन्दिर, केन्द्रीय ग्रन्थालय एवं कृषि विज्ञान संस्थान** का त्रिशंकु बनाया जो कि क्रमशः **भक्ति, ज्ञान एवं कर्म** के द्योतक हैं। चूकि ज्ञान, भक्ति (संस्कार) एवं कर्म चरित्र निर्माण के अभिन्न घटक हैं, और आज का कृषि विज्ञान संस्थान इसी भक्ति, ज्ञान एवं कर्म की समरसता के साथ दिनोंदिन पल्लवित एवं पुष्पित हो रहा है।

आज हम कृषि विज्ञान के उन्नत युग में नित नूतन आयाम स्थापित कर रहे हैं। विकास की प्रतिद्वन्दिता भी बड़ी अजीब है, जो अपनी परम्पराओं और संस्कृति को पैरों तले कुचल, हमें आगे बढने की मृग-मरीचिका जैसी सीढ़ी दिखा रही है। विज्ञान की प्रगति निःसंदेह काबिल-ए-तारीफ है, परन्तु मानवीय मूल्यों की होली जला, सांस्कृतिक विनाश व नैतिक पतन की तर्ज पर किया जा रहा अत्याधुनिक चकाचौंध भरा विकास सिर्फ एक बेईमानी ही तो है। महामना की इसी दूर दृष्टि एवं चिंतन को ध्यान में रखते हुए, कृषि विज्ञान संस्थान नित नए-नए विकास कर रहा है, पर मानवीय मूल्यों को बिना ताक पर रखते हुए; इसलिए इस संस्थान का आदर्श वाक्य है : 'कृषि विज्ञान : विज्ञान का मानवीय चेहरा (Agricultural Sciences : Science with a Human Face)।

अतैव कृषि विज्ञान संस्थान उन सभी आयामों को ध्यान में रखकर, मूल्यपरक शिक्षा, उच्चकोटि की शोध प्रणाली, सूचनाओं एवं ज्ञान का विस्तार जन-जन तक पहुँचाने को प्रतिबद्ध है।

कृषि विज्ञान संस्थान : कल और आज

राजकीय कृषि आयोग (Royal commission on Agriculture), की सिफारिशों के अनुरूप 1931 में कृषि शोध संस्थान की स्थापना हुई, जो कि अपने स्थापत्य काल में कृषि में परा-स्नातक एवं शोध कार्यक्रम में पथ-प्रदर्शक संस्थान के रूप में था। सन् 1945 में स्नातक की पढ़ाई भी शुरू की गई और संस्थान का नाम बदलकर कॉलेज ऑफ एग्रीकल्चर कर दिया गया और सन् 1968 में स्वतंत्र संकाय के रूप में कृषि विज्ञान संकाय का नाम दिया गया।

नित निरंतर कृषि विकास की जरूरत को महसूस करते हुए इसे एक संगठित संस्थान का दर्जा देने के प्रयास होने लगे। अतः ICAR एवं UGC की सिफारिशों के मद्देनजर इसको कृषि विज्ञान संस्थान का दर्जा सन् 1980 में दिया गया, जो कि वर्तमान की स्थिति है।

सन् 1931 में मात्र तीन शिक्षकों के अदम्य प्रयास से शुरू की गई, इस व्यवस्था ने आज कृषि विज्ञान में नई उँचाईयाँ छू ली है और कृषि शिक्षा में पूरे देश में प्रसिद्ध है। अखिल भारतीय स्तर पर प्रवेश प्ररीक्षा ली जाती है इसमें प्रवेश के लिए। स्नातक स्तर पर 123 सीटें हैं। इसमें 15% एवं 25% स्नातक एवं परास्नातक स्तर पर ICAR के लिए आवंटित की गई है। छात्रों के लिए 2 छात्रावास, डॉ0 एस0 आर0 के0 छात्रावास (स्नातक) एवं बाल गंगाधर तिलक छात्रावास है। सभी छात्रावास 24 घंटे इंटरनेट सेवा, मिनीलाइब्रेरी, संगीत कक्ष, रीडिंग रूम, कॉमन रूम, टेलीविजन के साथ सहकारी मेस व्यवस्था से सुसज्जित है।

केन्द्रीय ग्रन्थालय के अलावा संस्थान की अपनी एक पुस्तकालय है। पुस्तकालय में सभी विभागों के कुल मिलाकर 25,000 से ज्यादा पुस्तकें हैं और 25 से ज्यादा मासिक पत्रिकाएँ एवं दैनिक समाचार छात्रों एवं अध्यापकों के लिए हैं।

इस संस्थान में **केन्द्रीय छायाचित्र इकाई** भी है। विश्वविद्यालय के प्रत्येक कार्यक्रम की छवि उतारने का जिम्मा भी इसी इकाई के हाथ में है।

कृषि विज्ञान संस्थान के वैज्ञानिक कई शोध कार्यक्रम में काम कर रहे हैं। ये कार्यक्रम ICAR, UGC, CSIR, UPCAR, DST, NABARD, WORLD BANK जैसे संस्थानों से वित्त-प्रदत्त हैं।

ये सारे शोध-कार्यक्रम संस्थान के पाँच सहायक इकाई के सहयोग और भागीदारी से होते हैं।

1) कृषि क्षेत्र (Farm) : 60 हे0
2) बरकच्छा फार्म : 1000 हे0
3) डेयरी फार्म
4) कृषि विज्ञान केन्द्र, बरकच्छा
5) केन्द्रीय नर्सरी एवं उद्यान विशेषज्ञ इकाई

कुशल एवं निपुण स्नातक छात्रों को रोजगार एवं प्रशिक्षण के उत्तम साधन उपलब्ध कराने के लिए प्रशिक्षण एवं नियुक्ति विभाग है। राष्ट्रीय एवं अतर्राष्ट्रीय कपनियाँ यहाँ से होनहार बच्चों का चयन कर ले जाती हैं। कृषि आधारित कंपनियाँ; बैंक, सरकारी एवं गैर सरकारी संस्थान छात्रों को चयनित कर नौकरी देते हैं। शिक्षा सामंजन के आलोक में विदेशों के विश्वविद्यालयों से भी शैक्षणिक समझौते हुए हैं। JRF, SRF, ARS एवं कई अच्छे-अच्छे पदों पर छात्रों का चयन संस्था की गुणवत्ता का परिचायक है, जो सभी क्षेत्रों में जाकर संस्थान एवं मालवीय जी का नाम रौशन करते हैं।

कृषि विज्ञान संस्थान : बहुआयामी संस्थान

यूँ तो इस संस्थान में 11 विभाग, एक केन्द्र एवं 5 सहयोगी इकाई हैं, पर सभी विभागों का आपसी सामंजस्य, शोध एवं शिक्षा प्रक्रिया को प्रशस्त करता है।

1) सस्य विज्ञान विभाग

सन् 1943 में कृषि शोध संस्थान के खंड के रूप में स्थापित हुआ और 1969 में संपूर्ण विभाग का रूप ले लिया। यह विभाग सभी स्तर पर पाठ्यक्रम प्रदान करता है, जो कि फसलोत्पादन, मृदा उर्वरता, जल प्रबंधन एवं खरपतवार प्रबंधन पर विशेष बल देता है। ICAR, RWC, CIMMYT, NATP द्वारा वित्त प्रदत्त शोध कार्यक्रमों में काम किया जाता है। खेती की पद्धति, वर्षा जल प्रबंधन, बोरो धान, शुष्क खेती, संसाधन प्रबंधन एवं फसलों की गुणवत्ता वृद्धि जैसे प्रमुख शोध विषय रहे हैं। यह विभाग किसानों की गोष्ठी, प्रशिक्षण और ज्ञान-प्रसार पर भी विशेष बल देता है। इस विभाग में दूरदर्शन एवं आकाशवाणी के संसाधन व्यक्ति भी हैं। वैज्ञानिकों एवं अध्यापकों ने कई राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय विषयों पर पत्र भी प्रकाशित किए हैं।

2) पादप प्रजनन एवं आनुवांशिकी विभाग

सात प्रबुद्ध वैज्ञानिकों से शुरू हुआ यह विभाग सन् 1968 के बाद भारत के सर्वोच्च जाने-माने प्राध्यापकों एवं वैज्ञानिकों से भरा पड़ा है। यह विभाग अपनी नई-नई फसलों की किस्में के लिए देशव्यापी विख्यात है। इस विभाग ने अनाजों एवं दलहनों में उत्तम कोटि के किस्मों का इजाद किया है। ये किस्में न केवल अच्छी पैदावार देती हैं, अपितु विभिन्न रोगों और अवरोधों से प्रतिरोधी भी हैं। परंपरागत आनुवांशिकी के साथ-साथ अत्याधुनिक ऊतक संवर्धन प्रयोगशाला, बॉयोटेकनालाजी बॉयोमेट्रिकल आनुवांशिकी में भी इस विभाग ने अद्‌भुत काम किए हैं।

गेहूँ, धान, मक्का, मटर, मूँग, अरहर एवं में इस विभाग ने कई किस्में निकाली हैं, जिन्हें मालवीय किस्मों के नाम से जाना जाता है।

गेहूँ की प्रजातियाँ

HUW-12 (मालवीय गेहूँ 12)
HUW-37 (मालवीय गेहूँ 37)
HUW-55 (मालवीय गेहूँ 55)
HUW-206 (मालवीय गेहूँ 206)
HUW-213 (मालवीय गेहूँ 213)
HUW-234 (मालवीय गेहूँ 234)
HUW-251 (मालवीय गेहूँ 251)
HUW-318 (मालवीय गेहूँ 318)
HUW-468 (मालवीय गेहूँ 468)
HUW-510 (मालवीय गेहूँ 510)
HUW-533 (मालवीय गेहूँ 533)

पूर्वोतर (उत्तरप्रदेश, बिहार और आसपास) प्रदेशों में **मालवीय गेहूँ 234** बहुत बड़े क्षेत्र में पैदा की जाती है।

धान की प्रजातियाँ :

HUR-36 (मालवीय धान 36)
HUR-3022 (मालवीय धान 3022)
HUBR-2-1 (मालवीय बासमती धान 2-1)
HUR-105 (मालवीय धान 105) बासमती किस्म
HUR-5-1 (मालवीय धान 5-1)
HUR-9-2

मूँग की प्रजातियाँ :

HUM-1 (मालवीय ज्योति)
HUM-2 (मालवीय जागृति)
HUM-6 (मालवीय जनप्रिया)
HUM-12 (मालवीय जनचेतना)
HUM-16 (मालवीय जनकल्याणी)

अरहर :

MA-3 (मालवीय विकल्प)
MA-6 (मालवीय विकास)
MAL-13 (मालवीय चमत्कार)

मसूर :

HUL-57 (मालवीय विश्वनाथ)

मटर :

HUP-2 (मालवीय मटर – 2)
HUDP-15 (मालवीय मटर -15)

राजमा :

HUR-15 (मालवीय राजमा 15)
HUR-137 (मालवीय राजमा 137)

कुसुम :

HUS-305 (मालवीय कुसुम 305)

इस विभाग ने नई-नई उन्नत किस्मों की खोज के अलावा कई राष्ट्रीय एवं अतर्राष्ट्रीय पत्र प्रकाशित किए हैं। 50 से भी ज्यादा अंतर्राष्ट्रीय वैज्ञानिकों का भ्रमण एवं उनके द्वारा सराहना इस विभाग को मिली है। यह विभाग कृषि विज्ञान की रीढ़ की हड्डी के भाँति है, जो नए-नए किस्मों का पता लगाती है और किसानों तक पहुँचाती है।

3) मृदा विज्ञान एवं कृषि रसायन विभाग

सन् 1945 में एक खंड के रूप में स्थापित एवं सन् 1969 में पूर्णविभाग का स्वरूप मिला। इस विभाग में उच्च कोटि की प्रयोगशालाएँ हैं, जो सभी स्तर पर शिक्षा एवं शोध को बढ़ावा देती है। रासायनिक अवलोकन एवं अध्ययन के लिए उच्च कोटि के यंत्र एवं तकनीक, जैसे- एटामिक एबजॉर्प्सन.स्पेक्ट्रोफोटोमीटर, क्रोमेट्रोग्राफी, जेलडाल-नाइट्रोजन एनालाईजर, उपलब्ध हैं। इस विभाग के विशेष शोध क्षेत्रों में बॉयो-वेस्ट का उपयोग, कार्बनिक पदार्थ की रिसाइकलिंग, मृदा-परीक्षण, सूक्ष्म पोषक विश्लेषण, बॉयो-उवर्रक, उवर्रक विश्लेषण, मृदा-गुणवत्ता में सुधार आदि रहे हैं। वाराणसी और आसपास की मृदा स्थिति और स्वास्थ्य को सुधारना और पूरक कारकों का अध्ययन करना, इस विभाग की प्रमुखता में से एक है।

4) पादप कार्यिकी विभाग

कृषि विज्ञान संस्थान का सबसे पुराना विभाग मुख्यतः आधारभूत एवं प्रायोगिक पहलूओं पर काम करता है। पादप विकास, प्रगति एवं उपापचय विशेष रूप से, बीज संवर्धन, पोषक तत्त्व विश्लेषण, प्राकृतिक बीज संवर्धन, पोषक तत्त्व विश्लेषण, हार्मोन्स, प्राकृतिक दबावों जैसे आर्द्रता, लवणता, जलजमाव, तापमान आदि का पादप विकास पर प्रभाव, पादप कार्यिकी की आणविक पहलुओं पर विशेष शोध एवं अध्ययन किये जाते हैं। ये सारे शोध विपरीत वातावरणीय दबावों को सहने के लिए किए जाते हैं। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर के पत्र प्रकाशित हुए हैं। उत्तम एवं अच्च कोटि की प्रयोगशाला सारे उपकरण के साथ हैं जो विभिन्न कारकों के विश्लेषण के लिए हैं।

5) कीट विज्ञान एवं कृषि जीवविज्ञान विभाग

सन् 1971 में स्थापित यह विभाग कीट विज्ञान एवं कृषि संबंधित जीव-जन्तुओं का अध्ययन एवं शोध करता है। इस विभाग के अंतर्गत अत्याधुनिक बॉयोकंट्रोल प्रयोगशाला है, जिसमें प्राकृतिक दुश्मन कीटों को तैयार किया जाता है। प्रमुख शोध क्षेत्रों में, कीट प्रबंधन, कीट कार्यिकी, कीट वितरण एवं नियंत्रण, मृदा जीव-विज्ञान आदि शामिल रहे हैं। इस विभाग को कीट विज्ञान के क्षेत्र में सराहनीय कार्य के लिए कई राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्टीय पुरस्कार मिले हैं। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय स्तर के पत्र भी प्रकाशित हुए हैं।

6) उद्यान विज्ञान विभाग

सन् 1971 में स्थापित इस विभाग ने प्रमुख शोध कार्यों में फलों की पैदावार, गुणवत्ता बढ़ाना, सब्जियों एवं फूलों की पैदावार, खाद्य प्रसंस्करण के माध्यम से फलों की कटाई के बाद नुकसान को रोकना जैसे कई सराहनीय कार्य किए हैं। विश्वविद्यालय में मालवीय दिवस के अवसर पर यह विभाग विशाल पुष्प प्रदर्शनी एवं मेला का आयोजन एवं प्रतिस्पर्धा करवाता है। संपूर्ण विश्वविद्यालय के उद्यान के सौंदर्यीकरण एवं देखभाली का जिम्मा भी इसी विभाग के अंदर है। अतः यों कहें तो यह विश्वविद्यालय का सोनार है जो उद्यान रूपी जेवरात से इसकी शोभा बढ़ाता है। विश्वविद्यालय के सारे फल एवं फूल के पेड़ों की देखभाली एवं इलाज का जिम्मा भी इसी विभाग के हाथ में है।

7) कृषि आभियांत्रिकी विभाग

इस विभाग की स्थापना 1981 में हुई, कृषि में निरंतर आधुनिकीकरण एवं मशीनीकरण ने लोगों की अभिरूचि मशीनों में बढ़ा दी; फलस्वरूप परंपरागत हल-बैल विलुप्तता के कगार पर हैं। इस विभाग ने कम व्यय वाली मशीनों का इजाद कर किसानों के लिए वरदान प्रदान किया है। **''मालवीय सीड ड्रील''** एवं **''मालवीय लो लिफ्ट पम्प''** (बगैर बिजली के चलने वाली पम्प) ने पूर्वाचल में सिंचाई के क्षत्र में क्रांति ला दी है। पूर्वी उत्तरप्रदेश में पानी की समस्या काफी जटिल है, इसी के मद्देनजर इस विभाग ने जल विज्ञान एवं तकनीकी संरक्षण में विशेष पाठ्यक्रम की शुरूआत की है, सन् 2006 से। इस विभाग में सांख्यिकी, संगणक उपयोग एवं संसाधन प्रंबधन शोध के क्षेत्र आते हैं। जीरो टीलेज एवं रेज्ड बेड प्लांटिंग काफी सराहनीय कार्य रहे हैं। राष्ट्रीय एवं अंतर्राष्ट्रीय पुरस्कार एवं शोध पत्र इस विभाग के नाम हैं।

8) कृषि अर्थशास्त्र विभाग

सन् 1969 में पूर्ण विभाग स्थापत्य के बाद से ही यह विभाग आर्थिक विश्लेषण एवं माडल्स, कृषि व्यापार प्रबंधन, मूल्य एवं बाजार विश्लेषण, फार्म प्लानिंग एवं बजटीकरण के क्षेत्र में सराहनीय कार्य करता आया है। किसानों के लिए खेतों पर संसाधनों का आवंटन करने से लेकर कम लागत में अधिक आय के तरीकों पर शोध कार्य किए जाते हैं।

9) प्रसार-शिक्षा विभाग

सन् 1964 से उत्तरप्रदेश सरकार के सहयोग से स्थापित इस विभाग ने कृषि शिक्षा प्रसार के क्षेत्र में अतुलनीय योगदान दिया है। सन् 1981 में स्वतंत्र विभाग बनने के बाद से इस विभाग ने शोध कार्य एवं पठन-पाठन में सराहनीय कार्य किया है। मालवीय जी का कहना था कि शिक्षा का महत्त्व तब होता है जब इससे कोई सामाजिक बदलाव हो सके, एवं मालवीय जी के आदर्शों पर चलते हुए यह विभाग, संस्थान के तमाम आविष्कारों एवं तकनीकों को आम जनता तक पहुँचाने का काम करता है, चाहे वह कृषक प्रशिक्षण तथा गोष्ठी के आयोजन से हो या मेले के आयोजन से। इस विभाग का कार्य ग्रामीण समायोजन कार्य अनुभव से लेकर कृषक सलाहकार के तौर पर अनुभवों एवं ज्ञान को बाँटना है। इस विभाग के पास मीडिया लैब सह ग्रामीण ज्ञान केन्द्र; सारे उपकरणों से सुसज्जित है। संचार प्रगति के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किया है इस विभाग ने। सच कहें तो संस्थान का आदर्श वाक्य **'विज्ञान का मानवीय चेहरा'** इस विभाग के बिना अधूरा है।

10) कवक एवं पादप रोग विभाग

सन् 1969 में इस विभाग की स्थापना हुई। किसान अपने फसलों की बीमारियों की जानकारी एवं उसका निदान इसी विभाग से

प्राप्त करते हैं। सूक्ष्म जीवी शोध के क्षेत्र, जैसे- राइजोबियम स्युडोमोनास, माइकोराईजा आदि में इस विभाग का योगदान अतुलनीय है। फसलों के रोगों के निदान पर विशेष शोध किया जाता है। मशरूम संवर्धन अब तक की सबसे बड़ी तकनीक जो आसपास के लोगों द्वारा अपनाई गई है, इसी विभाग की देन है।

11) पशुपालन एवं दुग्ध विज्ञान विभाग

सन् 1981 में स्थापित इस विभाग ने प्रशिक्षण एवं शोध जैसे—पशु प्रजनन एवं प्रबंधन, पशु पोषण, मुर्गी पालन, दुग्ध विज्ञान के क्षेत्र में सराहनीय कार्य किए हैं। संपूर्ण विश्वविद्यालय को दूध की आपूर्ति यह विभाग कराता है, यह सुविधा अब सिर्फ कर्मचारियों तक सीमित है। महामना की परिकल्पना थी कि सभी बच्चे भी दूध पीकर स्वस्थ रहें और कसरत करें, परन्तु छात्रों की भारी संख्या को दूध उपलब्ध करा पाना मुश्किल सा प्रतीत होता है। इसी उद्देश्य को ध्यान में रखकर उच्च गुणवत्ता वाले प्रजनन शोध किए जा रहे हैं जिससे गुणवत्ता एवं मात्रा दोनों में वृद्धि हो सके।

12) खाद्य विज्ञान एवं तकनीकी केन्द्र

सबसे नवीन केन्द्र सन् 2008 में स्थापित हुआ। निरंतर बढ़ती आबादी एवं खाद्य सुरक्षा के दौर में आजकल खाद्य प्रसंस्करण के बहाने मिलावटी का रास रच रहे हैं लोग । चूँकि उत्तम आहार ही उत्तम शरीर का निर्माण कर सकता है। इस लिए यह विभाग खाद्य गुणवत्ता एवं उसके उचित प्रसंस्करण के लिए सदा शोधरत है।

सहायक इकाईयाँ

(1) फार्म : 65 हेक्टेयर का फार्म काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में एवं 1000 हेक्टेयर का बरकच्छा में, वे तमाम सुविधाएँ प्रदान करता है, जिससे शोधकर्त्ता अपने अन्वेषण को अंजाम दे सकें। कैम्पस का फार्म मुख्यतः शोध कार्य एवं बीजोत्पादन के लिए उपयोग होता है एवं बरकच्छा फार्म मुख्यतः कृषि विज्ञान केन्द्र के अंतर्गत है।

फार्म का मशीनीकरण NATP मशीनीकरण के द्वारा किया गया है। एकीकृत कृषिपद्धति; मत्स्य पालन से मुर्गी पालन सबका समायोजन फार्म पर है।

(2) डेयरी फार्म : महामना ने सन् 1940 में एक गोशाला स्थापित करवाया था। जिसका प्रमुख उद्देश्य था, गोपालन सनातन धर्म के सिद्धांत पर एवं उत्पादों की बिक्री बिना किसी लाभ-हानि के। इसके साथ-साथ यह पशुपालन विभाग के छात्रों के लिए शोध क्षेत्र भी है। फार्म की क्षमता 1 लाख लीटर दूध वार्षिक एवं 15 लाख आमदनी वार्षिक है। यहाँ पर 1 मैनेजर, 1 डेयरी सहायक, 10 ग्वाले एवं सहायक कर्मचारी कार्यरत हैं।

(3) केन्द्रीय नर्सरी एवं उद्यान विशेषज्ञ इकाई : विश्वविद्यालय को रमनीक, मनोरम एवं खुबसूरत बनाने के लिए, सन् 1969 में इसकी स्थापना की गई। अपने स्थापत्य काल से कैम्पस की हरियाली कायम रखना इसकी जिम्मेदारी है। उद्यान तथा सड़क किनारे पेड़ लगाना एवं उसका रख-रखाव इस इकाई की जिम्मेदारी है। शुरूआत में यह विभाग, विश्वविद्यालय अभियंता के अंतर्गत था, अब कृषि विज्ञान संस्थान के निदेशक के अंतर्गत है। विश्वविद्यालय प्रांगण को 17 सेक्टर में बाँट दिया गया है; इस इकाई में 260 कर्मचारी हैं। इसके अलावा केन्द्रीय पौधशाला 3 एकड़ का भी इसी इकाई के अंतर्गत है। इस पौधशाला की वार्षिक आय 60,000 है। सन् 2003 में औषधीय पौद्यों की इकाई स्थापित की गई। यह विभाग कार्बनिक खाद, पत्तियों के कम्पोस्ट से बनाता है।

(4) कृषि विज्ञान केन्द्र : यह बरकच्छा, मिर्जापुर में स्थित है और सन् 1984 में इसकी स्थापना हुई। यह बाह्य प्रसार केन्द्र के रूप में कार्यरत है और तकनीकी ज्ञान एवं पद्धतियों को किसानों तक पहुँचाता है। किसान मेला, सहायता सुविधाएँ, खेत भ्रमण एवं प्रशिक्षण कार्यक्रम मुख्य कार्यों में से है। तकनीक का विसरण आम जनता तक निर्भर करता है कृषि विज्ञान केन्द्र की गुणवत्ता और क्षमता पर। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय द्वारा विकसित किस्में जनमानस तक पहुँचाने का काम कृषि विज्ञान केन्द्र ने ही किया, जो कि मालवीय जी का सपना था। अतैव महामना की कृषि शिक्षा का स्वप्न रूप यही है। यह किसानों को न सिर्फ सामग्री प्रदान करवाता है वरन प्रशिक्षण भी मुफ्त देता है।

निष्कर्ष

आधुनिकता के दौर में, बढ़ती आबादी एवं प्रदूषण, खाद्य सुरक्षा पर संकट के बादल की तरह मंडरा तो रहे ही हैं साथ-साथ ये कई भयानक बीमारियों को बुलावा भी दे रहे हैं। इस परिपेक्ष्य में नितांत आवश्यक है कि शुद्ध एवं संतुलित भोजन किया जाए। कृषि विज्ञान संस्थान इसका ख्याल रखते हुए नई किस्में विकसित करता है और उसकी गुणवत्ता कायम रखता है ताकि लोग सानंद जीवन व्यतीत कर सकें।

आजकल द्वितीय हरित क्रांति की बात चल रही है और वह भी पूर्वांचल एवं बिहार क्षेत्र में। इस परिदृश्य में कृषि विज्ञान संस्थान, का0 हि0 वि0 वि0 प्रमुख भूमिका अदा करेगा। मालवीय जी के सपनों के साकार होने की खुशी आखिर किस विश्वविद्यालयीय बाशिंदे को नहीं होगी। इस खुशी में सराबोर होते हुए एक अदना सा दुःस्साहस करने की चाहत हमें हो रही है।

हमारे कुलगीत में **पूज्यनीय डॉ0 शान्ति स्वरूप भटनागर जी** ने सातवें चौपाई के पहली पंक्ति में लिखा है.....

विविध कला अर्थशास्त्र गायन
गणित खनिज औषधि रसायन।
प्रतीचि-प्राची का मेल सुन्दर,
यह विश्वविद्या की राजधानी । मधुर.....॥

हमारी एक छोटी सी इच्छा है कि, यह ऐसे होती तो कितना न्यारा होता ... मतलब सोने पे सुहागा ..

कृषि, कला अर्थशास्त्र गायन।
गणित खनिज औषधि रसायन॥
प्रतीचि-प्राची का मेल सुन्दर,
यह विश्वविद्या की राजधानी 1 मधुर ...॥

अंततः हम मालवीय जी के 150वीं जन्म जयन्ती पर कृषि विज्ञान संस्थान परिवार की तरफ से अपना श्रद्धा-सुमन, निम्न पंक्तियों के माध्यम से अर्पित करते हैं:

ज्ञान के प्रकाश हेतु, जीवन को होम किया।
भारतीय ज्ञान, सारे जग में महान है।
कर्म योग, धर्म योग, भक्ति योग ने बताया
मेरा ये मदन, ज्ञान का ही विज्ञान है।
एक बार फिर से, चले आओ पंडित जी
आपको, हमारे सारे देश का प्रणाम है।
आपको, हमारे सारे देश का प्रणाम है।

संदर्भ

1. मूल्यविमर्श, मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र
2. एस0 एन0 मुखर्जी, ''भारत में शिक्षा : आज और कल'' आनन्द प्रेस, बड़ौदा, 1957
3. गुप्ता, एम0 पी0 जर्नल ऑफ वैल्यू एजुकेशन, एन सी0 ई0 आर0 टी0, नई दिल्ली-अंक- 4 (1 एवं 2) (2004) पृं0 सं0 – 86-94
4. www.bhu.ac.in/ias
5. www.google.co.in
6. Prospectus of IAS, BHU (2006).

◆

मालवीय जी की परिकल्पना का मूर्त रूप : सर्व विद्या की राजधानी का0हि0वि0वि0

*डॉ0 सैयद अली नादिर**

मालवीय जी की परिकल्पना का मूर्तरूप सर्व विद्या की राजधानी का0हि0वि0वि0 आज विश्व भर में न सिर्फ अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए है, बल्कि यहाँ से उच्च शिक्षा प्राप्त करके हजारों छात्र-छात्राएं विभिन्न विभागों के शिक्षकगण, विभिन्न चिकित्सक, इंजीनियर, कम्प्यूटर वैज्ञानिक, कानून एवं कृषि वैज्ञानिकों ने अपने-अपने क्षेत्र में अपार सफलता अर्जित की है जो निश्चित ही मालवीय जी के सपनों का सार्थक परिणाम है।

हम सभी जानते हैं कि मालवीय जी भारत की एक ऐसी विभूति थे जिनको जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में उच्च तथा स्मरणीय स्थान प्राप्त था। उनका विशाल हृदय धनी व निर्धन, विद्वान तथा सामान्य व्यक्ति हिन्दू तथा अहिन्दू सभी को समानता से स्वीकार करता था। इसलिए सभी के दिल में इनके प्रति स्नेह, श्रद्धा तथा सम्मान था। यहाँ पर यह कहना बेहतर होगा कि मालवीय जी के नेतृत्व से भारतीय जन का कल्याण हुआ।[1]

मालवीय जी के आदर्शवादी गुणों को ध्यान में रखते हुए किसी मनीषी ने मानवीय तथा वस्तु तत्वों की परिवर्तनशीलता की स्थिति का विवेचन करते हुए कहा के गुणी-गुणी जनों के साथ ही गुण रहते हैं। किन्तु निर्गुणियों के सम्पर्क में आकर ही गुण दोषों में बदल जाते हैं। ठीक उसी प्रकार जल नदियों में रहते हुए तो पेय (पीने योग्य) रहता है या होता है। किन्तु खारे समुद्र में जाकर, मिलकर नदियों का वही जल अपेय यानी पीने योग्य नहीं रहता। परन्तु महामना मदन मोहन मालवीय माधुर्य के ऐसे सागर थे कि उसमें मिलकर निर्गुण भी गुणी बन जाये। यानी उस माधुर्य सागर में मिलकर अपेय जल भी पेयजल हो गया। जो राष्ट्र, समाज तथा संस्कृति सभ्यता के लिए हितकारी प्रमाणित हुआ। यहां पर एक घटना का उल्लेख करना सन्दर्भ के अनुरूप रहेगा। सन् 1925-26 की बात है। पंडित मदन मोहन मालवीय बिहार प्रान्तीय हिन्दू महासभा के वार्षिक अधिवेशन की अध्यक्षता करने छपरा गये और वहाँ के गोरक्षिणी मैदान में एक सभा का आयोजन किया गया था, जिसमें करीब पचास हजार जनसमुदाय उपस्थित था। सर अली इमाम, सर हसन इमाम और मज़हरूल हक आदि महानुभाव उस सभा में अन्य लोगों के अलावा प्रमुख रूप में मौजूद थे।

महामना के भाषण के पश्चात् जब वे कार में बैठ गये तो भुवनेश्वर मिश्रा जगजीवन राम को लेकर महामना के पास आये और बोले ''हमारे जनपद का एक चमार बालक मैट्रिक पास करने के बाद आगे पढ़ने के लिए चिन्तित परेशान है।'' उस समय हरिजन शब्द शोषित दलित शब्द प्रचलित नहीं थे, अतः मिश्र जी ने सपाट चमार शब्द का प्रयोग किया था। महामना जी ने उनकी बात सुनते ही एक बार बड़े ध्यान से जगजीवन राम को निहारा और उनसे बोले—'इनको अपने साथ ही हिन्दू विश्वविद्यालय ले आना जहाँ बैठकर मेरा गोविन्द पढ़ता है वहीं ये भी पढ़ेंगे। गोविन्द महामना के पुत्र थे। स्वर्गीय बाबू जग जीवनराम ने वहीं से बी.एस.सी. ससम्मान उत्तीर्ण की। वे भारत के लिए कितने उपयोगी सिद्ध हुए यह बात सर्वोपरि विदित है। अछूतपन के खारेपन ने जगजीन राम को बेस्वाद बनाना चाहा, किन्तु महामना के माधुर्य सागर में वही जगजीवन राम सुस्वाद बन गये। तो यही था पंडित मदन मोहन मालवीय जी का 'महामना' बनने, होने का मुख्य एवं मूल कारण।[2]

वर्तमान समय में मालवीय जी के इन्हीं आदर्शवादी सिद्धान्तों पर चलते हुए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में समाजशास्त्र के विख्यात प्रोफेसर एवं केन्द्र कोऑर्डिनेटर श्री अजीत कुमार पाण्डेय ने विश्वविद्यालय अनुदान आयोग नई दिल्ली के साथ निरन्तर सक्रिय प्रयास करते हुए एक ऐसे केन्द्र की स्थापना की जिसमें दलित, शोषित, उपेक्षित, अल्पसंख्यक, बाल एवं महिला आदि के हितों एवं अधिकारों पर न सिर्फ उच्च स्तरीय अध्ययन किये जा रहे हैं, बल्कि उनकी अर्न्तराष्ट्रीय संस्था यूनिसेफ के साथ मिलकर क्षेत्र स्तरीय समस्याओं की समीक्षा भी इस योजना में सम्मिलित है। इस सामाजिक बहिष्करण एवं समावेशी नीति अध्ययन केन्द्र, का0हि0वि0वि0 के माध्यम से आज विभिन्न छात्र-छात्राओं को उच्च शिक्षा के क्षेत्र में शिक्षित करने के साथ-साथ समय - समय पर राष्ट्रीय एवं अर्न्तराष्ट्रीय सेमिनार के माध्यम से शिक्षा जगत से जुड़े लोगों को अपने शोध पत्र भी प्रस्तुत करने के अवसर प्रदान किये जा रहे हैं। जो निश्चित तौर पर न सिर्फ महामना की उच्च स्तरीय सामाजिक सोच का परिणाम है बल्कि महामना के चिन्तन प्रासंगिक आज भी और कल भी का ज्वलंत उदाहरण दिखाई पड़ता है।

मालवीय जी बिल्कुल स्पष्ट थे, हठ धर्मिता से मुक्त थे तथा विद्रोह भावना से शून्य थे। वे हृदय ही हृदय थे। नवनीतसम कोमल, भागीरथी के जलवत निर्मल, पवित्र तथा हिमशैल शृंग की तरह उन्नत विचार भाव संयुक्त था उनका व्यक्तित्व! दिव्य कामना, मनोरम भावना के कुबेर यानी महामना! उनकी कोई तुलना नहीं! उपमा नहीं! उत्प्रेक्षा नहीं तो विभावना भी नहीं। महान व्यक्तित्व के धनी महामना पंडित मदन मोहन मालवीय जी ऊँच-नीच, जात - पात से काफी ऊँची सोच रखते थे। उन्होने उच्च शिक्षा के विस्तार के लिए सर्व विद्या की राजधानी का0हि0वि0वि0 की परिकल्पना की और उसे अपने अथक प्रयास से मूर्तरूप दिया।[3]

---

* पूर्व सदस्य/मजिस्ट्रेट, किशोर न्याय बोर्ड, वाराणसी।

इसी क्रम में डॉ0 कर्ण सिंह, सदरे रियासत कश्मीर, पूर्व केन्द्रीय मंत्री भारत सरकार विद्वान, लेखक एवं काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के कुलाधिपति ने विश्वविद्यालय की स्थापना के पीछे मालवीय जी की कल्पना के बारे में लिखा है कि 'महामना भारत की नेतृत्व प्रतिभा को पहचानते थे। एक सुनहले भविष्य की रूपरेखा उनकी कल्पना में उभर चुकी थी जिसे साकार करने के लिए समाज को सर्वाधिक क्रियाशील अंग के सहयोग की आवश्यकता थी। उन्होने अनुभव किया कि आदर्श चरित्रों के अधिकारी युवक-युवतियां ही भविष्य का सामना कर सकते हैं, परन्तु उन्हें ऐसी शिक्षा के माध्यम से तैयार करना होगा जो अत्याधुनिक होने के साथ-साथ धर्म और नीति पर पर्याप्त बल दें। स्वराष्ट्र को शक्तिशाली बनाने एवं अन्तर्राष्ट्रीय सद्भाव की वृद्धि के लिए निखिल मानवता को अप्सातिक गंगा में नहलाने के लिए मालवीय जी ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की थी।[4]

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की इस स्थापना की चर्चा मालवीय जी ने प्रथम बार तब ही आरम्भ कर दिया था जब मुस्लिम कालेज अलीगढ़ सन् 1875 में स्थापित हुआ और बाद में यही अलीगढ़ मुस्लिम यूनिवर्सिटी बना, जहाँ भारतीयता, राष्ट्रीयता के विरूद्ध फूट और कूट नीति की शिक्षा दिये जाने के प्रमाण मिलते हैं। क्योंकि वहां प्रारम्भ में सारे अध्यापकगण अंग्रेज नियुक्त किये गये थे। जो धनाढ्य घरों के मुस्लिम युवकों को द्विराष्ट्र सिद्धान्त की शिक्षा के साथ अंग्रेज परस्ती का भी पाठ पढ़ाया करते थे। उनकी फूट और कूट नीति वाली शिक्षा के संवाद कुछ इस तरह के होते थे। 'मुस्लिम' युवाओं! क्या आप नहीं जानते कि हिन्दू लोग पूर्व दिशा की ओर मुख करके ईश्वर को याद करते हैं, किन्तु मुसलमानों की संस्कृति में ऐसा नहीं है। आप पश्चिम की ओर मुख करके खुदा की इबादत करते हैं। उनका कहना था कि भारत के हिन्दू और मुसलमानों की संस्कृति सभ्यता, पूजा-पाठ, खान-पान, रहन-सहन आदि कुछ भी साझा नहीं है। तब सोचो मुल्क ही कैसे साझा हो सकता है, इसलिए भारत के मुसलमानों को अलग राष्ट्र की जरूरत है, जिसे हासिल करना आप लोगों का बुनियादी हक है।[5]

इन्हीं भ्रामक और कूटनीतियों से बचाने के लिए मालवीय जी ने एक ऐसे विश्वविद्यालय की कल्पना की जिसके परिसर में पढ़ने वाले युवाओं को एक ऐसा वातावरण मिले जिसमें जात-पात और कूटनीति जैसी कोई भी बात न हो। मालवीय जी की इस उच्च स्तरीय सोच को आज भी पूरे परिसर में देखा जा सकता है। जहाँ देश विदेश के हजारों छात्र-छात्राएं बिना किसी भेद-भाव के शान्तिपूर्ण माहौल में शिक्षा ग्रहण कर रहे हैं। जहां उनके सुरक्षा की न सिर्फ उच्च स्तरीय व्यवस्था है। बल्कि मुख्य द्वारा से लेकर पूरे परिसर में यहां पर विद्यार्थी पूरी स्वतंत्रता के साथ अपने पठन पाठन के कार्यों को सम्पादित करते हैं।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की चर्चा बनारस में होने वाले कांग्रेस के 21 वें अधिवेशन के अवसर पर 1905 में हुई। उस समय कांग्रेस राजनीतिक संगठन नहीं था, अतः गर्वनर सर तथा रायबहादुर, राय साहब, राजा उपधिकारी, सामन्त, धनाढ्य एवं पदाधिकारी लोग कांग्रेस के अधिवेशन में जमा होते थे। अस्तु, स्व0 श्री गोपाल कृष्ण गोखले की अध्यक्षता में कांग्रेस अधिवेशन के होते हुए ही मालवीय जी ने कुछ बड़े नेताओं की अलग बैठक बुलाकर उसमें भाषण देते हुए का0हि0वि0वि0 स्थापित करने की इच्छा व्यक्त की।

मालवीय जी के इस राय से सब सहमत हो गये और मंच से पर्याप्त दूर बैठे उस समय के प्रख्यात नेता श्री सुरेन्द्र नाथ बनर्जी ने खड़े होकर कहा- 'अध्यक्ष महोदय! मैं मालवीय जी की बात का समर्थन करता हूँ और जब तक विश्वविद्यालय में अध्यापकों की नियुक्ति का प्रबंध नहीं होता मैं अंग्रेजी अध्यापक के रूप में अपनी सेवाएं देता रहूंगा।[6]

सन् 1906 में जब अन्य नेता और मालवीय जी प्रयाग में एकत्रित हुए तो एक सोसायटी संस्थान की स्थापना की गयी और एक प्रारूप तैयार किया गया जिसमें कहा गया कि हिन्दी में विश्वविद्यालय का नाम हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी होगा और अंग्रेजी में 'दि हिन्दू यूनिवर्सिटी ऑफ बनारस'। इसके बाद सन् 1911 में सोसायटी का पंजीकरण कराया गया जिसका कार्यालय 1912 में काशी के बजाय प्रयाग में खोला गया। जब यूनिवर्सिटी का बिल पास हुआ तो वायस राय लार्ड हार्डिंग ने कहा था कि 'मुझे प्रसन्नता है कि हिन्दू यूनिवर्सिटी बिल जिस पर पिछले चार वर्षों से बहस हो रही थी, आज इस देश का कानून बन गया। अतः 4 फरवरी 1916 बसंत पंचमी के दिन गंगा तट पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की भूमि पर एक विशाल समारोह आयोजित हुआ। जिसमें ब्रिटिश सम्राट के प्रतिनिधि के रूप में वाइस राय, लार्ड हार्डिंग, बंगाल, बिहार, उड़ीसा, उ0प्र0 के गर्वनर एवं पंजाब के लेफ्टीनेंट गर्वनर भी उपस्थित थे।[7]

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना का पूजन जिस भूमि पर हुआ था वह काशी नरेश की थी। बार-बार प्रार्थना करने के बाद भी वे भूमि देने को तैयार नहीं थे। उनका कहना था कि इसके बदले जितना भी चाहे धन ले जा सकते हो। अन्ततः मालवीय जी ने पता किया कि काशी नरेश मकर संक्रान्ति के दिन गंगा तट पर संकल्प करके ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा देते हैं। तो वे भी काशी नरेश के घाट पर पहुंचने से पहले ही पहुंच गये और जैसे ही काशी नरेश ने वहां पर उपस्थित ब्राह्मणों को संकल्प करवाने के लिए कहा वे संकल्प के लिए तत्पर हो गए और बोले - महाराज! संकल्प की व्यवस्था कीजिए। मालवीय जी को सम्मुख देखकर एक बार तो काशी नरेश विस्मय सागर में डूब गए किन्तु दूसरे ही क्षण वे संकल्प के लिए प्रस्तुत हो गये और मालवीय जी ने उनसे उस भूमि का संकल्प करवा डाला, जिस पर वे हिन्दू विश्वविद्यालय की आधार शिला रखना चाहते थे। इस प्रकार मालवीय जी ने काशी नरेश से हिन्दू विश्वविद्यालय की भूमि प्राप्त की।[8]

महामना मदनमोहन मालवीय जी ने जब सर्व विद्या की राजधानी का0हि0वि0वि0 की कल्पना की तो कहा कि 'मैं चाहता हूँ' कि एक हजार विद्यार्थी यहाँ से अन्न वस्त्र पाकर पुराण शास्त्र का अध्ययन करें। वे केवल इसलिए यहाँ न आयें कि यहाँ अन्न - वस्त्र मिलता है। बल्कि सच्चे हृदय से यहाँ अध्ययन करने आये। जिस समय 10 हजार

विद्यार्थी गंगा के तट पर बैठकर संध्या वंदन करेंगे, उस समय काशी की कैसी शोभा होगी।

मालवीय जी की विश्वविद्यालय की स्थापना में उनकी ऐसी ही कल्पना थी। वे कहते थे कि हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना में सब मकान हिन्दू शिल्प शास्त्र के अनुसार ही बनने चाहिए। उसमें 'हिन्दुत्व स्पष्ट रीति से दिखना चाहिए।'' उन्होंने लोगों से कहा था कि 'मुझे पर्याप्त धन दो मैं विश्वविद्यालय को एक खुबसूरत बागान में परिणत कर दूंगा।' उनका मानना था कि अशिक्षित जनता को शिक्षित बनाकर देश का कल्याण होगा, यही सोचकर उन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना की थी।[9]

वे कहते थे कि यह गरीबों का विश्वविद्यालय है। देश में निर्धनता को देखते हुए उन लोगों के लिए हमें इस विश्वविद्यालय में उच्च शिक्षा के लाभ को सुनिश्चित करना है, जो वास्तव में निर्धन हैं और यहां पढ़ना चाहते हैं। आज यदि देखा जाये तो महामना की परिकल्पना 'सर्वविद्या की राजधानी' के रूप में यह विश्वविद्यालय आज विश्व भर में विख्यात है क्योंकि ''यह भारतवर्ष संसार भर में श्रेष्ठ है और भारतवर्ष में काशी नगरी और काशी नगरी में हिन्दू विश्वविद्यालय सर्वश्रेष्ठ है। यह संसार की राजधानी है। क्योंकि यही संसार को धर्मज्योति देने वाली नगरी है। यह आधुनिक युग का प्रधान भारतीय गुरूकुल है।[10]

मालवीय जी ने कहा था कि मैने अपने रक्त से सिंचित कर इस विद्या मंदिर को खड़ा किया है, अब कोई इसकी प्रशंसा करे या आलोचना उसके उपर निर्भर है। हमारी शिक्षा में यदि कोई त्रुटि हो तो उसे इंगित करें। हमने विश्वविद्यालय बनाया है, हम ही उस त्रुटि को दूर भी करेंगे।[11]

सर्वविदित है कि इस विश्वविद्यालय की कल्पना को साकार करने के लिए मालवीय जी ने भिक्षा का सहारा लिया और घर से अपने पिता का आशीर्वाद लेकर दान एकत्रित करने के लिए जब निकले तो उन्होने फिर पीछे मुड़कर तभी देखा जब उनकी झोली में देश के विभिन्न हिस्सों से मिलने वाली रकम बड़े पैमाने पर एकत्रित हो गई। हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए सर्व प्रथम याचक बनकर महामना दरभंगा नरेश के पास गये और नरेश ने उन्हें हिन्दू विश्वविद्यालय के निर्माण हेतु 25 लाख रूपये दान स्वरूप दिये। मालवीय जी की झोली में इस नियत उस युग या समय में 1 करोड़ 34 लाख रूपये एकत्र हुए। विश्वस्त अनुमान है कि मालवयी जी के जीवनान्त तक हिन्दू विश्वविद्यालय, काशी पर 9 करोड़ रूपये की राशि व्यय हो चुकी थी। भारत के राजा-महाराजा, सामन्त, श्रीमन्त तथा सामान्य जनों ने भी हिन्दू विश्वविद्यालय के निर्माण हेतु अपना योगदान महामना को दिया था। ये विश्वविद्यालय वह प्रकाश स्तम्भ है, जो मालवीय जी की स्मृति तो है ही, किन्तु राष्ट्र का गौरव प्रतीक भी है। राष्ट्रीयता, भारतीयता एवं मानवता का ये संयुक्त रूप है। भारतीय संस्कृति एवं सभ्यता का ये प्रमुख स्रोत भी माना जाता है।[12]

मालवीय जी ने विश्वविद्यालय पर व्यय की गई 9 करोड़ रूपये की धनराशि एकत्रित करने के लिए किस-किस तरह के लोगों का सामना किया और कैसे उन्हें अपने मिशन की जानकारी देते हुए दान देने के लिए तैयार किया। यह भी अपने आप में एक अविस्मरणीय पल थे। इसका अनुमान एक घटना से लगाया जा सकता है। हैदराबाद के निजाम भारत के ही नहीं विश्व के धनाढ्य लोगों में गिने जाते थे।

मालवीय जी तत्कालीन हैदराबाद के निजाम से समय लेकर उनसे मिलने हैदराबाद पहुँचे। निजाम से मिलकर उन्होंने हिन्दू विश्वविद्यालय की योजना से अवगत कराकर उन्हें बतलाया कि इस विश्वविद्यालय के निर्माण में उनके द्वारा भी योगदान होना चाहिए। निजाम ने छूटते ही कहा, वह कट्टर मुसलमान है इसलिए वह हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए पैसा नहीं देंगे। मालवीय जी ने उन्हें समझाया कि हिन्दू विश्वविद्यालय में हर विषय की पढ़ाई होगी, जिसमें संस्कृत के साथ अरबी, फारसी, साइंस, टेक्नॉलाजी, इंजीनियरिंग, कृषि इत्यादि सभी विषय सम्मिलित रहेंगे और हिन्दू विश्वविद्यालय किसी धर्म विशेष की पढ़ाई के लिए न बनाकर सर्व धर्म को आदर देने के लिए बनाया जा रहा है।

मालवीय जी ने निजाम साहब को यह कहकर समझाया कि हिन्दू विश्वविद्यालय को किसी धर्म से न जोड़कर हिन्दुस्तान या भारतवर्ष के विश्वविद्यालय के रूप में ही देखा जाना चाहिए। यह सब तर्क निजाम साहब को नहीं भाया और उन्होंने स्पष्ट इनकार कर दिया कि वे हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए एक भी पैसा दान में नहीं देंगे।

तब मालवीय जी ने उनको अपना यह संकल्प सुनाया कि इतना तो इन्होंने व्रत ले रखा है कि जहां जायेंगे वहां से खाली हाथ न लौटेंगे और जब तक वहां से उन्हें कुछ न मिल जाये तब तक वहीं बैठे-बैठे बिना कुछ खाए अपना समय बिताते रहेंगे, अतः हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए निजाम साहब कुछ न कुछ दे ही दें। इस पर निजाम साहब ने अपनी पुरानी जूती जो बहुत दिनों से उन्होंने पहनी हुई थी उसे मालवीय जी की तरफ बढ़ाकर देते हुए कहा कि ठीक है हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए मेरी ये जूतियां ले जाइए। मालवीय जी ने सहर्ष उन जूतियों को उठा लिया और अभिवादन करके निजाम साहब के महल से वापस अपने रहने के स्थान पर आ गये और उस दिन तीसरे पहर से हैदराबाद में लोगों ने यह मुनादी सुनना शुरू किया कि निजाम साहब ने हिन्दू विश्वविद्यालय के लिए मालवीय जी को अपनी जूतियां दे दी है। मालवीय जी उन जूतियों को हुसैन सागर डैम के पास नीलाम करेंगे। हैदराबाद में रहने वाली निजाम की रियाया में जो भी निजाम साहब की जूतियों की सबसे ज्यादा कीमत नीलामी में बोली लगाकर अदा करेगा उसे निजाम साहब की जूतियां दे दी जायेंगी।

उक्त खबर पाकर निजाम ने उनसे कहा कि ऐसा करके आप मेरी बदनामी व मानहानि कर रहे हैं तो मालवीय जी ने कहा कि जूतियों से कोई निर्माण कार्य नहीं हो सकता। इस पर निजाम ने कहा कि वे उन्हें ऐसा नहीं करने देंगे और नजरबंद कर देंगे, लेकिन जब इस सिलसिले में निजाम ने अपने प्रधानमंत्री से बातचीत की तो उन्होंने समझाया कि मालवीय जी को गिरफ्तार करना ठीक नहीं होगा।

अतः उन्होंने पुनः मालवीय जी को बुलाकर न सिर्फ अपनी जूतियां वापस लीं बल्कि हिन्दू विश्वविद्यालय में विद्यार्थियों के पढ़ने के लिए भवन तथा रहने के लिए छात्रावास बन जाने की बात मालवीय जी से सुनकर पूछा- मुझे क्या करना है? मालवीय जी ने कहा- अध्यापकों के रहने के लिए घरों के निर्माण की आवश्यकता है। निजाम ने उनकी शर्त स्वीकार कर ली और अपने नाम से निजाम हैदराबाद कालोनी बनाने के लिए धनराशि देना सहर्ष स्वीकार कर लिया।[13]

हिन्दू विश्वविद्यालय के निर्माण में श्रीमती एनी बेसेन्ट तथा दरभंगा नरेश सर रामेश्वर सिंह द्वारा मालवीय जी को विशेष प्रोत्साहन एवं सहायता मिली थी। दरभंगा नरेश तो एक दो राजा, महाराजाओं से दान मांगने के लिए मालवीय जी के साथ हो लिए थे। जिस विश्वविद्यालय की मालवीय जी ने कल्पना की थी, जब उसका सपना साकार हुआ तो वे स्थापना से लेकर सन् 1939 तक इसके कुलपति रहे। विश्वविद्यालय में प्रशासनिक अक्षमता आने पर वे अपने स्थान पर डा0 राधाकृष्णन को ले आये, जो मालवीय जी की तरह प्रेरक शक्ति के रूप में थे। जिन्होंने अपने सक्रिय प्रयास से परिसर में बेहतर वातावरण बनाया।

पं0 मदन मोहन मालवीय का मानना था कि का0हि0वि0वि0 बहु आयामी गतिविधियों का केन्द्र बने और युवकों को जीवन के उन सभी क्षेत्रों में प्रशिक्षित करने के लिए प्रस्तुत हो, जिनसे आधुनिक समाज की संरचना होती है, यहां प्रशिक्षित युवा विकास के पथ पर अपने देशवासियों का नेतृत्व करने में समर्थ हों, विज्ञान, कला, उद्योग तथा सामाजिक कल्याण के क्षेत्र में नये कीर्तिमान उपलब्ध करने में कुशल हो और भारत के प्रभूत प्राकृतिक संसाधनों के विकास के लिए अपेक्षित ज्ञान और चरित्र से संयुक्त हों।[14]

अन्त में यही कहना है कि काशी में गंगा जी के तट पर लगभग 5 मील में फैला हुआ काशी हिन्दू विश्वविद्यालय उनकार अमर स्मारक है। बस, महामना एक आलोक मन्दिर निर्माण कर राष्ट्र माटी और राष्ट्रीय समाज को विनम्र भाव से सौंप गये हैं, उसे बचाना और परिसर में शिक्षा के उचित वातावरण के साथ-साथ- समय-समय पर वृक्षारोपण करते हुए हरियाली को बनाये रखना तथा समृद्ध बनाना हम सभी नागरिकों विशेषकर विद्यार्थियों का कर्तव्य है। क्योंकि मालवीय जी का0हि0वि0वि0 के माध्यम से भारत में उद्योगों को प्रोत्साहित करने का सपना लगातार देखते रहे। यहाँ यह कहना बेहतर होगा कि एक ऐसा विश्वविद्यालय बनाने का संकल्प अपने मन में संजोए हुए थे जो आर्थिक आत्मनिर्भरता की ओर देश का नेतृत्व कर सके। मालवीय जी के सपने का साकार रूप अगर देखना है तो जनपद मिर्जापुर के बरकछा में राजीव गाँधी दक्षिणी परिसर के रूप में उच्च शिक्षा का केन्द्र जो सुचारू रूप से संचालित है जहां क्षेत्र के ग्रामीण, शहरी एवं आदिवासी आदि लोगों के लिए उच्च शिक्षा के क्षेत्र में बेहतर ढ़ंग से कार्य किया जा रहा है। जो कही न कहीं मालवीय जी के ही सार्थक सोच का परिणाम है। क्योंकि वे चाहते थे कि शिक्षा का विस्तार बड़े पैमाने हो और उच्चशिक्षा का लाभ विभिन्न माध्यमों से जन-जन तक पहुँचाया जाये जिससे कि एक शिक्षित समाज की परिकल्पना को मूर्तरूप दिया जा सके।

सन्दर्भ

1. महामना के प्रेरक प्रसंग खंड-8 डा0 उमेश दत्त तिवारी, वाराणसी स्व0 बाबू जगजीवन राम के लेख के अंश पृ0 30
2. आलोक पुरूष पं0 मदन मोहन मालवीय, भरत राम भट्ट राजेश प्रकाशन, दिल्ली 1990 पृ0 15,16 के अंश।
3. वही, पृ0 17 के अंश।
4. महामना के प्रेरक प्रसंग खंड-8 डा0 उमेश दत्त तिवारी, वाराणसी, डा0 कर्ण सिंह, कुलाधिपति, का0हि0वि0वि0 के लेख विश्वविद्यालय की कल्पना के अंश।
5. आलोक पुरूष पं0 मदन मोहन मालवीय, भरत राम भट्ट राजेश प्रकाशन, दिल्ली 1990 पृ0 22 व 23 के अंश।
6. वही, पृ0 23 के अंश।
7. वही, पृ0 25 के अंश।
8. वही, पृ0 27 के अंश।
9. महामना चिंतन एवं संदेश, डा0 उमेश दत्त तिवारी, वाराणसी-2009 पृ0 48 व49 के अंश।
10. वही, पृ0 51, 52 व 53 के अंश।
11. वही, पृ0 54 के अंश।
12. आलोक पुरूष पं0 मोहन मालवीय, भरत राम भट्ट राजेश प्रकाशन, दिल्ली 1990 पृ0 27 के अंश।
13. स्मारिका, पूर्वछात्र प्रकोष्ठ का0हि0वि0वि0, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की परिकल्पना तथा स्थापना, लेखक न्यायमूर्ति गिरधर मालवीय, इलाहाबाद के लेख के प्रमुख अंश पृ0 39 व 40।
14. दर और सोमस्कंदन, 1961, पृ0 349।

◆

संस्कृति के सेतु : महामना एवं कला मनीषी राय कृष्णदास

डॉ. राधाकृष्ण गणेशन् *

भारत में अनेक मनीषी और कर्मठ महान व्यक्ति हुए हैं, जो काल के मानस पर अपनी अमिट छाप छोड़ गये हैं। उनका पार्थिव शरीर तिरोहित हो जाता है, तथापि उनका यशः शरीर अमर रहता है। महामना पं. मदन मोहन मालवीय एवं कला-मनीषी राय कृष्णदास का नाम ऐसे ही महापुरुषों में लिया जा सकता है। इनका अवतरण निःसन्देह प्रकृति द्वारा निर्देशित कार्यों में लगने एवं उन्हें पूर्ण करने हेतु ही हुआ था। इन दोनों ही पुरोधाओं का प्रादुर्भाव प्रयाग में हुआ और दोनों ने ही अपना कर्मस्थल काशी को ही चुना। तात्पर्य, इन दोनों की सांस्कृतिक गंगा संगम-तट (प्रयाग) से प्रारम्भ होकर काशी के गंगा तट पर पुनः एक ही स्थान पर विलेय हो जाती है। एक ने विशाल शैक्षणिक संस्थान (हिन्दू विश्वविद्यालय) के स्वप्न को साकार किया तो दूसरे ने एक विद्या के चाक्षुष मंदिर (संग्रहालय) की परिकल्पना को सार्थक किया।

इन दोनों ही महापुरुषों का जन्म उन्नीसवीं और बीसवीं शती के सन्धिकाल में हुआ था। पौष कृष्ण अष्टमी, विक्रम संवत 1918 (25 दिसम्बर सन् 1861) में प्रयाग की अहियापुर (लाल डिग्गी) में विद्वान ब्राह्मण परिवार में जन्में महामना एक श्रेष्ठ राजनीतिज्ञ, अग्रणी पत्रकार, प्रखर अधिवक्ता, देवनागरी लिपि के प्रतिष्ठाता, प्रभावशाली समाज सुधारक, अद्वितीय फकीर, हिन्दुत्व के युगपुरुष, सांस्कृतिक धरोहर के स्तम्भ, जीव-दया के पोषक, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के संस्थापक तथा उसके आदर्श कुलपति और एक महान शिक्षाविद् थे तो नैसर्गिक एवं बहुमुखी प्रतिभा के धनी कला-मनीषी राय कृष्णदास का प्रादुर्भाव मार्गशीर्ष कृष्ण 7, संवत् 1948 (7 नवम्बर सन् 1892) को प्रयाग में हुआ, जिनकी ख्याति एक कला इतिहासकार, साहित्य कला मर्मज्ञ, विविध विषयों के ज्ञान-जिज्ञासु, देश के ज्ञान की अनेक नीधि विधाओं के प्रवर्तक, कलाकृतियों के संग्रहकर्ता और संरक्षक, संग्रहालय विशेषज्ञ, कला लेखक, कला मर्मज्ञ, कला समीक्षक, भारत कला भवन-संग्रहालय के संस्थापक और एक महान कलाविद् के रुप में रही है।

यह समय अंग्रेजी हुकूमत का था। ईस्ट इंडिया कम्पनी का आधिपत्य हो चुका था। भारत में विदेशी शासन अपने जड़ें जमा चुकी थीं जिसके प्रभाव से यहाँ प्रचलित सदियों पुरानी सामाजिक संरचना, सामाजिक-सांस्कृतिक नियम-बन्धन, हजारों वर्ष पूर्व की परम्पराओं एवं नैतिक मूल्यों का शनैः-शनैः ह्रास होना प्रारम्भ हो रहा था। भारतीय भाषायों पूरी तरह उपेक्षित थी। साक्षरता का दर अत्यन्त न्यून था। विदेशी प्रशासक, अंग्रेजी शिक्षा प्राप्त बाबुओं के नये वर्ग का उदय कर भारत में अपने शासन को सुदृढ़ एवं समृद्ध करना चाहते थे।

भारत-भारती की ऐसी दुर्दशा देखकर राष्ट्रीयता से अभिभूत शिक्षा, संस्कृत के उत्कट वाङ्मय के सतत् अध्ययन तथा तत्कालीन भारत के स्वतंत्रता आन्दोलन के प्रभाव के कारण महामना पं. मदन मोहन मालवीय एवं कलाविद् राय कृष्णदास प्राचीन भारत की मर्यादा की रक्षा हेतु कटिबद्ध हो चुके थे। दोनों ही अपने अन्तर्निहित ज्ञान एवं प्रतिभा का उपयोग राष्ट्र के लिये करना चाहते थे। दोनों के ही हृदय में राष्ट्रभक्ति की तरंगे हिलोरें ले रही थीं। भारत-भूमि की रक्षा हेतु कौन सा मार्ग अपनाया जाय, भारत-जननी की सेवा करने के लिए कौन सा माध्यम उचित होगा, यह विचार उन्हें लगातार मथ रहा था। महामना ने देखा कि पश्चिम के चकाचौंध और तकनीकी विकास के फलस्वरुप भोगवादी संस्कृति के चाकचिक्य में फँसकर इस देश के नर-नारी भी मनुष्यत्व और स्वतंत्रता को खो देने में ही संतोष का अनुभव कर रहे हैं, अतः उन्होंने सनातन धर्म और परम्परागत धर्म एवं ज्ञान से संयोजित मानवता के विस्तार हेतु विद्या के भव्य मंदिरों की स्थापना का संकल्प लिया और हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना कर उसे पूर्ण कर दिखाया।

वहीं कला मर्मज्ञ राय कृष्णदास इस बात से दुःखी थे कि अज्ञानता और अशिक्षा के कारण ही भारत की जनता अपनी विरासत को समझने एवं उन्हें अपने हित पोषण हेतु ग्रहण करने में असमर्थ है। वह प्राचीन भारतीय कला को उजागर कर लोगों में यह भावना भरना चाहते थे कि - हम कितने महान थे, क्या हम अब भी वैसे नहीं हो सकते? उनकी भावुक प्रकृति और सौन्दर्य बोध ने न केवल उन्हें साहित्यिक गरिमा प्रदान की अपितु तत्कालीन राष्ट्रीय स्वाधीनता ने भी उनके व्यक्तिव को पूर्णरुपेण प्रभावित किया। इसके फलस्वरूप भारत की प्राचीन गौरवशाली सांस्कृतिक परम्पराओं, इसके पुरावशेषों एवं कलाकृतियों के प्रति भी राय कृष्णदास के हृदय में अगाध प्रेम ज्योति प्रज्ज्वलित हुई और उन्होंने कलाकृतियों के संकलन, उनके संरक्षण जैसे दुरुह कार्य को एक नया आयाम देने का दृढ़ संकल्प लिया और एक आदर्श सांस्कृतिक केन्द्र (संग्रहालय) की स्थापना कर अपने लक्ष्य में सफल रहे।

पं. मदन मोहन श्रीमद्भागवत प्रेमी एवं कथावाचक पंडित ब्रजनाथ एवं माता मूना देवी के चौथे पुत्र थे। बचपन से ही उनमें अपने देश और धर्म के प्रति विशेष अनुराग दिखाई पड़ता था। स्वभाव से लोगों की यथाशक्ति मदद करना तथा अच्छी बातों के लिये लोगों से आग्रह करना इनकी दिनचर्या का हिस्सा ही बन गया था। अपने धर्म के लिये दृढ़ संकल्प रहने का उनका अन्दाज उनके जीवन में एक बहुत बड़े परिवर्तन का भी कारण बना। कुशाग्र बुद्धि मदन मोहन बाल्यवस्था में उस समय के ब्राह्मण परिवार के बच्चों की तरह संस्कृत पढ़ने के लिये हरदेव गुरु की धर्मोपदेश पाठशाला तथा पं. देवकीनंदन की विद्या धर्म प्रवर्धिनी सभा पाठशाला में गये। अपने विद्यार्थी जीवन में भी मदन

* वरिष्ठ कलाकार, भारत कला भवन, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

मोहन का ध्यान पढ़ाई के अतिरिक्त समाज में चल रही विविध प्रकार के गतिविधियों की ओर लगा रहता था। उन्होंने समाज में विशेषतः पाश्चात्य संस्कृति से प्रभावित लोगों पर छोटी-छोटी नाटिकाओं के रूप में व्यंगात्मक लेख तथा कविताएँ ही नहीं लिखीं अपितु उन नाटकों का मंचन भी किया। इससे बचपन की नुक्कड़ नाटकों की उनकी प्रवृत्ति और भी मुखरित हुई। हिन्दी भाषा के अतिरिक्त संस्कृत तथा अंग्रेजी दोनों में ही विशेष निपुणता के कारण उन्होंने कालेज में पढते समय संस्कृत नाटक 'शकुन्तला' में शकुन्तला का तथा शैक्सपियर कृत नाटक 'मर्चेंट आफ वेनिस' में पोर्शिया का किरदार बखूबी निभाया जिसकी चर्चा पूरे शहर में होने लगी। अपने विद्यार्थी जीवन में ही कई सामाजिक कार्यों में भागीदारी करते हुए मदन मोहन जी ने स्नातक की परीक्षा उत्तीर्ण की। यह एक सुखद संयोग ही था कि स्नातक की पढ़ाई करते समय उन्हें म्योर सेन्ट्रल कॉलेज के प्रख्यात अध्यापक पं. आदित्य राम भट्टाचार्य का स्नेह एवं सानिध्य प्राप्त हुआ। वह मदन मोहन से बड़े प्रभावित थे। गुरु के प्रोत्साहन से ही पं. मदन मोहन ने 'प्रयाग हिन्दू समाज' नामक संस्था की स्थापना की। जब वर्ष 1885 में बम्बई में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना के पश्चात् वर्ष 1886 में कलकत्ता में उसके अगले अधिवेशन में पं. आदित्य राय भट्टाचार्य जी ने भाग लिया तो उन्होंने 25 वर्ष के युवक मदन मोहन को भी अपने साथ ले जाने का निश्चय किया। ज्ञातव्य है कि हर प्रदेश से उसमें सहभागिता करने एक से बढकर एक प्रतिनिधि जा रहे थे। गुरु की आज्ञा शिरोधार्य करते हुए मदन मोहन ने वर्ष 1886 की कांग्रेस अधिवेशन में अपने विचार प्रस्तुत किये। उनके उस ओजस्वी वक्तव्य को सुनकर वहाँ उपस्थित पूरी सभा मंत्रमुग्ध हो गई। इस सराहनीय लघु भाषण के दौरान श्रोताओं ने 22 बार तालियाँ बजाईं। इस प्रकार युवा मदन मोहन का राजनीति में प्रवेश हुआ। उक्त अधिवेशन में आये कालाकांकर के राजाराम पाल सिंह महामनाजी से इतने प्रभावित हुए कि उन्होंने अपने समाचार-पत्र 'हिन्दोस्थान' में सम्पादक का दायित्व दे दिया। महामना अध्यापक की नौकरी छोड़कर सम्पादक बन गये। मालवीय जी देश की तत्कालीन परिस्थितियों तथा हो रहे अत्याचारों के विरोध में खुलकर लिखते थे। तीन वर्षों पश्चात् वह प्रयाग आकर 'इण्डियन ओपिनियन' में सहायक सम्पादक बने। स्वाधीनता संग्राम, भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस और सर्वतोन्मुखी राष्ट्रीय उत्थान में पूज्य महामना पं. मालवीय जी ने जो महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, वह तत्कालीन परिस्थिति के लिये आवश्यक कदम था।

राय प्रहल्लाल दास जी के पुत्र के रुप में जन्म लेने वाले राय कृष्णदास में कला प्रेम वंशानुगत और नैसर्गिक था। राय कृष्णदास जी का जन्म काशी के प्रतिष्ठित तथा सम्पन्न परिवार में सन् 1892 में हुआ था। इनके पिताका ननिहाल भारतेन्दु कुल में था। राय कृष्णदास जी के पिता भारतेन्दुजी के फुफेरे भाई थे। और इन दोनों में घनिष्ठ संबंध था। इस कारण हिन्दी साहित्य के क्षेत्र मे राय कृष्णदास जी की गहरी अभिरुचि हुई और इनका विकास हिन्दी के रचनाकार के रूप में हुआ पर राय कृष्णदास की कला-प्रियता उनकी पूजनीया माता की देन है। उनको देवी-देवताओं और प्राकृतिक दृश्यों के चित्र संग्रह करने का बहुत शौक था। फलतः उनके जन्म से पूर्व ही घर में पुरानी मूर्तियों और चित्रों का अच्छा-खासा संग्रह था। घरेलू माहौल में उन मूर्तियों पर रोज होती बातों, उनकी सुन्दरता और उनके साथ जुड़े इतिहास ने बालक कृष्णदास को बचपन से ही अपनी ओर खींचना शुरु कर दिया था। उसी की छाप बालक कृष्णदास के हृदय पर पड़ी। छोटी उम्र से ही एक बात उनके मन में बैठी हुयी थी कि ऐसी बहुमूल्य मूर्तियाँ घर में नहीं होनी चाहिए बल्कि सब लोगों के देखने के लिए होना चाहिए। इसी बात ने धीरे-धीरे उन्हें प्राचीन कला इतिहास की गम्भीर दुनिया में डुबो दिया और उनमें नयी मूर्तियों के लिए ममता बढ़ गयी।

जब कृष्णदास 9 वर्ष के थे तभी उनके माताजी का देहान्त हो गया था फिर उनके पिता ने उन्हें काशी के सेन्ट्रल हिन्दू कॉलेज में भर्ती करा दिया था, पर उनका बाल्यकाल प्रायः इलाहाबाद में बीता। इसका मुख्य कारण था, उनके पिताश्री एक बड़े मुकदमें फँसे हुए थे। अतः उनकी स्कूली शिक्षा में व्यवधान आता रहा और अन्ततः यह क्रम टूट गया। उन्हें लम्बे समय तक इलाहाबाद में ही रहना पड़ा।

इलाहाबाद स्थित दारागंज मोहल्ला उन्हें काशी जैसा ही प्रिय था। वहाँ ब्रिटिशकालीन वैभव के साथ-साथ समाज करवट ले रहा था। काशी के समान ही इलाहाबाद भी बुद्धिजीवियों का केन्द्र था। यह संयोग ही था कि राय कृष्णदास के ननिहाल के दो महान व्यक्तित्वों का संबंध उनके इस पैतृक निवास से था जहाँ एक ओर पं. मदन मोहन मालवीय के पिता पं. ब्रजनाथ इस घर के कथावाचक थे तो दूसरी ओर भारत के प्रथम प्रधानमंत्री पं. जवाहर लाल नेहरू के पिता पं. मोती लाल नेहरू इनके अनन्य मित्रों में थे। अपने इलाहाबाद प्रवास में अपने पिताश्री के साथ रहते हुए वह हिन्दी के नक्षत्र महामना जी के साहित्यिक पत्रकारिता के गुरु पं.बालकृष्ण भट्ट और सर्वोपरि सम्पादकाचार्य रामानन्द चटर्जी सदृश्य बड़े-बड़े व्यक्तित्वों के निकट सम्पर्क में आए और उन लोगों से अभूतपूर्व प्रेरणा प्राप्त की। बालक कृष्णदास सदैव अपने पिताश्री के साथ ऐतिहासिक स्थलों की सैर किया करते थे और उन वस्तुओं, कलाशिल्पों की बारीकियों का विश्लेषण अपने ढंग से करते थे। उन्हें लखनऊ, आगरा तथा दिल्ली की इमारतों को भी देखने का अवसर मिला था जिसके स्थापत्य से वह उन्हीं दिनों प्रभावित हुए थे। इलाहाबाद में उनका एक प्रिय स्थल था, वहाँ का स्थानीय म्योर लाइब्रेरी। वह अधिकांश समय वहाँ व्यतीत करते थे। वहाँ भारतीय इतिहास से संबंधित पुस्तकों को उलटते-पलटते रहते। पुस्तकों के साहित्य के बजाय उनमें प्रकाशित चित्रों में उनकी बड़ी रुचि रहती थी। इन चित्रों को घंटों देखते और उनमें डूबे रहते। इनमें जनरल कनिंघम के प्रकाशन, फर्ग्यूशन की पुस्तकें तथा मुख्य रुप से ग्रिफित का अजंता (प्रकाशन) थीं। पुस्तकालय के कर्मचारी भी इस अल्पवयस्क बालक के चित्रों की अभिरुचि को देखकर अचंभित होते। इस प्रक्रिया से बालक कृष्णदास की दृष्टि और पैनी होती गयी, परख बढ़ती गयी। कभी-कभी

वे अपने पिता से उन विषयों पर तर्क-वितर्क भी किया करते। इसी काल में रेखाचित्रों का अभ्यास भी वे करने लगे थे।

इसी काशी प्रयाग के गंगा-जमुनी वातावरण में राय कृष्णदास का पहले 14 वर्ष तक विकास हुआ पर दैव दुर्विपाक से सन् 1906 में उन पर घर का भार आ पड़ा। प्लेग के कारण उनके पिता चल बसे थे। काशी में बालक रायकृष्णदास की स्कूल पढ़ाई आगे न चल सकी, पर उनके मन में ज्ञान की जो तीव्र अभीप्सा जगी उससे उन्होंने एक आत्मीयता स्थापित की। पं. हरिकृष्ण थत्ते जी तथा ईसाई मास्टर जानदास से कृष्णदास ने घर पर ही प्रारम्भिक शिक्षा पायी। मास्टर जानदास भारतीय ईसाई थे जो हर देशवासी के हाथ में बन्दूक देकर अंग्रेजों को भगाने, उदयपुर के महाराणा को भारत सम्राट बनाने का स्वप्न देखा करते। रायकृष्णदास उनके इस चित्रण को अश्रुपूरित नयनों से सुना करते। निःसन्देह, उन शिक्षकों ने ही किशोर रायकृष्णदास में उग्र राष्ट्रीयता की भावना भर दी थी। राष्ट्ररत्न बाबू शिवप्रसाद गुप्त राय कृष्णदास के आदर्श थे। निस्पृहता, मुक्तहस्तता, आचार शुद्धता, राष्ट्र प्रेम, हिन्दी प्रेम आदि में उन्हें बाबू शिवप्रसाद गुप्त से ही प्रेरणा मिली। इनकी साहित्यिक अभिरुचि काशी नागरी प्रचारिणी सभा से जागृत हुई जिसमें अनेक साहित्यकारों का योग था। सन् 1909 में बाबू जयशंकर प्रसाद से निकटता बढ़ी। आचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी से प्रोत्साहन, रामानन्द चट्टोपाध्याय से निकटता तथा राष्ट्रकवि मैथिली शरण गुप्त आदि की घनिष्ठता से राय कृष्णदास के व्यक्तित्व में क्रमशः निखार ही आता गया।

कृष्णदास में कला की परख कुलागत तो थी ही, कला के प्रति पूर्ण निष्ठा, लगन व समर्पण के कारण ही वे भारत की यत्र तत्र पड़ी अनमोल पुरातात्त्विक वस्तुओं निजी संग्रहकर्त्ताओं के संकलनों, संग्रहालयों तथा राजाओं-महाराजाओं के यहाँ सुरक्षित बहुमूल्य, दुर्लभ थातियों का अवलोकन करते, अचम्भित होते और उनकी व्याख्या अपने ढंग से करते थे। आगे चलकर यही प्रक्रिया उनके जीवन का एक अंग बन गयी। उनकी कला-पारखी नजरों से कोई विषय-वस्तु अछूती नहीं रह गयी थी। रत्न हो, कलाकृति हो, खिलौना हो, व्यंजन हो, आचार हो, फूल-पत्ती हो, संगीत हो, कविता हो और मनुष्य ही क्यों न हों, हर एक की परख उनकी अद्वितीय थी। उनकी ज्ञानार्जन की इसी जिज्ञासा ने ही उन्हें बहुमुखी प्रतिभा का धनी बना दिया। इतना ही नहीं इनकी कला पारखी नज़रों ने अनेक लोगों को वह सूक्ष्म दृष्टि प्रदान कर दी जो न केवल उनके अपने विषय क्षेत्र के अपने ज्ञान अभिवृद्धि में सहायक बनीं अपितु उस अर्जित ज्ञान को देश से बाहर पानी के मोल जा रही पूरी सामग्री के बाहर जाने पर अंकुश भी लगाया जा सका। वह न तो केवल हिन्दी, संस्कृत एवं अंग्रेजी साहित्य के ज्ञाता थे अपितु देश के ज्ञान की अनेक नयी विधाओं के प्रवर्तक थे, उन्नायक थे।

भारत की सांस्कृतिक थाती की पुनर्स्थापना में इन दोनों महापुरुषों का योगदान अविस्मरणीय है। जिस प्रकार इन दोनों महापुरुषों का कार्यक्षेत्र विस्तीर्ण और विविधापूर्ण है उसी प्रकार इनका विचार क्षेत्र भी व्यापक है। उनके कर्मों और विचारों की विविधता के भीतर जो एकता का सूत्र निहित है, वह है 'देशभक्ति'।

महामना पं. मदन मोहन मालवीय अपने अध्ययन काल में ही सार्वजनिक और राष्ट्र के कार्यक्रमों में बढ़-चढ़ कर हिस्सा लेते थे। उन्होंने 'प्रयाग हिन्दू समाज' नामक संस्था अपने गुरु प्रो. आदित्यराम भट्टाचार्य के प्रोत्साहन से स्थापित की। स्वदेशी का व्रत लेकर उन्होंने 'हिन्दी उद्धारिणी प्रतिनिधि सभा' की स्थापना में सक्रिय सहयोग दिया। 'हिन्दी प्रदीप' में वह राष्ट्रीय देशभक्ति से ओत-प्रोत लेख लिखने लगे। उन्होंने साप्ताहिक 'अभ्युदय' शुरु किया। दो वर्ष पश्चात् 'लीडर' नाम का दैनिक समाचार-पत्र प्रारम्भ कर 'अभ्युदय' का कार्यभार राजर्षि पुरुषोत्तम दास टण्डन को सौंप दिया। मालवीय जी के अथक प्रयासों से ही अदालतों में देवनागरी लिपि प्रारम्भ हुई। सन् 1900 में यू.पी. प्रान्त गवर्नर संयुक्त ने उनका आवेदन-पत्र स्वीकृत करते हुए हिन्दी को सरकारी काम-काज में प्रथम बार स्थान दिया। इस निर्णय से हिन्दी का अदालतों में प्रचलन हुआ और हिन्दी की स्थिति में प्रभावकारी परिवर्तन हुआ। हिन्दी के प्रचार-प्रसार में अभिवृद्धि हुई। इतना ही नहीं, हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन (अक्टूबर 1910) में मालवीय जी ने अध्यक्ष के रूप में सम्बोधित किया था। सन् 1886 में कांग्रेस में शरीक होने के पश्चात् आजीवन उसके शीर्ष नेतृत्व में बने रहे। उन्हें दादाभाई नौरोजी का आशीर्वाद प्राप्त था, उन्होंने एनी बेसेंट और बाल गंगाधर तिलक के साथ होमरुल लीग के आन्दोलन का नेतृत्त्व किया, असहयोग आंदोलन से पूर्व 1909 और 1918 में दो बार कांग्रेस के अध्यक्ष रह चुके थे और पं.नेहरु, सुभाषचन्द्र बोस की युवा पीढी के दौर में भी 1932 और 1933 में दो बार कांग्रेस की अध्यक्षता की। इतना बृहत् और उत्कृष्ट राजनीतिक कीर्तिमान इतिहास में इने-गिने लोगों को ही मिलेगा। इतना ही नहीं, उन्होंने पत्रकारिता, गो-सेवा, अछूतोद्धार, स्वदेशी, सनातन धर्म का प्रचार, हिन्दू-मुस्लिम एकता, स्काउट आन्दोलन, हिन्दी और देवनागरी लिपि की प्रतिष्ठा और सर्वोपरि विश्वविद्यालय की स्थापना आदि अनेक क्षेत्रों में जितने भी कार्य किये सभी उत्कृष्टता से पूर्ण किये।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय तो महामना की देश-भक्ति का एक जीवन्त उदाहरण है। मालवीयजी का संकल्प था एक ऐसे विश्वविद्यालय की स्थापना का जहाँ पर राष्ट्रीयता की शिक्षा मिले, भारत के गौरवमय इतिहास, सांस्कृतिक धरोहर को युवा समझें, देश की भाषाओं के साथ संस्कृत का अधिकाधिक प्रयोग हो। सन् 1905 में बनारस में हुए कांग्रेस के अधिवेशन में मालवीयजी ने विश्वविद्यालय के स्थापना की घोषणा की और पूरी शक्ति और लगन से इस कार्य में जुट गये। आवासीय विश्वविद्यालय में दस हजार छात्र एक साथ रहकर देश व समाज की परिस्थितियां समझ सकें – ऐसा विश्वविद्यालय 4 फरवरी 1916 को स्थापित हुआ। प्राच्यविद्याओं, कला, साहित्य, सामाजिक, मानविकी विषयों के साथ-साथ ज्ञान-विज्ञान और तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में आधुनिक शिक्षा का प्रथम केन्द्र यह विश्वविद्यालय बना।

मालवीयजी द्वारा प्रारम्भ की गई संस्कृत शिक्षा और गीता प्रवचन की परम्परा आज भी जारी है। देश की स्वतन्त्रता के लिये यह विश्वविद्यालय राष्ट्रीय चेतना और जागरण का प्रमुख केन्द्र बना।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के सन् 1929 में दिये गये दीक्षान्त भाषण में मालवीय जी ने इस बात पर बल दिया कि राष्ट्रीय देशभक्ति की शिक्षा देने का कार्य एक अध्यापक को ही करना चाहिये। उन्होंने कहा कि— *''किसी को इस बात का दुःख नहीं होना चाहिए कि मैं अध्यापकों के लिये बहुत कुछ माँग रहा हूँ। प्रायः सभी सभ्य देशों में देश के राष्ट्रीय उत्थान में अध्यापक का स्थान बहुत उच्च माना जाता है। यह निर्विवाद है कि वह राज्य का सर्वश्रेष्ठ सेवक है। बालकों के मस्तिष्क का झुकाव अध्यापक जिधर चाहे कर सकते हैं। अगर वह देशभक्त है, राष्ट्रीयता से उसे प्रेम है, और यदि वह अपने उत्तरदायित्त्व को समझता है, तो वह देशभक्त पुरुष और स्त्रियों की एक जाति पैदा कर सकता है, जो स्वभावतः देश को ऐसी श्रेणी पर पहुँचा देंगे, जहाँ राष्ट्रीय हित के सामने जातीय स्वार्थ और द्वेष लेश भी नहीं रहेगा। जर्मनी, फ्रान्स, अमेरिका और जापान तथा अन्य सभ्य देशों ने अपने स्कूलों में देशभक्ति की शिक्षा देकर अपनी राष्ट्रीय शक्ति तथा दृढ़ता का निर्माण किया है। इस विषय में जापान का उदाहरण आदर्श है। महाक्रान्ति सन् 1868 में हुई थी, जिससे आधुनिक जापान की नींव पड़ी। जापान की राष्ट्रीय सरकार ने जापान में शीघ्र ही एक राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली को जन्म दिया, जिसमें देशभक्ति की शिक्षा आवश्यक थी। सन् 1890 में शिक्षा के विषय में एक राजकीय राजाज्ञा निकली, जिसमें जापान के सम्राट मिकाडो ने अपनी प्रजा को राजभक्ति, देशभक्ति तथा विद्या-प्रेम की शिक्षा दी थी, और बतलाया था कि मानव-धर्म तथा सद्व्यहार का यही सुमार्ग है। वह राजाज्ञा जापान की प्रत्येक पाठशाला में टंगी हुई है, और प्रत्येक विद्यार्थी तथा शिक्षक द्वारा वह आदर की दृष्टि में देखी जाती है। इस शिक्षा का फल बहुत ही सुन्दर हुआ है। देशभक्ति जापान का धर्म हो गया है। इसने जापानियों को सिखलाया है कि देश के लिये प्राण-न्यौछावर कर दो। साठ वर्ष पहले जापान विभाजित तथा निर्बल था। जापान ने प्रारम्भिक और माध्यमिक हाई स्कूल, विश्वविद्यालय, शिल्प-सम्बन्धी तथा विशेष स्कूल आदि का निर्माण करके छः वर्ष से चौदह वर्ष की उम्र वाले बालक व बालिकाओं की प्रारम्भिक स्कूलों में उपस्थिति आवश्यक बनाकर कुछ ही वर्षों में सम्पूर्ण राष्ट्र को शिक्षित बना दिया। जापान के इस आकस्मिक उत्थान का मुख्य कारण, वही शिक्षा तथा उसी के साथ प्रचलित आवश्यक सार्वजनिक सैनिक शिक्षा है। शिक्षा तथा देशभक्ति इन दो गुणों से युक्त जापानियों ने चीन को सन् 1895 में और रूस को सन् 1905 में परास्त किया। जापान को संसार की प्रमुख पाँच शक्तियों से पदासीन हुए बहुत दिन हो गये। यह सब प्रभाव शिक्षा का है, राष्ट्रीय देशभक्ति की शिक्षा का है। भारतवर्ष को भी इसी प्रकार की राष्ट्रीय शिक्षा-प्रणाली का आश्रय लेने दो, और हमें विश्वास और आशा है कि इसी प्रकार के सन्तोषजनक फल प्राप्त होंगे।''*

अपने इसी दीक्षान्त वक्तव्य में महामना ने स्नातकों को देशभक्ति के प्रति प्रेरित करते हुये कहा कि— ... *''आपको भी यह ध्यान में रखना चाहिये कि यह देश आपका जन्मस्थान है। यह एक सुन्दर देश है। सभी बातों के विचार से इसके समान संसार में कोई दूसरा देश नहीं है। आपको इस बात के लिये कृतज्ञ तथा गौरवान्वित होना चाहिये कि उस कृपालु परमेश्वर ने आपको इस देश में पैदा किया है। आपका दूसरे के प्रति एक मुख्य कर्त्तव्य है। आपने इसी माता की गोद में जन्म लिया है, इसने आपको भोजन दिया, वस्त्र दिया तथा आपका पालन-पोषण करके आपको बड़ा बनाया है। यही आपको सब प्रकार की सुविधा, सुख, लाभ तथा यश देती है। यही आपकी क्रीड़ा-भूमि रही है और यही आपके जीवन का कार्यक्षेत्र बनेगी तथा आपकी सभी आशाओं तथा उमंगों का केन्द्र रहेगी। यही आपके पूर्वजों तथा जाति के बड़े से बड़े अथवा छोटे-छोटे मनुष्यों का कार्यक्षेत्र रही है। अतएव पृथ्वी के धरातल पर यही भूमि आपके लिये सबसे बढ़कर प्रिय और आदरणीय होनी चाहिए।''* महामना राष्ट्र और धर्म पर आक्षेप भी सहन नहीं कर सकते थे। सदैव कहा करते- *''मैं अपने प्राण भी दांव पर लगा सकता हूँ किन्तु अपने देश व धर्म पर आक्षेप सहन नहीं कर सकता।''*

देशभक्ति के सम्बन्ध में मालवीय जी ने कहा—*''देशभक्ति का संचार हमारे हृदय से स्वार्थ को निकाल कर फेंक देगा। हम अदूरदर्शी, स्वार्थी और खुशामदियों की तरह ऐसे कार्य कदापि न करेंगे जिनसे देशवासियों को हानि पहुँचे। सच्चा धर्म देशभक्ति द्वारा प्राप्त होता है... हम अदूरदर्शी, सत्यशील और दृढ़ताप्रिय आत्माओं की भाँति असंख्य कष्ट उठाते हुए भी वहीं करेंगे जिससे देश का भला हो। निर्धन, धनवान, निर्बल, बलवान और मूर्ख भी बुद्धिमान हो जाय। प्रत्येक प्रकार के सामाजिक दुःख मिटे और दुर्भिक्षादि-विपत्तियाँ दूर होकर लाखों बिलबिलाती हुई आत्माओं को सुख पहुँचे। देशभक्ति द्वारा इतने धर्मों का सम्पादन होता देखकर भी यदि कोई धर्म के आगे देशभक्ति को कुछ नहीं समझता उस पुरुष को जान लीजिये कि वह धर्म के तत्त्व को ही नहीं पहचानता।''*

सन् 1946 (भारतीय स्वतन्त्रता के एक वर्ष पूर्व) में 85 वर्ष की अवस्था में मालवीयजी रोग शैय्या पर थे, तब केन्द्र में अन्तरिम सरकार बनी, मुस्लिम लीग ने सीधी कार्यवाही के रुप में जो उपद्रव किये, नोआखली में हिन्दुओं की हत्याएं की गईं, उससे उनके हृदय को अत्यधिक ठेस पहुँची। यह कष्ट सहन न कर पाने के कारण मालवीयजी परलोक सिधार गये। यहीं राष्ट्र-देशभक्ति का सूर्य अस्त हो गया।

'देशभक्ति' में राय कृष्णदास का योगदान उनके व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व में देखा जा सकता है। राष्ट्रीयता के प्रति राय साहब समर्पित थे। भारतीय संस्कृति तथा साहित्य के प्रति उनकी असाधारण निष्ठा थी, जो जीवन-पर्यन्त उनमें विद्यमान रही । जब उन्होंने साहित्य लेखन की ओर हाथ बढ़ाया तो हमें काव्य, गद्य-काव्य, कहानी, उपन्यास, अनुदित रचनाएँ, शोधपरक रचनाएँ दीं। राय कृष्णदास द्विवेदी युग की देन थे

और भारतेन्दु युग से पूर्ण प्रभावित थे । उनके कृतित्त्व काल का समारम्भ वहाँ से होता है जब द्विवेदी युग अपने पूर्ण वैभव पर था। एक दृष्टि से हिन्दी साहित्य शास्त्रीय था जिसमें सृजनशीलता की अभी भी बहुत गुंजाइश थी । गुप्तजी ने 'भारत-भारती' का प्रकाशन कर हिन्दी साहित्य को दूसरे तटों तक पहुँचा दिया था । उन्हीं दिनों प्रसाद जी की रचनाओं में सूक्ष्म और कोमल तन्तु उभर रहे थे और जिससे 'छायावाद' का पथ प्रशस्त हो रहा था । इसी कडी में राय कृष्णदास का साहित्य उपस्थित होता है। उनका प्रथम सशक्त और सृजनशील लेखन गद्यगीतों में हम पाते हैं । चौबीस वर्ष की वय में 'साधना' जैसी कृति की रचना कर राय कृष्णदास ने अपूर्व यश प्राप्त किया । उन्होंने देश-सेवा प्रच्छन्न रुप में की । इसी को लक्ष्य कर स्व. श्री भगवतीशरण ने लिखा है- *''भारत की स्वाधीनता की लौ, जो भारतेन्दु ने साहित्य के क्षेत्र में प्रज्ज्वलित की थी, वह उस समय के और उसके बाद के कवियों के हाथों होती हुई राय कृष्णदास और प्रसाद जी तक भी पहुँची थी। राय साहब के हाथों वह और भी अहिंसात्मक और गौरवान्वित हुई।''*

राय कृष्णदास राजनीति से तो नहीं जुडे थे पर क्रान्तिकारियों का कोई भी सिपाही सहज भाव से उनकी कोठी में घुस जाता । बाहर निकलने पर वह राय साहब से केवल इतना कहते हुए निकल जाता कि *''एक बोरी देशी और दो बोरी विलायती चीनी रखवा दी है,''* वे सहज ढंग से कहते, *''जाओ''।* उनके जैसे रईस के घर दो-चार बोरी चीनी की खपत आम बात थी। पर वस्तुतः एक बोरी का अर्थ होता था- एक देशी पिस्तौल और दो बोरी विलायती का अर्थ होता था, दो विलायती पिस्तौल । वे इस प्रश्रय के परिणाम से कभी भी चिन्तित नहीं हुए । वे भारतीय इतिहास को, साहित्य को, संस्कृत को, अपने परिवेश को, सभी को पराभव और हीनता की भावना से मुक्त करना चाहते थे। ऐसी थी उनकी देशभक्ति ।

कला भवन संग्रहालय राय कृष्णदास का प्राण था । हम यूँ भी कह सकते हैं कि भारत कला भवन राय कृष्णदास की आत्मा है और राय कृष्णदास भारत कला भवन की आत्मा थी। जिस भवन में उनका कला संग्रह स्थापित किया गया, उसके स्थापत्य में भी उन्होंने उतनी ही सुरुचि का परिचय दिया। अनेक प्राचीन स्थापत्य कलाओं का सम्मिश्रण आप कला भवन में देख सकते हैं । एक-एक खम्भे-खिड़की की डिजाइन में राय साहब रुचि लेते थे। कला भवन के कलाकारों में श्री अम्बिका प्रसाद दूबे, उस्ताद शारदा प्रसाद और कलाकार कर्णमान सिंह जी से प्रारम्भिक प्रारुप बनवाते, फिर वास्तुकारों और उनके सहयोगियों को समझाते थे । इन खम्भों में मौर्यकालीन और खिड़कियों में बौद्धकालीन वास्तुकला की झलक हम देख सकते हैं । बाहर का उद्यान बहुत कुछ मुगल उद्यान से मेल खाता है जैसा कि प्रायः मुगलों की अभिरुचियों में देखा जाता है, उद्यान के फव्वारे तथा उसके अगल-बगल विविध फूलों की क्यारियाँ बनी हैं । पेड़-पौधे भी भारतीय लगाये गये हैं, जैसे-चम्पा, चमेली, कचनार, केवड़ा, रातरानी, गुलाब, सुदर्शन, नरगिस आदि इसके प्रतिनिधि उदाहरण हैं । पूर्व में उद्यान के चारों ओर जंगल जलेबी की घनी झाड़ियाँ थी, जो जानवरों से बगीचे की रक्षा करती थी । इन सारी व्यवस्थाओं को देखकर यह कहा जा सकता है कि श्री राय कृष्णदास को एक ओर तो सरल मार्ग अपनाना पसन्द था तो दूसरी ओर इन सबके माध्यम से अपनी भारतीय परम्परा और संस्कृति को प्रत्येक क्षेत्र में अक्षुण्ण रखना चाहते थे । आज भी कला भवन के अनेक कर्मचारी राय साहब के प्रति श्रद्धावनत होकर वे दुर्लभ संस्मरण सुनाते हैं, जिनके सुनने मात्र से ही लगता है कि कला भवन ही उनका जीवन था और वे उसी को समर्पित थे ।

एक कलाकार होना बड़ी बात है। कला को जीवन में उतारकर तद्रूप बन जाना कठिन होता है। राय कृष्णदास ने उसे अपने जीवन में उतारा था । उनकी साधना ही जीवन की कला थी । उन्होंने कला और साहित्य के लिये अपने जीवन का सर्वस्व समर्पित कर दिया । कला के प्रति राय साहब का समर्पण उसी प्रकार था जिस प्रकार एक सच्चे भक्त का ईश्वर के प्रति पूर्ण समर्पण होता है ।

भारतीय कला के प्रचार और प्रसार के लिये राय कृष्णदास ने जो कार्य किया, निःसन्देह, वह मील का पत्थर प्रमाणित हुआ । उस युग के दूसरे अनेक कला मर्मज्ञों और कलाविदों के सम्पर्क में आने के कारण भारतीय कला के प्रति उनका अनुराग और भी सघन हो उठा। कला के इसी अनुराग ने उन्हें 'भारत कला परिषद्' की स्थापना को प्रेरित किया । इस संस्था के मुख्य उददेश्य की प्राप्ति के लिये ही राय साहब ने उत्तम कलाकृतियों का संकलन प्रारम्भ किया था । इतना ही नहीं, कला के माध्यम से राष्ट्र की सेवा हेतु 'कलानिधि' नामक हिन्दी कला त्रैमासिक पत्रिका का प्रकाशन कर राय कृष्णदास ने जो उल्लेखनीय कार्य किया है, वह भारतीय कला एवं संग्रहालय जगत के लिये एक अनुकरणीय आदर्श ही है। ज्ञातव्य है कि इस पत्रिका के प्रकाशित अंकों में कला विषयक बहुविध सामग्री है, जिसका संपादन कार्य राय साहब के कुशल हाथों द्वारा सम्पन्न हुआ था । यह दुर्भाग्यपूर्ण है कि यह प्रकाशन चार अंकों के पश्चात् ही बन्द हो गया ।

'कला निधि' के अनुसार-*''कला निधि व्यावसायिक समारम्भ नहीं है। राष्ट्र के शुष्क और ऊसर जीवन में कला को समुचित स्थान दिला कर उसे उर्वर बनाने के लिए, जो भारत कला भवन का मुख्य ध्येय है, यह प्रकाशन प्रारम्भ किया गया है ।''*

भारतीय इतिहास और कला के बारे में अनेक विदेशी विद्वानों द्वारा प्रचलित भ्रामक धारणाओं का राय कृष्णदास ने सप्रमाण खण्डन किया । पश्चिम भारतीय, राजस्थानी तथा पहाड़ी चित्रकला के बारे में उनके विचार आज भी सार्थक है। राय कृष्णदास की ऐसी सेवाओं के लिए नागरी प्रचारिणी सभा, काशी ने उन्हें वाचस्पत्य सदस्य घोषित किया। उन्हें मेरठ एवं काशी विश्वविद्यालय ने मानद डी.लिट् से भी सम्मानित किया। उत्तर प्रदेश हिन्दी साहित्य सम्मेलन में राय साहब को साहित्य वाचस्पति के सम्मान से नवाजा गया। इनके अतिरिक्त भारत सरकार ने उन्हें पहले 1961 ई. में 'पद्मभूषण' और बाद 1980 ई.

में 'पद्मविभूषण' की उपाधियों से अलंकृत किया। 20 जुलाई, सन् 1980 को 88 वर्ष की आयु में कला एवं संस्कृति के युग पुरुष, साहित्य द्रष्टा, कला-ऋषि, कला-मनीषी, कला-निधि कौस्तुभ, कला-मर्मज्ञ, कला-पुरुष, कलाविद् राय कृष्णदास ने इस संसार से विदा लिया।

निःसन्देह, राय कृष्णदास भारतीय संस्कृति के ज्वलन्त प्रतीक थे। इनका रहन-सहन भी अत्यन्त सादा और सरल था। हृष्ट-पुष्ट, लम्बा कद, ऊँचा उठा मस्तक, प्रशस्त ललाट, भरा हुआ वर्गाकार चेहरा, आगे को थोड़ी झुकी विशाल नासापुट वाली नासिका, पतले ओष्ठ, पुष्ठ चौड़ी आभामय दन्तावली, विशाल कर्ण प्रदेश, गले कन्धों पर चादर डाले, सुदरी कुर्ता तथा धोती, सतेज, चमकदार, मर्मभेदी दृष्टि, विशुद्ध भारतीय ऑखें और मुख पर कोमल मुस्कान लिये मन्द मंथर गति से नित्य ही अपने कर्म पथ की ओर बढ़ता हुआ, एक महापुरुष का सा व्यक्तित्व जिसने किसी विद्यालय अथवा स्कूल में शिक्षा नहीं पायी थी परन्तु इतिहास का समुद्र मन्थन कर 'भारत कला भवन' के रूप में ज्ञान की ऐसी दीप-शिखा प्रज्ज्वलित कर दी जो लोगों को कई पीढ़ियों तक प्रकाश देते रहेगें।

ऐसे महान आत्मा चिरकाल तक याद किये जायेगें।

◆

महामना मालवीय जी के चिन्तन की तात्त्विक पृष्ठभूमि

डॉ0 आनन्द कुमार कर्ण *

महामना मदन मोहन मालवीय के लोकोपकारी सामाजिक चिन्तन की तात्त्विक पृष्ठभूमि का निर्माण वेद, उपनिषद्, रामायण, महाभारत, पुराण आदि में विवेचित तत्त्वचिन्तन से हुआ था। वेदों से लेकर पुराण पर्यन्त एक ही परम तत्त्व की महिमा गायी गयी है। हरिवंश में कहा गया है कि सारे शास्त्र आरम्भ से अन्त तक एक हरि का ही गान करते हैं—

वेदे रामायणे चैव पुराणे भारते तथा।
आदावन्ते च मध्ये च विष्णुः सर्वत्र गीयते॥

उस एक परमतत्त्व को कोई ब्रह्मा, कोई विष्णु और कोई शिव नाम से पुकारता है।[1] मालवीय जी के अनुसार जगत् के मूल में इस एक अद्वितीय तत्त्व की ही सत्ता विद्यमान है। अपने 'ईश्वर' तथा 'एकमेवाद्वितीयम्' विषयक लेखों में वे उस अद्वितीय परमसत् के स्वरूप का विवेचन करते हैं।[2] मालवीय जी श्रुतियों का उदाहरण प्रस्तुत करते हुए कहते हैं ''ऋग्वेद स्पष्ट रूप से कहता है कि सृष्टि के पहले जगत् अन्धकारमय था। उस तम के बीच में और उससे परे केवल एक ज्ञान-स्वरूप स्वयंभू भगवान् विराजमान थे और उन्होंने उस अन्धकार में अपने को आप प्रकट किया और अपने तप से अर्थात् अपनी ज्ञानमयी शक्ति के संचालन से सृष्टि को रचा।''[3] इस सन्दर्भ में मालवीय जी ऋग्वेद के दशममण्डल के विभिन्न मन्त्रों का उद्धरण देते हैं। ऋग्वेद कहता है—

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्।
स दाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम॥[4]

प्रमुख 'हिरण्यगर्भसूक्त' की ही तरह मालवीय जी 'विश्वकर्मा सूक्त' का भी उदाहरण देते है, जिसमें इस बात की जिज्ञासा की गयी है कि सृष्टि के मूल में वह कौन सा अधिष्ठान था, आलम्बन था, उपादान था जिससे यह सृष्टि उत्पन्न हुयी। श्रुति में जिस एक अद्वितीय परमात्म तत्त्व की महिमा गायी गयी है उसी का अनुवाद पुराणों, धर्मशास्त्रों में प्राप्त होता है। मालवीय जी कहते हैं ''इसी वेद के अर्थ को मनु भगवान् ने लिखा है कि सृष्टि से पहले यह जगत् अन्धकारमय था। सब प्रकार से सोता हुआ सा दिखायी पड़ता था। उस समय जिनका किसी दूसरी शक्ति के द्वारा जन्म नहीं हुआ, जो आप अपनी शक्ति से अपनी महिमा से सदा से वर्तमान हैं और रहेंगे, उन ज्ञानमय, प्रकाशमय स्वयंम्भू ने अपने को आप प्रकट किया और उनके प्रकट होते ही अन्धकार मिट गया। मनुस्मृति में लिखा है—

आसीदिदं तमोभूतमप्रज्ञातमलक्षणम् ।
अप्रतर्क्यमविज्ञेयं प्रसुप्तमिव सर्वतः॥
ततः स्वयंभूर्भगवानव्यक्तो व्यंजयन्निदम् ।
महाभूतादिवृतौजाः प्रादुरासीत्तमोनुदः॥
योऽसावतीन्द्रियग्राह्यः सूक्ष्मोऽव्यक्तः सनातनः।
सर्वभूतमयोऽचिन्त्यः स एव स्वयमुद्बभौ।''[5]

(मनुस्मृति, 1/5-7)

इसी तरह भागवत में कहा गया है कि सृष्टि के आदि में कार्य (स्थूल) और कारण (सूक्ष्म) से अतीत एकमात्र परमात्मा ही था, उसके सिवा और कुछ भी नहीं था। सृष्टि के पश्चात् भी वही रहता है और जो कुछ जगत् प्रजञ्च दिखायी पड़ता है वह सब वही है तथा सृष्टि का संहार हो जाने पर जो कुछ बचा रह जाता है, वह परमात्म तत्त्व है। कुछ ऐसा ही भाव शिवपुराण के निम्न वचनों में परिलक्षित होता है-

एक एव तदा रूद्रो न द्वितीयोऽस्ति कश्चन।
संसृज्य विश्वं भुवनं गोप्तान्ते संचुकोच सः॥
विश्वतश्चक्षुरेवायमुतायं विश्वतोमुखः।
तथैव विश्वतोबाहुर्विश्वतः पादसंयतः॥
द्यावाभूमी च जनयन् देव एको महेश्वरः॥
स एव सर्वदेवानां प्रभवश्चोदभवस्तथा॥
अचक्षुरपि यः पश्यत्यकर्णोपि शृणोति यः।
सर्वं वेत्ति न वेत्तास्य तमाहुः पुरूषं परम् ॥

(शिवपुराण 7/1/6/14-16, 23)

मालवीय जी इसका अनुवाद प्रस्तुत करते हुए कहते हैं ''उस समय एक रूद्र ही थे, दूसरा कोई न था। उन जगत् - रक्षक ने ही संसार की रचना करके अन्त में उसका संहार कर दिया। उनके चारों ओर नेत्र हैं, चारों ओर मुख हैं, चारों ओर भुजाएँ हैं, तथा चारों ओर चरण हैं। पृथ्वी और आकाश को उत्पन्न करने वाले एक महेश्वर देव ही हैं, वे ही सब देवताओं के कारण और उत्पत्ति के स्थान हैं। जो बिना आँख-कान के ही देखते और सुनते हैं, जो सबको जानते हैं तथा उन्हें कोई नहीं जानता, वे परम पुरूष कहे जाते हैं।''[6] वेदों, उपनिषदों, स्मृति, पुराणों में जिस सनातन शाश्वत तत्त्व की महिमा गायी गयी है, उसी का कथन गोस्वामी तुलसीदास ने रामचरित मानस में बहुत ही थोड़े अक्षरों में कर दिया। मालवीय जी इस प्रसंग में तुलसी का उद्धरण प्रस्तुत करते हैं [7]-

व्यापक एक ब्रह्म अबिनासी। सत चेतन धन आनंदरासी॥
आदि-अन्त कोउ जासु न पावा। मति-अनुमान निगम यश गावा॥
बिनु पद चलै सुनै बिनु काना। कर बिनु कर्म करै विधि नाना॥
आनन रहित सकल रस भोगी। बिनु वाणी वक्ता बड़ योगी॥
तुम बिनु परस नयन बिनु देखा। ग्रहै घ्राण बिनु वास असेखा॥
अस सब भाँति अलौकिक करनी। महिमा तासु जाइ किमि बरनी॥

---

* महामना के चिन्तन की अद्वैतपरक पृष्ठभूमि की ओर ध्यान आकृष्ट कराने के लिये लेखक अपने परम पूज्य गुरूवर डॉ0 आनंद मिश्र, दर्शन एवं धर्म विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यलय के प्रति हृदय से आभारी हैं।

ऊपर वर्णित मालवीय जी के कथनों एवं उद्धरणों से स्पष्ट है कि वे संसार के मूल में एक अद्वितीय परमात्म सत्ता को स्वीकार करते हैं। वेद, उपनिषद्, स्मृति, पुराण आदि समस्त शास्त्र उस परमतत्त्व परमात्मा की सत्ता का स्पष्ट निर्वचन करते हैं। लेकिन सहज ही पूछा जा सकता है कि क्या उस परमतत्त्व की सत्ता शास्त्रों से ही सिद्ध होती है। क्या वह मात्र हमारी आस्था का विषय है? अथवा उसके लिए यौक्तिक आधार भी है। मालवीय जी स्वयं यह प्रश्न उठाते हैं कि आखिर विश्वास कैसे हो कि शास्त्रों में जिस परमात्मा का उल्लेख है ऐसा कोई तत्त्व वस्तुतः है। प्रत्युत्तर में मालवीय जी का कहना है कि इस अद्भुत सृष्टि की रचना अकस्मात् नहीं हो सकती। भौतिक तत्त्वों के आकस्मिक संयोग से इतने विलक्षण संसार की उत्पत्ति सोची ही नहीं जा सकती। बादरायण ब्रह्मसूत्र में कहते हैं कि 'जन्माद्यस्य यतः'।[8] ब्रह्म से ही जगत् की उत्पत्ति; स्थिति एवं लय है। अन्यत्र ब्रह्मसूत्र में कहा गया है कि इस जगत् की उत्पत्ति चेतना से ही हो सकती है, अन्यथा वह अनुपन्न होगा- रचनानुपत्तेश्च नानुमानम्।[9] शङ्कराचार्य 'जनमाद्यस्य यतः' इस सूत्र के भाष्य में कहते हैं कि अनेक कर्त्ता व भोक्ता से युक्त, प्रतिनियत देश-काल निमित्त वाले कर्म फल के आश्रय, मन से भी अचिन्त्य रचना रूप वाले जगत् की उत्पत्ति, स्थिति व लय सर्वज्ञ, सर्वसशक्त ईश्वर के अतिरिक्त अन्य किसी वस्तु अचेतन प्रधान (सांख्यमत), परमाणु (न्याय-वैशेषिक), शून्य (बौद्ध), स्वभाव (चार्वाक मत) अथवा आद्य जीव हिरण्यगर्भ- से नहीं हो सकता।[10] शङ्कराचार्य के उपर्युक्त तर्क को प्रयोजनमूलक तर्क कहा गया है। मालवीय जी ने अपने 'ईश्वर' विषयक लेख में ईश्वर के लिये विस्तार से ऐसे ही प्रयोजनमूलक तर्क को उपस्थापित किया है। संसार की अद्भुत व्यवस्था, उसमें निहित प्रयोजन, उसकी बहुविविधता और उसका वैचित्र्य एक सर्वज्ञ, सर्वसशक्त कुशल विश्वकर्मा ईश्वर की अपेक्षा रखता है। मालवीय जी पूछते हैं ''क्या यह प्रबन्ध 'किसी विवेकमयी शक्ति का रचा हुआ है जिसको स्थावर जंगम सब प्राणियों को जन्म देना और पालन अभीष्ट है; अथवा यह केवल जड़-पदार्थों के अचानक संयोग का परिणाम है? क्या यह परम आश्चर्यमय गोलोक मण्डल अपने आप जड़ पदार्थों के खींचने के नियम मात्र से उत्पन्न हुआ है और अपने आप आकाश में वर्ष से वर्ष, सदी से सदी, युग से युग घूम रहा है, अथवा उसके रचने और नियम से चलाने में किसी चैतन्य शक्ति का हाथ है? बुद्धि कहती है कि ''है'', वेद भी कहते हैं कि ''है''।"[11] संसार की अद्भुत बनावट, ऊपर आकाश का तारामण्डल, चन्द्र और सूर्य की गति का नियम और सबसे अधिक इन सबके पीछे की प्रयोजनवत्ता उस चैतन्यशक्ति के प्रति हमारे विश्वास को मजबूत करती है। मालवीय जी प्राणिजगत् की अद्भुत रचना पर हमारा ध्यान केन्द्रित करते हुए कहते हैं कि प्राणी जगत् की रचना इस बात की घोषणा करती है कि इस जगत् को रचने वाला एक ईश्वर है। विलियम पेली कहते हैं कि एक सुनसान जंगल में यदि घड़ी मिल जाए तो हम यह तर्क करते हैं कि अवश्य कोई मनुष्य उधर से गुजरा होगा क्योंकि घड़ी जैसी वस्तु अपने-आप नहीं उत्पन्न हो सकती। जब हम मानवीय शरीर पर दृष्टिपात करते हैं, उसके अंगों की विशिष्ट बनावट को देखते हैं, उदाहरण के लिए मनुष्य के आँखों की महीन बनावट को गौर कीजिए तो हमें क्या यह नहीं सोचना चाहिए कि ऐसी विशिष्ट रचना अपने आप नहीं हो सकती? मालवीय जी ठीक ऐसा ही तर्क देते हुए कहते हैं कि सामने स्थित घर इस बात की अपेक्षा रखता है कि घर में रहने वाला कोई बुद्धिमान मनुष्य है, जिसने इसका निर्माण किया और जो उसकी प्रबन्ध करता है। अब एक साधारण घर की अपेक्षा मनुष्य के शरीर और उसके मन की बनावट कितनी जटिल व सूक्ष्म है, क्या इसकी रचना आप ही हो जाती है? अवश्य कोई शक्ति है, जो इस सृष्टि के मूल में है। मालवीय जी कहते हैं ''हम देखते हैं कि यह प्रयोजनवती रचना सृष्टि में सर्वत्र दिखाई पड़ती है और यह ऐसी है कि जिसके अन्त तथा आदि का पता नहीं चलता। हम देखते हैं कि सृष्टि के आदि से सारे जगत् में एक कोई अद्भुत शक्ति काम कर रही है, जो सदा चली आयी है, सर्वत्र व्याप्त है और अविनाशी है।''[12]

यहाँ प्रतिपक्षी यह कह सकता है कि यदि ईश्वर का अस्तित्व होता तो वह सबको दिखाई देता, अब चूँकि ईश्वर इस प्रकार सबको नहीं दिखाई देता अतः उसकी सत्ता को मानना उचित नहीं होगा। मालवीय जी का इस पर कहना है कि यह सही है कि ईश्वर का प्रत्यक्ष आँखों से नहीं होता पर उसको मन की आँखों से तो देखा ही जा सकता है। आवश्यकता है मन की गन्दगी को दूर करने की। यदि व्यक्ति अपने मन की आँखों से उस ईश्वर को देखना चाहता है तो आवश्यक है कि वह अपने शरीर और मन को पवित्र कर तथा बुद्धि को विमल कर ईश्वर की खोज करे। आचार की शुद्धता वह अर्हता विकसित करती है कि व्यक्ति ईश्वर को देखने की क्षमता प्राप्त कर सकता है। पर इसके लिये उसकी अहैतुकी कृपा भी आवश्यक है। अर्जुन को यह प्राप्त था, स्वयं भगवान् ने उन्हें वह दिव्य चक्षु प्रदान किया जिससे वह उसके विश्वरूप को देख सके।[13]

मालवीय जी के अनुसार जगत् में एक नैतिक व्यवस्था है। यह व्यवस्था व्यक्ति व समाज, इतिहास व राजनीति सबमें सर्वत्र देखी जा सकती है। ''मालवीय जी को विश्वास था कि राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के क्षेत्र में भी नैतिक शासन का नियम काम करता है तथा न्याय तथा सत्य के पक्ष की विजय होती है। इतिहास नैतिक निर्णय एवं संघर्ष का रंगमंच है, जो एक नैतिक और न्याय प्रिय ईश्वर की ओर संकेत करता है।''[14]

मालवीय जी मानते थे कि कोई घटना ईश्वर की मर्जी के बिना नहीं होती है। उन्हें यह विश्वास था कि प्रथम विश्वयुद्ध में ईश्वरीय शक्ति का हाथ था, इसलिये मित्र राष्ट्रों की विजय हुयी थी। कांग्रेस अधिवेशन के अपने अध्यक्षीय भाषण में मालवीय जी कहते हैं ''ईश्वर का यह स्पष्ट उद्देश्य था कि विश्व के शक्तिशाली राष्ट्रों का नैतिक पुनर्जन्म हो। उसका उद्देश्य इस युद्ध द्वारा केवल इस सिद्धान्त की स्थापना करना नहीं था कि न्याय की शक्ति है, बल्कि वह यह भी चाहता था कि अन्तर्राष्ट्रीय अराजकता का तब तक अन्त हो और विश्व के युद्धरत राष्ट्र एक नैतिक व्यवस्था की स्थापना करें तथा ऐसा स्थायी प्रबन्ध करें जिससे यह सुनिश्चित हो सके कि भविष्य में वे पारस्परिक व्यवहार में तथा शेष

मानव परिवार के साथ बर्ताव में न्यायपूर्ण तथा सम्यक् आचरण करेंगे। इस उद्देश्य की पूर्ति के लिये यह आवश्यक था कि युद्ध का अन्त न हो जब तक कि अमेरिका युद्ध में सम्मिलित न हो जाय और जब तक राष्ट्र उन शान्ति प्रस्तावों से सहमत न हो जाएँ जो इस व्यवस्था का आधार बनने वाले थे। इसलिये जब वे इस पर राजी हो गये तभी निर्णायक घड़ी में ईश्वर ने अमेरिका को युद्ध में सम्मिलित होने के लिये प्रेरित किया जिससे वह आकर मित्र राष्ट्रों की सहायता करे और जर्मनी के विरूद्ध युद्ध का पासा पलट दे।''[15] जाहिर है, मालवीय जी इस धारणा में विश्वास रखते थे कि ऐतिहासिक घटनाओं में निरन्तर दैवी प्रकाश अभिव्यक्त होता है। उन्हें गाँधी और अरविन्द की तरह विश्वास था कि इतिहास में ईश्वर हमेशा न्याय, सत्य और नैतिकता के पक्ष में ही हस्तक्षेप करता है।

ऊपर वर्णित मालवीय जी के कथनों एवं उद्धरणों से स्पष्ट है कि वे संसार के मूल में एक अद्वितीय परमात्म तत्त्व की सत्ता को मानते थे। परमतत्त्व का अद्वैत स्वरूप मालवीय जी को पूर्णतः स्वीकार्य है। बहुदेव-वाद, ईश्वरवाद और अद्वैतवाद में विरोध वे ही देखते हैं जिनको इस पावन भूमि की सनातन चिन्तन धारा का संस्कार व संस्पर्श नहीं है। तत्त्व एक ही है। वह देश, काल, निमित्तादि से परे है। मन, बुद्धि से अगम-अगोचर वह तत्त्व जगत् के कारण के रूप में देखा जाता हुआ ईश्वर है। वही ईश्वर, जगद् स्त्रष्टा के रूप में ब्रह्मा, पालनकर्ता के रूप में विष्णु और संहारक के रूप में शिव है। नारद आदि ऋषि, स्वायंभुव आदि मनु, ब्रह्मा आदि देवता, कश्यप आदि प्रजापति ये सब परमात्मा की ही कलाएँ हैं, उसी के अंश हैं। जब-जब धर्म की हानि होती है और अधर्म का प्राबल्य होता है, साधुओं की रक्षा तथा दुष्टों के विनाश के लिये वह परमात्म तत्त्व अवतरित होता है।

मालवीय जी कहते हैं कि ''एक ही परमात्मा है, कोई उसका दूसरा नहीं।'' वेद, स्मृति, पुराण, मानस, विभिन्न स्तोत्र, पाठ तथा विष्णुसहस्त्रनाम, शिवसहस्त्रनाम, आदि एक परमात्म तत्त्व की ही स्तुति करते हैं। छान्दोग्य उपनिषद् में उसके बारे में कहा गया है- एकमेवाद्वितीयम्। ऋग्वेद में उल्लिखित है 'एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्ति।' तत्त्व एक ही है, उसी को हम नाना नामों से पुकारते हैं। है तो एक ही, किन्तु उसकी बहुत प्रकार से कल्पना करते हैं- एक सन्तं बहुधा कल्पयन्ति। विश्व के नानाविध धर्म उसी परमतत्त्व की ओर ले जाने के विविध उपाय हैं, मार्ग हैं। साधन अनेक हैं, मार्ग अनेक हैं, पर लक्ष्य एक ही है। मालवीय जी कहते है ''उसी एक अनिर्वचनीय शक्ति को हम ईश्वर, परमेश्वर, परब्रह्म, नारायण, भगवान्, वासुदेव, शिव, राम, कृष्ण, विष्णु, जिहोवा, गॉड, खुदा, अल्लाह आदि सहस्त्रों नामों से पुकारते हैं।''[16]

यहाँ ध्यान देने की बात है कि ब्रह्मा, विष्णु या महेश ये अलग-अलग नाम अवश्य हैं, पर इसका अर्थ यह नहीं है कि ये भिन्न-भिन्न हैं। मालवीय जी कहते हैं ''ब्रह्मा, विष्णु, महेश इनको भिन्न-भिन्न मानना भूल है। ये एक ही परमात्मा की तीन संज्ञायें हैं।'' वहीं वह आगे कहते हैं ''ॐ नमो भगवते वासुदेवाय'' ''ॐ नमो नारायणाय'' ''ॐ नमः शिवाय'' ''ॐ श्री रामाय नमः'' ''ॐ कृष्णाय नमः'' ये सब मन्त्र एक ही परमात्मा की वन्दना करते हैं।''[17]

वस्तुतः उस एक अद्वितीय परमतत्व में भेद के लिये कोई अवकाश नहीं है। और फिर भेद तो बन्धन को ही बढ़ाता है। परमतत्त्व इन सारे भेदों से अतीत, कार्यकारणादि भावों से परे नित्य शाश्वत है। मालवीय जी बृहद् नारदीय पुराण का उदाहरण प्रस्तुत करते है जिसमें कहा गया है कि भगवान् नारायण अविनाशी, अनन्त, सर्वत्र व्यापक तथा माया से अलिप्त हैं, यह स्थावर-जंगम रूप सारा संसार उनसे व्याप्त है; उन जरारहित आदि देवता को कोई सदा सत्यस्वरूप विष्णु और कोई ब्रह्मा कहते हैं-

नारायणोऽक्षरोऽनन्तः सर्वव्यापी निरंजनः।
तेनेदमखिलं व्याप्तं जगत्स्थावरजंगमम् ॥
तमादिदेवमजरं केचिदाहुः शिवाभिधम्।
केचिद्विष्णुं सदा सत्यं ब्रह्माणं केच्चिदुच्यते॥

- (बृहन्नारदीय पुराण-1/2/2,5)

इसी प्रकार शिवपुराण में उद्धृत महेश्वर के वचनों का मालवीय जी उद्धरण देते हैं ''हे विष्णु! सृष्टि पालन तथा संहार- इन तीन गुणों के कारण मैं ही ब्रह्मा, विष्णु और शिव नामक तीन भेद से युक्त हूँ। हे हरि! वास्तव में, मेरा स्वरूप सदा भेद-हीन है। मैं, आप, यह (ब्रह्मा) तथा रूद्र और आगे जो कोई भी होंगे, इन सबका एक ही रूप है, उनमें कोई भेद नहीं है, भेद मानने से बन्धन होता हैं।''[18]

यहाँ सहज ही प्रश्न उठता है कि यदि परम सत् एक अद्वितीय सत्ता है, तो उसका स्वरूप क्या है? मालवीय जी के अनुसार यह परमसत् ब्रह्म या ईश्वर है। मालवीय जी जैसा कि पीछे बताया गया, निर्गुण और सगुण में भेद नहीं करते। मन, वाणी से अगोचर परमतत्त्व समस्त देश, काल, निमित्तादि से परे है। वह नित्य, कूटस्थ, शाश्वत है। वह तो सभी चीजों का कारण है, पर उसका कारण कोई नहीं है। मानवीय बुद्धि उसके स्वरूप को जानने में अक्षम है। समस्त शास्त्र उस अनिर्वचनीय तत्त्व का ही विवेचन करने का प्रयास है। श्रुति उसके स्वरूप का विवेचन 'सत्यं ज्ञानमनन्तं ब्रह्म' इस रूप में करती है। वह ब्रह्म सत्य, ज्ञानस्वरूप एवं अनन्त है। भागवत में उस अद्वैत तत्त्व के स्वरूप का विवचेन करते हुए कहा गया है कि वह एक ही आत्मा पुराणपुरूष, सत्य, स्वयंप्रकाशस्वरूप, अनन्त, सबका आदि कारण, नित्य, अविनाशी, निरन्तर सुखी, माया से निर्लिप्त, अखण्ड, अद्वितीय उपाधि रहित तथा अमर है। जाहिर है मालवीय जी की तत्त्वदृष्टि वेदान्त की अद्वैत दृष्टि है जिसका सरल व मनोहर प्रतिपादन विभिन्न पुराणों में व विशेषकर भागवत में हुआ है। प्रो0 चौबे कहते हैं ''महामना का ईश्वर सुगण एवं निर्गुण दोनो ही है लेकिन उनका झुकाव सगुण की ओर ही विशेष है।''[19] यहाँ ध्यातव्य है कि मालवीय जी का बार-बार वैष्णव शास्त्रों को संदर्भित करना यह सहज ही इस विश्वास को संपुष्ट करता हुआ प्रेरित करता है कि मालवीय जी पर वैष्णव वेदान्त या सगुण वेदान्त का विशेष प्रभाव है। पर जैसा कि पीछे हमने देखा मालवीय जी

की मूल दृष्टि अद्वैत की है। यह सही है कि कृष्ण या नारायण उनके लिये परमसत् हैं। पर इस कृष्ण का स्वरूप यावत् जगद् में घट-घट व्याप्त पर परमार्थतः मन वाणी से परे एक अद्वितीय नित्य शाश्वत परमसत् का स्वरूप है। मालवीय जी 'कृष्णस्तु भगवान् स्वयम् ' में कहते हैं कि कृष्ण तो साक्षात् भगवान् हैं।'[20] इस सम्बन्ध में वे गीता का उद्धरण प्रस्तुत करते हैं जिसमें कृष्ण कहते है कि यद्यपि मैं अजन्मा और अविनाशी हूँ, न मेरा जन्म होता है न मरण; तथापि अपनी प्रकृति में स्थिर रहकर अपनी माया के बल से समय-समय पर प्रकट होता हूँ-

अजोऽपि सन्नव्ययात्मा भूतानामीश्वरोऽपि सन् ।
प्रकृतिं स्वामधिष्ठाय सम्भवाम्यात्ममायया॥

कृष्ण का वास्तविक स्वरूप तो निर्गुण, निर्विशिष्ट, सच्चिदानन्द परम ब्रह्म का है। मालवीय जी भागवत को उद्धरित करते हुए भगवान के स्वरूप का विवेचन करते हैं- ब्रह्म सत्य है, सदा रहा है, है भी, सदा रहेगा भी। वह ज्ञानमय, चैतन्य और आनन्द रूप है। उसका स्वयं शरीर नहीं हैं, किन्तु विनाशमान शरीर में पैठकर वह संसार की लीला कर रहा है। वह केवल निर्मल ज्ञानस्वरूप है, पूर्ण है। उसका आदि नहीं, अन्त नहीं। वह नित्य और अद्वितीय है। एक होने पर भी अनेक रूपों में दिखायी देता है-

विशुद्धं केवलं ज्ञानं प्रत्यक्सम्यगवस्थितम् ।
सत्यं पूर्णमनाद्यन्तं निर्गुणं नित्यमद्वयम् ॥[21]
ऋषे विदन्ति मनुष्यः प्रशान्तात्मेन्द्रियाशयाः।
ज्ञानमात्रं परमब्रह्म परमात्मेश्वरः पुमान् ।
दृश्यादिभिः पृथग्भावैः भगवानेक ईयते॥[22]

मालवीय जी के शब्दों में इस परम सत् ब्रह्म का पूर्ण और अत्यन्त हृदय ग्राही निरूपण भागवत के एकादश स्कन्ध के तृतीय अध्याय में प्राप्त होता है जिसमें वस्तुतः वेद, उपनिषद् व पुराणों के एतद्विषयक चिन्तन का सार निहित है। राजा जनक द्वारा ऋषियों से परमब्रह्म परमात्मा का स्वरूप पूछने पर पिप्पलायन ऋषि कहते हैं- ''हे नृप! जो इस विश्व के सृजन, पालन और संहार का कारण है, परन्तु स्वयं जिसका कोई कारण नहीं; जो स्वप्न, जागरण और गहरी नींद की दशाओं में भीतर और बाहर भी वर्तमान रहता है; देह, इन्द्रिय, प्राण और हृदय आदि जिससे संजीवित होकर अर्थात् प्राण पाकर अपने-अपने कार्य में प्रवृत्त होते हैं, उसी परमतत्त्व को नारायण जानो। जैसे चिनगारियाँ अग्नि में प्रवेश नहीं पा सकतीं, वैसे ही मन, वाणी, आँखें, बुद्धि, प्राण और इन्द्रियाँ उस परम तत्त्व का ज्ञान ग्रहण करने में असमर्थ हैं और वहाँ तक पहुँच न सकने के कारण उसका निरूपण नहीं कर सकतीं।''[23]

यह परमात्मा नित्य, कूटस्थ, शाश्वत है। वह न तो जन्म लेता है और न मृत्यु को प्राप्त होता है। न उसमें कभी ह्रास होता है और न तो उसकी वृद्धि होती है। वह समस्त देश, काल व वस्तु में व्याप्त है साथ ही वह इनसे अतीत भी है। वह विश्वव्यापी और विश्वातीत एक साथ है। परमार्थतः आत्मा एक है, उपाधिवश वह नाना देहों में अवस्थित प्रतीत होता है। सकल संसार में व्याप्त यावत् प्राणिजगत् में- कीट, पतंग से लेकर पशु, पक्षी वनस्पति और मनुष्यों में वही अन्तर्व्याप्त है। वह शुद्ध ज्ञान स्वरूप है। समस्त चित्तवृत्तियों का साक्षी और उनका प्रकाशक है। जब सभी इन्द्रियाँ सो जाती हैं, जब ''मैं हूँ'' यह अहंभाव भी लीन हो जाता है, उस समय जो निर्विकार साक्षी रूप हमारे भीतर बैठा हुआ ध्यान में आता है और जिसका हमारे जागने की अवस्था में ''हम अच्छे सोये'', ''यह सपना देखा'' इस प्रकार की स्मृति होती है, वही ब्रह्म है।[24]

जगत् के मूल में स्थित जो परमात्म तत्त्व है वही सब प्राणियों के हृदय में अवस्थित है। स्वयं भगवान् गीता में कहते हैं कि हे अर्जुन, ईश्वर सब जीवों के हृदय में रहते हैं- ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेयोऽर्जुन तिष्ठति। मालवीय जी श्वेताश्वतर उपनिषद् का उद्धरण प्रस्तुत करते हैं[25]- एक ही परमात्मा सब प्राणियों के भीतर छिपा हुआ है, सब में व्याप रहा है, सब जीवों के भीतर का अन्तरात्मा है, जो कुछ कार्य सृष्टि में हो रहा है उसका नियन्ता है। सब प्राणियों के भीतर बस रहा है, सब संसार के कार्यों का साक्षी रूप में देखने वाला, चैतन्य, केवल एक, जिसका कोई जोड़ नहीं और जो गुणों के दोष से रहित है-

एको देवः सर्वभूतेषु गूढ़, सर्वव्यापी सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवासः, साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥

(श्वेताश्वतरोपनिषद् 6/11)

मालवीय जी के अनुसार सारे वेद, उपनिषद् , स्मृति व पुराण एक स्वर से इस बात का प्रतिपादन करते हैं कि सारे देवों का देव परमतत्त्व, परमात्मा अग्नि में, जल में, वायु में, सारे भुवन में, सब औषधियों में, सब वनस्पतियों में, सब जीवधारियों में व्याप रहा है।

मालवीय जी के अनुसार व्यक्ति सिर्फ हाड़-माँस का बना हुआ पुतला नहीं है। मनोदैहिक संस्थान को संचालित करने वाला तत्त्व एक नित्य आत्मा है जो देह के समाप्त होने पर भी नष्ट नहीं होता है। शारीरिक व मानसिक अवस्थाओं में परिवर्तन के बावजूद वह नित्य व स्थायी साक्षी तत्व के रूप में विराजमान रहता है। जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति आदि अवस्थाओं में अनवरत रूप से अनुवर्तमान वह चैतन्य तत्त्व स्वयंप्रकाश परमात्मा ही है। यह आत्मा मनुष्य से लेकर पशु-पक्षी, कीट-पतंग, वृक्ष-विटप समस्त छोटे-बड़े जीवधारियों में समान रूप से विराजमान है। 'आत्मा' विषयक लेख में मालवीय जी कहते हैं कि आत्मा आन्तरिक है, वह बदलती नहीं, उसका नाश नहीं होता, वह हत्या नहीं करती, न कोई उसकी हत्या कर सकता है[26]-

य एनं वेत्ति हन्तारं यश्चैनं मन्यते हतम् ।
उभौ तौ न विजानीतौ नायं हन्ति न हन्यते॥
न जायते म्रियते वा कदाचिन्नायं भूत्वा भविता वा न भूय :।
अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः।
न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः॥

जाहिर है, गीता के उपर्युक्त वचनों को उद्धृत कर मालवीय जी वेदान्त सम्मत आत्मविद्या से अपनी पूर्ण सहमति व्यक्त करते हैं। इसी

नित्य आत्मा का साक्षात्कार मानव जीवन का परम लक्ष्य है और इसी की भक्ति का वह उपदेश देते हैं। गीता का उद्धरण देते हुए वह कहते हैं कि वही पंडित है जो विनाश होते हुए मनुष्यों के बीच में विनाश न होते हुए सब जीवधारियों में बैठे हुए परमेश्वर को देखता है। सब ज्योतियों की वह ज्योति, समस्त अन्धकार के परे चमकता हुआ, ज्ञानस्वरूप, जानने के योग्य, जो ज्ञान से पहचाना जाता है, ऐसा वह परमात्मा सबका सुहृद, सब प्राणियों के हृदय में बैठा है। ऐसे घट-घट व्यापी परमात्मा तत्त्व की भक्ति या उपासना और यह जानकर कि वह प्राणिमात्र में व्याप्त है, प्राणिमात्र से प्रीति मानव का सर्वोच्च कर्तव्य है। ऐसी भावना से ही परम-मोक्ष की प्राप्ति संभव है। जाहिर है, मालवीय जी भी विवेकानन्द के तरह ही 'जीव-पूजा', 'शिव-पूजा' में विश्वास करते थे। मालवीय जी के सम्पूर्ण सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक, नैतिक दर्शन का तात्त्विक आधार इसी महत्वपूर्ण विचार में निहित था कि वह परमात्म जो हमारे अन्दर में व्याप्त है वह सकल जगत् में, कीट-पतंग व वनस्पतियों, समस्त प्राणी-जगत् में, व एक-एक मनुष्य में विद्यमान है, फलतः ऐसी बुद्धिकर उनसे अहैतुक प्रेम ईश्वर प्रेम का सर्वोत्कृष्ट रूप है।

मालवीय जी के अनुसार जैसा कि पीछे बताया गया है कि शरीर, इन्द्रिय, मन व बुद्धि से परे व पृथक् आत्मा रूपी तत्त्व ही व्यक्ति का परमार्थ है। यह आत्मा अविनाशी है क्योंकि वह ईश्वर का अंश है। अथवा यह भी कहा जा सकता है कि वह अविनाशी है क्योंकि वह सच्चिदानन्द रूप परमब्रह्म ही है। मालवीय जी कहीं आत्मा को परमात्मा का अंश और कहीं परमात्मा ही बताते हैं। अन्यत्र भी मालवीय जी स्वयं परमात्मा का जिस प्रकार निर्वचन करते हैं इससे ऐसा निश्चित करना कठिन प्रतीत होता है कि वे वैष्णव वेदान्त के अधिक नजदीक हैं अथवा शंकराचार्य के अद्वैतवेदान्त के, जिसके अनुसार जीव ब्रह्म का अंश न होकर ब्रह्म रूप है। पर जैसा कि पीछे बताया गया, प्रस्तुत लेखक के अनुसार मालवीय जी शंकराचार्य के वेदान्त के अधिक नजदीक हैं। साथ ही विवेकानन्द कृत वेदान्त की व्याख्या से भी प्रभावित हैं। मालवीय जी अपने भाषणों में विवेकानन्द का उल्लेख भी करते हैं।

वेदान्त के अधिकारी के लिये यह अपेक्षा रखी जाती है कि वह ऐहिक व पारलौकिक फल भोगों से विरक्त हो। वेदान्ती की जिज्ञासा का आरम्भ ही जगद् वैराग्य से होता है। यह जगद् वैराग्य जगत् के प्रपंच से वैराग्य है। मालवीय जी कहते हैं, ''जब कि मनुष्य सांसारिक झगड़ों से विरक्त हो जाता है, उस समय स्वभावतः उसका मन अपनी ओर झुकता है और उसी समय से मनुष्य को दर्शन और वेदान्त पर विचार करने का अधिकार हो जाता है- क्योंकि उसी समय मनुष्य अपने अस्तित्व का विचार करना आरम्भ करता है। वह इस बात को भली प्रकार जानने के लिये प्रयत्न करने लगता है कि वह स्वयं क्या है? संसार से उसका सम्बन्ध क्या है, वह स्वतन्त्र है या परतन्त्र, परतन्त्र है, तो मोक्ष कैसे प्राप्त कर सकता है, स्वतन्त्र कैसे हो सकता है, आदि।''[27] उपर्युक्त जिज्ञासा से व्यक्ति की आध्यात्मिक यात्रा का आरम्भ होता है। आत्मानुसन्धान की इस यात्रा में शीघ्र ही व्यक्ति को लगता है कि इस चलायमान संसार में कुछ ऐसा है, जो समस्त परिवर्तन के बावजूद स्थायी बना रहता है, कुछ ऐसा है जो संसार में रहते हुए भी संसारातीत है, कुछ ऐसा है, जो भेदात्मक व परिवर्तनशील संसार में रहते हुए भी सारे भेदों से अतीत है। मालवीय जी कहते है ''आत्मा स्वयमेव न कमजोर है न मजबूत, न हिन्दू है न मुसलमान- क्योंकि इनसे भेद प्रकट होता है। विचारवान् मनुष्य को यह भी प्रकट होता है कि यद्यपि उसका बालकपन, उसकी जवानी शेष नहीं रही है, तथापि उसकी आत्मा सदा उसके साथ रही है। इस नित्यप्रति बदलते हुए संसार में एक उसकी आत्मा ही ऐसी है, जो नहीं बदलती; जो न सुखी है न दुःखी, जो सब प्रकार के बन्धनों से रहित है और जो हर प्रकार से स्वतन्त्र है।''[28] आत्मा का वास्तविक स्वरूप अनादि, अनन्त और स्वतन्त्र है, वह सच्चिदानन्द है। यहाँ स्वाभाविक ही प्रश्न उठता है यदि आत्मा का वास्तविक स्वरूप अनादि, अनन्त, सच्चिदानन्द, स्वतन्त्र है, तब फिर क्या कारण है कि मनुष्य दुःख भोगता है, बन्धनों से जकड़ा प्रतीत होता है, परतन्त्र मालूम पड़ता है। मालवीय जी इसके उत्तर में अद्वैत वेदान्त द्वारा दिये गये समाधान से पूर्ण सहमति व्यक्त करते हैं ''सत्यमेव तुम स्वतन्त्र हो, तुम्हारी आत्मा अनादि, अनन्त और सच्चिदानन्द स्वरूप है; परन्तु तुम्हें पूरा ज्ञान नहीं है, इससे तुम दुःखी हो। तुम बन्धनों से जकड़े हो, इसका एकमात्र कारण यही है कि तुम अपने को भूल गये हो और तुम अपने को पहचानने का प्रयत्न नहीं करते। तुम आत्मा और शरीर को एक समझते हो, तुम्हें सत् और असत् का ज्ञान नहीं है। तुम अपनी स्थिति को अपने से भिन्न नहीं समझते, तुम पर तुम्हारी स्थिति का इतना प्रभाव पड़ रहा है- तुम्हें अपनी शरीरबद्ध आत्मा की अनन्यता पर ऐसा मूढ़ विश्वास है कि तुम अपनी अनादि, अनन्त, स्वतन्त्र आत्मा का स्वप्न भी नहीं देख सकते।..... जब अन्धकार में पड़कर तुम अपने शरीर और स्थिति को महत्व प्रदान करते हो, उसी समय तुम्हारे ज्ञान, सुख, स्वच्छन्दता सब सीमाबद्ध हो जाते हैं क्योंकि शरीर अनादि अनन्त नहीं। यदि तुम अपने को अपने शरीर से अलग कर सको, तभी और उसी समय तुम्हें अपना पूरा ज्ञान होगा और उसी समय तुम अपने को स्वतन्त्र, स्वछन्द, अनादि और अनन्त समझ सकोगे। उस समय तुम्हें पूर्ण ज्ञान हो जाएगा।''[29]

स्पष्ट है महामना के अनुसार एक मात्र सच्चिदानन्द स्वरूप अद्वितीय परमतत्त्व की ही सत्ता है। वही समस्त जगद् का मूल है, समस्त चराचर जगत् में व्याप्त है। समस्त कीट-पतंग, पशु-पक्षी, वृक्ष, वनस्पति, मनुष्यों में विद्यमान है। जीव परमार्थतः ब्रह्म ही है। अज्ञानवश वह अपने को सीमित, अल्पज्ञ, अक्षम व परतन्त्र समझता है। इस अज्ञान को दूर करना और अपने स्वरूपभूत स्वातन्त्र्य का साक्षात्कार मानव का चरम लक्ष्य है। अज्ञान के निरोध के लिये चित्त की विशुद्धि, ईश्वर के प्रति अहैतुकी भक्ति तथा मानव-मात्र या जीव-मात्र के प्रति अखण्ड प्रेम अपेक्षित है। ज्योंहि अज्ञान का तिरोधान होता है व्यक्ति को स्वरूपभूत स्वातन्त्र्य और सच्चिदानन्द स्वरूप का बोध होता है।

अब यदि एक ही परम तत्त्व सभी जीवों में विद्यमान है तो उसका दार्शनिक निहितार्थ यह है कि हमें उनके प्रति सतत प्रेम भाव रखना चाहिये। मालवीय जी के समस्त सार्वजनिक जीवन के पीछे यही

तात्त्विक दृष्टि विद्यमान थी। वे लोकसेवा व लोकप्रेम को ईश्वर सेवा व ईश्वर प्रेम का ही रूप मानते थे। एक ही परमतत्त्व परमेश्वर सब जीवों में, सब मनुष्यों में समान रूप से विद्यमान है। गीता (9/29) में भगवान् कहते हैं-समोऽहं सर्वभूतेषु। समस्त धर्म का मूल ही इस बात में निहित है कि एक ही परमेश्वर सारे प्राणियों के हृदय में स्थित है-

भगवान्वासुदेवो हि सर्वभूतेष्वस्थितः।
एतज्ज्ञानं हि सर्वस्य मूलं धर्मस्य शाश्वतम् ॥

अब यदि एक ही परमात्म तत्त्व सभी जीवों में विद्यमान है, तो फिर 'स्व' में व 'पर' में भेद कोई आधार ही नहीं बनता। यदि एक ही ईश्वरीय प्रकाश सर्वत्र विद्यमान है तो विषमता व दौर्मनस्य पर आधारित किसी भी सामाजिक व राजनीतिक व्यवस्था के लिये कोई जगह नहीं बनती। 1918 में दिल्ली कांग्रेस के अपने अध्यक्षीय भाषण में मालवीय जी कहते है ''मेरा निवेदन है कि आप अपनी पूरी शक्ति के साथ इस बात की माँग करने का संकल्प कर लें कि अपने देश में आपको भी अपने विकास की वे सुविधायें उपलब्ध होनी चाहिए जो इंग्लैण्ड में अंग्रेजों को मिली हुयी। यदि आप इतना संकल्प कर लें और अपनी जनता में स्वतन्त्रता, समानता तथा भातृत्व के सिद्धान्तों को फैलाने का प्रयत्न करें तथा हर भाई को, चाहे उसकी स्थिति कितनी ही अकिंचन और निम्न क्यों न हो, यह अनुभव करने दें कि उसमें भी वही ईश्वरीय प्रकाश की किरण विद्यमान है जो उच्च से उच्च स्थिति के व्यक्ति में विराजमान है और यदि आप हर भाई को इस बात की अनुभूति करा दें कि उसे भी अपने साथी प्रजाजनों के समान ही व्यवहार पाने का अधिकार है, तो निश्चय समझिये कि आपने अपने भविष्य का निर्णय स्वयं कर लिया है।''[30]

जैसा कि पीछे बताया गया है कि मालवीय जी के अनुसार धर्म का मूल इस तथ्य में निहित है कि एक ही परम तत्त्व समस्त प्राणियों में समान रूप से विद्यमान है। अब जो इस तरह की भावना रखता है, वही वास्तविक पंडित है, योगी है। जाहिर है कि ऐसा व्यक्ति मनुष्य-मनुष्य में अथवा जीव-जीव में भेद नहीं कर सकता। गीता में कहा गया है कि विद्या और विनय से युक्त ब्राह्मण में, गौ-बैल में, हाथी में, कुत्ते में और चाण्डाल में पंडित लोग समदर्शी होते हैं। ऐसा व्यक्ति सुख-दुःख के विषय में उनको समान भाव से देखता है। मालवीय जी गीता का उद्धरण देते हुए कहते हैं कि 'आत्मौपम्य व्यवहार, ही सनातन धर्म का परम संदेश है और ऐसा करने वाला ही योगी है। गीता में स्पष्ट कहा गया है कि जो पुरूष सबको सुख-दुःख के विषय में स्वयं अपने समान समझता है, वही योगी है :

आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन।
सुखं वा यदि वा दुःख स योगी परमो मतः॥ (गीता-6/32)

वस्तुतः मालवीय जी गीता के 'आत्मौपम्य व्यवहार' में नीति का मूल तत्त्व पाते हैं। महाभारत के शान्तिपर्व में कहा गया है कि जो-जो बात मनुष्य अपने लिये चाहता है, उसे चाहिये कि वही-वही बात औरों के लिये भी सोचे- यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत्'[31] ऐसा कैसे हो कि हम स्वयं तो जीना चाहें और दूसरों का प्राण लेना चाहें। महर्षि वेद व्यास ने कहा है-

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवधार्यताम् ।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् ॥[32]
न तत्परस्य संदध्यात् प्रतिकूलं यदात्मनः।
एष सामासिको धर्मः कामादन्यः प्रवर्तते॥[33]

''सुनो धर्म का सर्वस्व और सुनकर इसके अनुसार आचरण करो। जो अपने को प्रतिकूल जान पड़े, जिससे अपने को पीड़ा पहुँचे, उसको दूसरों के प्रति न करो। दूसरों के प्रति हमको वह काम नहीं करना चाहिये, जिसको यदि दूसरा हमारे प्रति करे तो हमको बुरा मालूम हो या दुःख हो। संक्षेप में यही धर्म है, इसके अतिरिक्त दूसरे सब धर्म किसी बात की कामना से किये जाते हैं।''

मालवीय जी के अनुसार अहिंसा, सत्य, अस्तेय, आदि सारे धर्म 'सर्वभूतेष्वात्मदेवता बुद्धिः'' पर आधारित 'आत्मौपम्य व्यवहार' पर ही आधारित है। इसी के आधार पर पंचमहायज्ञ, वैश्वदेव यज्ञ, तर्पण आदि का परम्परा में विधान है। मूल दृष्टि यही है कि एक ही परमात्मा तत्व यदि समान रूप से सबमें स्थित है तो सब प्राणियों के प्रति ईश्वर भाव रखना, भातृभाव रखना, मित्रता रखना, उन्हें प्रेम करना यही धर्म का सर्वस्व है। मालवीय जी कहते हैं ''धन्य हैं वे लोग जिनको इस पवित्र और लोक-प्रेम से पूर्ण धर्म का उपदेश प्राप्त हुआ है। मेरी यह प्रार्थना है कि इस ब्रह्म-ज्योति की सहायता से सब धर्मशील जन अपने ज्ञान को विशुद्ध और अविचल कर और अपने उत्साह को नूतन और प्रबल कर सारे संसार में इस धर्म के सिद्धान्तों का प्रचार करें और समस्त जगत् को यह विश्वास करा दें कि सबका ईश्वर एक ही है और वह अंश रूप से न केवल सब मनुष्य में किन्तु समस्त जरायुज, अण्डज, स्वदेज, उद्भिज्ज अर्थात् मनुष्य, पशु, पक्षी, कीट, पतंग, वृक्ष और विटप सबमें समान रूप से अवस्थित है और उसकी उत्तम पूजा यही है कि हम प्राणिमात्र में ईश्वर का भाव देखें, सबसे मित्रता का भाव रखें और सबका हित चाहें।''[34]

एवंप्रकारेण हम देखते हैं कि मालवीय जी के सम्पूर्ण सार्वजनिक जीवन का, उनके सामाजिक, राजनीतिक, सांस्कृतिक चिन्तन का दार्शनिक आधार वेदान्त की उस तत्त्वदृष्टि में छिपा था जिसके अनुसार एक ही परम तत्त्व समान रूप से सकल चराचर जगत् में व्याप्त है। यही सनातन धर्म का मूल है। ऐसे ही मूल पर प्रतिष्ठित सनातन धर्म पर मालवीय जी नीति, लोक, समाज, राजनीति, शिक्षा व संस्कृति को सुस्थापित करना चाहते थे। प्रो0 मुकुट बिहारी लाल कहते हैं ''धर्मविहित नैतिकता का प्रसार तथा उसके आधार पर सामाजिक व्यवहार का और वैयक्तिक चरित्र का परिशोधन और नवनिर्माण ही उनका मुख्य काम था।''[35] प्रो0 लाल के अनुसार ''मालवीय जी का सामाजिक चिन्तन 'धर्माधृत सामाजिक मनुष्यता' पर आश्रित था। वही उनका मूलमंत्र था। वही उनकी जीवनचर्या और उनके लोकशील का मूलाधार था। वेदान्त का अद्वैत, भागवत धर्म द्वारा प्रतिपादित ईश्वरार्पित निष्काम लोकसेवा द्वारा भगवान् की आराधना, श्रीमद्भगवद्गीता का सात्त्विक कर्ता, मनु द्वारा

प्रतिपादित धर्म के दश लक्षण, हिन्दू शास्त्रों में वर्णित सात्विक शील, ज्ञान का व्यापक प्रसार, विभिन्न मत मतान्तरों के प्रति हिन्दू धर्म की उदार भावना मालवीय जी के विश्वजनीन चिन्तन के आधार थे।''[36]

हम देखते हैं कि अद्वैत पर आधारित समत्व दृष्टि मालवीय जी के चिन्तन का दार्शनिक आधार है। ऐसा कहा जा सकता है कि भारतीय पुनर्जागरण ही इस तत्त्वदृष्टि पर आधारित था। राजा राममोहन राय से लेकर रामकृष्ण परमहंस, विवेकानन्द, तिलक, अरबिन्द व गाँधी तक इसी अद्वैताश्रित समतामूलक चिन्तन का प्रभाव पगे-पगे दृष्टिगत होता है। मालवीय जी भी 'एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म' के सिद्धान्त को स्वीकार करते हुए 'ब्रह्मा, विष्णु, महेश' को इस ब्रह्म की तीन संज्ञायें मानते थे। वे वेदव्यास की इस बात को स्वीकार करते थे कि 'ज्योतिरात्मनि नान्यत्र समं तत्सर्वजन्तुषु' अर्थात् वह ज्योति अपने भीतर ही है, अन्यत्र नहीं है, और सब जीवधारियों में एक सम है। अब यदि वह सब जीवों में विद्यमान है तो जाहिर है हमारा व्यवहार भी तदनुरूप होना चाहिये। 'सर्वभूतेष्वात्मबुद्धि' के तात्त्विक सिद्धान्त पर आधारित ''आत्मौपम्य व्यवहार'' धर्म का सार है। चाहे अनुकूल परिस्थिति हो या प्रतिकूल अन्यों को अपने समान ही समझना चाहिये। ऐसा समझने वाला ही योगी है, स्थितिप्रज्ञ है, बोधिसत्व है। प्रो0 मुकुट बिहारी लाल के शब्दों में- ''समत्व के सिद्धान्त को वे सनातन धर्म का ऐसा मूल मन्त्र स्वीकार करते थे जिसकी सिद्धि को ज्ञानयोग, भक्तियोग, कर्मयोग, मनोयोग, नीतिशास्त्र सबने निःश्रेयस अर्थात् आत्मोत्कर्ष और मोक्ष के लिये आवश्यक बताया है।''[37] यह समता कोरा सिद्धान्त या आदर्शवाद नहीं है, साधना का विषय है। मालवीय जी का सम्पूर्ण जीवन इसी को समर्पित था। मालवीय जी के अनुसार यह अद्वैताश्रित समत्व दृष्टि ही सनातन धर्म का मूल रहा है और इसी में मानव का लौकिक व पारलौकिक निःश्रेयस निहित है। इस समत्व की साधना में किसी प्रकार के जात्यहंकार, वंशाभिमान पार्थक्य की भावना को स्थान नहीं है। समस्त प्राणियों के प्रति सौहार्दपूर्ण व्यवहार तथा विश्वबन्धुत्व की भावना समत्व की साधना के अपरिहार्य अंग हैं।

संदर्भ

1. जो तत्त्वविदों का एक अद्वितीय ज्ञान स्वरूप परमतत्त्व है भागवत के शब्दों में वही ब्रह्म है, परमात्मा है, भगवान है-

   वदन्ति तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम् ।

   ब्रह्मेति परमात्मेति भगवानिति शब्द्यते। भागवत, 7/2/11।
2. वासुदेव शरण (संकलनकर्ता) *महामना श्री पण्डित मदन मोहन मालवीय के लेख और भाषण* (भाग -एक धार्मिक) काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 1962 में संग्रहित। द्रष्टव्य, पृ0 20-41 तथा पृ0 62-63।
3. वहीं, पृ0 20।
4. ऋग्वेद, 10/121/1।
5. वासुदेव शरण (संकलनकर्ता) *महामना श्री पण्डित मदन मोहन मालवीय के लेख और भाषण (भाग -एक धार्मिक)* पृ0 20।
6. वही, पृ0 22।
7. वही, पृ0 22।
8. बादरायण, ब्रह्मसूत्र, 1/1/2।
9. वही, 2/2/1।
10. शङ्कराचार्य, ब्रह्मसूत्रशाङ्करभाष्य, 1/1/2।
11. वासुदेव शरण (संकलनकर्ता) *महामना श्री पण्डित मदन मोहन मालवीय के लेख और भाषण* (भाग -एक धार्मिक) पृ0 23-24।
12. वही, पृ0 26।
13. चौबे, प्रो0 देवव्रत, *महामना मालवीय जी का ईश्वर विषयक चिन्तन,* प्रज्ञा, 150वीं महामना मालवीय जयन्ती विशेषांक, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, 2010-11, अंक-56, भाग-2, पृ0 155।
14. वही, पृ0 156।
15. चौबे, प्रो0 देवव्रत, *महामना मालवीय जी का ईश्वर विषयक चिन्तन, पृ0 158।*
16. वासुदेव शरण (संकलनकर्ता) *महामना श्री पण्डित मदन मोहन मालवीय के लेख और भाषण* (भाग -एक धार्मिक), पृ0 26।
17. वही, पृ0 29।
18. वही, पृ0 28-29।
19. चौबे, प्रो0 देवव्रत, *महामना मालवीय जी का ईश्वर विषयक चिन्तन, पृ0 157।*
20. वासुदेव शरण (संकलनकर्ता) *महामना श्री पण्डित मदन मोहन मालवीय के लेख और भाषण* (भाग -एक धार्मिक), *पृ0 42-45।*
21. भागवत, 2/6/39-40।
22. वही, 3/23/261।
23. वासुदेव शरण (संकलनकर्ता) *महामना श्री पण्डित मदन मोहन मालवीय के लेख और भाषण* (भाग -एक धार्मिक), *पृ0 30।*
24. वही, पृ0 31।
25. वही, पृ0 31।
26. आत्मा, *मालवीय जी के लेख,* सं0 पं0 पद्मकान्त मालवीय, नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1962, पृ0 210-213।
27. वही, पृ0 210।
28. वही, पृ0 210।
29. वही, पृ0 211-212
30. 1918 की दिल्ली कांग्रेस में मालवीय जी का अध्यक्षीय भाषण।
31. **जीवितुं यः स्वयं चेच्छेत्कथं सोऽन्यं प्रघातयेत् ।**

    यद्यदात्मनि चेच्छेत तत्परस्यापि चिन्तयेत् ॥ - महाभारत, शान्तिपर्व 59/22।
32. विष्णुधर्मोत्तर पुराण, 3/255/44।
33. महाभारत, अनुशासन पर्व, 113/8।
34. वासुदेव शरण (संकलनकर्ता) *महामना श्री पण्डित मदन मोहन मालवीय के लेख और भाषण* (भाग -एक धार्मिक), पृ0 41।
35. प्रो0 मुकुट बिहारी, *महामना मदन मोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व,* मालवीय अध्ययन संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी, 1978, पृ0 628।
36. वही, पृ0 637।
37. वही, पृ0 626।

◆

महामना के भाषण और उनका चिन्तन

*सुनील कुमार 'मानस'**

किसी भी व्यक्ति का वक्तव्य या भाषण उसके समस्त वैचारिक चिन्तन का सार ही नहीं होता बल्कि उसके समस्त जीवन से जुड़े हुए विभिन्न प्रकार के अनुभवों की झाँकी भी उसमें होती है, जो सामाजिक जीवन से अपना महत्वपूर्ण सरोकार रखती है। महामना के भाषणों को इसी रूप में स्वीकार किया जाना चाहिए। उनकी मेधाशक्ति या स्मरण शक्ति बहुत अच्छी थी जिसके कारण बिना कुछ लिखे वह घण्टों अपना भाषण दिया करते थे। शब्दों एवं वाक्यों के उच्चारण में तनिक भी अशुद्धि नहीं होती थी और न ही वह किसी की इस प्रकार की त्रुटि को बर्दास्त करते थे। वे जब भाषण देते थे तब शान्तचित्त, एकाग्रनिष्ठ, सुस्पष्ट एवं अबाध गति से सहज रूप में बोलते थे। उनके भाषणों का अपना महत्व एवं आकर्षण था। हालाँकि उनके समय में गाँधी के वक्तव्य भी महत्वपूर्ण होते थे, लेकिन वे बहुत ही धीमी आवाज में शान्तचित्त होकर तेजगति में अपना वक्तव्य देते थे। फिर भी मालवीय जी अपने समय के श्रेष्ठ वक्ताओं में एक हैं। एक बात यह भी महत्वपूर्ण है कि वे जहाँ भाषण देना स्वीकार कर लेते थे; वहाँ निश्चित बोलते थे। पटना के एक दौरे में उन्हें इक्के से धक्का लग गया था जिसके कारण वह मूर्च्छित हो गये थे। लोगों ने उनसे प्रार्थना की- आप अपना कार्यक्रम छोड़कर प्रयाग चले जाय। तब उन्होंने कहा था कि ''मैं जिन सभाओं में भाषण करने के लिए वचनबद्ध हूँ उन्हें निराश नहीं करूँगा। (भा0रा0चि0म0मो0 मालवीय, पृ0 4)

1919 में रांलेट एक्ट के खिलाफ शिमला कौंन्सिल में तीन दिन के भाषण में एक दिन मालवीय जी ने लगातार पाँच घण्टे भाषण दिया। जिस पर सर विन्सेट स्मिथ की पत्नी ने कहा था कि- मेरे पति पण्डित मालवीय का मुकाबला नहीं कर सकते और पत्रकारों ने दूसरे दिन रिर्पोटिंग की थी- एक व्यक्ति जो न तो अंग्रेज है और न ही जिसकी मातृभाषा अंग्रेजी है, वह बिना किसी तैयारी के और अपनी बात को बिना दोहराए इतनी गहराई व विस्तार के साथ अंग्रेजी में लगातार इतना लम्बा भाषण दे सकता है; आश्चर्य है, इसकी स्मृति एवं मेधा पर। (महामना पं0 मदन मोहन मालवीय, पृ0 8)

महामना के भाषणों का महत्वपूर्ण संग्रह डॉ0 उमेश दत्त तिवारी के संपादन में 'महामना के भाषण' नाम से प्रकाशित हुआ है। इस पुस्तक में महामना के 61 भाषणों का संग्रह है जिसमें प्रारम्भिक सात भाषण सनातन धर्म एवं प्रवचन पर केन्द्रित हैं, दो राष्ट्रभाषा के प्रचार हेतु, दो विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोह के, एक साम्प्रदायिक एकता, सात हिन्दू महासभा के, दो गो रक्षा पर, एक सनातन धर्म पर, चार स्वराज्य आन्दोलन पर, इक्कीस भारतीय राष्ट्रीय महासभा कांग्रेस पर, एक प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन पर, एक स्वदेशी पर, एक प्रान्तीय कौन्सिल पर, नौ राजकीय व्यवस्थापक परिषद् पर एवं दो भारतीय गोलमेज सम्मेलन पर क्रमानुसार केन्द्रित है। इन्हीं भाषणों के आधार पर मैं उनके चिन्तन के मुख्य बिन्दुओं को दर्शाने का प्रयत्न करूँगा।

महामना प्रवचन देने में बहुत ही निपुण एवं प्रवीण थे। उनकी वाणी में ऐसी सौम्यता थी कि उनके गीता संबंधी या आध्यात्म संबंधी विचारों को सुनने की जिज्ञासा सामान्यतः सभी को होती थी। गाँधी जी की भाँति महामना भी श्रीमद्भगवद्गीता को महत्वपूर्ण मानते थे। महामना को वेदों, पुराणों की अच्छी जानकारी थी एवं ईश्वर की सत्ता के परम विश्वासी थे। भगवान कृष्ण के उपदेश उन्हें बहुत प्रिय थे। इन्हीं सब चिन्तन के आधार पर वे विद्यार्थियों को कर्त्तव्य करने की प्रेरणा देते थे। उनका यह वक्तव्य महत्वपूर्ण है कि ''यहाँ से आदर्श मनुष्य बनकर संसार को दिशा दे कि हम विश्वविद्यालय के छात्र हैं, हमारी माता चाहे दीन हो, या कैसी ही हो पर वह हमारी माता है। यह माता पूज्य है; हम माता से ऐसी शिक्षा लेवें, ऐसे उपदेश सुनें जिससे सुपुत्र होने का फल दिखा दे।.... बड़े पुत्र का कर्त्तव्य है कि छोटे को योग्य बना ले। भूले-भटकों को सहारा दें। उसे सदाचारी तथा धार्मिक बनाकर योग्य भाई बना ले। उसे परमपुरुष का अनन्य भक्त और जननी का सच्चा लाल बना ले जिससे वह अपना जीवन स्वच्छ पवित्र बनाकर लोक कल्याण कर सके।'' (महामना के भाषण, पृ0 42) इस प्रकार यह कहने में संकोच न होगा कि वह विद्यार्थियों का परम कर्त्तव्य लोक कल्याण मानते थे और उन्हें सीख देते थे कि ''सभी बातों में संयम सीखे। वाणी में संयम, भोजन में संयम रखो और अपने सभी कार्यों में शीलवान बनो। शील से ही मनुष्य मनुष्य बनता है। शीलं परमं भूषणम्। शील ही पुरुष का सबसे उत्तम भूषण है।... कठोर काम में अनवरत लगे रहने का अभ्यास डालो। पढ़ते समय सारी दुनिया को एक ओर रख दो और पुस्तकों में लेखकों की विचारधारा में डूब जाओ। यही तुम्हारी समाधि है, यही तुम्हारी उपासना है और यही तुम्हारी पूजा है। कठिन परिश्रम करना सीखो। खूब गड़कर, जमकर मेहनत करो और अपने उच्च और पवित्र आदर्श को कभी मत भूलो। शास्त्र और शस्त्र, बुद्धिबल और बाहुबल, दोनों का उपार्जन करो। सादा जीवन और उच्च विचार का आदर्श न भूलो। (महामना के भाषण, पृ0 47) इन विचारों से गोखले का कथन-हृदय की कोमलता और मृदुता में कोई मालवीय जी को नहीं पा सकता- महत्वपूर्ण जान पड़ता है।

महामना ने राष्ट्रभाषा के प्रथम हिन्दी साहित्य सम्मेलन 1910 एवं नवम् हिन्दी साहित्य सम्मेलन 1919 में सभापति के पद से हिंदी की पक्षधरता देते हुए कहा था कि ''जब तक अपनी माँ की बोली न सीखे, तब तक आप मुँह न दिखावे। मातृभाषा को सीखने में कौन

* शोधार्थी, हिन्दी-विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

लज्जा करता है? अब आप लोग अपने हृदय में आज से इस बात का प्रण कर ले कि जब तक आप मातृभाषा को सीख न लेंगे तब तक आप मस्तक ऊँचा न करेंगे। कोई अंग्रेज जो अंग्रेजी भाषा से परिचित न हो या किसी और देश का पुरुष, जो अपने देश की भाषा न जानता हो, क्या कभी गौरवान्वित हो सकता है? जब हमारी यह दशा है तब क्यों न इस भाषा की दुर्दशा होगी और क्यों न हमको औरों के सामने दुर्बलता स्वीकार करनी पड़ेगी?'' (महामना के भाषण, पृ0 59) दूसरा वह यह भी मानते थे कि दुनिया की कोई भी ऐसी बात नहीं है जो हिन्दी में न कही जा सकती हो और प्रत्येक देश में देशी भाषा के द्वारा विद्या का प्रचार होता है। राजकाज, व्यापार इत्यादि सब उन्नति के कार्य देशी भाषा ही के द्वारा उत्तम रीति से हो सकता है।'' (महामना के भाषण, पृ0 65) इसीलिए हिन्दी को राष्ट्रीय भाषा के दर्जे में प्रतिष्ठित करने के वह हिमायती थे और उनका विचार भी है कि ''प्रान्तीय भाषाओं के रहते हुए भी हिन्दी राष्ट्रीय भाषा के तौर पर उपयुक्त की जा सकती है। अभी तक जो कार्य अंग्रेजी के द्वारा होता आया है, वह अब हिन्दी के द्वारा होना चाहिए। वह आगे यह भी कहते हैं कि ''अब वह समय आ गया है जबकि प्रत्येक प्रान्त के सब भाई और बहन अपनी-अपनी भाषा की उन्नति करते हुए राष्ट्रीय भाषा के प्रचार में ही प्रयत्न करें।'' (महामना के भाषण, पृ0 69) उन्होंने न्याय प्रक्रिया में हिन्दी या स्थानीय भाषा को अपनाये जाने की वकालत करते हुए लिखा है कि ''यहाँ के निवासियों को जज की भाषा सीखने के बदले जज को ही भारतवासियों की भाषा सीखना बहुत सुगम होगा। अतएव हम लोगों की सम्मति है कि न्यायालयों का समस्त लिखित व्यवहार उस स्थान की भाषा में ही हो।'' (महामना के लेख, पृ0 130) मनोज कुमार सिंह ने लिखा है कि मालवीय जी प्रथम और सर्वग्राही व्यक्ति हैं, जिन्होंने पिछली शताब्दी में हिन्दी की सेवा का बीड़ा उठाया और जीवन के अन्त तक उसके रक्षक बने रहें।'' (भा0रा0चि0म0मो0 मालवीय, पृ0 122)

महामना ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के दीक्षान्त समारोहों में जो भाषण दिए हैं उनका सीधा संबंध शिक्षार्थियों, शिक्षकों, शिक्षा एवं विश्वविद्यालय के विकास से रहा है। जहाँ वह व्यक्ति के सम्पूर्ण विकास के लिए शिक्षा, कला, विज्ञान, व्यवसाय आदि के संबंध में विचार व्यक्त करते हैं वहीं वे शिक्षार्थियों के चरित्र निर्माण एवं अनुशासन पर भी बल देते हैं। इसके अतिरिक्त राष्ट्र के उत्थान, समाज के उत्थान एवं सार्वजनिक प्रगति की भी चिन्ता व्यक्त करते हैं। उन्होंने 1920 के दीक्षान्त समारोह में कहा था कि ''हमें कला-कौशल-सम्बन्धी शिक्षा, विज्ञान, प्राच्यविद्या तथा धार्मिक शिक्षा के विभागों की ही उन्नति में सहयोग नहीं देना, अपितु हमें अपने कार्यक्रम के अनुसार कृषि-विभाग, शिल्प-विभाग, वाणिज्य विभाग, आयुर्वेद विभाग तथा संगीत विद्या व ललित कला विभाग को भी जन्म देना है। हमें एक संग्रहालय की आवश्यकता है, जहाँ विद्यार्थी भिन्न-भिन्न विषयों का ज्ञान प्राप्त कर सकें।'' (महामना के भाषण, पृ0 76) और इसी भाषण के अन्त में सन्देश देते हैं कि ''जिन युवकों को आज उपाधियाँ मिली हैं उनसे मेरा केवल यही अनुरोध है कि वे इस बात को अपना पवित्र कर्त्तव्य समझें कि अपने विश्वविद्यालय की उन्नति के लिए जो कुछ कार्य वे कर सकें, अवश्य करें। (महामना के भाषण, पृ0 82) अपने 1929 के दीक्षान्त समारोह में स्नातकों को उपदेश देते हुए कहा था कि ''सत्य बोलो, शुद्धता से रहो तथा सत्य ही सोचो। जीवनपर्यन्त विद्याभ्यास करते रहो, सदाचरण करो तथा किसी से भी न डरो। केवल उन्हीं कार्यों से डरो, जो निकृष्ट और त्याज्य है। सत्य तथा न्याय के लिए सदैव प्रस्तुत रहो। अपने भाइयों की सेवा प्रेम से करो। जहाँ कहीं भी तुम्हें सुअवसर मिले, भलाई करो। जो कुछ तुमसे हो सके, वह दान करो।'' (महामना के भाषण, पृ0 107-8) आगे उन्होंने यह भी कहा था कि ''ईश्वर के प्रति अपने कर्त्तव्य का एकमात्र स्मरण ही केवल मनुष्यमात्र ही के प्रति नहीं, बल्कि परमात्मा के बनाए सभी निरीह जन्तुओं के प्रति भी आप में भ्रातृभाव, दया तथा सहानुभूति का संचार करेगा। यह आत्मरक्षा तथा देश रक्षा के अवसरों के अतिरिक्त आपको दूसरों को हानि पहुँचाने से बचाएगा। स्वदेश के प्रति अपने कर्त्तव्य का ध्यान आपको उसके हित तथा सम्मान की रक्षा के लिए सब कुछ न्योछावर एवं बलिदान करने को सदैव प्रस्तुत रहने में सहायक होगा।'' (महामना के भाषण, पृ0 110) इस समय भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन की लड़ाई जोरों पर थी अतः वे स्नातकों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि- आपने यह पढ़ा होगा कि किस प्रकार गत महासमर में इंग्लैण्ड और फ्रान्स के नवयुवकों ने अपनी अथवा अपने देश की स्वतंत्रता की रक्षा के लिए स्वयं अपने को मृत्यु के मुँह में डाल दिया तथा किस साहस, शूरता तथा दृढ़ता से फ्रान्स तथा इंग्लैण्ड के सुकुमार बालकों ने अपने उद्योग में विजय प्राप्त करने तक युद्ध को जारी रक्खा और इस प्रकार अपनी मातृभूमि के लिए अमिट गौरव प्राप्त किया। मैं आपको मातृ-भूमि के गौरव के लिए उसी प्रकार के स्वातन्त्र्य से प्रेम तथा उसी प्रकार के आत्मत्याग की भावना का अपने में संचय करने का उपदेश देता हूँ। केवल इसी तरह से हम लोग पुनः एक शक्तिशाली राष्ट्र बना सकते हैं।'' (महामना के भाषण, पृ0 111)

मालवीय जी ने 26 सित0 1922 को लाहौर में मौलाना अब्दुल कादिर के सभापतित्व में एक विराट सभा में भाषण दिया। जिसमें उन्होंने हिन्दुओं एवं मुस्लिमों के बीच में होने वाली हिंसक घटनाओं का जिक्र करते हुए उन्हें सन्देश दिया था कि ''दुनिया में खुदा, परमात्मा, अकालपुरुष एक है। किसी मौलवी, पण्डित, ज्ञानी, ग्रन्थी ने खुदा दो नहीं बताए। मुसलमानों का खुदा भी वही है जो हिन्दुओं का है। हम तमाम उस एक भगवान की सृष्टि हैं।.....हमारा दूसरा रिश्ता इन्सानियत का है। हमें किसी हालत में भी इन्सानी फ़र्ज को भूल नहीं जाना चाहिए और जरा से मामले पर बिला वजह इसे बिगाड़ना नहीं चाहिए। कोई इन्सान अगर किसी के साथ सात कदम चले, तो उससे दोस्ती मान ली जाती है। हमको तो सात सौ साल से ऊपर, एक हजार साल के करीब इकट्ठे रहते हो गए।''.... हमारा तीसरा रिश्ता एक ही देश के वासी होने का है। हिन्दुस्तान के बाहर के

मुसलमानों का वतन अरब, फारस, तुर्किस्तान, ईरान या तुर्की है। लेकिन हिन्दुस्तान के मुसलमानों का वतन हिन्दुस्तान ही है।'' (महामना के भाषण, पृ0 123-24) उन्होंने अपने एक भाषण में यह भी कहा था कि जब मैं किसी गिरजा या मस्जिद के पास से गुजरता हूँ तो मेरा सिर सम्मान से झुक जाता है।....मैं सदैव अपने धर्म का दृढ़विश्वासी और पाबन्द हूँ परन्तु किसी के धर्म के अपमान का ख्याल तक मेरे दिल में कभी नहीं आया। (प्रज्ञा, पृ0 293) अभ्युदय के अंक में आप यह भी लिखते हैं कि यह केवल हिन्दुओं का देश नहीं है, हिन्दुस्तान जैसे हिन्दुओं का प्यारा जन्म स्थान है, वैसे ही मुसलमानों का भी है। ये दोनों जातियाँ यहाँ बसती हैं और बसती रहेंगी। जितनी इन दोनों में परस्पर मेल और एकता बढ़ेगी, उतनी ही देश की उन्नति में हमारी शक्ति बढ़ेगी और जितना बैर या विरोध या अनेकता रहेगी, उतना ही हम दुर्बल रहेंगे।'' (प्रज्ञा, पृ0 294)

हिन्दू महासभा में उन्होंने सात महत्वपूर्ण भाषण दिए थे जिसमें उन्होंने हिन्दुओं को अपनी जड़ताओं, संकीर्णताओं, रूढ़ियों व अंधविश्वासों के ऊपर उठने एवं प्रगतिशील बनने का सन्देश दिया है। 31 दिस0 1922 के भाषण में कहा था कि हिन्दू समाज में अनेक बुराइयों ने अपना घर कर लिया है। हिन्दू धर्म की शिक्षा क्या है? यह धर्म हमें औरों के मतों का मान करना सिखाता है, सहनशील होना बताता है और किसी पर आक्रमण करने की शिक्षा नहीं देता। साथ ही यह भी आदेश देता हूँ कि यदि तुम्हारे धर्म पर कोई आक्रमण करे तो अपनी रक्षा के लिए प्राण तक निछावर करने में कभी संकोच न करो। इस धर्म को शुद्ध हृदय से और अक्षरशः पालन करने से ही हिन्दू मुसलमानों में एकता स्थापित हो सकती है।'' (महामना के भाषण, पृ0 130)

मालवीय जी ने एक भाषण गोरक्षा पर नासिक में दिया था, जिसमें उन्होंने कहा था कि मैं आपकी इस संस्था के अध्यक्ष तथा अन्य दानवीरों का कृतज्ञ होकर अन्य सज्जनों से अनुरोध करता हूँ कि गोरक्षा के प्रश्न पर विशेष ध्यान दे और प्राणप्रण से इस बात की चेष्टा करें कि भारत में फिर वही दिन आ जाय जब गौ सचमुच माता समझी जाय और उसकी रक्षा के लिए हम अपने प्राणों का मोह न करें। मुझे पूरा विश्वास है कि यदि आप संकल्प कर लोगे और गोरक्षा के अनुष्ठान में तन-मन-धन से लग जाओगे तो वे दिन दूर नहीं है, जब फिर देश में दूध की नदियाँ बहें और प्रत्येक भारतीय गो-माता को पूज्य दृष्टि से देखें। (महामना के भाषण, पृ0 184) उन्होंने यह भी गोवध के खिलाफ रोकर कहा था- ''मुझे ले लो, मेरी जान ले लो पर गाय को छोड़ दो।'' (प्रज्ञा, पृ0 313) 1936 को अपने पूना व्याख्यान में आपने सनातन धर्म के विशेषता में प्रकाश डालते हुए कहा था कि ''सनातन धर्म केवल मनुष्य मात्र में ही भाईपन का भाव नहीं समझता, बल्कि यह मानता है कि सृष्टि में जितने जीव-जन्तु आदि प्राणी हैं, सबमें एक परमात्मा की ज्योति प्रकाश कर रही है। जैसी वह ज्योति ब्राह्मण के हृदय में है, वैसी ही वही ज्योति चाण्डाल के हृदय में भी है। सनातन धर्म प्राणिमात्र में समता का भाव सिखाता है। (महामना के भाषण, पृ0 183) उन्होंने यह भी स्वीकार किया है ''मैं मनुष्य का पूजक हूँ, मनुष्यत्व के आगे जांत-पांत नहीं मानता।'' (महामना पं0 मदन मोहन मालवीय, पृ0 38)

स्वराज्य आन्दोलन को लेकर महामना ने 1917 में मुख्य रूप से चार भाषण अलग-अलग जगहों में दिए थे। जिसमें भारतीय मांग को लेकर मद्रास में, देश की राजनीतिक स्थिति को लेकर मुम्बई में, सार्वजनिक सभा एवं होम रूल लीग सभा को लेकर प्रयाग में अलग-अलग दो भाषण दिए थे। हमें यह भी ध्यान रखना है कि इस समय प्रथम विश्वयुद्ध की लड़ाई जोरों पर थी। इसीलिए महामना ने कहा था कि ''किसी भी वैज्ञानिक में इतनी शक्ति नहीं कि संसार के किसी भी जीव को वह पैदा कर सके और न यह उचित है कि कोई जीव मारा जाय। मनुष्यमात्र को इससे बचना चाहिए। प्रत्येक युद्ध इस दृष्टि से अनुचित और हेय है। हमें आशा है कि एक समय ऐसा आवेगा जब युद्ध होना बिल्कुल बंद हो जायेगा। (महामना के भाषण, पृ0 198-99) महामना विद्यार्थियों को हमेशा शिक्षित एवं ज्ञानी बनाने के हिमायती रहे हैं। अतः वह इस युद्ध का ध्यान रखते हुए कहते हैं कि ''मैं सदा इस बात के विरूद्ध रहा हूँ कि विद्यार्थीगण राजनीति में भाग लें, पर तो भी मैं इसे नितांत हानिकारक तथा आगे के लिए भयानक समझता हूँ कि वे राजनीति से अनभिज्ञ रखे जायँ तथा जाति के आदर्श व बड़े पुरुषों के विचारों और कार्यों से अनजान बने रहें। (महामना के भाषण, पृ0 203) भारतीय स्वाधीनता की लड़ाई में भारतीयों को संगठित होने पर जोर देते हुए यह अपील की थी कि ''आन्दोलन करो, आन्दोलन करो, देश के कोने-कोने में आन्दोलन करो, यदि आप वास्तव में अंग्रेजों से अपने लिए न्याय कराना चाहते हो। त्याग और दृढ़ उत्साह के साथ काम करना ही हमारा कर्त्तव्य है।....हमें आन्दोलन, निरन्तर सार्थक आन्दोलन करना चाहिए। यदि इस कार्य में नियमबद्ध रहते हुए कोई भी विपत्ति सामने आवे तो उसका हमें हर्ष के साथ सामना करना चाहिए। हम भ्रम के भूत से न डरें, जो कायरता के फन्दे में फाँस कर गुलाम बनाए रखता है, तो सफलता दूर नहीं है। हमारा कर्त्तव्य मार्ग स्पष्ट है। हमें पुरुषों की भाँति पग बढ़ाना चाहिए। (महामना के भाषण, पृ0 207-8) अपने दूसरे भाषण में महामना ने यह भी कहा था कि ''किसी देश का शासन उसके निवासियों द्वारा ही हो, यह बात इतनी स्वाभाविक है कि कुछ स्वार्थ रखने वालों के अतिरिक्त और कोई इसे अस्वीकार नहीं कर सकता।'' आगे वह यह भी कहते हैं कि ''यह प्रत्येक भारतीय का कर्त्तव्य है कि वह स्वराज्य अथवा होमरूल के लिए शिक्षा-संयुक्त आन्दोलन उठावे, जिससे इस देश के गाँव-गाँव और घर-घर से उसकी माँग उठ खड़ी हो।'' (महामना के भाषण, पृ0 210) भारतीयों को स्वतंत्रता के लिए प्रेरित करते हुए कहा था कि तिन्दुक की लकड़ी के अंगार सदृश एक पल ही जलो पर जलो अवश्य। अपने मान और पौरुष को देखो और बल दिखाओ ''बेटा! वीर का लक्षण है कि वह कभी दीन नहीं होता, न ही संघर्ष से पलायन ही करता है। लड़ने का नाम जीवन है। बुद्धि को हमेशा धर्म में और मन को ऊँचे रखना।'' (प्रज्ञा, पृ0 313)

भारतीय-राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) में मालवीय जी ने इक्कीस भाषण दिए हैं जो भारतीय समाज का तात्कालिक चित्रण ही नहीं है बल्कि उसको एक दिशा निर्देशन भी है और ये भाषण भारत के सभी महत्वपूर्ण जगहों में मालवीय जी ने दिए हैं। 1886 में भाषण देते हुए मालवीय जी ने कहा था कि ईश्वर करे, भारत और इंग्लैण्ड का प्रत्येक अंग्रेज भारत की स्वतंत्रता और उसके अधिकार पर हृदय से विचार करे और प्रत्येक ब्रिटेन उन्हीं अधिकारों, लाभों और स्वतंत्रता को हमें भी अपने समान ही देने में सहायक हों, जिसके कारण वे और उनका देश इस उन्नत दशा को पहुँचा है।'' (महामना के भाषण, पृ0 217) 1887 के भाषण के अन्त में कहा था कि ''सज्जनों, उन्हें उचित है कि वे हमें धीरे-धीरे स्वतंत्रता दें और अपने घर का प्रबंध स्वयं करने का अवसर दें, और देखें कि हम लोग उनकी लापरवाही से किए हुए क्षणिक अन्याय को भूल जायेंगे और सदा उनकी सभी भलाइयों का ध्यान रखेंगे और उसके लिए उनके कृतज्ञ होंगे। उस कृपा के लिए भी हम कम कृतज्ञ नहीं होंगे, जिसके लिए हम आज अनुरोध कर रहे हैं।'' (महामना के भाषण, पृ0 222) 1891 के भाषण में महामना ने कहा कि ''आपको यह याद रखना होगा कि इस कुल विशाल जनता का अपने देश के प्रबंध में कोई हाथ नहीं है जिस शक्ति ने उनको अपने अधीन कर रक्खा है, उसके सामने यह गूँगे के समान है। राज्य के किसी भी काम में उससे सलाह नहीं ली जाती। जिसका राज्य है उसी के अधीन है। संसार के किसी भी सभ्य ईसाई देश में ऐसा राज्य नहीं है। (महामना के भाषण, पृ0 241) 1896 के भाषण में उन्होंने सर जार्ज विनगेट का हवाला देते हुए भारतीय समाज में कर की दशा का वर्णन करते हुए कहा था कि ''जिस देश से कर वसूल किया जाय, उसका व्यय भी उसी देश में हो, तो इसका जो प्रभाव उसके देशवासियों पर होगा, उसके ठीक विपरीत प्रभाव उस देश के निवासियों पर पड़ेगा, जहाँ यह प्रथा है कि कर तो कोई अन्य देश दें और उसका व्यय किसी अन्य देश में हो।.... भारत के कर को न्याय के पलड़े पर या अपने हित की दृष्टि से तौलिए तो मालूम होगा कि यह अमानुषिक तथा न्याय-विरूद्ध है और अर्थ-विज्ञान के सिद्धान्त से भी भिन्न होगा।'' (महामना के भाषण, पृ0 266) और इसी भाषण के अन्त में आशा व्यक्त करते हुए कहा था कि ''सरकार सभी संभव उपायों से सहायता करने का शीघ्र उपाय करेगी और केवल भारत के ही कोष से नहीं बल्कि जनता के कष्ट निवारण के लिए इंग्लैण्ड के कोष से भी सहायता लेगी। यह कार्य समय रहते, जनता के शरीर पर माँस और अस्थि के रहते तथा भूख से तड़प-तड़प कर मरने के पहले, जीवन-धारक के लिए शारीरिक शक्ति के रहते-रहते पूरा होना चाहिए; क्योंकि फिर मृत्यु से बचने के लिए सरकार की कोई सहायता भी काम न आवेगी। (महामना के भाषण, पृ0 269) जब भारतीयों को उच्च पदों में जाने की पहल अंग्रेजों द्वारा कर दी गई तब मालवीय जी 1897 में अपने भाषण के अन्त में कहा था कि ''उच्च पदों पर भारतीयों की नियुक्ति, जनता में परस्पर सद्भाव का प्रवाह, यह दोनों के महान सुख का कारण होगा और अविश्वास की सभी भावनाओं का, तथा क्षणिक नैराश्व का भी उन्मूलन हो जायगा, जिसने अभी-अभी सरकार के हाथ और उससे भी अधिक शिक्षित भारतीयों के हाथ को कुंठित कर दिया है।'' (महामना के भाषण, पृ0 279) 28 दिस0 1936 ई0 को पं0 जवाहर लाल नेहरू के सभापतित्व में कांग्रेस के इक्कानवे अधिवेशन फैजपुर में श्री राजेश बाबू राष्ट्रीय सरकार और चुनाव सम्बन्धी प्रस्ताव का ओजस्वी शब्दों में समर्थन करते हुए मालवीय जी ने महत्वपूर्ण भाषण दिया था जिसमें उन्होंने कहा था कि ''गत पचास वर्षों से हम चिल्ला रहे हैं कि हमें अपने देश का शासन-प्रबंध करने दो। सारा संसार इस बात का साक्षी है।.... हम अंग्रेजी राज्य सहन नहीं कर सकते। हम अपना शासन अपने आप कर सकते हैं, और अब भी हमारी शासन करने की शक्ति क्षीण नहीं हो गयी, जो हमारे पूर्वजों में थी।.... इतना सामर्थ्य और इतनी बुद्धि होते हुए भी हम लोग अंग्रेजों के गुलाम हैं, क्या हमें लज्जा नहीं आती? (महामना के भाषण, पृ0 368-69) आगे उन्होंने यह भी कहा था ''स्वतंत्र होना हमारा अधिकार है। चाहे अंग्रेजी राज्य भारत में स्वर्ग-सुख भी दे, फिर भी हम उसे सहन नहीं कर सकते। हम अवश्य ही स्वराज्य लेंगे। (महामना के भाषण, पृ0 369) आगे वे भारतीयों को सम्बोधित करते हुए कहते हैं कि''हमें शर्म आनी चाहिए कि हम स्वतंत्र नहीं हैं। यह अत्यन्त लज्जा और दुःख की बात है। इसके लिए यह बड़ी आवश्यकता है कि हम अपने भेद-भाव भुलाकर कन्धे से कन्धा मिलाकर काम करें। यदि ब्रिटेन हमारी मित्रता चाहता हो तो हम तैयार हैं, किन्तु यदि वह हमें अपने अधीन रखना चाहता हो तो हम उसकी मित्रता नहीं चाहते।'' (महामना के भाषण, पृ0 369) इस भाषण के अन्त के तेवर इन शब्दों में व्यक्त हुए थे ''आप स्मरण रक्खो कि अंग्रेज जब तक आपसे डरेंगे नहीं तब तक यहां से नहीं भागेंगे। आप लोगों को ऐसा भय पैदा कर देना चाहिए, तभी ब्रिटिश सरकार हमारी माँगों का महत्व समझेगी और उनको देने के लिए तैयार होगी; किन्तु कांग्रेस की खुली बैठक में एक दिन के चिल्लाने से काम नहीं चलेगा। हमें पूरे तीन सौ पैंसठ दिन निरन्तर प्रयत्न करना पड़ेगा। अपनी कायरता को दूर भगा दो बहादुर बनो और प्रतिज्ञा करो कि हम आजाद होकर ही दम लेंगे।'' (महामना के भाषण, पृ0 370) इस प्रकार हम देखते हैं कि भारतीय-राष्ट्रीय-महासभा में महामना के भाषणों का तेवर क्रमानुसार उग्र एवं क्रान्तिकारी होता चला गया है। अगर रामधारी सिंह 'दिनकर' के शब्दों में कहूँ तो ''याचना नहीं अब रण होगा, जीवन जय या मरण होगा'' की तरह मालवीय जी के भाषणों में परिवर्तन हुआ था।

प्रान्तीय राजनीतिक सम्मेलन के द्वितीय अधिवेशन 1908 ई0 लखनऊ में मालवीय जी ने एक महत्वपूर्ण भाषण दिया था जिसमें उन्होंने अकाल, प्लेग, निर्धनता आदि का जिक्र करते हुए इन स्थितियों से निपटने के उपाय सुझाए थे और यह सन्देश दिया था कि ''यदि हम इस दृढ़ विश्वास से किसी कार्य का आरम्भ करेंगे कि यह ईश्वर के प्रति हमारा शुभ कर्त्तव्य है, तो चाहे लोग हमारी स्तुति करें या निंदा, चाहे हमें सहायता दें या बाधा; कुछ भी क्यों न हो, जहाँ तक संभव

होगा, हम लोग अन्त तक लोक-हित में डटें रहकर अपने कर्त्तव्य का पालन करेंगे और दृढ़ विश्वास रक्खेंगे कि ईश्वर हम लोगों के प्रयत्न को सफल करेगा।'' (महामना के भाषण, पृ0 408)

1907 को स्वदेशी आन्दोलन के सूरत सम्मेलन में महामना ने भाषण देते हुए स्वदेशी का समर्थन किया था। इसमें उन्होंने कहा था कि स्वदेशी आन्दोलन की सहायता कीजिए ताकि इससे भारत के सब गरीब भाइयों को अन्न और वस्त्र मिल सके। (महामना के भाषण, पृ0 411) क्योंकि उनका विश्वास था कि जिस तरह एक अंग्रेज स्वभावतः गर्व से इंग्लैण्ड की बनी चीजों को खरीदता है, एक जापानी जापानी वस्तुओं को; उसी तरह भारत की बनी चीजों को एक भारतीय खरीदेंगे तो भारत की भी उन्नति उसी तरह होगी जिस तरह इन देशों की हुई है।

प्रान्तीय कौशिल में अर्थ सम्बन्धी बिल पर वक्तव्य देते हुए मालवीय जी ने साधारण लोगों, मजदूरों एवं किसानों की वकालत करते हुए अपने एक लेख का हवाला देते हुए कहा था कि ''अन्य साधारण वर्षों में कम से कम साल में चार महीने तक किसान उधार लेकर गुजर करते हैं और अकाल के वर्षों में या तो उन्हें अपने ऋण में वृद्धि करनी पड़ती है अथवा गहने, जवाहरात, जानवर, कोई भी चीज; जिसे वे सरलता से अलग कर सकते हैं, गिरवी रखकर काम चलाते हैं।... जिन मजदूरों के पास जमीन नहीं है, उनकी स्थिति संतोषजनक नहीं है।'' (महामना के भाषण, पृ0 413) इस तरह जनसाधारण भारतीयों की दशा एवं उनके जीवन निर्वाह पर महामना ने सरकार की आंख खोलने का प्रयास किया था।

राजकीय व्यवस्थापक परिषद् की ओर से मालवीय जी नौ भाषण दिए थे। विद्रोह सभा-विधान पर, प्रेस विधान पर, शिक्षा सम्बन्धी प्रस्ताव पर, प्रतिज्ञाबद्ध कुली प्रथा पर, व्यवस्थापिका सभा के बजट पर, रौलेट् बिल पर, इन्डेम्निटी बिल पर केन्द्रित भाषण है। उन्होंने जाँच कमीशन की नियुक्ति तथा रॉयल कमीशन की आवश्यकता पर भाषण दिया था, जिसमें जलियावाले बाग हत्याकाण्ड के विरोध में गिरफ्तार भारतीयों का पक्ष लेते हुए उन्होंने कहा था- ''जेलखानों में पड़े हुए पन्द्रह सौ मनुष्यों में अधिकांश लोग वैसे ही स्वतंत्र होने चाहिए जैसे कि हम यहाँ आज स्वाधीन बैठे हैं। इसलिए मैं अनुरोध करता हूँ कि चाहे कमेटी चार सप्ताह के बाद बैठे या उससे पहिले; आपकी सरकार और पंजाब के छोटे लाट इस पर विचार करें कि व्यक्तिगत या आर्थिक जमानत, अथवा दोनों पर जैसा कि आप उचित समझें; वे मनुष्य जिसका सम्बन्ध आग लगाने, हत्या करने या लूट में शामिल होने से नहीं है; इसलिए अभी छोड़े जायँ कि यदि वे कमेटी की जाँच में निर्दोष दिखाई दे तो उन्हें व्यर्थ में और कैद न भोगनी पड़े। (महामना के भाषण, पृ0 619)

गोलमेज सम्मेलन में महामना के दो भाषण इस पुस्तक में सम्मिलित है। 1931 में महात्मा गांधी के विचारों का समर्थन करते हुए आपने भाषण दिया था जिसके अन्त में कहा था कि ''हमने अपने अंग्रेज भाइयों से कहा है कि भारत में पूर्ण स्वायत्त शासन स्थापित करने में हमें सहायता दें।'' मुझे आशा है कि हिन्दुस्तान में और इंग्लैण्ड में प्रत्येक सच्चे अंग्रेज का ध्यान स्वतंत्रता और न्याय के निमित्त निमग्न रहेगा, और प्रत्येक सच्चा ब्रिटिश, जो उन स्वत्त्वों, विशेष अधिकारों व स्वतंत्रता का मूल्य समझता है, जिन्होंने उनको और उनके देश को वर्तमान उच्च दशा में पहुँचाया है, सच्चे ब्रिटिश की भाँति हमारी मदद करेगा, जिससे हमारी समान स्वत्त्वों, समान विशेषाधिकारों और समान स्वतंत्रता की कामनाएँ पूर्ण हो सके।'' (महामना के भाषण, पृ0 627) इसके अतिरिक्त 16 नवम्बर 1931 का भाषण सभापति महोदय एवं मालवीय जी की वार्तालाप से भी जुड़ा है, जिसमें उन्होंने देश के वर्तमान समस्याओं के सन्दर्भ में प्रश्नोत्तरी रूप में अपने विचार व्यक्त किए थे।

इन सभी भाषणों के अवलोकन के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय स्वाधीनता आन्दोलन का विकास और महामना के चिन्तन या वैचारिकता की पहल लगभग समान्तर धारा की तरह है। हमें यह भी ध्यान रखना होगा कि महामना के राजनीतिक व सामाजिक वर्चस्व का काल भी लगभग कांग्रेस की स्थापना के साथ ही प्रारम्भ होता है। जिस तरह कांग्रेस की विचारधारा में बदलाव आता है, उसी तरह महामना के चिन्तन एवं विचारधारा में परिवर्तन दिखलाई पड़ता है। जैसे- महामना के 1885 से 1905 तक के भाषण उदार एवं नम्र होने के साथ धर्मोन्मुखी है जिसमें क्षमा एवं याचना, शान्ति एवं अहिंसा, प्रेम एवं सौहार्द की प्रमुखता है। 1905 से 1915 तक के भाषणों में गर्मजोशी की पहल है, लेकिन इस बीच आप विशेष रूप से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना को लेकर अधिक व्यस्त रहे हैं, इसके बाद गांधी जी के विचारों एवं महामना के विचारों में काफी साम्य दिखलाई पड़ता है। दोनों की वैचारिक दृष्टि एक जैसी थी, लेकिन जलियावाला बाग हत्याकाण्ड, अंग्रेजों द्वारा लगातार की जा रही बर्बरता एवं भगत सिंह आदि क्रान्तिकारियों के दमन के बाद दोनों के चिन्तन एवं विचारों का काफी बदलाव हुआ था। महामना जो काफी नम्र विचारधारा के थे वे भी स्वराज्य प्राप्ति हेतु उग्र हो गये थे और महात्मा गांधी ने भी करो या मरो का उद्घोष कर दिया था। फिर भी हमें राजेन्द्र यादव के कथन को ध्यान रखना होगा कि ''पुराने और नये लोगों के बीच मालवीय जी एक सेतु का काम करते थे।'' और लगभग यही बात नेहरू कहते हैं कि ''मालवीय जी उदारमना तथा उग्रवादी वर्ग को मिलाने की एक कड़ी के रूप में कांग्रेस की- जो भारतीय स्वाधीनता के प्रतीक के रूप में सर्वमान्य रही- सेवा की।'' (भा0रा0चि0म0मो0 मालवीय, पृ0 219-20)

समाज का कोई भी वर्ग या व्यक्ति यदि पीड़ित, प्रताड़ित या फिर उपेक्षित हुआ है तो उसकी महामना ने यथासंभव मदद की है। दूसरा महामना जी बहुत ही सरल एवं उदारवादी स्वभाव के व्यक्ति थे। कोई भी व्यक्ति या छात्र उनके पास मदद हेतु आया है तो वह खाली हाथ नहीं लौटा। सारी जिम्मेदारियों को अपने ऊपर लेते हुए वह उसकी जो

भी मदद कर सकते थे- करते थे। धार्मिक प्रवृत्ति के होने के कारण वे आत्मा की आवाज को अधिक महत्व देते थे, जो उनकी आत्मा ने कह दिया वह उन्होंने कर दिया, अधिक सोच विचार में न पड़ते थे। उनका मस्तिष्क कभी भी उनकी आत्मा पर हावी नहीं हुआ। यह सभी बातें उनके भाषणों, लेखों एवं दैनिक जीवन के व्यवहार में देखी जा सकती है।

मैं उनकी जिजीविषा एवं कर्मठता का एक उदाहरण देकर अपना लेख समाप्त करूँगा। महामना जब रुग्ण-शैय्या में लेटे थे तब गाँधी जी ने उनसे कहा था कि ''देश की चिन्ता कब छोड़ेंगे? मालवीय जी ने उत्तर दिया था- वह चिन्ता जब मुझे छोड़ दे। इसके अतिरिक्त उन्होंने अपनी अभिलाषा प्रकट की थी कि ''मैं मोक्ष नहीं चाहता, मैं एक और जन्म देश और विश्वविद्यालय की सेवा करने के लिए लेना चाहता हूँ।'' (महामना पंडित मदन मोहन मालवीय, पृ0 43-44) प्रत्येक व्यक्ति एवं छात्र को उनके इस आकाँक्षा को ध्यान में रखते हुए उनके चिन्तन की ओर ध्यान ले जाने की एवं उनसे सीख लेने की आवश्यकता आज हमारे भारतीय समाज को महसूस हो रही है। अतः हम लोगों को उनके जीवन मूल्यों एवं चिन्तन से उत्प्रेरित होकर देशोत्थान, शैक्षणिक संस्थानों के उत्थान एवं समाजोत्थान की पहल करनी होगी एवं उनकी देश की चिंता व मोक्ष न चाहने की बात को ध्यान में रखकर कर्मरत जीवन की महत्ता को समझना होगा।

संदर्भ

1. महामना के भाषण- डॉ0 उमेशदत्त तिवारी, महामना मालवीय फाउण्डेशन, वाराणसी, संस्करण 2004
2. महामना के लेख- डॉ0 उमेश दत्त तिवारी, महामना मालवीय फाउण्डेशन, वाराणसी, संस्करण 2004
3. भारतीय राजनीतिक चिन्तक मदन मोहन मालवीय- मनोज कुमार सिंह एवं शैलेश कुमार चौधरी, डिस्कवरी पब्लिशिंग हाऊस प्राईवेट लिमिटेड, नई दिल्ली, संस्करण 2008
4. महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय (संक्षिप्त जीवन-परिचय), डॉ0 उमेश दत्त तिवारी, महामना मालवीय फाउण्डेशन, वाराणसी, संस्करण 2011
5. प्रज्ञा, अंक 39-41 (भाग- 1-2), वर्ष 1993-96 (महामना स्मृति अंक)

◆

महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय जी की दृष्टि में व्यावसायिक शिक्षा

डॉ0 आभा मिश्रा पाठक, आनन्द कुमार गौतम** एवं सन्तोष कुमार अनल****

शिक्षा के क्षेत्र में महामना जी का योगदान युग-युगान्तर तक स्मरण किया जाएगा। उन्होंने अपने जीवन काल में अनेक ऐसे कार्य किए जिनसे देश और समाज का विकास एवं उत्थान हुआ। इनमें सर्वोपरि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना एवं निर्माण का कार्य है। यहाँ शिक्षा का वातावरण प्राचीन गुरूकुलों के समान रखने की व्यवस्था की गयी है। वर्ष 1906 में कुम्भ के अवसर पर महामना पण्डित मदन मोहन मालवीय जी ने काशी में भारतीय विश्वविद्यालय खोलने की घोषणा की, 15 जुलाई 1911 को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के लिए संशोधित योजना के साथ ही उन्होने भारत के लोगों से एक करोड़ रूपये के योगदान की अपील करते हुए, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की योजना को समाज के सामने रखा। तत्पश्चात् 4 फरवरी 1916 को बसन्त पंचमी के अवसर पर काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का शिलान्यास कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।[1] मालवीय जी शिक्षा को एक महत्वपूर्ण प्रक्रिया मानते थे, उनके विचार से शिक्षा समस्त उन्नति का मूल है। उन्होंने शिक्षण संस्थाओं के माध्यम से मानवता का विकास करने का प्रयास किया। मनुष्य में एकता, शांति और सद्भावना फैलाने के लिए शिक्षा ही एक सशक्त माध्यम है।

उनके विचार में विद्यार्थियों का चरित्रगठन शिक्षा का प्राथमिक लक्ष्य है। सज्जनताविहीन ज्ञान, उनकी दृष्टि में निरर्थक है। वे जीवनोत्कर्ष और राष्ट्र की उन्नति, दोनों के लिए चरित्रगठन को बौद्धिक तथा व्यावसायिक विकास से कहीं अधिक आवश्यक समझते थे। उनकी तो धारणा थी कि पारस्परिक सद्भाव तथा सहयोग के बिना व्यावसायिक उन्नति हो ही नहीं सकती और जीवन के सद्भाव और सहयोग को विकसित करने के लिए चरित्र का गठन आवश्यक है।[2]

उनके विचार से काशी हिन्दू विश्वविद्यालय का पाठ्यक्रम ऐसा होना चाहिए जो मनुष्यों के भीतर से घृणा और द्वेष की भावना को समाप्त कर सके। उनके विचार से लोगों में सहकारिता, कृषि, बैंकिंग एवं तकनीकी आदि की शिक्षा के विकास की परम आवश्यकता है। मालवीय जी की शिक्षा सम्बन्धी परिकल्पना बहुत विस्तृत थी,वे शिक्षा का सम्बन्ध केवल देश की संस्कृति से ही नहीं जोड़ना चाहते थे, बल्कि वे चाहते थे कि शिक्षा ऐसी हो जो व्यक्ति के चरित्र, देशभक्ति, समाज और मातृभूमि के प्रति कर्तव्य एवं निष्ठा की भावना से घनिष्ठ सम्बन्ध रखती हो। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना उन्होंने इन्हीं विचारों को मूर्त रूप देने के लिए किया। मालवीय जी समझते थे कि विद्यार्थियों के लिए शिक्षा का ऐसा प्रबन्ध हो जिससे वे अपनी शारीरिक, बौद्धिक तथा भावात्मक शक्तियों को परिपुष्ट तथा विकसित कर सके, और साथ ही किसी व्यवसाय द्वारा ईमानदारी से अपने जीवन का निर्वाह कर सकें।[3]

मालवीय जी यह भी चाहते थे कि विद्यालयों में संगीत, काव्य, नाट्यकला, चित्रकला, वास्तुकला तथा मूर्त्ति-कला आदि ललित कलाओं की शिक्षा का भी प्रबन्ध हो, और उनमें से कम से कम किसी एक कला में विद्यार्थी अवश्य ही रुचि ले। उनके विचार में कला-विहीन जीवन शुष्क और नीरस है, जबकि ललित कलाओं का ज्ञान, उनको परखने की क्षमता, तथा शुद्ध भावनाओं के साथ उनके प्रति अभिरुचि और समयानुकूल उनका अभ्यास जीवन को सरल और आनन्दमय बनाता है। मालवीय जी को अपने पूर्वजों की सांस्कृतिक देन पर गर्व था। वे चाहते थे कि भारतीय संस्कृति, इतिहास, साहित्य, दर्शन तथा अन्य भारतीय विद्याओं के अध्ययन, अध्यापन तथा अनुसन्धान का समुचित प्रबन्ध हो तथा सब विद्यार्थियों को उनकी रूपरेखा की जानकारी करायी जाय। इस तरह मालवीय जी भारतीय विद्यार्थियों के लिए प्राचीन भारतीय दर्शन, साहित्य, संस्कृति और अन्य विधाओं के साथ-साथ अर्वाचीन नीतिशास्त्र, समाज विज्ञान, मनोविज्ञान, विधि विज्ञान, अर्थशास्त्र और राजनीति का अध्ययन आवश्यक समझते थे।[4]

मालवीय जी का विचार था कि, आधुनिक युग की प्रगति एवं स्थिति को सामने रखते हुए देश के अधिक से अधिक विद्यालयों में व्यावसायिक प्रशिक्षण की व्यवस्था की जाए, जिससे देश की बेरोजगारी दूर की जा सके। इस प्रकार की शिक्षा का उद्देश्य उत्पादन और धनोपार्जन होगा जिससे कि शिक्षा प्राप्त व्यक्तियों को धन की चिन्ता से मुक्ति मिले और देश में उद्योग-धन्धे पनप सके।[5] व्यावसायिक शिक्षा मनुष्य को स्वावलम्बी बनाने के साथ ही साथ उचित अर्थ में शिक्षित भी बना सकती है। मालवीय जी ने पत्रकारिता के क्षेत्र में भी विशिष्ट योगदान दिया, उस समय सम्पादक पत्र-पत्रिकाओं के लेखक को उनके पूरे लेख का अपनी इच्छा अनुसार पारिश्रमिक दिया करते थे।[6] मालवीय जी पुस्तकीय शिक्षा की अपेक्षा प्रौद्योगिक शिक्षा के पक्षधर थे, वह चाहते थे कि वैज्ञानिक ढंग की शिक्षा अपने देश में भी प्रारम्भ की जाए और प्रयोगशाला तथा वर्कशाप में विद्यार्थियों को स्वयं से प्रयोग करने का अभ्यास कराया जाए। उनके अनुसार व्यावहारिक ज्ञान की शिक्षा भी सभी प्रकार से पूर्ण तथा प्रयोगात्मक होनी चाहिए। मालवीय जी ने आधुनिक ज्ञान-विज्ञान के अध्ययन और प्रयोग की आवश्यकता को स्वीकारते हुए उसकी समुचित शिक्षा के प्रबन्ध पर बल दिया और यह

* सीनियर असिस्टेन्ट प्रोफेसर, कला इतिहास विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

** शोध छात्र, कला इतिहास विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

*** इतिहास विभाग, राजकीय महाविद्यालय लम्बगाँव, टिहरी गढ़वाल (उत्तराखण्ड)

अवगत कराया कि देश में विज्ञान का व्यापक प्रसार और प्रयोग भारतीय भाषाओं के माध्यम से ही सम्भव है, इस प्रकार उन्होंने भारतीय भाषाओं के माध्यम से आधुनिक ज्ञान-विज्ञान और शिल्प शास्त्र की शिक्षा को प्रस्तावित विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम के रूप में सुनिश्चित किया।[7] दीक्षान्त भाषण 1929 में शिक्षित बेरोजगारों के बेकारी तथा उसके कारणों पर प्रकाश डालते हुए मालवीय जी ने कहा आज बेकारी का प्रमुख कारण यह है कि हमारे विश्वविद्यालय विभिन्न व्यावसायिक विषयों की शिक्षा नहीं प्रदान करते। इनका एक मात्र उपाय यही है कि व्यापार, कृषि, शिल्पादि कला, अभियांत्रिकी तथा प्रयोगात्मक रसायनों में शुद्ध ढंग से भरपूर शिक्षा का विकास किया जाए साथ ही शिक्षा को ऐसे क्रियात्मक रूप देने की आवश्यकता है जिसकी मांग सदैव बनी रहे।[8] साथ ही काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में कृषि, तकनीकि, वैज्ञानिक आदि की शिक्षा व्यवस्था में उनका प्रयास था कि तकनीकि सामग्रियों का उत्पादन हो, विश्वविद्यालय के वर्कशाप में विद्यार्थियों की आवश्यकता की सामग्री का उत्पादन और मरम्मत कार्य हो, जहाँ विद्यार्थी प्रयोगों द्वारा उत्पादन और मरम्मत का कार्य सीख सकें। चिकित्सा विज्ञान के क्षेत्र में दवाओं का उत्पादन भी किया जाना चाहिए, जो विश्वविद्यालय के चिकित्सालय के अतिरिक्त देश को शुद्ध एवं परिष्कृत दवाओं की आपूर्ति कर सके।[9]

मालवीय जी की इच्छा थी कि जापान की तरह भारत में भी कृषि शिक्षा का समुचित प्रबन्ध हो, साथ ही साथ जापान की भाँति इस देश में भी वैज्ञानिक खेती के प्रशिक्षण का प्रबन्ध किया जाए, तो भारतीय कृषक जापान, अमेरिका और यूरोप के किसान की तरह बेहतर तथा और अधिक प्रचुर मात्रा में फसल पैदा कर सकेंगे जिससे धरती की उपज बढ़ेगी और खाद्यान्न की समस्या का निवारण हो सकेगा।[10]

मालवीय जी का विचार था कि प्रत्येक जिले या कमिश्नरी में ऐसी माध्यमिक स्तर की औद्योगिक शिक्षा संस्थाएँ खोली जाऐं जिनमें बुनाई, रंगाई, वस्त्र, छपाई, लोहारी, बढ़ईगिरी, मिनाकारी आदि के विषय में भी शिक्षा का प्रबन्ध हो, साथ ही वे चाहते थे कि प्रत्येक प्रान्त में एक उच्च स्तरीय औद्योगिक महाविद्यालय खोला जाए, जिसमें शिल्प, विज्ञान सम्बन्धी विषयों की उच्च स्तरीय शिक्षा दी जाए।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय एक प्रकार से उनकी अपनी कल्पना का प्रतीक था। वह प्राच्य और अर्वाचीन विद्याओं का संगम, विश्वज्ञान का विद्या-मन्दिर था। प्राचीन भारतीय आयुर्वेद के साथ अर्वाचीन शल्यशास्त्र की शिक्षा का मेल, आयुर्वेदिक औषधियों का वैज्ञानिक परीक्षण तथा उन पर अनुसन्धान, विभिन्न विषयों पर प्राच्य और अर्वाचीन ज्ञान का तुलनात्मक और समन्वयात्मक अध्ययन, प्राचीन भारतीय संस्कृति, दर्शनशास्त्र, साहित्य और इतिहास के गम्भीर अध्ययन-अध्यापन के साथ-साथ आधुनिक मनोविज्ञान, नीतिविज्ञान, दर्शनशास्त्र, अर्थशास्त्र, राजनीति विज्ञान आदि का अध्ययन-अध्यापन, वेद-वेदांग तथा संस्कृत साहित्य और वाङ्मय की शिक्षा के अतिरिक्त आधुनिक ज्ञान-विज्ञान, धातु-विज्ञान, खनन-विज्ञान, विद्युत इंजीनियरी, यान्त्रिक इंजीनियरी, कृषि-विज्ञान का अध्ययन इसकी विशेषता थी। यहाँ ईश्वरभक्ति के साथ-साथ देशभक्ति की शिक्षा दी जाती है और विद्यार्थियों को राष्ट्र के जीवन का ज्ञान कराया जाता है, उन्हें समाज की सेवा के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। मालवीय जी की कामना थी कि उनका विश्वविद्यालय जीवन और ज्योति का केन्द्र बने, और वहाँ के विद्यार्थी ज्ञान में संसार के दूसरे प्रगतिशील देशों के विद्यार्थियों के समान हों, तथा उत्कृष्ट जीवन बिताने के योग्य बनें, देशभक्ति और भगवद्भक्ति से अपने जीवन को अनुप्राणित कर समाज की सेवा करें।[11]

मालवीय जी के अनुसार एक ऐसी शिक्षा-पद्धति एवं शिक्षा संस्थान की आवश्यकता है जो विद्यार्थियों को धर्म, अर्थ एवं काम इन तीनों पुरुषार्थों को उपलब्ध कराने में सक्षम हो।[12]

महामना का शिक्षा-दर्शन वर्तमान के सजग आंकलन, अतीत की प्रामाणिक और गहरी समझ तथा भविष्य के अपरिहार्य गतिक्रमों को ध्यान में रखकर प्रयुक्त किया गया है। भारतीय शिक्षा कोटि-कोटि जन को उनके अपने ही सन्दर्भ में आर्थिक, सामाजिक, राजनीतिक उपाय लेने की दृष्टि प्रदान करने की शक्ति के साथ-साथ पश्चिम के नये ज्ञान तथा उसके लिए अपेक्षित समूचे तन्त्र से परिचित कराने और उस पर अधिकार प्रदान करने के लक्ष्य से परिचालित करने की आवश्यकता भी थी।

महामना ने काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के घोषित उद्देश्यों में अपने दृष्टिकोण को सम्मिलित किया जो अविस्मरणीय हैं-

1. सामान्यतः विश्वमात्र के और विशेषतः हिन्दुओं के हितार्थ प्राचीन भारतीय सभ्यता, विचार और संस्कृति के संरक्षण एवं लोक में प्रसार हेतु सामान्यतः संस्कृत वाङ्मय तथा हिन्दू शास्त्रों के अध्ययन को प्रोत्साहन।
2. देश के भौतिक संसाधनों के विकास एवं स्वदेशी उद्योग को प्रोत्साहित करने में सहायक के रूप में उत्कृष्ट तथा आकलित ऐसे वैज्ञानिक, तकनीकी और व्यावसायिक ज्ञान को आवश्यक व्यावहारिक प्रशिक्षण के साथ अग्रसर करना।
3. देश के भौतिक संसाधनों के विकास एवं स्वदेशी उद्योग को प्रोत्साहित करने में सहायक के रूप में उत्कृष्ट तथा आकलित ऐसे वैज्ञानिक, तकनीकी और व्यावसायिक ज्ञान को आवश्यक व्यावहारिक प्रशिक्षण के साथ अग्रसर करना।
4. धर्म एवं आचरण को शिक्षा का अभिन्न अंग बनाकर युवाजनों के चरित्र निर्माण को प्रोत्साहित करना।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में विशुद्ध पारम्परिक शास्त्रों का पारस्परिक पद्धति से अनुशीलन, पश्चिम के विज्ञान तकनीकी एवं व्यावसायिक ज्ञान एवं प्रशिक्षण के साथ युवा छात्रों को सबल चारित्रिक पीठिका प्रदान करने की उनकी आकांक्षा उनके शिक्षा-दर्शन का आधार है। शिक्षा को देश की व्यावसायिक आकांक्षा एवं आवश्यकता के साथ संयुक्त कर महामना ने देश की स्वतन्त्रता के संघर्ष के दिनों में एक

सर्वाङ्गीण शिक्षा-दर्शन और उसको क्रियान्वित करने का मॉडल दिया। स्वतन्त्रता के संघर्ष में राष्ट्रीय आन्दोलन को काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के योगदान एवं स्वातन्त्र्योत्तर युग में देश के औद्योगिक एवं वैज्ञानिक तकनीकी शिक्षा-तन्त्र को खड़ा करने हेतु काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की भूमिका ने महामना की दूर-दृष्टि को असंदिग्ध रूप से सही प्रमाणित किया है।

महामना ने भारत की भावी स्वतन्त्रता और उसके अपरिहार्य औद्योगिक विकास को ध्यान में रखकर विज्ञान और तकनीकी की रक्षा और उसके पोषण का विचार केन्द्र में था। देश की शैक्षिक आवश्यकता को पूरा करने में केवल विदेशी शासन पर अवलम्बित होने के विचार से महामना सहमत नहीं थे। इसीलिए शिक्षा के प्रसार में निजी प्रयत्न की भूमिका पर उन्होंने अतीव बल दिया। उन्होंने देश एवं विदेश में इस प्रकार के शासनेतर निजी स्वतन्त्र प्रयत्न के उदाहरण दिये। भारतवर्ष के समृद्ध वर्ग ही नहीं, सामान्य जनता के स्वैच्छिक दान से एक महान विश्वविद्यालय को आकार दिया। शिक्षा में निजी भागीदारी का यह सिद्धान्त किसी भी प्रकार शिक्षा के व्यवसायीकरण का विचार नहीं था। वस्तुतः एक सहज एवं सुलभ शिक्षा-व्यवस्था के लिए मानवीय निजी उदार प्रयत्न का उद्‌बोधित करना ही इसका लक्ष्य था, जिसमें शासकीय विदेशी हस्तक्षेप से युक्त एक आदर्श स्वदेशी शिक्षा तन्त्र का आदर्श उपस्थित हो सके। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के रूप में यह जीवन्त मॉडल हमारे सामने है। धर्म, साहित्य, कला आदि के प्राचीन मूल्यों से परिचालित वर्तमान समाज अविकसित और पिछड़ा समाज है। शिक्षा का अन्तर आधुनिक दर्शन, सांगणिक विज्ञान, टेक्नालॉजी, संचार माध्यमीय विज्ञान और भूमण्डलीय पूँजीवादी तृतीय चरण की आवश्यकताओं में नियन्त्रित शिक्षा-दर्शन है। इसके औचित्य, अनौचित्य का विचार किये बिना आर्थिक भूमण्डलीकरण और बाजार की व्यवस्था स्वीकार के साथ हमारे अपने शैक्षिक परिदृश्य पर इसका प्रभाव अब तक सुस्पष्ट हो चुका है। उच्च शिक्षा के स्थान पर प्राथमिक शिक्षा पर बल देने की मौखिक प्रतिबद्धता, शिक्षा में संगणक, टेक्नालॉजी तथा व्यवसायपरक शिक्षा पर अपार बल तथा शिक्षा के व्यवसायीकरण की प्रक्रिया इसका स्पष्ट निर्देश कर रहे हैं।[13]

महामना जी प्राच्य के पश्चात् ज्ञान-विज्ञान को समानान्तर खड़ा करने से हामी न होकर उनके यथोचित समन्वय एवं परस्पर विरोधी अन्तर्कर्मन के पोषक थे। इसीलिए जब विश्वविद्यालय में चिकित्सा संकाय की स्थापना का प्रसंग आया तो उन्होंने यहाँ आधुनिक मेडिकल कालेज खोलने की बात नहीं सोची। जब वे अत्यन्त आधुनिक इंजीनियरिंग कालेज खोल सकते थे। परन्तु सम्भवतः उनका सोचना था कि आज आधुनिक विज्ञान व टेक्नालॉजी का बहुत विकास हो चुका है और भारतीय देशी परम्परा की जो टेकनीक उपलब्ध है उसमें उतना कुछ खास नहीं है जिसे पुनर्जीवित करके स्वदेशी टेक्नालॉजी को मुख्य धारा प्रदान की जा सके।

सम्भवतः इसीलिए काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में आधुनिक इंजीनियरिंग का ही विभाग खोला गया। परन्तु कला, सामाजिकी, संगीत तथा चिकित्सा जैसे क्षेत्रों में देशी विज्ञान व विधा अब भी जीवन्त है और ऐसा संभव था कि स्वदेशी पारम्परिक ज्ञान को पुनर्स्थापित करके तथा यत्र-तत्र आवश्यकतानुसार आधुनिक ज्ञान से सम्पूरित करके पारम्परिक स्वदेशी विधा को ही मुख्य धारा प्रदान की जा सकती थी।[14]

महामना मदन मोहन मालवीय जी की शिक्षा-नीति सर्वाधिक व्यावहारिक और कालजयी है। उनका कोमल हृदय शिक्षा की तत्कालीन ह्रासोन्मुख दशा देखकर द्रवीभूत हो उठता था, यही कारण है कि उन्होंने अपना समग्र जीवन शिक्षा के सम्वर्धन में समर्पित कर दिया। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय उत्सर्ग का मूर्तिमान स्वरूप है। शिक्षा की तात्कालिक स्थिति पर प्रकाश डालते हुए लिखते हैं- ''भारत सरकार हमारी शिक्षा के लिए क्या व्यय करती है इसे सुनकर पाठकों को चकित और दुखित होना पड़ेगा। सरकार इस देश में शिक्षा-प्रसार के लिए एक आना के लगभग प्रति व्यक्ति व्यय करती है। जिस देशवासियों से सरकार एक अरब से अधिक धन वार्षिक वसूल करती है, उनकी शिक्षा के लिए इतना कम खर्च करना न्याय है अथवा अन्याय।

महामना जी की दृष्टि में स्त्री-शिक्षा के प्रचार-प्रसार पर ध्यान नहीं दिया गया था। उनका कहना है कि हमारे जातीय जीवन में सैकड़ों वर्ष से अंधविश्वास रूपी कुसंस्कार इकट्ठे होते गये हैं, जिनके कारण ही हमारी जाति प्राणविहीन समझी जाती है। अतः स्त्रियों की शिक्षा को महामना ने सर्वाधिक महत्त्व दिया। उनकी धारणा थी पुरुषों की शिक्षा से स्त्रियों की शिक्षा का अधिक महत्त्व है, क्योंकि वे ही भारत की भावी संतति की माँ हैं। वे हमारे भावी राजनीतिज्ञों, विद्वानों, तत्त्वज्ञानियों, व्यापार तथा कला-कौशल के पुरस्कर्ताओं की प्रथम शिक्षिका हैं।

महाभारत में कहा गया है, ''माता के समान कोई शिक्षक नहीं है।'' इस तरह मान्यता के वे प्रबल पक्षधर थे। वे नारी जाति का सर्वतोभावेन उत्थान और कल्याण चाहने वाले महामानव थे।[15] इस स्थिति में महामना के शिक्षा-दर्शन और उसके मूर्तरूप काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की भावी दिशा क्या होगी, इस पर विचार किया जाना आवश्यक है। जिस प्रकार विदेशी दासता के युग में अवांछित शासकीय दबाव से बचने के लिए महात्मा ने उदार दानशील जनता के सहयोग आश्रय लेकर प्रतिरोध किया था, क्या अब उसकी कोई सम्भावना बच रही है? अथवा भूमण्डलीकरण के लिए समर्पित शासन और उसके द्वारा नियोजित संस्थाओं के दबाव में महामना के शिक्षा के दर्शन और आदर्श शनैः-शनैः मन्द पड़ते जायेंगे। शिक्षा के व्यवसायीकरण से महामना की यह आकांक्षा ध्वस्त हो सकती है, जो इस देश की साधनहीन जनता को उत्कृष्टतम शिक्षा और शोध का अवसर देने के लिए प्रतिश्रुत थी। संगणक, टेक्नालॉजी और व्यवसायपरक शिक्षा इस युग की आवश्यकता है।[16]

महामना मदन मोहन मालवीय जी का मत था कि निर्धनता और बेकारी का प्रश्न हम लोगों के सामने बड़ा जटिल होता जा रहा है।

महामना का विचार था कि नवयुवकों को व्यावसायिक तथा व्यावहारिक विज्ञान की शिक्षा अनेक रूप से दी जाये तो यह समस्या बहुत अंशों में हल हो जायेगी जिससे वे बड़ी तनख्वाह वाली सरकारी नौकरियों की मृगतृष्णा अथवा पहले ही से भरे हुये पेशों की ओर न झुके। इस प्रकार हम धीरे-धीरे विदेशी वस्तुओं की आयात को कुछ अंशों में कम कर सकेंगे जो प्रतिवर्ष हमारे देश में अधिक संख्या में आती है तथा देश से बाहर जाने वाले अपने कच्चे माल को भी रोक सकेंगे। यदि सरकार और विश्वविद्यालयों का इस विषय में सहयोग हो जाये तो इस देश से बेकारी के हटाने का एक बहुत ही सहज उपाय निकल सकता है।[17]

मालवीय जी की दृष्टि में विश्वविद्यालय का प्रमुख उद्देश्य वैज्ञानिक तकनीकि और व्यावसायिक ज्ञान का प्रसार करना आदि सम्मिलित होना चाहिए, इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए उन्होंने इंजीनियरिंग कॉलेज की स्थापना की, जिसमें स्नातक तथा स्नातकोत्तर तक के समस्त छात्रों को इलेक्ट्रिकल, मैकेनिकल, सिविल, माइनिंग, मेटलर्जी आदि विषयों का प्रशिक्षण प्रदान किया जाता है, उन्होंने औद्योगिक रसायन विभाग की भी स्थापना की।[18] यही नहीं इस विश्वविद्यालय में कानून और शिक्षण के लिए भी प्रशिक्षण दिया जाता है, जहाँ कानून के लिए विद्यार्थी प्रशिक्षण प्राप्त करते हैं। साथ ही चिकित्सा शास्त्र में आयुर्वेद के दवाओं के निर्माण और सर्जन के लिए भी प्रबन्ध हैं।[19] इसके साथ ही वर्तमान समय में योग विद्या, दृश्यकला, संगीत कला, संग्रहालय विज्ञान, पुरातत्व विज्ञान, कृषि विज्ञान, पुस्तकालय विज्ञान, कम्प्यूटर प्रबंधन, पत्रकारिता, शिक्षाशास्त्र, विविध प्रकार की देशी एवं विदेशी भाषाओं में डिप्लोमा, हॉबी केन्द्र के अन्तर्गत फोटोग्राफी, वातानुकूलन एवं रफ्रिजरेशन, इलेक्टॉनिक्स आदि व्यावसायिक शिक्षा विद्यार्थियों को प्रदान की जाती है साथ ही साथ स्टूडेंट कौंसिल व मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र, महिला अध्ययन केन्द्र, मालवीय सेंटर फॉर पीस ऐण्ड रिसर्च केन्द्र के माध्यम से भी शिक्षा का प्रचार एवं प्रसार किया जा रहा है। आज के भौतिकवादी युग में जहाँ अर्थ को प्रधानता दी जा रही है, वहीं विद्यार्थी मालवीय जी की प्रिय पुस्तक श्री भगवद्गीता के निम्नलिखित श्लोक से ऊर्जा ग्रहण कर अपने जीवन को सफल बना सकते हैं।

''योगेश्वरः कृष्णः यत्र पार्थो धनुर्धरः।
तत्र श्री विजयो भूतिर्ध्रुवा नीतिर्मतिर्यम॥''

अर्थात् जहाँ योगेश्वर कृष्ण हों, तथा जहाँ गाण्डीवधारी अर्जुन हों *(जहाँ मस्तिष्क-बल, हृदय-बल और बाहु-बल एकत्र हों)* वहाँ लक्ष्मी हैं, वहाँ विजय है, वहाँ विभूति और निश्चित नीति है।

वर्तमान में हम गर्व से कह सकते हैं कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में विविध व्यवसायों के लिए प्रशिक्षण प्रदान किया जाता रहा है जो समाज और व्यक्ति दोनों को लाभ पहुँचाते हैं। अतः स्पष्ट है कि हम मालवीय जी के विचारों से प्रेरणा लेकर हिन्दू धर्म में नयी आशा की किरण खोज सकते हैं, यही धर्म जन संघर्ष को नयी दिशा प्रदान करने तथा औद्योगिक सभ्यता में विकसित होने वाले समाज को एक नयी राह प्रदान कर सकता है।

सन्दर्भ

1. गिरिधर मालवीय- मदन मोहन मालवीय : एक जीवन परिचय, वाराणसी, 2007, पृ0 46
2. मुकुट बिहारी लाल- महामना मदन मोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्व, वाराणसी, 1978, पृ0 616
3. कृष्ण दत्त द्विवेदी- भारतीय पुनर्जागरण और मालवीय जी, वाराणसी, 1981, पृ0 142
4. मुकुट बिहारी लाल- पू0नि0, पृ0 617-618
5. रामबाबू गुप्त- महान पाश्चात्य एवं भारतीय शिक्षाशास्त्री, कानपुर, 1980, पृ0 104
6. गिरिधर मालवीय- पू0नि0, पृ0 27
7. मुकुट बिहारी लाल- पू0नि0, पृ0 150; दर और सोमसकंदन, हिस्ट्री ऑफ दी बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी, वाराणसी, पृ0 59-62
8. कृष्ण दत्त द्विवेदी- पू0नि0, पृ0 146
9. प्रान्तीय कौंसिल में मालवीय जी का भाषण, 1907
10. मुकुट बिहारी- पू0नि0, पृ0 109-110
11. वही, पृ0 623
12. चन्द्रकला पाडिया एवं भावना मिश्रा- भारतीय मनीषा के अग्रदूत पण्डित मदन मोहन मालवीय, वाराणसी, 2001, पृ0 38-39
13. वही, पृ0 46-50
14. वही, पृ0 52-53
15. वही, पृ0 57-58
16. वही, पृ0 60
17. विद्युत वर्मा- महामना चिन्तन आलोक, लखनऊ, 2001, पृ0 85
18. प्रान्तीय कौंसिल में मालवीय जी का भाषण, 1907
19. हिन्दी साहित्य सम्मेलन, 1911, अध्यक्षीय भाषण।

◆

महामना मालवीय जी के आदर्शों का मूर्तमान स्वरूप : मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र

डॉ0 राजीव कुमार वर्मा एवं डॉ0 धर्म जंग**

आज से 150 वर्ष पूर्व जब भारत में एक महान क्रान्ति, गदर को समाप्त हुए मात्र चार वर्ष व्यतीत हुए थे और सम्पूर्ण भारतीय समाज में उस महान संग्राम की ज्वाला की तपिश अभी महसूस की जा रही थी, ऐसे समय में उत्तर प्रदेश के एक महत्वपूर्ण शहर प्रयाग (इलाहाबाद) में एक महान व्यक्ति का जन्म (सन् 1861) होता है, जिसे आज हम महामना पं0 मदन मोहन मालवीय जी के नाम से जानते है। महामना की बाल्यावस्था का समय यद्यपि आर्थिक कठिनाइयों के साथ गुजरा पर उन सभी कठिनाइयों को सहन करते हुए भी उन्होंने अपनी प्रारम्भिक शिक्षा और उच्च शिक्षा पूर्ण की। वे बचपन से ही भारतीय जीवन मूल्यों के अनुकरणकर्ता और सामाजिक जीवन में उनके पोषक रहे। वे महान स्वप्नदृष्टा थे,पर उनके स्वप्न भी यथार्थ के धरातल पर निर्मित एवं उच्चतम मानवीय मूल्यों से पोषित थे। इसका एक अप्रतिम उदाहरण उनके द्वारा स्थापित एक गौरवशाली संस्था काशी हिन्दू विश्वविद्यालय के रूप में हमारे सामने है। जिसकी स्थापना का स्वप्न उन्होंने अपनी युवावस्था में ही देख लिया था और अपने स्वप्न को कार्यरूप में परिणत करने का संकल्प उन्होंने 1905 में ले लिया था, जब प्रयाग में कुम्भ के अवसर पर इस संस्था की स्थापना के लिए प्रथम दान उन्होंने अपने पूज्य पिता जी से लिया । 1905 में प्रकाशित काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की प्रस्तावना में उन्होंने लिखा था, ''व्यक्ति और समाज की उन्नति के लिए बौद्धिक विकास से भी अधिक महत्त्वपूर्ण है चारित्रिक विकास।.....मात्र औद्योगिक प्रगति से ही कोई देश खुशहाल, समृद्ध और गौरवशाली राष्ट्र नहीं बन जाता।.....अतः युवाओं का चरित्र निर्माण करना प्रस्तावित विश्वविद्यालय का एक प्रमुख लक्ष्य होगा। उच्च शिक्षा द्वारा यहाँ केवल अभियंता, चिकित्सक, विधि-वेत्ता, वैज्ञानिक, शास्त्रज्ञ विद्वान ही नहीं तैयार कियें जायेंगे, वरन् ऐसे व्यक्तियों का निर्माण किया जाएगा जिनका चरित्र उज्ज्वल हो, जो कर्त्तव्य परायण और मूल्यनिष्ठ हों। यह विश्वविद्यालय केवल अर्जित ज्ञान के स्तर को प्रमाणित कर डिग्रियां देने वाली संस्था न होकर सुयोग्य सच्चरित्र नागरिकों की पौधशाला होगा।'' और सन् 1912 से उन्होंने अपने स्वप्न को यथार्थ के धरातल पर साकार करने के लिए सुनियोजित कार्य भी आरम्भ कर दिया। महामना का विचार था कि भारत को एक न एक दिन तो स्वतंत्रता मिल ही जाएगी और तब जब अंग्रेज इस देश से चले जायेंगे तो स्वतंत्र भारत के नवनिर्माण के लिए ऐसे चरित्रवान नागरिकों की आवश्यकता होगी जो देश और समाज को सुमार्ग पर ले जा सके। ऐसी स्थिति में उच्चतर मानवीय मूल्यों को संपोषित करने वाली शैक्षिक संस्था की आवश्यकता होगी जो सुयोग्य नागरिकों की पौधशाला बन सके।

1905 में प्रस्तावित विश्वविद्यालय की प्रस्तावना में ही विश्वविद्यालय के चार उद्देश्य प्रतिपादित किए गये थे जिसमें चौथे उद्देश्य में मालवीयजी ने कहा था कि, ''धर्म तथा नीति को शिक्षा का आवश्यक अंग मानकर नवयुवकों में सुन्दर चरित्र-गठन के विकास को प्रोत्साहित करना।''[1] मालवीयजी के लिए यह चौथा उद्देश्य सबसे महत्वपूर्ण था। उनके मन में एक ऐसे आदर्श विश्वविद्यालय का नक्शा था जो प्राचीन भारत के नालन्दा एवं तक्षशिला विश्वविद्यालय के तर्ज पर बने जिसमें दस हजार से ज्यादा विद्यार्थी एक साथ रहकर विद्या ग्रहण कर सके। वे विश्वविद्यालय को केवल परीक्षा लेने वाली संस्था नहीं बनाना चाहते थे बल्कि उनका विचार था कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय प्राचीन परम्परा के अनुसार आवासीय हो जिसमें विद्यार्थी अपना सम्पूर्ण व्यक्तित्व निखार सके। उन्होंने लिखा भी है कि-''इस समय विद्यमान पाँच विश्वविद्यालय मुख्यतः परीक्षा लने वाले विश्वविद्यालय हैं। उन्होंने अति उपयोगी कार्य किया है और वे कर भी रहे हैं। परन्तु ऐसे विश्वविद्यालयों की आवश्यकता बहुत दिनों से महसूस की जा रही थी, और जो संतुष्ट किये जाने योग्य भी है, जिसमें पढ़ाई तथा परीक्षा दोनों हो और जो आवासीय होने के कारण विश्वविद्यालय जीवन के उन आदर्शों को आत्मसात करे जो प्राचीन भारत में ज्ञात थे और जो अब भी विकसित पाश्चात्य देशों में ज्ञात है।''[2] मालवीयजी इस बात से बिल्कुल वाकिफ थे कि केवल परीक्षण विश्वविद्यालय में चरित्र का समुचित विकास संभव नहीं है। इसीलिए उन्होंने पाश्चात्य राष्ट्रों के ढंग पर शिक्षण तथा गुरूकुल प्रणाली से युक्त विश्वविद्यालय की स्थापना पर जोर दिया। इतना ही नहीं उनका मानना था कि ''यह विश्वविद्यालय ऐसा हो जिसके द्वारा हमारे प्राचीन काल की उदात्त पद्धतियों की रक्षा हो, और आवश्यकतानुसार वर्तमान तथा भविष्य के साथ आवश्यक परिवर्तन करके उनमें सामंजस्य पैदा करे। यह विश्वविद्यालय ऐसा हो जिसमें पूर्व और पश्चिम के सर्वश्रेष्ठ ज्ञान का एक साथ प्रकाश हो।''[3] मालवीयजी के लिए उच्च आदर्शों एवं नैतिक मूल्यों से युक्त स्थापित विश्वविद्यालय ही मानव के सर्वांगिण विकास के लिए परम आवश्यक था।

मालवीयजी के परामर्श से विश्वविद्यालय की कार्यसमिति ने 25 नवम्बर 1930 को भारत सरकार को लिखा था—''बनारस हिन्दू यूनिवर्सिटी एक राष्ट्रीय संस्था है, धर्म और नैतिकता (देशभक्ति और नागरिकता) की शिक्षा द्वारा नवयुवकों के चरित्र का निर्माण उसका एक प्रमुख उद्देश्य है। उसका विश्वास है कि धर्म 'चरित्र का सर्वश्रेष्ठ आधार' है, और 'देशभक्ति' एक शक्तिशाली उत्कर्षशील प्रभाव है, जो स्त्री-पुरूषों को उच्च मनस्क और निःस्वार्थ कार्य के लिए प्रेरित करता है। इसलिए यह विश्वविद्यालय अपने विद्यार्थियों के मन में इन्हें संचारित करने का तथा सार्वजनिक और राष्ट्रीय प्रश्नों के सम्बन्ध में निर्णय और व्यवहार के उच्च स्तर को उनमें विकसित करने का प्रयत्न करता है।''[4] स्पष्ट कहा जा सकता है कि काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना धर्म

* शोध सहायक, मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी

एवं नैतिकता युक्त ऐसे देशभक्त नागरिकों के निर्माण के लिए किया गया था जो निःस्वार्थ भाव से सार्वजनिक और राष्ट्रीय प्रश्नों के साथ स्वयं के संबंध में उचित निर्णय ले सके।

स्वयं महामना मालवीय जी ने 1911 में काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की प्रस्तावना में कहा था—''सच्चरित्र व्यक्ति में मानव स्वभाव का सर्वोच्च रूप दिखाई देता है। उसी में नैतिक विधान अपना मूर्त रूप लेता है। वे ही किसी समाज की नैतिक अंतरात्मा का प्रतिनिधित्व करते हैं। सच्चरित व्यक्ति ही एक सुव्यवस्थित समाज की उत्प्रेरक शक्ति होते हैं, क्योंकि नैतिक मूल्य-मर्यादाओं से विश्व का संचालन होता है। किसी देश की शक्ति, उसके उद्योग-धन्धे और आर्थिक क्षमता तथा उसकी सभ्यता, ये सभी उसके सदस्यों के व्यक्तिगत चरित्र पर निर्भर करते हैं। वही नागरिकों की सुरक्षा का सशक्त आधार है। समाज की विधि व्यवस्था तथा अन्य सामाजिक संस्थायें इसी आधार पर स्थापित और विकसित होती हैं।'' उनका यह उद्‌बोधन विद्यार्थियों के व्यक्तित्व एवं चरित्र निर्माण के प्रति उनके आग्रह को स्पष्ट करता है।

विश्वविद्यालय का चौथा उद्देश्य धर्म और नीति को शिक्षा का आवश्यक अंग मानकर विद्यार्थियों के चरित्र-निर्माण का विकास माना गया था। मालवीयजी विश्वविद्यालय में धार्मिक शिक्षा अनिवार्य मानते थे। उन्होंने अन्य विषयों के पठन-पाठन के कार्यक्रम में साप्ताहिक गीता प्रवचन का प्रबन्ध करवाया था। उनका कहना था कि दूसरे विश्वविद्यालयों में जो विषय पढ़ाये जाते हैं उनका यहाँ पठन-पाठन होता है परन्तु इस विश्वविद्यालय की यह विशेषता है कि यहाँ धर्म का विचार भी किया जाता है। दूसरे जगहों पर ऐसा उपदेश नहीं मिलता कि संसार में हम कैसा व्यवहार करें, कैसा आचरण बनाये? मालवीयजी के लिए गीता-उपदेश विद्यार्थियों के जीवन में कितना महत्वपूर्ण स्थान रखता है इसका अनुमान इस बात से लगाया जा सकता है कि एक बार उन्होंने विद्यार्थियों को संबोधित करते हुए कहा था कि, ''नियम करो कि प्रत्येक सप्ताह में डेढ़ घण्टा धर्म के लिए छोड़ दोगे। मैं यही गुरू-दक्षिणा माँगता हूँ, इसके बदले में मुझसे सर्वस्व ले लो। जैसे कोई वैश्वदेव को बलि देता है, प्यासे को पानी देता है, उसी तरह मुझे डेढ़ घण्टा दे दो (किसी तरह डेढ़ घण्टा निकाल दो) और उस श्रद्धापूर्ण अवसर का अनन्त लाभ उठा लो।''[5] इतना ही नहीं मालवीयजी विद्यार्थियों को किसी दबाव में नहीं बल्कि स्वेच्छा से गीता प्रवचन में आने पर जोर देते हैं। उन्होंने आगे कहा कि-''मैं नहीं चाहता कि हाजिरी के डर से गीता प्रवचन में आओ या किसी के दबाव से आओ किन्तु प्रेम से इस शुभ अवसर पर लाभ उठाओ। जिससे आजीवन आनन्द प्राप्त करते रहो। डेढ़ घण्टा बहुत कम है, इसे कई व्यक्ति व्यर्थ की बातें करने में उठा देते हैं। उस समय में मैं अमूल्य निधि देना चाहता हूँ।''[6] वास्तव में मालवीयजी विद्यार्थियों में गीता का महत्त्व इसलिए प्रतिपादित करना चाहते थे कि, ''जैसे अंधेरे में लालटेन हमें प्रकाश देती है और हमें ठीक मार्ग बताती है, ठीक उसी प्रकार गीता भी हमें कर्त्तव्य और अकर्त्तव्य का ज्ञान कराती है। यह हमें आध्यात्मिक और सांसारिक दोनों का ऊँचे से ऊँचा उपदेश देती है।''[7] वस्तुतः मालवीयजी धार्मिक शिक्षा द्वारा विद्यार्थियों में उन व्यापक एवं उच्च मानवीय भावनाओं को प्रोत्साहित करना चाहते थे, जो मनुष्यों के बीच भ्रातृत्व की भावना का विकास करें।

महामना मालवीयजी धार्मिक शिक्षा के साथ चरित्र निर्माण पर विशेष बल देते थे। उनका कहना था कि प्रत्येक मनुष्य कोई भी ऐसा काम नहीं करना चाहिए जो वह अपनी माता से न कह सके। यदि कोई पाप किया है तो प्रायश्चित कर लेना चाहिए और आगे पाप न करने का व्रत लेना चाहिए। विद्यार्थियों के लिए उसका उपदेश था –

सत्येन ब्रह्मचर्य्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानर्हः सदा भव।।[8]

अर्थात् 'सत्य, ब्रह्मचर्य, व्यायाम, विद्या, देशभक्ति और आत्मत्याग द्वारा सदा आदर के योग्य बनो।' उनके विचार में यह उपदेश प्रत्येक विद्यार्थी को हमेशा याद रखना चाहिए और इसके अनुसार आजीवन आचरण करना प्रत्येक व्यक्ति का धर्म है। मालवीयजी ने लक्ष्मण, अर्जुन, महावीर, भीष्म आदि के उदाहरणों द्वारा ब्रह्मचर्य का महत्त्व स्थापित किया था। उनका मानना था कि ब्रह्मचर्य के बल से लक्ष्मण ने मेघनाद को हराया था तथा अर्जुन ने जयद्रथ को। वे आजीवन ब्रह्मचर्य के पालन पर जोर देते थे। केवल सन्तान प्राप्ति के लिए विवाह कहा गया है, विषय भोग के लिए नहीं। इसीलिए मालवीयजी ने एक बार कहा था-''इस विश्वविद्यालय में विद्या पढ़ना ही नहीं है, इसी के साथ-साथ चरित्र बनाना है। ज्ञान और चरित्र दोनों का मेल कर देने से संसार में मान होगा, गौरव प्राप्त होगा।''[9]

विद्यार्थियों में उत्तम चरित्र निर्माण के लिए, उनमें सद्‌वृत्ति के विकास के लिए प्रारम्भ में विश्वविद्यालय में 'धर्म' विषय का एक पाठ्यक्रम हुआ करता था जिसमें उत्तीर्ण होना प्रत्येक विद्यार्थी के लिए आवश्यक था। ऐसा माना जाता था कि इसके अध्ययन से विद्यार्थियों में पर्याप्त मानवीय गुणों का विकास एवं पल्लवन होगा। साथ ही प्रत्येक रविवार को गीता पाठ भी मालवीय भवन में होता था जो अब भी नित्य रूप से चल रहा है। महामना का मानना था कि गीता के पाठ से, उसके परायण से विद्यार्थियों में उत्तम चरित्र का विकास होता है, अतः यह सबके लिए अनुकरणीय है।

महामना के इन्हीं विचारो से प्रेरित होकर प्रौद्योगिकी संस्थान, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय में बी0टेक0 तृतीय वर्ष में एक पाठ्यक्रम 'Human Values' सम्मिलित किया गया जो अभी भी संचालित होता है। उस पाठ्यक्रम को कई वर्षो तक प्रौद्योगिकी संस्थान में पढ़ानें वाले प्राध्यापक प्रो0 अजित नारायण त्रिपाठी, जो स्वयं आत्यंतिक रूप से महामना से अत्यधिक प्रेरित थे, का मानना था कि महामना के स्वप्न को व्यावहारिक रूप में आज के परिवेश के अनुकूल और आज की आवश्यकतानुसार, विद्यार्थियों एवं विश्वविद्यालय के कर्मचारियों के बीच संप्रेषित करने की आवश्यकता है जिससे कि वे महामना के त्याग,

उनके आदर्श, उनके चिन्तन को समझ सके। इसी भावना से प्रेरित होकर तत्कालीन कुलपति प्रो0 रघुनाथ प्रसाद रस्तोगी के कार्यकाल में मालवीय भवन में **'मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र'** का सन् 1991 में अनौपचारिक आरम्भ हुआ, जिसके संस्थापक समन्वयक प्रो0 अजित नारायण त्रिपाठी थे।

केन्द्र की स्थापना के बाद के वर्षों में संवाद और चिन्तन के उपरान्त मुख्य लक्ष्य निर्धारित किया गया कि आधुनिक शिक्षा व्यवस्था एवं आधुनिक समाज के अन्य घटकों (उद्योग जगत, सरकारी कर्मचारी, सामान्य जन आदि) में नैतिक एवं मानवीय मूल्यों की प्रतिस्थापना हेतु अकादमिक प्रयास किया जाए। इस लक्ष्य की प्राप्ति के लिए केन्द्र ने अनेक उद्देश्य अपने सामने रखे हैं । यथा - महामना पं0 मदन मोहन मालवीय के कृतित्व एवं व्यक्तित्व का अध्ययन एवं शोध, विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के लिए मूल्य-शिक्षा के कार्यक्रमों का आयोजन करना, विभिन्न क्षेत्रों में कार्यरत अधिकारियों, प्रबंधकों, वैज्ञानिकों, शिक्षकों तथा अन्य विशेषज्ञों के लिए नैतिक एवं मानवीय मूल्यों पर आधारित प्रशिक्षण, कार्यशालाओं का आयोजन करना, आज के जीवन में उभरते मूल्यगत प्रश्नों एवं समस्याओं का अन्वेषण/विश्लेषण करना और उन्हें हल करने के लिए उपाय प्रस्तावित करना इत्यादि।

आज हम भारत को एक उत्तम गौरवशाली देश के रूप में विकसित करने के लिए नाना प्रकार के प्रयास आर्थिक एवं सामाजिक स्तरों पर कर रहे हैं, परन्तु वास्तविक सामाजिक, मानवीय प्रगति के लिए इन सभी प्रयासों का आधार नैतिक एवं मानवीय मूल्य ही हो सकते हैं। इस भावना से प्रेरित होकर यह केन्द्र कई कार्यक्रम चला रहा है। इन कार्यक्रमों से उत्पन्न मूल्यगत विचारों का विस्तार करने के लिए **'मूल्यविमर्श'** (ISSN-0976-3694) अर्द्धवार्षिक शोध पत्रिका का प्रकाशन होता है। यह पत्रिका मूल्यों के प्रति चिन्तित एवं सचेत जनों के बीच विचार-विमर्श का एक सशक्त माध्यम है। साथ ही विश्वविद्यालय के विद्यार्थियों के लिए प्रतिवर्ष दो/तीन सप्ताह की कार्यशाला का आयोजन। इस कार्यशाला में विभिन्न विषयों पर प्रतिदिन सायंकाल दो घण्टे की संवादात्मक प्रस्तुतियाँ होती है। इन कार्यशालाओं के प्रतिभागियों को प्रेरित किया जाता है कि वे अंध विद्यालय, वृद्धाश्रम एवं अनाथालय में सेवा कार्य, विश्वविद्यालय के चिकित्सालय में आए असहाय रोगियों की सेवा, उनके लिए रक्तदान एवं दवाओं की व्यवस्था, समाज के पिछड़े वर्ग के बच्चों के लिए अनौपचारिक शिक्षण कार्य तथा पर्यावरण संरक्षण के प्रति जागरूकता अभियान जैसे समाज सेवा एवं मानव सेवा के कार्यक्रमों में अपना स्वैच्छिक योगदान दें। विश्वविद्यालय के शोधकर्त्ताओं, अध्यापकों एवं अधिकारियों के लिए विशेष प्रशिक्षण कार्यशाला का आयोजन। औद्योगिक एवं व्यापारिक प्रतिष्ठानों के प्रबन्धकों के लिए पूर्णकालिक कार्यशाला का आयोजन, जिसका शीर्षक है- "Ethics in Management"। प्रतिवर्ष विवेकानन्द जयन्ती 12 जनवरी 'युवा दिवस' पर विद्यार्थियों के लिये संगोष्ठी एवं व्याख्यान का आयोजन। नैतिक एवं मानवीय मूल्यों से जुड़े विषयों पर संगोष्ठियों एवं विशिष्ट व्याख्यानों का आयोजन। केन्द्र यह भी प्रयास कर रहा है कि नैतिक एवं मानवीय मूल्यों से जुड़े विषय विद्यार्थियों के औपचारिक पाठ्यक्रमों में भी शामिल किए जायँ।

आधुनिक यांत्रिक-औद्योगिक सभ्यता ने तथा वैश्विक अर्थव्यवस्था ने ऐसी विकराल वैश्विक समस्याओं को जन्म दिया है जिनसे आज मानव जाति के अस्तित्व पर ही प्रश्नचिन्ह लगने लगे हैं। विश्व के अनेक प्रबुद्ध दार्शनिक एवं विचारक यह मानते हैं कि इन समस्याओं को हल करने के लिए हमें आज एक नए, समन्वयात्मक, मानवतावादी मूल्य-दर्शन की आवश्यकता है। इस वैश्विक मूल्य-चिन्तन में भारतीय विश्व-दृष्टि और जीवन-दृष्टि महत्त्वपूर्ण योगदान कर सकती है। विचार-जगत में सक्रियता की इन नई दिशाओं में भी केन्द्र अपनी समुचित भूमिका निभाने का प्रयास करेगा। हमारा प्रयास होगा कि **'मालवीय मूल्य अनुशीलन केन्द्र'** मूल्य-शिक्षा एवं मूल्य-चिन्तन के क्षेत्र में एक अग्रणी राष्ट्रीय केन्द्र के रूप में विकसित हो। अन्ततः सारतत्व के रूप में मालवीयजी का यह कथन अत्यन्त सारगर्भित है जिसमें उन्होंने कहा था कि-

श्रूयतां धर्मसर्वस्वं श्रुत्वा चाप्यवद्यार्यताम्।
आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्।।[10]

अर्थात् सुनो! धर्म के सर्वस्व को सुनकर इनके अनुसार आचरण करो। जो काम अपने को बुरा या दुःखदायी जान पड़े उसको दूसरे के साथ नहीं करना ।

सन्दर्भ

1. तिवारी, उमेशदत्त, महामना के लेख, पृ0 184
2. वहीं पृ0 184
3. वहीं पृ0 204
4. लाल, मुकुट बिहारी, महामना मदन मोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्त्व, पृ0 168
5. वासुदेवशरण, मालवीयजी के लेख और भाषण (धार्मिक), पृ0 164
6. वहीं, पृ0 164
7. वहीं, पृ0 161
8. लाल, मुकुट बिहारी, महामना मदन मोहन मालवीय : जीवन और नेतृत्त्व, पृ0 162
9. वासुदेवशरण, मालवीयजी के लेख और भाषण (धार्मिक), पृ0 164
10. वहीं, पृ0 2-3

◆

महामना की धर्मनिष्ठा

डॉ0 पवन कुमार शास्त्री *

महामना पं0 मदन मोहन मालवीय भारतवर्ष की आध्यात्मिक विभूति थे । उनका व्यक्तित्व असाधारण था। भगवान् श्रीकृष्ण के परम आराधक महामना के व्यक्तित्व में गीता के ज्ञानयोग, कर्मयोग एवं भक्तियोग का अद्‌भुत् समन्वय था । उनके जीवनचरित का अवलोकन करने पर यह निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि गीता में वर्णित दैवी सम्पत् की समस्त विभूतियां उनके व्यक्तित्व में एक साथ भास्वर हो उठी थीं। वे भारतीय संस्कृति के साक्षात् विग्रह थे। विगत 20वीं शताब्दी में भारतवर्ष में एकमात्र महामना को छोडकर ऐसा काई भी दूसरा व्यक्तित्व नहीं हुआ, जिसे गँवार से लेकर विश्वविश्रुत् विद्वान् तक, एक साधारण मजदूर से लेकर वायसराय तक, एक गरीब से लेकर राजा-महा राजाओं तक, एक सामान्य उपभोक्ता से लेकर बडे-बडे पूँजीपति तक और भयंकर क्रांतिकारी से लेकर घोर नरमपंथी तक का एक साथ और एक समान आदरभाव एवं श्रद्धाभाव प्राप्त हुआ हो ।

ऐसे लोकरंजक व्यक्तित्व वाले आदरणीय महामनाजी की धर्म में गहरी निष्ठा थी । ''धर्म '' उन्हें अनन्य रुप से प्रिय था । वे कहा करते थे कि ''इस भूमण्डल पर जो वस्तु मुझे सबसे प्यारी है, वह है धर्म और वह सनातन धर्म है ।'' महामना जी की यह धर्म विषयक आस्था उन्हें कुल परम्परा से प्राप्त थी । उनका जन्म एक धार्मिक परिवार में हुआ था एवं उनका पालन-पोषण अत्यन्त धर्मनिष्ठ कौटुम्बिक परिवेश में हुआ था । उनके पिताजी श्रीमद्‌भागवत महापुराण के उद्‌भट् विद्वान् तथा मर्मस्पर्शी कथावाचक थे । उनके कुटुम्ब के अन्य सदस्य भी संस्कृत भाषा एवं संस्कृत वाङ्मय के श्रुति - स्मृति - पुराणादि में गहरी रुचि रखते थे । घर में अनेक धार्मिक ग्रन्थ थे जिनके प्रतिदिन नियमित पठन -पाठन की परम्परा थी । परिवार पर वैदिक गृहस्थाश्रम का प्रभाव था । घर की एक कोठरी ठाकुर जी के नाम थी। उसमें राधा-कृष्ण सदा विराजमान रहते थे। नित्य पूजन-हवन होता रहता था । घर में यह नियम था कि प्रतिदिन ठाकुरजी को भोग लगाने के बाद ही सब भोजन करते थे।

मालवीयजी की शिक्षा - दीक्षा भी बहुत कुछ धार्मिक परिवेश में ही हुई थी । उनकी प्रारम्भिक शिक्षा पं0 हरदेवजी की सुविख्यात धर्मज्ञानोपदेश पाठशाला में हुई थी, जहां दैनिक विद्याभ्यास के उपरान्त छात्रों को प्रतिदिन गीता या मनुस्मृति आदि धर्मग्रन्थों से एक श्लोक कण्ठस्थ कराया जाता था । इससे मालवीयजी को अनेक धार्मिक श्लोक कण्ठस्थ हो गये थे । पाठशाला से लौट कर मालवीयजी घर में रखे हुए धर्मग्रन्थों को भी उलटते-पुलटते रहते थे । बड़े होने पर उन्होंने इन धर्मग्रन्थों का नियमित अध्ययन और मनन करना भी शुरु कर दिया था। एक दिन उन्हें इन्हीं धर्मग्रन्थों में इतिहास समुच्चय नामक एक धर्मग्रन्थ मिल गया, जिसका उन्होंने गहन अध्ययन किया। इस धर्मग्रन्थ में महाभारत के चुनिन्दा 32 इतिहास थे। मालवीयजी के कथनानुसार इन्हें पढ़ने से उनके धर्म सम्बन्धी ज्ञान एवं विचारों में काफी वृद्धि हुई थी।

मालवीयजी की धार्मिक निष्ठा उनके बाल्यकाल की दिनचर्याओं से ही परिलक्षित होने लगती है । वे नियमित रूप से संध्या वन्दन करते थे और गायत्री महामंत्र का बहुत जप करते थे । वे प्रतिदिन स्कूल जाने से पूर्व हनुमानजी का दर्शन अवश्य करते थे और निम्नलिखित श्लोक पढकर उनका स्तवन करते थे -

मनोजवं मारुततुल्यवेगं जितेन्द्रियं बुद्धिमतां वरिष्ठम्
वातात्मजं वानरयूथमुख्यं श्रीरामदूतं शिरसा नमामि ॥

हनुमद् भक्ति से भावित श्रीमालवीयजी स्वास्थ्य पर विशेष ध्यान देते थे । उनका कथन था कि एक स्वस्थ शरीर में ही स्वस्थ मन रहता है और उस स्वस्थ मन में स्वस्थ विचार पनपते हैं।वे विश्वविद्यालय के छात्रों के स्वास्थ्य पर भी ध्यान देते थे । मालवीयजी छात्रों को भी उपदेश देते थे कि -

''दूध पियो कसरत करो और जपो सदा हरिनाम।
मन लगाय विद्या पढ़ो, पूरे होंगे सब काम॥''

मालवीयजी ने अपनी धार्मिक निष्ठा का परिचय विश्वविद्यालय की स्थापना के सन्दर्भ में भी दिया था। बात उन दिनों की है जबकि विश्वविद्यालय की स्थापना के लिये पूरे भारत में आन्दोलन चल रहा था। मालवीयजी ने विचार किया कि इतना बड़ा कार्य बिना किसी दैवी सहायता के पूर्ण न हो सकेगा । वे गायत्री महामंत्र का बहुत जप करते थे । उन्होंने इस अवसर पर भी इसी गायत्री महामंत्र का आश्रय लिया और त्रिवेणी-तट पर बडे हनुमान जी के मन्दिर में एक लाख गायत्री महामंत्र का पुरश्चरण किया । तत्पश्चात् विश्वविद्यालय की स्थापना का कार्य शुरु किया । महामना की इस धार्मिक निष्ठा का ही परिणाम ही था कि अनेक बाधाओं के आने पर भी विश्वविद्यालय की स्थापना का महामना का संकल्प पूर्ण हुआ।

'पितृदेवो भव'' इस औपनिषदिक वाक्य में गहरी आस्था रखने वाले मालवीयजी ने अपनी धार्मिक निष्ठा का परिचय देते हुए विश्वविद्यालय की स्थापना हेतु सर्वप्रथम अपने पिताजी से आज्ञा ली और उनसे सहयोग करने की प्रार्थना की। ध्यातव्य है कि विश्वविद्यालय की स्थापना हेतु सर्वप्रथम इक्यावन रुपये का दान आपके पिताजी ने ही दिया था।

महामनाजी पतितपावनी गंगा एवं गौ से भारतीय सनातनधर्म और भारतीय संस्कृति का अविच्छिन्न सम्बन्ध मानते थे। वे गंगाजी के अविरल प्रवाह हेतु सतत प्रयासशील रहे थे। सन् 1912 में जब

* अध्यक्ष, साहित्य संगीत परिषद्, काशी। निवास- के. 56/29, औसानगंज, वाराणसी।

भीमगौड़ा हरिद्वार में बांध बनाने की योजना बनी और जनता ने उसका विरोध किया तो महामना जी ने जनता का साथ दिया । दिसम्बर 1916 में मालवीयजी के नेतृत्व में उपस्थित बनारस, पटियाला, अलवर, ग्वालियर, जयपुर, बीकानेर तथा दरभंगा आदि नरेशों और अनेक अंग्रेज अधिकारियों के समक्ष अंग्रेज सरकार ने यह समझौता किया और गारंटी दी कि गंगातट से ऊपर तक खुला प्रवाह जारी रहेगा एवं हिन्दू समुदाय की पूर्व सहमति के बिना इस सम्बन्ध में कोई कदम नहीं उठाया जायेगा । गंगा के अविरल प्रवाह हेतु महामना का यह योगदान सदा स्मरण किया जायेगा । महामना जी गंगा के अविरल प्रवाह हेतु बाद में भी सदैव सचेष्ट रहे थे । उन्होंने अपने स्वर्गवास से पूर्व न्यायमूर्ति श्रीशिवनाथ काटजू से कहा था कि यदि भविष्य में कभी गंगा के प्रवाह में कोई बाधा खड़ी की गई तो तुम उसका विरोध करना ।

मालवीयजी गोपालन, गोसेवा एवं गोदुग्धपान को अत्यन्त महत्व देते थे । गाय को वे अत्यन्त पवित्र मानते थे । उन्होंने कई गायें पाल रखी थीं । उनके आवास में उनकी गाय इस प्रकार बँधी रहती थी कि उस गाय को स्पर्श करके बहने वाली वायु मालवीयजी को स्पर्श करती रहे ।

जैसाकि ऊपर कहा जा चुका है कि मालवीयजी की धर्म- प्रचार में गहरी रुचि थी । आरम्भ में वे धर्म-प्रचार ही करना चाहते थे किन्तु आर्थिक कारणों से वे ऐसा नहीं कर पाये । तथापि धार्मिक गतिविधियों में उनकी संलग्नता बराबर बनी रही । बीसवीं सदी के पहले दशक में जब काशी के कुछ धर्मप्राण नागरिकों ने प्रयाग के कुम्भ मेले में जनसेवा करने का उद्यम करना चाहा तो परम धार्मिक श्री मालवीयजी ने न केवल उनका समुचित मार्गदर्शन किया अपितु इस प्रकार की जनसेवा करने को तत्पर स्वयंसेवकों की दो समितियां भी गठित करा दीं - प्रथम वाराणसी में - काशीसेवा समिति, एवं द्वितीय प्रयाग में - प्रयाग सेवा समिति। इनमें से वाराणसी में काशी सेवा समिति आज भी सेवारत है ।

धर्म के सम्बन्ध में मालवीयजी के विचार एकदम स्पष्ट थे। उन्होंने अपने व्यक्तिगत धर्म के विषय में कहा था कि घर में ब्राह्मण धर्म है, परिवार में सनातन धर्म है, समाज में हिन्दू धर्म है और विश्व में मानव धर्म है । मालवीयजी के अनुसार धर्म बड़े-बड़े गुणों का समूह है, वस्तुतः धर्म उन व्यवस्थाओं और उन नियमों का नाम है जो समाज को तथा राज्य के विविध अंगों को धारण किये रहते हैं । धर्म के जो मूल सिद्धांत हैं उन सबका उद्देश्य देश में सुख, शान्ति और समृद्धि उत्पन्न करना है तथा मनुष्य को पारलौकिक गहन विषयों का चिन्तन करने के योग्य बनाना है । मालवीयजी धर्म को लोक संग्रहकारी शक्ति मानते थे । उनका कहना था कि संसार मे सब पदार्थ बदलते रहते हैं और सुख-दुख होते रहते हैं किन्तु धर्म नित्य है । धर्म कभी नहीं बदलता। यदि प्राण भी जाता है तो धर्म कभी न त्यागो । धर्म चरित्र निर्माण तथा सांसारिक सुख का सीधा मार्ग है । इससे मनुष्य में उच्च कोटि की निःस्वार्थ सेवा की भावना आती है, जिससे समाज तथा राष्ट्र का कल्याण होता है । महामनाजी का कथन था कि सबसे बडा उपकार जो किसी प्राणी का कोई कर सकता है वह यह है कि उसको धर्म का ज्ञान करा दे । धर्म में उसकी श्रद्धा उत्पन्न कर दे अथवा दृढ़ कर दे। संसार में धर्म के समान दूसरा कोई दान नहीं है ।

मालवीयजी ने कहा था कि मनुष्य का शरीर धारण करने मात्र से मनुष्यता प्राप्त नहीं हो जाती, उसके लिए कुछ धर्मों का पालन करना वांछित होता है । जिस तरह अग्नि का धर्म है दाहकता, जल का धर्म है शीतलता तथा प्रकृति का धर्म है परिवर्तन उसी प्रकार मनुष्य का धर्म है मनुष्यता । मालवीयजी ने छात्रों, अध्यापकों तथा राजनेताओं के धर्मों की भी व्याख्या की थी । वे चरित्र-निर्माण पर विशेष बल देते थे । एक बार उन्होंने कहा था कि इस संसार में हर एक व्यक्ति लाइम लाइट या प्रकाश में आना चाहता है । अब लाइट तो जैसा वह व्यक्ति होगा उसे वैसा का वैसा दिखा देगी। फूहड सुन्दर कैसे दिख सकेगा? इसलिये मनुष्य को लाइम लाइट में आने की इच्छा से पूर्व अपने चरित्र को इस प्रकार बनाना चाहिये कि वह लाइट में फूहड़ न दिखकर सुन्दर दिखे।

मालवीयजी उदारवादी थे। उन्होंने समय-समय पर अपने आलेखों एवं भाषणों में धर्म व सनातन धर्म की अनेक विध तत्वनिष्ठ व्याख्यायें की थीं । उनके अनुसार सृष्टि में तन धारण करने वाले समस्त प्राणी काम, क्रोध, मद, माया एवं लोभ इन 5 विकारों से ग्रस्त होते हैं। जिन यम - नियमों के पालन से इन विकारों से मुक्ति मिलती है वही धर्म है । मालवीयजी महाभारत के निम्नलिखित श्लोक को उद्धृत करते हुए कहते थे कि संसार रूपी अंधकारमय जंगल में चलने के लिए सत्य का दीपक, तप का तेल, दया रुपी बत्ती और क्षमा रूपी शिखा वाले धर्म के दीपक को सदैव रक्षित रखना चाहिये-

सत्याधारस्तपस्तैलं दयावर्ति क्षमा शिखा॥
अन्धकारे प्रवेष्टव्यो दीपो यत्नेन धार्यताम्॥

मालवीयजी का धर्म विषयक दृष्टिकोण सदाचार, शिष्टाचार एवं लोकाचार प्रधान था। वह ''आत्मवत् सर्वभूतेषु'' की भावना उत्पन्न कराने वाला तथा विश्वबन्धुत्व एवं विश्वशान्ति का मूलाधार था । मालवीयजी का धर्म विषयक दृष्टिकोण व्यक्तिगत आचरण एवं लोक-व्यवहार दोनों में उतारने योग्य था। मालवीयजी के एक लेख की निम्नलिखित पंक्तियां उनके धर्म विषयक इस दृष्टिकोण को स्पष्ट करती हैं -

''सच्चा तप यह है कि अपने भाइयों के ताप से तपा जाय, सच्चा यज्ञ यह है कि जिसमें अपने स्वार्थ की आहुति दी जाय, सच्चा दान यह है कि परमार्थ किया जाय और सच्ची सेवा यह है कि उसके दुखी जीवों की सहायता की जाय। परमात्मा सबके हृदय मे व्यापक है। हम जितने प्राणियों को प्रसन्न कर सकेंगे उतने ही गुना हम ईश्वर को प्रसन्न करेंगे । यह सच्चा धर्म देश भक्ति द्वारा प्राप्त है । देश भक्ति का संचार हमारे हृदय से स्वार्थ को निकाल कर फेंक देगा। हम अदूरदर्शी, स्वार्थी और खुशामदियों की तरह ऐसे काम कदाापि न करेगे जिनसे देशवासियों को हानि पहुंचे। बल्कि असंख्य कष्ट उठाते हुये वही

करेंगे जिसमें देश का भला हो, निर्धन - धनवान बनें, निर्बल बलवान हों और मूर्ख भी बुद्धिमान हो जायें । प्रत्येक प्रकार के सामाजिक दुःख मिटें, दुर्भिक्ष आदि विपत्तियां दूर होकर लाखों बिलबिलाती हुई आत्माओं को सुख पहुंचे । देश भक्ति द्वारा इतने धर्मों का संपादन होता हुआ देखकर भी यदि कोई धर्म के आगे देश भक्ति को कुछ नहीं समझता तो उस पुरुष को जान लीजिये कि वह धर्म के तत्व को नही पहचानता। वह धर्म-धर्म गा रहा है किन्तु यह नही समझता कि धर्म क्या वस्तु है।''

सनातन धर्म की व्याख्या करते हुए मालवीयजी ने लिखा है कि ''परमात्मा पर विश्वास, जो सम्पूर्ण ब्रह्माण्ड का सर्जक, पालक और संहारक है, जिसकी तीन संज्ञायें - ब्रह्मा, विष्णु, महेश हैं, जो त्रिकाल में सत्य, चैतन्य अर्थात् ज्ञानस्वरुप, आनन्दस्वरुप पुरुष है जो आदि, अज, अजन्मा और अविनाशी है, जो अकेला, अद्वितीय एवं सिफ बुद्धिगम्य है, ऐसा मानने वाला धर्म - सनातन धर्म है।'' मालवीयजी अपने वक्तव्यों में शास्त्रों में कहे गये धृति, क्षमा, दम, अस्तेय, शौच, इन्द्रिय-निग्रह, धी, विद्या, सत्य और अक्रोध, इन धर्म के दस लक्षणों को प्रायः उद्धृत करते थे तथा इनके अनुपालन हेतु प्रेरित करते रहते थे । वे कहते थे कि ''शील मानव का सबसे उत्तम भूषण है और धर्म का लक्षण है । मालवीयजी कहते थे कि हर परिस्थिति में दृढता के साथ धर्म का पालन करना मनुष्य का पुनीत कर्तव्य है। क्योंकि धर्म अविनाशी है, सुख-दुःख तो आते जाते रहते हैं। उनका कहना था कि यदि धर्म की रक्षा सिर देकर भी करनी पड़े तो हिचकना नहीं चाहिये। वे प्रायः कहते थे कि ''सिर जावै तो जाय प्रभु मेरो धरम न जाय''। महामना जी को शास्त्रों की इस उक्ति पर विश्वास था कि - धर्मो रक्षति रक्षितः। वे कहते भी थे कि -''जो हठ राखै धर्म को तेहि राखै करतार'', ''धर्मो विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा'' इत्यादि।

मालवीयजी को महाभारत का द्रोपदी-चीर-हरण-प्रसंग, रन्तिदेव प्रसंग, विदुलोपाख्यान एवं श्रीमद्भागवत का गजेन्द्र-मोक्ष प्रसंग अत्यधिक प्रिय था। मालवीयजी द्रोपदी-चीर-हरण-प्रसंग की कथा कहते समय अत्यन्त भावुक हो जाते थे तथा उस समय उनके नेत्रों से आंसू छलक पडते थे । कर्तव्यपथ पर डटे रहने तथा वीरतापूर्वक शत्रुओं एवं विपरीत परिस्थितियों से मुकाबला करने हेतु वे महाभारत के विदुलोपाख्यान को उद्धृत करते थे।

महामनाजी को अपनी अन्तरात्मा की आवाज और श्रीमद्भागवत के आठवें अध्याय में उल्लिखित गजेन्द्र-मोक्ष स्तव पर गहरी आस्था थी। उनका कहना था कि संसार का कोई भी कार्य मेरे लिए दुष्कर नहीं है, यदि मैं हृदय से गजेन्द्र-मोक्ष-स्तव का पाठ कर लूँ। मैंने इसकी परीक्षा ली है और इसी के बल पर मैं आज तक कभी असफल नहीं हुआ हूं । गजेन्द्र-मोक्ष स्तव का निम्नलिखित श्लोक उनका महामंत्र था, जिसे संकट से उबरने के लिये वे उच्चारण करते थे-

कृष्णाय वासुदेवाय हरये परमात्मने।
प्रणत क्लेश नाशाय गोविन्दाय नमो नमः॥

मालवीयजी ने रायकृष्णदास को गजेन्द्र-मोक्ष स्तव का उपदेश करते हुए कहा था कि ''भक्तिपूर्वक आर्त होकर इसका प्रतिदिन पाठ करते रहो, तुम पर कोई आँच नहीं आवेगी । मालवीयजी कहते थे कि मनुष्य को ईश्वर की विमल भक्ति के साथ ही साथ घट-घट व्यापी परमात्मा की भी उपासना करनी चाहिये और परमात्मा की व्यापकता को ध्यान में रखते हुए प्राणीमात्र से प्रीति करनी चाहिये । पीडितों के लिये आत्म-त्याग करने वाले राजा रन्तिदेव के प्रसंग से उन्होंने निम्नलिखित श्लोक को खोज निकाला जो प्रयाग-सेवा-समिति का आदर्श वाक्य बना-

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

डॉ. जगन्नाथप्रसाद शर्मा ने एक संस्मरण में लिखा है कि मालवीयजी कहते थे कि नित्य विद्यार्थियों को अपने यहाँ के धार्मिक आचार-विचार की बातों का कुछ स्मरण दिलाने से उनके भीतर सांस्कृतिक चेतना जागृत होती है। इसीलिये मैंने विश्वविद्यालय में विधान कर रखा है कि सप्ताह मे दो-एक घंटे धार्मिक प्रवचन सुनाये जायें । मैंने इसी अभिप्राय से एकादशी की कथा का भी प्राविधान किया है।

महामना की धर्मनिष्ठा के सन्दर्भ में जितना भी कहा जाय, कम है । श्री सी. वाई. चिन्तामणि लिखते हैं कि ''अगर मिस्टर मोहन दास करमचन्द गांधी महात्मा गांधी कहे जा सकते हैं तब पं0 मदन मोहन मालवीय निश्चित रूप से धर्मात्मा पं0 मदन मोहन मालवीय कहे जा सकते हैं।'' यदि हम महर्षि वाल्मीकि द्वारा दी गई उपमा का आश्रय लें तो हम यह कह सकते हैं कि जिस प्रकार आकाश के समान आकाश ही होता है और सागर के समान सागर ही होता है उस प्रकार महामना पं. मदनमोहन मालवीयजी के समान स्वयं महामना पं. मदनमोहन मालवीयजी ही हैं । उनकी 150वीं जयन्ती के वर्ष में उन्हें हमारा शतकोटि नमन।

सन्दर्भ

1. भारत भूषण महामना पं. मदन मोहन मालवीय, ले0 उमेशदत्त त्रिपाठी ।
2. महामना मालवीयजी के सदुपदेश, सं0 प्रो. मुकुट बिहारी लाल ।
3. जीवन झलकियाँ ।
4. लेख और भाषण ।
5. अभ्युदय 2 मई 1908 ।
6. कामेमोरेशन, वाल्यूम 1961 ।
7. प्रज्ञा, ही. अंक ।
8. संस्मरण, डॉ. जगन्नाथ प्रसाद शर्मा ।
9. संस्मरण, आचार्य पं. सीताराम चतुर्वेदी ।
10. संस्मरण, आचार्य पं. बलदेव उपध्याय ।

◆

महामना मालवीय और उनकी काशी सेवा समिति

डॉ0 रामअवतार पाण्डेय *

महामना मालवीय जी की 150वीं जयन्ती पूरे देश में मनायी जा रही है। 'पण्डित मदन मोहन मालवीय' एक ऐसा अद्भूत और पवित्र नाम है जिसके सामने आते ही हृदय श्रद्धा से भर जाता है। एक सामान्य धार्मिक पुरोहित परिवार में 25 दिसम्बर 1861 को जन्मा व्यक्ति अपनी विलक्षण असाधारण प्रतिमा से, अपने ज्ञान से, अपने तप से, न केवल सबको चमत्कृत किया बल्कि स्वतंत्र भारत के निर्माण के लिए, सर्व विद्या के अध्ययन और अध्यापन के द्वारा देश को महान दार्शनिक, गणितज्ञ, वैज्ञानिक, इन्जीनियर, चिकित्सक, प्राध्यापक, क्या कुछ नहीं दिया, जो आज राष्ट्र के विकास और उसके निर्माण में न केवल अहम् भूमिका निभा रहे हैं, वरन् अपनी मेधा, अपने ज्ञान, अपनी कुशलता का लोहा सारी दुनिया से मनवा रहे हैं। आजादी की लड़ाई में अहम् भूमिका के साथ राष्ट्र निर्माण के प्रति मालवीय जी की सतत् साधना और तपस्या अद्भुत और बेमिसाल है। काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना और उसका मौजूदा स्वरूप इसका अकाट्य प्रमाण है। जहाँ आजादी की लड़ाई में भाग लेने वाले राजनेताओं में आजादी मिलते ही सत्ता का स्वाद चखने की लिप्सा जगी, वहीं मालवीय जी जैसा तपस्वी भी था जिसने संगम के तट पर वर्ष 1914 में ही गंगाजल हाथ में लेकर अपने जीवन का लक्ष्य स्वयं निर्धारित किया। महात्मा रन्तिदेव की पँक्तियों का उच्चारण कर कि—

नत्वहं कामयेराज्यं, नस्वर्गं नाऽपुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानाम, प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

अर्थात् गंगाजल हाथ में लेकर संकल्प लिया कि न मुझे राज्य की इच्छा है, न स्वर्ग की, न मोक्ष की, मैं तो केवल दुःखों से तप्त प्राणी मात्र की व्यथा को हरना चाहता हूँ। इसी संकल्प की पूर्त्ति में उन्होंने अपना सारा जीवन लगा दिया। राष्ट्र की सेवा, राष्ट्र के जन-जन की सेवा, हिन्दी की सेवा, हिन्दू धर्म की सेवा, रोगियों की सेवा, बूढ़े एवं कमजोर लोगों की सेवा, दंगा फसाद, महामारी, हैजा अकाल पीड़ितों की सेवा, त्योहारों पर सफाई व्यवस्था और सेवा, अनाथ बच्चों गरीब, बेसहारा और विपन्न की सेवा, उनकी शिक्षा, अछूतों की सेवा, यानि सेवा का कोई क्षेत्र उन्होंने नहीं छोड़ा। 1914 में जहाँ उन्होंने प्रयास सेवा समिति, प्रयाग (इलाहाबाद) में गठित की और संगम के शहर में सेवा भाव का प्रचार-प्रसार किया, स्वयं सेवक तैयार किये वहीं 1918 में काशी में भी काशी वासियों की हर आपदा विपदा में सेवा करने के महान उद्देश्य को लेकर काशी के तत्कालीन संभ्रान्त अति विशिष्ट और गणमान्य, माने-जाने वाले समाज सेवियों का ध्यान इस ओर खींचा। उन्होंने राजा सरमोती चन्द्र सी. आई, ई, भारत रत्न स्व0 भगवान दास, सीताराम शाह, स्व0 मौलवी मकबूल आलम, स्व0 रायबहादुर ए.सी. मुखर्जी, राष्ट्ररत्न स्व0 श्री शिव प्रसाद गुप्त, स्वर्गीय गोस्वामी रामपुरी, स्वर्गीय प्रकाश जी (पूर्व राज्यपाल) आदि को इस सेवा कार्य के महाअनुष्ठान के लिए प्रेरित किया। फलतः उनके प्रेरणा और निर्देश पर इन समस्त समाज सेवियों एवं सभ्रान्त नागरिकों की एक बैठक वाराणसी के ऐतिहासिक टाउनहाल में 1 जून 1918 को हुयी और काशी में 'काशी सेवा समिति' का गठन किया गया और काशी सेवा समिति नाम की संस्था का अभ्युदय हुआ जिसके सभापति राजा सर मोतीचन्द्र सी0आई0ई0 तथा मंत्री श्री सीताराम शाह चुने गये और पच्चीस सदस्यों की सूची में उपरोक्त सभी गणमान्य लोग भी शामिल हुए। संरक्षक काशीराज महाराज डॉ0 विभूतिनारायण सिंह (स्व0 काशी नरेश) बने। काशी में ही मालवीय जी ने नागरी प्रचारिणी सभा के सभागार में हिन्दी साहित्य सम्मेलन के प्रथम अधिवेशन का न केवल सभापतित्व किया, उद्बोधक व्याख्यान दिये बल्कि उसी सभा में खुद भी हिन्दी की आजीवन सेवा का संकल्प लेकर खुद को हिन्दी के लिए समर्पित किया। आज न्यायालयों में जो हिन्दी का प्रयोग हो रहा है, हिन्दी फल-फूल रही है, वह मालवीय जी की ही देन है। उनकी तपस्या का ही फल है।

काशी हिन्दू विश्वविद्यालय की स्थापना के साथ ही काशी तथा आस-पास के छात्रों नागरिकों में परस्पर सेवा भाव का प्रचार-प्रसार करने इसके लिए स्वयं सेवक पैदा करने और स्वयं सेवकों द्वारा जनता की सेवा विशेषकर रोगियों, बूढ़े एवं कमजोर लोगों की सेवा, दंगा-फसाद, महामारी, हैजा, प्लेग, अकाल में लोगों की सेवा, त्योहारों परक सफाई मन्दिरों में दर्शनार्थियों के सेवा, व्यवस्था अनाथ बच्चों की देख-भाल शिक्षा और सेवा के लिए काशी सेवा समिति गठित की। जो अपने उद्देश्य में निरन्तर आगे बढ़ी। भिन्न त्योहारों, नाटी इमली भरत मिलाप, नवरात्रि आदि अवसरों पर मन्दिरों में भक्तजनों की जो सेवा काशी सेवा समिति के स्वयं सेवकों ने की उससे काशीवासी भली-भाँति अवगत हैं। समिति अपने सेवा कार्य और उद्देश्यों की पूर्त्ति दिशा में पिछले तिरानबे साल यानि नौ दशकों से भी अधिक समय से अनवरत कार्यरत है। यह संस्था 'आज' अखबार और काशी विद्यापीठ से भी पुरानी है। शहर में इस बीच न जाने कितनी संस्थाएं बनी, समाप्त हुयी किन्तु काशी सेवा समिति का कार्य सक्रिय रूप से मालवीय जी के आशीर्वाद से निरन्तर चल रहा है। आज भी लोगों को संस्था की सेवाओं की सुरभि आनन्दित करती है। समिति के तत्कालीन नायक स्व0 शशिनाथ पाण्डेय, जिनसे पुलिस ने अपनी कहासुनी के लिए माफी माँगा था, वे बरबस लोगों को याद आते हैं।

समिति के स्वयंसेवक शिवरात्रि आदि पर्व पर स्ट्रेचर फर्स्ट एड बाक्स आदि उपकरणों से सुसज्जित होकर सेवाकार्य करते थे, मौके पर प्राथमिक उपचार भी आवश्यकतानुसार करते थे। देश के स्वतंत्र होने के बाद देश में शरणार्थी समस्या खड़ी होने पर समिति ने अहं भूमिका निभाई। राजघाट स्टेशन पर समिति, जनसहयोग से शरणार्थी शिविर लगाकर कई मास तक उनके खाने, पीने, पहनने और दवा की सुचारू रूप से व्यवस्था करती रही।

* अध्यक्ष, काशी सेवा समिति, वाराणसी। सम्पर्क : श्रीराम भवन, के. 54/30 बी, दारानगर, वाराणसी।

समिति नाटी इमली भरत मिलाप जो लाखों मेलों में एक है, जहाँ भरत मिलाप के समय लाखों की भीड़ होती है, उसमें पौसरा चलाकर जनता को पानी पिलाने का कार्य करती रही है, जो इस वर्ष भी चला। एक बार तो एक प्रमुख अधिकारी ने पौसरा बंद करने के लिए कहा। प्रधान नायक स्व0 श्री कृष्ण मेहरोत्रा, नायक छक्कनलाल मुनीब की भी बात नहीं मानी, खिन्न होकर नायक ने सेवा कार्य बन्द करने का आदेश और स्वयं सेवकों को प्रधान कार्यालय बुला लिया। परम्परानुसार भरतमिलाप के उक्त अवसर पर महाराज काशी नरेश आये जब उन्हें घटना की जानकारी मिली तो वे दुःखी हुए और बिना सेवा समिति के आगवानी के लीला में सम्मिलित होने से मना कर दिया, फिर वहाँ पुलिस अधिकारी अन्य अफसरों के साथ प्रधान कार्यालय गये और प्रधान नायक से अपनी नौकरी, बाल बच्चों की दुहाई देकर खेद प्रकट किया, तब समिति के पदाधिकारी, स्वयं सेवक आये और लीला सम्पन्न हुई।

काशी सेवा समिति के स्वयं सेवकों ने महाकुम्भ में भी अपनी सेवा कार्य से ख्याति अर्जित की। एक बार वहाँ दुर्घटना होने पर काशी सेवा समिति ने लावारिस लाशों, उनके सामानों की सुरक्षा, शवों की पहचान और उनका दाह क्रिया आदि सम्पन्न कराने में एक सप्ताह तक लगकर सेवा कार्य किया था, जिसकी सराहना स्वयं तत्कालीन प्रधानमंत्री पं0 जवाहर लाल नेहरू ने प्रयाग आकर निरीक्षण करने के उपरांत किया और तत्कालीन नायक को पुरस्कृत किया। यह कुछ एक प्रमुख दृष्टान्त है, समिति के सराहनीय सेवाओं के। समिति ने न जाने कितने प्रशंसनीय सेवा कार्य किये हैं। आज भी समिति में 27 बच्चे जो समाज में अनाथ कहे जाते हैं, अपने समिति के घर में, अपने प्रेमांगन में, साथ-साथ रहते हैं, खाते हैं, पढ़ते हैं, सोते हैं, अपने घर जैसा वातावरण में उनके रहने, खाने-पीने पढ़ने-लिखने चिकित्सा कपड़े, ऊनी कपड़े ओढ़ने, बिछाने यहां तक कि कम्प्यूटर शिक्षा सबका व्यय भार समिति उठाती है। जन सहयोग से समिति के पास अपना कम्प्यूटर कक्ष है और सिखाने वाले शिक्षक भी। समिति का अपना चिकित्सालय, यादव सेवा सदन-चिकित्सा समिति के नाम से ईश्वरगंगी स्थित परिसर पर है। जहाँ निःशुल्क चिकित्सा एवं दवा वितरण का कार्य होता है। अतिवृद्ध जनों की सेवा की भी योजना है।

काशी सेवा समिति की प्रबंध समिति के नये कलेवर से सुसज्जित कर सेवा समिति सभागार में संस्था का बीज जिन महात्माओं के मन में अंकुरित हुआ ऐसे महात्माओं, राष्ट्र की महान विभूति महामना पं0 मदन मोहन मालवीय, संस्थापकों और अस्थायी समिति के सदस्यों, भारतरत्न स्व0 भगवान दास जी, राष्ट्र रत्न श्री शिवप्रसाद गुप्त जी तथा समिति के अध्यक्ष पद को सुशोभित करने वाले राष्ट्र नायक माननीय श्री प्रकाश जी, पं0 कमलापति त्रिपाठी, पं0 कमलाकर चौबे, श्रीगोविन्द दास कोठीवाल, श्री कुंजबिहारी गुप्ता (कुंजू बाहू) एवं श्री शंकर लाल मेहरोत्रा के भव्यचित्रों का अनावरण मुख्य अतिथि वाराणसी मण्डल के लोकप्रिय आयुक्त श्री सी. एन. दुबे द्वारा सम्मान कराया है। समिति की गतिविधियों, सेवाकार्यों को प्रकाशित करने वाली समिति की पत्रिका 'सेवा दर्पण' का भी नियमित प्रतिवर्ष प्रकाशन हो रहा है। पेयजल सबको सुलभ हो इसके लिए जलघार केन्द्र भी स्थापित है। समाज सेवा में बिना किसी प्रतिफल की आकांक्षा के खुलेपन से निःस्वार्थ सेवा करने वाले अनेक विशिष्ट समाजसेवियों आदि का सम्मान अंगवस्त्रम् प्रतीक चिन्ह देकर किया जा चुका है। संवासी बालकों की पढ़ाई का भी विशेष प्रबंध किया गया है।

वर्तमान भौतिकवादी और कम्प्यूटर के युग में समाज सेवा का यह भाव जो पहले था, कम दिखलायी देता है। जीवन बहुत तेज (फास्ट) हो गया है, लोग अधिक से अधिक धन कमाने और घर भरने तक सोचने लगे हैं। पहले जो धन समाज की सेवा में लगते थे, जो धन से सक्षम नहीं थे, वह समय और श्रम से सेवा करते थे। आपसी स्नेह और संगठन से समाज आगे बढ़ता था। पहले जो सौहार्द था अब उसमें कुछ गिरावट आई है और इसी स्वार्थवृत्ति के चलते समिति को कई झटके भी झेलने पड़े हैं, किन्तु सबको झेलते, हँसते-खेलते समिति आगे बढ़ रही है।

काशी के नागरिकों जिनकी सेवा के लिए महामना मालवीय जी ने यह समिति गठित कराई उनका दायित्व है, और समिति के पदाधिकारियों की उनसे बार-बार अपील है कि वे अपने जीवन का कुछ पल दीन-हीनों की सेवा को दें। ऐसे स्वैच्छिक समाज सेवियों जो पद के मोह की चाह से मुक्त हो और निःस्वार्थ भाव से जिनके मन में कुछ करने की इच्छा हो समिति से संपर्क करें और अपना सहयोग देकर उन कार्यक्रमों को जिनकी छवि काशी सेवा समिति ने जनमानस पर छोड़ी है, उसे फिर यथावत संचालित करने और हर आपदा विपदा की मारी, जनता की सेवा करने के लिए सुलभ रहने सुनिश्चित करने में सहयोग दें। समाजसेवी व जनता को अगर ऐसे बालक मिलें जो किशोर हों जिनका कोई आश्रय न हो, उनके रहने-खाने-पीने, पढ़ने-लिखने की व्यवस्था न हो उन्हें समिति में भेजें ताकि उनके मन का अभाव दूर हो। उनके मन में क्षमता, दक्षता के साथ नयी आशा, विश्वास का सृजन है। समिति उनका सारा खर्च उनके 18 साल की उम्र होने तक स्वयं उठायेगी, योग्य नागरिक बनायेगी। समिति काशी की है और काशी के लिए है। काशी सेवा समिति के लिए है क्योंकि सेवा ही तो परमधर्म है। सभी पूजा पद्धति के मानने वाले, उनके सभी ग्रन्थ सेवा को प्रमुख मानते हैं। 'परहित सरिस धरम नहि भाई' कहकर गोस्वामी तुलसीदास ने भी इसे सराहा। वेद व्यास ने भी अठारहों पुराण का निचोड़ 'परोपकाराय पुण्य' बताया और कहा ''सेवा धर्मो परम् गहनो योगिनोऽपिगम्य'' अनेकानेक साधु सन्तों ने पूजा से बढ़कर सेवा को माना है और कहा कि ''वर्षों की इबादत से अच्छा है लमहे भर इन्सान की खिदमत'' वास्तव में सेवा हि परमोधर्मः (सेवा ही परम धर्म है) परम धर्म का पालन करने वाला ही तो परम पद पाता है। राम की सेवा कर हनुमान हनुमान हो गये, राष्ट्र की, राष्ट्र के जन-जन की, पीड़ित इन्सान पीड़ित मानवता की सेवा कर महामना मालवीय महान् बन गये। 150वीं जयन्ती पर काशी सेवा समिति परिवार का महामना मालवीय जी के चरणों में कोटि-कोटि प्रणाम।

◆

महामना – कुछ झलकियाँ

प्रो0 गिरीशचन्द्र चौधरी *

महामना का स्वभाव विश्वास का था। श्रद्धा एवं विश्वास उनके जीवन की नाव थी। इसी के सहारे विश्वविद्यालय की नैया खेते थे। एक बार विश्वविद्यालय समिति (प्रारम्भ की) की बैठक में विचार हो रहा था कि ब्रिटिश सरकार स्थापना हेतु चार्टर नहीं दे रही है। बिना चार्टर के विश्वविद्यालय कैसे खुलेगा। लाला लाजपतराय अपने गरमदल स्वभाव से बोले-चार्टर और नो चार्टर (यूनिवर्सिटी बिल कम चार्टर मिले या नहीं मिले विश्वविद्यालय बनेगा)। महामना ने शांत भाव से कहा-नो। चार्टर एण्ड चार्टर यूनिवर्सिटी विल कम (चार्टर भी मिलेगा और विश्वविद्यालय भी आयेगा)। ऐसी थी उनकी धैर्यचारण प्रकृति। इसका कारण था भगवान में अटूट आस्था।

* * *

महामना की ईश्वर परायण प्रकृति के दो प्रमाण काफी हैं। उनके अनन्य भक्त सेठ घनश्याम दास बिरला ने पूछा—बाबू हमारे हिन्दू धर्मग्रन्थ अनेक हैं, किसको पढ़ूँ। उत्तर दिया-श्रीमद्भागवत। फिर प्रश्न हुआ—देवता भी कोटि-कोटि हैं किसको मानूँ? उत्तर मिला-भगवान श्री कृष्ण और उनका चरित्र ही पठनीय है। स्वयं भागवत के दशम स्कंध के अध्याय 5 में महामना शब्द कृष्ण के पालक पिता नन्द के लिए कहा गया जिन्हें असंख्य गोपालक एवं प्रजावत्सल माना जाता था। यही संज्ञा महामना को दी गयी थी।

* * *

महामना मनुष्य के गुणों का आँकलन कर प्रभावित होते थे न कि डिग्री के कागज से। विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष का मसला एक पी0एच0डी0 डिग्रीधारी एवं बिना पी0एच0डी0 के बीच अटका था। कहा गया कि फला उम्मीदवार पी0एच0डी0 है। महामना ने चट कहा कि दूसरा पी0एच0डी0 का सिरजनहार है। कौन बड़ा होता है, जीव या उसका सिरजनहार?

* * *

महामना शारीरिक बलवर्द्धन हेतु सदा विद्यार्थियों को प्रेरित करते। एकबार उन्होंने तत्कालीन भारत प्रसिद्ध गामा पहलवान को विश्वविद्यालय में छात्रों को उपदेशित करने हेतु बुलाया। गामा की प्रशंसा में उनके बल से परास्त करने की क्षमता की बात कही गयी। तुरन्त गामा ने उठकर कहा कि मैं नहीं, पंडितजी (मालवीय जी) मुझसे अधिक बलवान हैं। सभा में कौतूहल छा गया कि क्या मतलब? गामा ने स्पष्ट करते हुए कहा कि—मैं तो मनुष्यों को अपनी ताकत से गिराता हूँ, पण्डितजी तो उठाते हैं। यह रहस्योद्घाटन करते हुए गामा महामना के चरणों पर बैठ गये।

* * *

महामना की शान्त मुद्रा, उनका धवल परिधान उनके उज्ज्वल चरित्र का द्योतक था। कांग्रेस अधिवेशन में गरमदल और नरमदल के पोषकों का चुनाव हो रहा था। महामना से पूछा गया कि आप किस दल में? महामना ने तुरन्त जेबसे तुलसीदल निकालकर कहा कि मैं इस दल में हूँ। पवित्रता एवं पोषण का स्वभाव जो था, वह प्रकट हुआ।

* * *

महामना विश्वविद्यालय की स्थापना के पश्चात् सदा इसके उन्नति का आह्वान करते थे। अपने एकादशी प्रवचन में सदा कहते-विद्यार्थियों मैं एक करोड़ रुपये लाया तो विश्वविद्यालय खड़ा हुआ, अब तुम पर छोड़ता हूँ कि एक करोड़ लाकर इसे दूना कर दो।

* * *

महामना ईश्वर को सदा स्मरण करते और उनके प्रति श्रद्धाभाव रखते, परन्तु ईश्वरतुल्य आत्माओं को भी वही श्रद्धा से देखते। पिताजी से बराबर कहते—कुमुद! मैंने भारतेन्दु को देखा और आशीर्वाद पाया है, मैं उनकी छवि सदा सजोके रखता हूँ। उनका बैठने का स्थान तुम्हारे भारतेन्दु भवन में सुरक्षित है कि नहीं? यह कहते-कहते वे भावविभोर हो जाते, उन्होंने बतलाया कि वे अपने पिता के साथ आते थे, जो भारतेन्दु जी से मिलने आते थे।

* * *

मालवीय जी का हृदय सदा न्याप्रियता निःस्वार्थ एवं करुणा से परिपूर्ण रहता। विश्वविद्यालय की फीस माफी कमेटी एवं उत्तीर्ण करने की समस्याओं के निराकरण हेतु कमेटी में स्वयं बैठते। एक बार नहीं बैठे। विश्वविद्यालय में तहलका मच गया कि महामना नहीं बैठेंगे, पता लगा कि इस बार उनके एक निकट के रिश्तेदार का मामला सुलझाना है। सभी ने कहा कि इसीलिए पंडित जी ने कमेटी में बैठने से इन्कार किया, अब रहस्य खुला।

◆

* (अवकाशप्राप्त, प्रोफेसर) भूगर्भ विभाग, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

मालवीय जी को कमलीबाबा का आयुष्य दान

(संस्मरण)

डॉ0 सुधाकर मालवीय

एक बार 1930 के आस-पास मालवीय जी महाराज के कमर में दर्द उठा। अनेक डॉक्टर एवं वैद्य अपनी अपनी दवा देते रहें किन्तु किसी भी प्रकार उनके कमर का दर्द नहीं ठीक हो सका। उठने-बैठने में अशक्त-अत्यन्त पीड़ित देखकर महामना मालवीय जी का रसोइया उनसे यह बोल पड़ा कि कमली बाबा ही आपके कमर का दर्द ठीक कर सकते हैं। उन्होंने पूछा—यह कमली बाबा कौन है? रसोइया ने बताया कि खोजवाँ बाजार के पास खुले आकाश में गायों के बीच एक कम्बल लिए हुए वे अपनी साधना में रात दिन व्यस्त रहते हैं।

खोजवाँ में स्थान का पता लगाकर अन्य कई वैद्यों एवं पण्डितों को साथ लेकर मालवीय जी कम्बली बाबा के आश्रम खुले आकाश में बारहो महीने गायों के बीच एक कम्बल लेकर रहने वालों के द्वार पहुंच गए। बाबा को एक ने खबर दी कि आपसे मालवीय जी मिलना चाहते हैं। उन्होंने कहा कि मेरे पास क्या मालवीय जी महाराज लेने आए हैं? फिर भी उन्हें बुला लाओ। मालवीय जी ने बाबा को दण्डवत् प्रणाम किया और कमर की अथाह पीड़ा को समाप्त करने हेतु आशीर्वाद माँगा।

कमली बाबा ने कहा मेरा तो जीवन पृथ्वी पर हाड़ ही हुआ है, लेकिन आपको अभी राष्ट्र के लिए बहुत कार्य करने है। मैं आपका कमर दर्द तो ठीक कर दूँगा किन्तु मुझे आप एक वचन दो कि मेरे महाप्रयाण के समय जब मैं आपको बुलाऊँ तो आप स्वयं आकर स्वयं अपने हाथों से मेरी समाधि बनाओगे। मालवीय जी का हाथ पकड़ कर बाबा ने उनसे वचन लिया और ज्योंही मालवीय जी ने वचन दिया कि एकाएक कमर की अथाह पीड़ा से स्वयं बाबा कराहने लगे और महामना का दर्द तो उसी समय ठीक हो गया।

दो महीने बाद बाबा ने मालवीय जी को बुलाने हेतु किसी को भेजा। जब मालवीय जी आश्रम पर कमली बाबा के समक्ष आए तो बाबा ने कहा—वचन के पक्के हो, अपना हाथ मुझे दो। मालवीय जी का हाथ लेकर बाबा ने अपना गाल उसी पर रख दिया और दिव्य लोक की यात्रा के लिए उसी क्षण महाप्रयाण कर गए।

मालवीय जी ने अपने हाथों ईटों से उनकी समाधि का निर्माण किया और अत्यन्त श्रद्धा से तीन दिनों तक सन्यस्त शव का अन्तिम संस्कार किया। यह बात मुझे उनके चौथे पीढ़ी में उत्पन्न ब्राह्मण बटु ने अत्यन्त गर्व से कहा कि मेरे नाना कमली बाबा ने मालवीय जी के दर्द को ठीक किया था।

इस राष्ट्र के कल्याण के लिए समर्पित 'कमली बाबा' एवं महामना मालवीय जी के आत्मा के समक्ष श्रद्धावनत् महामना का स्वभाव विश्वास का था। श्रद्धा एवं विश्वास उनके जीवन की नाव थी। इसी के सहारे विश्वविद्यालय की नैया खेते थे। एक बार विश्वविद्यालय समिति (प्रारम्भ की) की बैठक में विचार हो रहा था कि ब्रिटिश सरकार स्थापना हेतु चार्टर नहीं दे रही है। बिना चार्टर के विश्वविद्यालय कैसे खुलेगा। लाला लाजपतराय अपने गरमदल स्वभाव से बोले-चार्टर और नो चार्टर (यूनिवर्सिटी बिल कम चार्टर मिले या नहीं मिले विश्वविद्यालय बनेगा)। महामना ने शाँत भाव से कहा-नो। चार्टर एण्ड चार्टर यूनिवर्सिटी विल कम (चार्टर भी मिलेगा और विश्वविद्यालय भी आयेगा)। ऐसी थी उनकी धैर्यचारण प्रकृति। इसका कारण था भगवान में अटूट आस्था।

महामना की ईश्वर परायण प्रकृति के दो प्रमाण काफी हैं। उनके अनन्य भक्त सेठ घनश्याम दास बिरला ने पूछा—बाबू हमारे हिन्दू धर्मग्रन्थ अनेक हैं, किसको पढ़ूँ। उत्तर दिया-श्रीमद्भागवत। फिर प्रश्न हुआ देवता भी कोटि-कोटि हैं किसको मानूँ? उत्तर मिला-भगवान श्री कृष्ण और उनका चरित्र ही पठनीय है। स्वयं भागवत के दशम स्कंध के अध्याय 5 में महामना शब्द कृष्ण के पालक पिता नन्द के लिए कहा गया जिन्हें असंख्य गोपालक एवं प्रजावत्सल माना जाता था। यही संज्ञा महामना को दी गयी थी।

महामना मनुष्य के गुणों का आँकलन कर प्रभावित होते थे न कि डिग्री के कागज से। विश्वविद्यालय में हिन्दी विभाग के अध्यक्ष का मसला एक पी0एच0डी0 डिग्रीधारी एवं बिना पी0एच0डी0 के बीच अटका था। कहा गया कि फला उम्मीदवार पी0एच0डी0 है। महामना ने चट कहा कि दूसरा पी0एच0डी0 का सिरजनहार है। कौन बड़ा होता है, जीव या उसका सिरजनहार?

महामना शारीरिक बलवर्द्धन हेतु सदा विद्यार्थियों को प्रेरित करते। एक बार उन्होंने तत्कालीन भारत प्रसिद्ध गामा पहलवान को विश्वविद्यालय में छात्रों को उपदेशित करने हेतु बुलाया। गामा की प्रशंसा में उनके बल से परास्त करने की क्षमता की बात कही गयी। तुरन्त गामा ने उठकर कहा कि मैं नहीं, पंडितजी (मालवीय जी) मुझसे अधिक बलवान हैं। सभा में कौतूहल छा गया कि क्या मतलब? गामा ने स्पष्ट करते हुए कहा कि-मैं तो मनुष्यों को अपनी ताकत से गिराता हूँ पण्डित जी तो उठाते हैं। यह रहस्योद्घाटन करते हुए गामा महामना के चरणों पर बैठ गये।

◆

* संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

'मालवीय' नाम से ही कृतज्ञता प्रकाश

(संस्मरण)

डॉ0 पंकज मालवीय

मैंने रूसी भाषा विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय से अपना शोध कार्य 1992 में पूर्ण किया है। मैं, मोनारका, दिल्ली के एक बुक बाईण्डर श्रीमान् सिंह महोदय के पास अपना शोध प्रबन्ध बाइण्डिंग हेतु ले गया। वह मेरे बहुत कहने पर भी नब्बे रुपये प्रति थिसिस से कम पारिश्रमिक लेने को नहीं तैयार हुए। फिर मैंने रात्रि में उन्हें 5 थिसिस बाइण्ड हेतु देकर यह पूछा कि कल मैं आपसे कब ले लूँ। उन्होंने दूसरे दिन नौ बजे सुबह लेने को कहा। मैंने सुबह नौ बजे दुकान खुलने पर जब उन्हें 5 थिसिस के लिए 450.00 रुपये दिये तो उन्होंने अत्यन्त श्रद्धा पूर्वक हाथ जोड़कर कहा कि इस थिसिस पर जो 'मालवीय' शब्द लिखा है इसलिए मैं एक पैसे भी पारिश्रमिक नहीं ले सकता। मैंने जब बहुत आग्रह किया तो उन्होंने बताया कि मैं वहाँ का पढ़ा स्नातक हूँ। मैं जब भी वाराणसी अपने घर जाता हूँ तो पहले वाराणसी स्टेशन से सीधे - गेट पर जाता हूँ और वहाँ मालवीय जी महाराज को नमन कर तब घर जाता हूँ। आप 'मालवीय' हैं मैं किसी भी प्रकार आपसे इसका पारिश्रमिक नहीं ले सकता। मैं भी अत्यन्त आश्चर्य में था कि कल तक जो 90 रुपये से एक पैसा कम लेने को नहीं तैयार थे। आज इन्हें क्या हो गया कि ये एक पैसा भी मुझसे नहीं लेना चाहते। आज के इस भौतिकतावादी युग में इतनी महान् श्रद्धा से युक्त भला कौन हो सकता है? कहाँ मैं और कहाँ 'महामना मालवीय जी किन्तु मुझे ऐसा लगा कि वह सिंह साहब मेरे में मालवीय जी की आत्मा को देख रहे थे।

◆

* प्रोफेसर एवं अध्यक्ष, रूसी भाषा विभाग, पंजाब विश्वविद्यालय, चण्डीगढ़।

संस्कृतप्रचारे राष्ट्रविभूतीनां महामनसामवदानम्

प्रो. उपेन्द्रपाण्डेयः *

राष्ट्रविभूतीनां महामनसां पण्डितमदनमोहनमालवीयमहोदयानाम् अक्षयकीर्ति-स्तम्भः काशीहिन्दूविश्वविद्यालयोऽद्यापि काश्यां पवित्रे भागीरथीतटे भगवतो विश्वनाथस्य प्रसादात् स्वविलक्षणशिक्षापद्धतिवैशिष्ट्येन सम्पूर्णं जगदालोकयन्नहर्निशं लोकमङ्गलकामनया जनेभ्यो ज्ञानराशिं वितरन् विद्योततेतराम्। विश्वविद्यालयस्य संस्थापनायामासीत् तेषां मनसि किमप्यनिर्वचनीयं दिव्यमुद्देश्यम्, यद्धि विश्वविद्यालयस्य मध्ये संस्थापिते श्रीविश्वनाथमन्दिरे दक्षिणद्वारे शिलापट्टिकायामुट्टङ्कितं राराजते-

प्रसादाद् विश्वनाथस्य काश्यां भागीरथीतटे।
विश्वविद्यालयः श्रेष्ठो हिन्दूनां मानवर्धनः॥
हिन्दूराज्याधिपतिभिर्धनिकैर्धार्मिकैस्तथा।
मिलित्वा स्थापितः सद्भिर्विद्याधर्मविवृद्धये॥
यत्र वेदाः सवेदाङ्गा धर्मशास्त्रञ्च पावनम्।
इतिहासं पुराणं च मीमांसा न्यायविस्तरः॥
सांख्ययोगौ च वेदान्त आयुर्वेदः सुखावहः।
गान्धर्ववेदो मधुरो धनुर्वेदश्च नूतनः॥
आङ्ग्लं दण्डविधानं च दायभागादिसंयुतम्।
पाश्चात्त्या विविधा विद्यास्तथा लोकहिताः कलाः॥
पाठ्यन्ते विधिवत्प्रेम्णा विज्ञानानि बहूनि च।
साहाय्यार्थं च छात्राणां दीयन्ते वृत्तयस्तथा॥
सर्वप्रान्तसमायाताश्छात्रा विद्याभिलाषिणः।
वसन्ति सुखिनो यत्र पुरा गुरुकुले यथा॥
नित्यं निषेव्यते यत्र व्यायामः शक्तिवर्धनः।
व्याख्यानैश्च कथाभिश्च धर्मो यत्रोपदिश्यते॥
तस्मिन् विद्यालये स्फीते विद्यार्थिजनसङ्कुले।
स्थाप्यो देवालयो दिव्यो लोकमङ्गलकाम्यया॥
दर्शनं यत्र सम्प्राप्य विश्वनाथस्य मानवाः।
श्रुत्वा पुण्यकथां धर्मे श्रद्धां भक्तिमवाप्नुयुः॥
विश्वविद्यालयाध्यक्षैरित्थं कृतविनिश्चयैः।
श्रीविश्वनाथप्रीत्यर्थं श्रद्धया प्रार्थितो यतिः॥

हिन्दूनां मानवर्धनोऽयं श्रेष्ठो विश्वविद्यालयो न केवलं प्राच्य-पाश्चात्त्योभयविधानां समस्तानां विद्यानां विशेषवर्धनाय संस्थापितो वर्तते, अपि तु धर्मसंवर्धनाय अप्येषः सर्वथा जागरूकस्तिष्ठति। एतदेवास्यान्येभ्यो विश्वविद्यालयेभ्योऽस्ति महद्वैशिष्ट्यम्। 'आचारः प्रथमो धर्मः, आचारवान् पुरुषो वेद, आचारहीनं न पुनन्ति वेदाः, ज्ञानं भारः क्रियां विना, शास्त्राण्यधीत्यापि भवन्ति मूर्खाः, यस्तु क्रियावान् पुरुषः स विद्वान्' इत्यादीनां संस्कृतसूक्तीनां तात्पर्यमवगच्छन्ति स्म ते। अत एव बाल्यकालेऽवाप्तसंस्कृत-शिक्षाप्रभावादेव महामनसां मनः शिवसङ्कल्परूपं पूतञ्च सञ्जातम्। तेषामत्यन्तं श्रद्धास्पदं सन्मार्गप्रदर्शकं सत्प्रेरकञ्च 'श्रीमद्भगवद्गीता, भागवतं' चेति ग्रन्थद्वयमासीत्। एतयोर्ग्रन्थरत्नयोः सम्यगनुशीलनेन तैः स्वकीयं जीवनं धन्यं दिव्यञ्च कृतमासीत्।

सुविशाले सुराष्ट्रे भारते वर्षे नैतादृशं शिक्षास्थलमासीदेतत्पूर्वं, यत्र विद्याधर्मयोर्विशेषेण संवर्धनार्थं संरक्षणार्थञ्चानेके पाठ्यक्रमाः साङ्गोपाङ्गरूपेण सन्निविष्टाः स्युः। पूज्यमालवीयानां धवलचरित्रस्य व्यापकस्वरूपस्य च गौरवगरिम्णा देदीप्यमानस्य विश्वविद्यालयस्य प्रतिकणं तेषामप्रतिमत्यागस्य, राष्ट्रप्रेम्णः तथा मानवीयसंवेदनायाः कामप्यपूर्वामम्लानां छविमद्यापि नितरां समुपस्थापयति, यां निर्निमेषेण चक्षुषा समवलोकनेऽप्यतृप्तिः स्थिरैव तिष्ठति। शिक्षाकेन्द्रममुमवलोक्य सज्जना भावविह्वला भवन्ति। राष्ट्रनिर्माण-प्रक्रियायां शिक्षाया महत्त्वं विज्ञाय एतादृशी विशालाद्वितीया तपःपूता च सत्कल्पना मालवीयसदृशानां युगपुरुषाणां महामनीषिणां महामानसे एव सम्भवासीत्। परतन्त्रे भारते समुत्पन्नेन मालवीयेन देशस्य स्वतन्त्रतासङ्गरे बाल्यकालादेव भागो गृहीतः, एवाञ्चास्मै नेतृत्वं प्रदत्तम्। ऋषिकल्पस्य महामनसश्चरित्रवैलक्षण्येन प्रभावितं ब्रिटिशसाम्राज्यमपि तेभ्यः सम्मानं प्रयच्छति स्म। तैर्न केवलं स्वमधुरैर्वचोभिः, अपि तु स्वकीयेन सच्चरित्रेण समग्रान् जनान् मार्गं निर्दिशन्तः सर्वदैव लोकहितकामनायै सदुपदिष्टम्। अद्यापि तत्स्वरूपभूतं विश्वविद्यालयमवलोक्य सम्पूर्णं विश्वमाश्चर्यचकितं भवति। आसीच्च तेषां सत्सङ्कल्पो, यद् भारतस्यातीतं निजवर्तमानस्य जीवितांशेन सह भविष्यनिर्माणस्य निर्देशकं स्यात्। तज्ज्ञानस्य कर्मणश्च संश्लिष्टिस्तत्स्वरूपमलङ्करोति। तैर्व्यक्तः स्वमनोरथः सर्वेषां भारतीयानां कृतेऽनुकरणीयो वर्तते-

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्गं नापुनर्भवम्।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम्॥

तज्जीवनदर्शनस्येदमेव सारसर्वस्वं विद्यते। ऋषि-परम्परायामाधुनिकभारतस्य महामना याज्ञवल्क्यसम आसीत्, येन मन्त्रद्रष्टृरूपेण भविष्यकालः सम्यक् साक्षात्कृतः। धर्मविषयिणी अवधारणा तेषामत्यन्तमेव औदार्यपूर्णा व्यापिका चासीत्। देशकालाद्यनुसारेण तैर्धर्मस्य व्याख्या विहिता। ते वदन्ति स्म- यन्मम गृहे ब्राह्मणधर्मोऽस्ति, परिवारे सनातनधर्मो वर्तते, समाजे हिन्दूधर्मो विद्यते, देशे स्वराज्यधर्मोऽस्ति, तथा च विश्वस्मिन् जगति मानवधर्मो वर्तते। **महामनसां विद्यार्थिभ्यः सामान्यजनेभ्यश्चैष सदुपदेश आसीत्-**

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव॥

विपरीतायामपि परिस्थितौ तैर्गीतायाः सात्त्विक-कर्त्तुरादर्शं पुरो निधाय कार्याणि सम्पादयन्ति स्म। सात्त्विक-कर्त्तुरियं भावना मानवसमाजाय गीताया महत्त्वपूर्णाद्वितीया च विद्यते-

* संस्कृत विभाग, कला संकाय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-5

मुक्तसङ्गोऽनहंवादी धृत्युत्साहसमन्वितः।
सिद्ध्यसिद्ध्योर्निर्विकारः कर्त्ता सात्त्विक उच्यते॥
(गीता 18/26)

येन केन प्रकारेणापि अलोकसामान्यप्रतिभासम्पन्नानां महामनसां यत्किञ्चिदपि चरित्रचिन्तनं मदीयां कलुषितां वाचामपि पवित्रयिष्यतीति धियाहमपि महाकवेः श्रीहर्षस्येमां स्पृहां प्रकटयामि-

पवित्रमातनुते जगद् युगे स्मृता रसक्षालनयेव यत् कथा।
कथं न सा मद्गिरमाविलामपि स्वसेविनीमेव पवित्रयिष्यति॥
(नैषधचरितम्, 1/3)

साम्प्रतमहमतीव संक्षेपेण महामनसा मालवीयेन संस्कृतप्रचाराय कृतावदानस्य चर्चां प्रस्तौमि। 'भारतस्य प्रतिष्ठे द्वे संस्कृतं संस्कृतिस्तथा' इति सूक्तेः रहस्यं ते जानन्ति स्म। संस्कृतिं संस्कृतमन्तरा च कोऽपि देशः परमं वैभवं न प्राप्स्यति। एतत्सर्वं विचार्यैव महामनसा संस्कृताध्यापनस्य कृते महती व्यवस्था विहिता।

1916 खीस्टाब्दे संस्थापितेऽस्मिन् विश्वविख्याते काशीहिन्दू-विश्वविद्यालये **'प्राञ्चं धर्मं प्रतिफलयितुम्'** इति सङ्कल्पानुसारं विविधपाश्चात्त्यविद्यासङ्कायानामुपक्रमात्पूर्वमेवैकः प्राच्यविद्या-धर्मविज्ञानसङ्कायः परमपूज्येन संस्थापकेन महामनसा मालवीयमहोदयेन 1918 वर्षे संस्थापितः, योऽयं सङ्कायोऽधुना संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसङ्कायनाम्ना ख्यातो भारतदेशस्थितेषु सर्वेष्वपि विश्वविद्यालयेष्वप्रतिमो वर्तते। यतो ह्यन्येषु विश्वविद्यालयेषु संस्कृतं स्नातक-स्नातकोत्तरकक्षायां यथा तथांशिकरूपेण पाठ्यते, साङ्गोपाङ्गरूपेणास्याध्यापनन्तु संस्कृतविश्वविद्यालयेष्वेव भवति, परञ्चास्मिन् सङ्काये प्राच्यपाश्चात्त्योभयविधपद्धत्या संस्कृतभाषामाध्यमेनाद्यापि संस्कृतस्य सर्वे विषयाः साङ्गोपाङ्गमध्याप्यन्ते। आर्षपरम्पराया अनन्योपासकानां महामनसां संस्कृतसङ्कायं प्रति स्वाभाविकं विशिष्टं प्रेम आसीत्। अत एव त एतत्सङ्कायस्य संरक्षणे संवर्धने च सर्वथा जागरूका आसन्।

'तस्मात् साङ्गमधीत्यैव ब्रह्मलोके महीयते' इति शिक्षोक्त्या मन्त्रब्राह्मणात्मकवेदस्य तत्षडङ्गानां शिक्षा-कल्प-छन्दो-निरुक्त-ज्योतिष-व्याकरणशास्त्राणामेवञ्च साहित्यविद्यायाः, भारतीयानां द्वादशानामास्तिक-नास्तिकदर्शनानां, धर्मशास्त्रस्य, पूर्वमीमांसोत्तरमीमांसायाः, पौरोहित्य-कर्मकाण्डस्य, पञ्चाङ्गनिर्माणस्य चाध्यापनमत्र लब्धकीर्तिभिर्विद्वद्भिः क्रियते। वर्तमानकाले सङ्कायेऽस्मिन् वेद-व्याकरण-साहित्य-ज्योतिष-वैदिकदर्शन-जैनबौद्धदर्शन-धर्मशास्त्रमीमांसा-धर्मागमनामकाः प्राधान्येनाष्टौ विभागाः समुल्लसन्ति।

सङ्कायेऽत्र संस्कृतच्छात्राः स्वविषये स्नातक-स्नातकोत्तरपरीक्षां समुत्तीर्य क्रमशः 'शास्त्री' 'आचार्य' इत्युपाधिं तथा शोधकार्यं विधाय 'विद्यावारिधि' (पी-एच.डी.), 'वाचस्पति' (डी.लिट्.) इति पदवीं च प्राप्नुवन्ति। सङ्काये छात्राणां संख्या प्रवेशाय विद्वत्परिषदा पञ्चशतं परिमितानुमता वर्तते। एवञ्च सङ्काये संस्कृताध्ययनार्थमागतानामध्ययनशीलानां मेधाविच्छात्राणां प्रोत्साहनार्थं विपुलं धनं छात्रवृत्तिरूपेण दीयते। तथा च तेषां निवासार्थं सुरम्ये विश्वविद्यालयपरिसरे रुइया-संस्कृत-प्रखण्डनामके छात्रावासे निःशुल्कमुत्तमावाससौविध्यञ्च प्रदीयते। सहैव छात्राणां शारीरिक-मानसिकविकासाय व्यायामयोगक्रियासन-प्रवचनाद्याधुनिकानां विविधानां प्रतिस्पर्द्धानां क्रीडानाञ्च प्रशिक्षणाय विश्वविद्यालयस्तरीया समुचिता व्यवस्था कृता विद्यते। तदित्थं काशीहिन्दूविश्वविद्यालयीयोऽयं सङ्कायः संस्कृत-स्याध्ययनाध्यापने पुस्तकानां लेखने सम्पादने संस्कृतच्छात्राणां सर्वविध-योग्यतासंवर्धने चाद्वितीयो वर्तते देशस्थितेषु विश्वविद्यालयेषु।

संस्कृतविद्या-धर्मविज्ञानसङ्कायातिरिक्तोऽस्यैव सङ्कायस्याभिन्नाङ्गरूपेण 1893 वर्षे संस्थापितोऽतीवप्राचीनोऽनन्तरं हिन्दूविश्वविद्यालयसम्बद्धः श्रीरणवीरसंस्कृतविद्यालयः काश्यां कमच्छास्थिते रमणीये विश्वविद्यालयपरिसरे सुप्रतिष्ठितो विराजते, यतः संस्कृतशिक्षामवाप्यानेका विभूतयोऽद्यापि संस्कृतजगति देशस्यात्मनश्च गौरवं संवर्धयन्ति। अत्र प्रथमकक्षातो द्वादशकक्षा-पर्यन्तमधीयानाश्छात्राः सन्ति। तत्रापि षष्ठकक्षातोऽष्टमकक्षापर्यन्तं 'प्रथमा' तदनन्तरं 'प्रवेशिका' 'मध्यमा' कक्षा च क्रमशो वर्षद्वयं यावत् पाठ्यते। विद्यालयेऽत्र संस्कृतच्छात्रेभ्यो विविधाधुनिकविषयैः सह वेद-व्याकरण-साहित्य-ज्योतिष-दर्शनविषयाणामनुभवशीलैर्योग्यैरध्यापकैः संस्कृतशिक्षा सम्यक् प्रदीयते। विद्यालयस्य छात्राणामावासार्थमत्रैव छात्रावासोऽपि वर्तते।

हिन्दूविश्वविद्यालये संस्कृतसङ्कायस्य पार्श्वस्थिते कलासङ्कायेऽतीव-महनीयः संस्कृतविभागो राराजते, यत्राधुनिकपद्धत्यापि स्नातक-स्नातकोत्तरकक्षायां शोधकार्ये च संस्कृतस्य वेद-व्याकरण-साहित्य-दर्शनादिविषया मूर्धस्थितैरतिकुशलैर्विद्वद्भिरध्याप्यन्ते। एवमेव स्नातककक्षापर्यन्तं विश्वविद्यालयपरिसरस्थिते महिलामहाविद्यालयेऽपि स्वतन्त्ररूपेण विदुषीभिरध्यापिकाभिः संस्कृतं सम्यगध्याप्यते। तदनन्तरञ्च ताः सर्वा अपि संस्कृतविषयमाश्रित्योत्तीर्णाः स्नातकविद्यार्थिन्यः संस्कृतविभागे कलासङ्काये स्नातकोत्तरकक्षायामध्ययनार्थमागच्छन्ति। काशीहिन्दूविश्वविद्यालयसम्बद्धे सेण्ट्रलहिन्दूबालकविद्यालये सेण्ट्रलहिन्दूबालिकाविद्यालये च कुशलैः प्रशिक्षितैरध्यापकैरध्यापिकाभिश्च संस्कृतं सम्यगध्याप्यते।

हिन्दूविश्वविद्यालयसम्बद्धास्त्रयो महाविद्यालयाः सम्प्रति वाराणस्यां स्त्रीशिक्षासम्पादनार्थमत्यन्तमेव सुप्रतिष्ठिताः सन्ति, यत्र संस्कृतशिक्षा छात्राभ्यो बहुपरिश्रमेण तत्रत्यैर्विद्वभिर्विदुषीभिश्च प्रदीयते। तत्र चेतगंजस्थिते प्रथमे आर्यमहिलामहाविद्यालये, कमच्छास्थिते द्वितीये बसन्तकन्यामहाविद्यालये, राजघाटस्थिते तृतीये बसन्तमहिलामहाविद्यालये च छात्राभ्योऽन्याधुनिकविषयैः सह विशेषरूपेण संस्कृतशिक्षा स्नातककक्षायां स्नातकोत्तरकक्षायां च प्रदीयते, यया संस्कारितास्ताः स्वराष्ट्रनिर्माणे बालकान् बालिकाश्च सम्यगुद्बोधयेयुः। एवमेव वाराणस्यां नवापुरास्थिते डी.ए.वी. महाविद्यालयेऽप्यतीवप्राचीनो राजते। अत्रापि षष्ठकक्षात आरभ्य स्नातककक्षापर्यन्तं छात्रेभ्यः संस्कृतशिक्षा योग्यैरध्यापकैः प्रदीयते।

तदेवं संस्कृत-विद्यानां प्रचारार्थमनेन ऋषिकल्पेन महामनसा मालवीयमहोदयेन संस्थापितेऽस्मिन् विश्वप्रसिद्धे काशीहिन्दूविश्वविद्यालये संस्कृताध्ययनाध्यापनयोः समुचिता श्लाघनीया च व्यवस्था दरीदृश्यते। येन संस्कृतस्य प्रचाराय तेषां पूज्यानामवदानं सुतरामेव सिध्यतीति शम्।

◆

मालवीयाष्टकम्

डॉ0 चन्द्रकान्ता राय *

भाति भूतले कस्य विभूतिः
कोऽयं प्रथितयशा महनीयः।
पश्चिमप्राच्यविद्ययोर्भवनं
काश्यां केन विरचितं विपुलम्।।1।।

ग्रामे नगरे भ्रामं भ्रामं
पुष्कलविभवः केन सञ्चितः।
रचितं ज्ञानमन्दिरं भव्यं
यस्य भूतले ख्यातिरनुपमा ।।2।।

राष्ट्ररक्षणे बद्धपरिकरः
स्त्रीशिक्षासद्हेतुतत्परः।
जगति शाश्वती यस्य विभूति-
र्गो-गंगा संरक्षण-योधः ।।3।।

धृतव्रतः शुश्रूषाकरणे
स्थावर-जङ्गमरक्षणभरणे
कर्मभूमिसंचरमधुपोऽसौ ।
पुनर्भवः खलु येन प्रार्थितः ।।4।।

शुभ्रवेश उत्तममेधावी
त्यागतपःसाधननिरतोऽयम् ।
सर्वेभ्यः सुखसिद्धिदायकः
महामनास्सद्भावसंयुतः ।।5।।

भूमावस्य कर्मणो महिमा
नभस्थले च यशोध्वजेयम् ।
दिवि विबुधैर्यो सदा गीयते
मालवीय इति संज्ञोपेतः ।।6।।

तीर्थराजमहिमा जनने यत्
कर्मसाधनाकेन्द्रं काशी।
सकला भूमिर्यस्य कामिनी
सोऽयं प्रथितयशा महनीयः ।।7।।

मृदुता भाति भाषणे सततं
ऋजुता शान्तिरार्जवं वदने ।
वाक्प्रभुता सम्मोहनसुफला
मदनमोहनोऽन्वितसंज्ञोऽयम् ।।8।।

◆

* एसोसिएट प्रोफेसर, संस्कृत विभाग, आर्य महिला पी0 जी0 कालेज, वाराणसी।

राष्ट्रनिर्माणे महामनसां योगदानम्

शशिरंजन कुमार पाण्डेय *

(भारतनेतृषु परिपूर्णतया भारतीय - संस्कृतिपक्षपाती नेता महामना मालवीयः, आयुषि सर्वेभ्यो ज्येष्ठो वृद्धवशिष्टः, राजनीति-निपुणः, सनातनधर्म-महारथः, हिन्दुसंस्कृति - रक्षार्थं संस्थापित-हिन्दुविश्वविद्यालयः सत्यं महामना महात्मा च)

राष्ट्रनिर्माणस्य राष्ट्रसंवर्धनस्य च भावना भारतवर्षे वैदिककालाद् आरभ्य परिलक्ष्यते। शुक्लयजुर्वेदसंहितायाम् –

''आ ब्रह्मन्ब्राह्मणो ब्रह्मवर्चसी जायतामा राष्ट्रे राजन्यः शूर इषव्योऽतिव्याधी महारथो जायतां दोग्ध्री धेनुर्वोढानड्वानाशुः सप्तिः पुरन्धिर्योषा जिष्णू रथेष्ठाः सभेयो युवास्य यजमानस्य वीरो जायतां निकामे निकामे नः पर्जन्यो वर्षतु फलवत्यो न ओषधयः पच्यन्तां योगक्षेमो नः कल्पताम्॥'' (22/2)

इति मन्त्रे ऋषिः प्रार्थयते हे ब्रह्मन्! अस्माकं राष्ट्रे यज्ञाध्ययनशीलो ब्राह्मणः आजायताम् । क्षत्रियश्च शूरः लक्ष्यभेदी धनुर्धारी महारथी आजायताम्। किञ्च अस्माकं राष्ट्रे दोग्ध्री धेनुः अर्थाद् दुग्धदात्री गौः आजायताम्। एवमेव भारवहनसमर्थः वृषभः व्यापनशीलः शीघ्रगामी अश्वः मनोहारिणी स्त्री आजायताम् । किञ्च अस्य यजमानस्य जयनशीलः रथारोही सभाकुशलः धीरः पुत्रः आजायताम्। समये समये प्रार्थनायां सत्यां पर्जन्यः वर्षतु। अस्माकं राष्ट्रे अतिशयेन फलयुक्ताः ओषधयः सन्तु। परमात्मा अस्माकं योगक्षेमं वहतु इति। एतावता मन्त्रेऽस्मिन् राष्ट्रसंवर्धनस्य भावना परिलक्ष्यते। एवमेव अथर्ववेदेऽपि राष्टविवर्धनसुक्ते राष्ट्रविवर्धनाय एवं प्रार्थयते-

अभीऽवर्तेन मणिना येननेन्द्रोः अभिवावृधे।
तेनास्मान् ब्रह्मणस्पतेऽभि राष्ट्राय वर्धय॥1॥ इति।

अर्थात् समृद्धिसाधनत्वेन प्रसिद्धेन अभिवर्तेन मणिना धृतेन यथा इन्द्रः देवानाम् अधिपतिः अभितः अर्थात् सर्वतः प्रवृद्धोऽभूत् परमैश्वर्योपेतः त्रिलोकीपतिः बभूव तथैव हे ब्रह्मणस्पते अर्थात् वेदराशेरधिपते पूर्वमहिमोपेतेन अभिवर्तेन माणिना अस्मान् राष्ट्रस्य अर्थात् स्वराष्ट्राभिवृद्ध्यर्थम् अभिवर्धय अर्थात् समृद्धान् कुरु। त्वत्प्रसादात् समृद्धैः अस्माभिः रक्षितं राष्ट्रं शत्रुभयरहितं यथा अभिवृद्धं भवति तथा कुरु। एतावता अथर्ववेदस्यास्मिन् मन्त्रेऽपि राष्ट्रसंवर्धनस्य राष्ट्रनिर्माणस्य च भावना सम्यक् परिलक्ष्यते। महामनसः पण्डितमदनमोहनमालवीयमहोदयाः भारतीयपरम्परायाः विशेषतो वैदिक-परम्परायाः संरक्षकाः मनीषिणः आसन्। अतस्तेषां हृदि बाल्यादेव राष्ट्र-निर्माणस्य संवर्धनस्य च संस्कारः वेदेभ्य एव सम्प्राप्तः स्यादिति मन्ये।

सम्प्रति महामनसां राष्ट्रस्य निर्माणे योगदानम् इति विषये किञ्चित् विचार्यते।

महामनसां जीवनवृत्तेन तेषां व्यवहारेण विचारेण च राष्ट्रनिर्माणे तेषां कीदृशं योगदानम् आसीदिति सुस्पष्टं भवति। अतोऽत्र तदधिकृत्य विचार्यते। महामनसां जन्म एतादृशे समये जातं यदा भारतराष्ट्रं सङ्कटग्रस्तम् आसीत्। पश्चिमोत्तरदेशश्च प्राकृतिकदुर्योगेन ग्रस्तः भगवान् इन्द्रः यथा अप्रसन्नः संजातः। यमुनासतलजनद्योर्मध्ये निवसन्तो जनाः बुभुक्षया पीडिताः, पञ्चलक्षाधिकाः जनाः मृताश्च। आङ्गलजनानाम् आङ्गलभाषायाश्च प्रभावः भारतीयजनेषु तथा सञ्जातः यथा कैश्चित् शिक्षितैः भारतीयता परित्यक्ता आङ्गलानां संस्कृत्या तथा रंजिताः यथा ते भारतीयतां विस्मृतवन्तः। संस्कृतसाहित्ये दोषदर्शिभिः तैः भारतीयैरेव भारतीयतां समुन्मूलयितुं प्रयासः कृतः। तस्मिन् समये 'राजाराममोहनरायस्य' ब्रह्मसमाजः अस्तित्वमलभत। श्रीरामकृष्णेन पमहंसेन वेदान्तविद्यायाः स्वामिदयानन्दसरस्वतिमहाभागेन च वैदिकधर्मस्य प्रचाराय प्रयासः विहितः।

भारतवसुन्धरा रत्नगर्भा इत्युच्यते। तस्याः कुक्षौ महार्ट्टानि रत्नानि सन्ति। सा समये समये मानवरत्नान् समुत्पाद्य च स्वरत्नप्रसूत्वं सार्थकं करोति। तया धर्मन्यायविद्याप्रियाः बहवः पुत्राः जनिताः, यैः स्वजीवनं स्वलक्ष्यपूर्त्यर्थं यापितम्। महामना इत्युपाधिविभूषितः पं0 मनदनमोहन-मालवीयोऽपि एकं विद्याप्रियं पुरुषरत्नमासीत्। येन स्वं निखिलं जीवनं विद्यायाः सेवायै समर्पितम्।

यद्यप्यद्य भारतवर्षमपरिवर्तनीय-प्रबल-काल-वशादवनतिमापन्नं परपदाक्रान्तं संवृत्य विविध-कष्ट-कदम्ब-परिक्लान्तं वर्तते। पुनरुत्थानाय चांश-लेशोऽपि न लक्ष्यते, तथापि पदमस्य परमोच्चमेवास्ति विश्वस्याखिलेष्वपि राष्ट्रेषु। यतो महनीय-यशोभिः समस्त-विद्या-पारावार-पारंगतैः पुरातनैर्महा-पुरुषैरीदृश्येका परम्परा जनिता, यया संसार-सागरे समुत्पद्यमानसमस्या-व्याधीनां शुभोदर्कसम्पृक्तं लोकोत्तरं भैषज्यं सम्पादितं विद्यते। संसृतौ विशिष्ट-परिस्थिति-वशात् इदानींतनसमस्या-परिशोधनायैव संप्रवृत्तेषु धर्मेषु न भवत्येकरसता सततम्। प्रत्युत तैरुत्तरोत्तरमीदृशः प्रश्न-प्रचयो जन्यते यदुत्तरं दातुमसमर्थो भवति तदनुयायी मनुजः। सामञ्जस्याभावेन च क्रियन्ते तैर्विविधानि लोक-कल्याण-प्रतिकूलानि अशान्तेरुत्पादकानि कृत्यानि। अस्त्येको वैदिक-सनातनधर्म एव येनादिकालतो जीवनस्य निःशेषमपि दृष्टि-कोणमक्षिलक्ष्यीकृतम्। नास्ति कश्चिदपीदृशो नियमो यस्मिन्नाध्यात्मिक-धार्मिक-सामाजिक-राजनीतिकादिदृष्ट्या किमपि रहस्यं न स्यात् । परं पुरा तु 'साक्षात्कृतधर्माणः ऋषयो बभूवु'-रितिनिरुक्तानुसारं विद्वत्प्राचुर्यमासीद् येनाखिलमपि रहस्यं विदित-प्रायमविद्यात। अद्य तु दुरदृष्टाभावेषु भारतीयेषु नास्ति किञ्चदपि सामर्थ्यं तद्ज्ञातुम्। फल्गुबुद्धिवादप्रभावेण सर्वत्र ''कथमेतदिति'' प्रश्न उद्ट्ङ्क्यते। नियमाश्च ते रूढिवादमधिगमिताः सन्ति। 'विज्ञानं विज्ञान'-मित्येव रटनं क्रियते। अज्ञात्वा किमपि श्रद्धाऽभावेन हिन्दुत्वगौरवमेव नष्टम्। अतोऽद्य तादृशां महानुभावानां परमावश्यकता विद्यते येऽन्विष्य रहस्यं सनातनधर्मस्य सिद्धान्तानां वैज्ञानिक-विधिना जनानामग्रे स्थापयेयुर्येन पुनरपि सनातनधर्मस्योद्धारेण साकं कल्याणं

* अनुसंधाता वेद-विभाग, संस्कृतविद्या धर्मविज्ञान सङ्काय, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी-5

सिद्धयेत। सन्ति खलु साम्प्रतमेतादृशो महापुरुषा ये प्रयतन्ते सततमेतस्मै प्रयोजनाय, प्रमुखश्च तेषु श्रीमदनमोहनमालवीय एव मन्तव्यः। महानुभावोऽयमधीतांग्लविद्योऽपि भूत्वा स्वसंस्कृतेरध्ययनं विधाय सम्प्रति तदुत्थानाय प्रयत्नं करोति। काश्यां हिन्दूविश्वविद्यालयमेकमुद्घाट्य प्रेरयत्यन्यानपि। यदनुप्राणितेन सनातनधर्मेण लोकोत्तरं नवमेव चैतन्यमधिगतम्। अयमधुना प्रवृद्धस्थाविर्येण परित्यक्तसार्वजनिकजीवनो भूत्वा राष्ट्रिय-भावनया सह स्वसहानुभूतिं प्रकटयन् किञ्चिदप्यकुर्वाणः स्वसद्मन्येव भगवदाराधने शिष्टं स्वीय-जीवनं यापयन् विद्यते।

दिसम्बरमासस्य 25तारिकायां 1861ख्रीष्टाब्दे प्रयागसमीपवर्तिनि ग्रामे ब्राह्मणान्वये जनिमुपलभ्यानेन महामनसा प्रयागीयम्योरसेंट्रल-महाविद्यालये शिक्षा समधिगता। 1884ख्रीष्टाब्दं समारभ्य 1887पर्यन्तं गवर्नमेण्ट हाईस्कूलेऽध्यापकतां निर्वाह्य ''कालाकांकर''नाम्नि नगरे तदधीशस्य व्यक्तिगतमन्त्रित्वमाचरता हिन्द्यां निस्सरतः ''दैनिक हिन्दुस्ताने'-ति नामधेयस्य समाचारपत्रस्य, प्रयागात् प्रकाशमानस्य ''इण्डियन ओपिनियन'' इति साप्ताहिकस्य च सम्पादकत्वमप्यकारि। 1861ख्रीष्टाब्दे वाकील-परीक्षामुत्तीर्य कुर्वश्च तत्कार्यं 1992ख्रीष्टाब्द-पर्यन्तं संयुक्तप्रान्तीयराजसभायं निर्वाचित-सदस्योऽप्यभूत् ।

1885ख्रीष्टाब्दतः चलतो राष्ट्रियमहासभापोतस्य प्रथमसञ्चालकेष्वयमपि प्रमुखतमोऽभवत्। तत्कार्येषु पूर्णरूपेण सहयुञ्जन् 1909, 1918ख्रीष्टाब्द-योस्तदधिवेशनाध्यक्षोऽपि निर्वाचितोऽभूत् । राष्ट्रियक्षेत्रे मृदूग्र-विचारधारयोरयं सामञ्जस्यमेव स्वीकृतवान्। अस्यैव प्रयत्नैस्तिलकदलस्य गोखलेदलेन सह सन्धिः संवृत्तः। 1932-1933 ख्रीष्टाब्दयोः राष्ट्रियमहासभाधिवेशनयोः प्रधानत्वपदे निर्वाचितोप्ययमधिवेशनात्पूर्वमेव शासकवर्गेण निगृहीतः।

1910ख्रीष्टाब्दतः 1919पर्यन्त इम्पीरियल लेजिस्लेटिव कौंसिलस्य (Imperial Legislative Council) सदस्यो भूत्वा 1919 ख्रीष्टाब्दे रौलट-विधानस्य विरोधे त्यागपत्रं दत्तवान् । विधाननिर्मातृ-परिषदोऽधिवेशने पञ्चाम्बुप्रान्ते सैनिकशासनस्य तत्कृतात्याचाराणाञ्च विरोधे सेनापति ''डायरं'' दोषिणं संसाधयतानेन पञ्चहोरा-पर्यन्तं भाषणमकारि। यत्प्रभावितेन डायर-महानुभावेन क्षमा-प्रार्थना कृता। पीडितानां सहायतायै राष्ट्रिय-महासभाया अमृतसरीयाधिवेशनस्याध्यक्षो भूत्वा पञ्चाम्बुप्रान्ते समागतः। अमुना 1916ख्रिष्टाब्दतः 1919पर्यन्तं भारतीयौद्योगिकसमितेः सदस्यत्वेन मतविरोधे स्वकीयः पृथग् लेखोऽलेखि। यथाशक्ति च विधाननिर्मातृ-संसदि लोकहिताय प्रचुराणि कार्याण्यनुष्ठितानि।

प्रचलित-शिक्षाप्रणालीमालोचयता तेन निष्कर्षोऽयमधिगतो यदियं भारतीयसंस्कृतेः विनाशेन राष्ट्रियगौरवं दूरमपसारयन्ती भारतीय-नव-युवकान् राजसेवकत्वायैव प्रगुणीकरोति, उपयोगिता-राहित्येन च स्वास्थ्यमेव पातयन्ती भारतीयेभ्यो नितान्तमहितकरी विद्यते। आवश्यकता तु अस्ति साम्प्रतं राष्ट्रियतायाः-प्रसारणस्य, प्राचीनसंस्कृतौ गौरव-वर्धनस्य, उत्तम-शिक्षायाः श्रेष्ठसन्ततिनिर्माणस्य च। परमिदं सर्वमुपेक्ष्य आङ्ग्लमाध्यमेन पाश्चात्य-साहित्यमेव नवतरुणान्तःकरणमारोप्यते। भारतीयसाहित्यस्य च न श्रूयते नामापि सर्वमेतद्विचार्य श्रीमता मालवीयेन प्रचलित-शिक्षा-पद्धतिजनितानां निखिलदोषाणामपनोदाय 1916ख्रिष्टाब्दे काश्यां हिन्दू-विश्वविद्यालयं संस्थाप्य तत्पीठस्थविरपदे (Vice Chancellorship) स्वयमेवाधिष्ठितोऽभवत्।

1922-23ख्रीष्टाब्दयोर्हिन्दूमहासभाया अध्यक्षो भूत्वा 1924ख्रीष्टाब्दे केन्द्रीयव्यवस्थासभायाः सदस्यत्वं विरोधिदलस्य नायकत्वञ्च सम्पाद्य समुद्रतटकर-विधानस्य विरोधमाचरंस्तां परित्यक्तवान्। 1933 ख्रीष्टाब्दस्य सितम्बर-मासे साम्प्रदायिकनिर्णयानुसारं तथाकथितास्पृश्यवर्गस्य विशालवर्गात् पृथक्करणस्य विरोधे यरवदा-कारागारे श्रीगान्धिना गृहीतस्य मरण-पर्यवसायिनः व्रतस्यावसरे सपद्येव श्रीमालवीयो मुम्बई नगर्यां गत्वा हिन्दू-नेतृणां सम्मेलनमेकं विधाय स्वयञ्च तदध्यक्षत्वेन सन्धिमनुष्ठापितवान्। यदनुसारं प्रान्तीयधारासभासु नियतहिन्दु-स्थानेभ्योऽस्पृश्यवर्गाय कतिपयस्थानानां संविभागः संवृत्तः, परन्तु तेषां गणना हिन्दुष्वेव भविष्यति। एतदनन्तरं मालवीयमहानुभावेन राजनीतिकजीवने कश्चिद् महत्त्वपूर्णो भागो न गृहीतः। कदाचिदेव भारतीयसमस्यासु स्वविचारान् प्रकटयति।

यद्यपि स्वविचारान् प्रकटयितुं न कदापि विरतोऽयमभवत्, तथापि राष्ट्रियमहासभायां मातृवत् श्रद्धा-समादराभ्यां परिपूर्णमन्तःकरणं सर्वदा धारयति। श्रीजवाहरलालेनापि स्वात्मचरितेऽस्य विषयेऽलेखि यत् ''श्रीमालवीयः स्वस्थापित-विश्वविद्यालस्य वित्तादिसाहाय्येन स्थायित्वप्रदानाय तेषां धन-कुबेराणां नृपाणाञ्च मुखमवलोकयति, येभ्यः प्रगतिः क्रान्तिश्च स्वसत्ताविनाशशङ्कया न रोचते, स्वसत्ता-स्थिरतायै च मध्यकालीन-दृष्टिकोणमेवाभिरुचितं तेषाम्। तादृशानां सहयोगाभिलाषेण निज-पुरातन-विचारैश्च स्वराज्यप्राप्त्यै शान्तः सङ्कुचितश्च पन्था एव रोचते श्रीमालवीयाय इति। राष्ट्रियमहासभाया वर्तमाननेतृ-मण्डलेन गृहीतमार्गे सहयोगदानं दुष्करं मत्वा कतिपयवारं मतभेदमप्याचरति। परं सभायाः संस्थापकत्वेन, तेन सहादृश्यप्रेम्णा, समुद्रिक्तराष्ट्रियभावनया, वर्तमानप्रगत्या साकं किञ्चित्सम्बन्धेन तद्हृदयं राष्ट्रियकार्ये स्वीयसहयोगं प्रदातुमभिलषति। अन्तर्द्वन्द्वेनानेन बहुधा द्विविधाकुलोऽयमवलोकितः'' इति। राष्ट्रिसभायां मृदुदलीयानामाधिपत्यसमये नहि तान् पूर्णरूपेण परित्यक्तुं समुदसहत। गान्धेरभ्युदयकालेऽपि मतभेदेन विरोधमाचरता असहयोगान्दोलने न किमपि साहाय्यं प्रादायि। परं 1930-33ख्रिष्टाब्दयोः पूर्णरूपेण देशनायकत्वधुरं संधार्य कृता कारावासयात्रापि। यवनप्रसन्नतायै धारितायां राष्ट्रियमहासभानीत्यां सदैव स्वकीयाऽसहमतिः प्रकटिता। हिन्दूविश्वविद्यालयरूपं शिक्षा-प्रसारविषयकं रचनात्मककार्यं चिरस्थायि भविष्यति। महासंस्थाया अस्या भविष्यदत्युज्ज्वलं प्रतीयते। परमस्यामहर्निशं लग्नस्य श्रीमालवीयस्य कार्यक्षेत्रं समस्तदेशस्य विशालक्षेत्रात्सङ्कुचितीभूय नितान्तमेव सीमितं संवृत्तम्। सम्भवतोऽत एव श्रूयते यद् यदि श्रीमालवीयः काश्यां हिन्दूविश्वविद्यालस्य स्थापनां नाकरिष्यत तर्हि जीर्णोऽप्ययं न केवलं स्वकमात्मानं भारतीयराष्ट्रमपि प्रशस्तोन्नति-शिखरमारोपयिष्यत। अत्युत्कृष्टप्रेरक-शक्ति-युक्तोऽस्ति महामनाः, हिन्दुभावः सदैवास्मिन् जागरूकस्तिष्ठति।

श्रीमालवीयोऽस्ति महान्। महत्यश्च सन्ति स्वदेशाय अर्धशताब्दीतोऽप्यधिककालपर्यन्तं निरन्तरं क्रियमाणा अस्य सेवा अपि। स्वतपोमय-पुनीतजीवनेन देशस्य प्रारम्भिक-राजनीतिक-विकासकाले महती

प्रेरणाऽनेन दत्ता। स्परसवैदुष्येण भाषणेषु तां रससम्पृक्तां रसधारां प्रवाहयति, अनेकशो मनुजा यया परिप्लाविताः पूताश्च भवन्ति। सामाजिकक्षेत्रे धार्मिकक्षेत्रे चाप्यनेन चरिस्मरणीयाः सेवाः कृतः। सनातनधर्मसम्मेलन-महावीरदलादीनां निर्माणं कृत्वा सनातनधर्मस्यापि पुनरुत्थानमनुष्ठितम्। सर्वाण्यप्यस्य कार्याणि पुरातनगौरववर्धनायैव भवन्ति। भारतीयपुनीतसंस्कृतिः श्रेष्ठतया मन्यते। प्रवासेऽपि सनातनधर्म-नियमान् न विस्मरति। इङ्गलैण्डं प्रति गच्छन् शुद्धतायै श्रीजाह्नवीजलस्य घटद्वयमपि सहैव नीतवान्। अयमिच्छति वैज्ञानिकरीत्या सनातनधर्मस्य पुनरुद्धारम्। सदैव संसारे शान्तिसाम्राज्यं प्रसृतं भविष्यतीत्यस्य विश्वासः। स्वजीवितावस्थायामेव देशस्वातन्त्र्यं वैदिकधर्मोद्धारञ्च द्रष्टुमिच्छति। परमेश्वरकृपया सम्बोभवीति यदयं स्वजीवन एव सर्वमेतत्प्रत्यक्षं पश्येत। किमपि स्याद् देशस्य जीवितनायकेषु वृद्धवशिष्टस्त्वयमेवास्ति।

मालवीयमहोदयेषु महती राष्ट्रनिष्ठा प्रतिष्ठिता आसीत्। स्वीयैः व्याख्यानैः मालवीयमहोदयैः स्वल्पैरेव शब्दैः भारतीयतायाः स्वारस्यं सहजतया प्रकाशितम् आसीत् । तैः उक्तमासीत् यत् परमेश्वरं प्रणम्य सर्वप्राणिनाम् उपकराय, दुष्टानां दमनाय, राष्ट्रनिर्माणाय च जनानां संगठनम् आवश्यकम्। अत एव तैः इदम् उद्घोषितम् –

''ग्रामे ग्रामे सभा कार्या, ग्रामे ग्रामे कथा शुभा।
पाठशाला मल्लशाला, प्रतिपर्व महोत्सवः॥''

सर्वै मिलित्वा अनाथानां, विधवानां मन्दिराणां, गोमातुश्च रक्षा विधेया। एतदर्थं सर्वैः दानं देयं, स्त्रीणां सम्मानः दुःखितेषु दया च कर्तव्या,स्वशास्त्रेषु, स्वसिद्धान्तेषु च दृढता अपेक्ष्यते। परनिन्दायाः त्यागः, मतभेदे सहिष्णुता, स च मतभेदः धर्मविषयको वा स्याद् लोकविषयको वा स्यात्, प्राणिमात्रं प्रति मैत्रीभावना, प्राणिनां सेवा भक्तिश्चेति भारतराष्ट्रस्य गुणाः मालवीयमहोदयैः आत्मसात् कृताः। अन्ये च जनाः तथा आचरितुम् आहूताः।

राष्ट्रस्य निर्माणाय मालवीयमहोदयैः हिन्दुमहाभायाः संघटनं विहितम्। सर्वेऽपि भारतीयाः यथा एकसूत्रे निबद्धाः स्युः, तथाविधः प्रयासः मालवीयमहोदयैः विहितः। तदर्थं तैः कालिकातायां, प्रयागे, नासिके, काश्यां ब्राह्मणमारभ्य चाण्डालपर्यन्तं नैके जनाः मन्त्रदीक्षया दीक्षिताः। कार्यमिदं राष्ट्रमेकतायाः सूत्रे निबद्धुं सफलं सिद्धम्। गोरक्षायाः कृतेऽपि मालवीयमहोदयैः महत्त्वपूर्णं कार्यं कृतम्। गोषु तेषां महती श्रद्धा आसीत्। ते कथयन्ति स्म-

गावोऽग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः।
गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम्॥ इति ।।

ते कथयन्ति स्म यत् गोः मानवस्य मातृरूपेण उपकारिणी दीर्घायुष्यप्रदात्री बलवर्धिनी नैरुज्यसम्पादिनी मनुष्यजातेः अर्थिकोन्नतेः देवी च वर्तते। स्वयं तृणं जलं च भुक्त्वा माता इव या गौः मनुष्यं दुग्धं पाययति, मनुष्यः नास्या उपकारस्य प्रत्युपकारं कर्तुमर्हति। काशीहिन्दूविश्वविद्यालये छात्रावासेषु गत्वा ते छात्रान् पृच्छन्ति स्म अयि भोः दुग्धं पिबसि? इति। नेति उत्तरे सति कमपि गोपालम् आहूय ते कथयन्ति स्म यद् अयि भोः अस्मै छात्राय प्रतिदिनं दुग्धं देयम् । अहम् अस्य मूल्यं प्रदास्यामि इति। मलवीयमहोदया जानन्ति स्म यद् यावत्पर्यन्तं छात्राः सबलाः स्वस्थाश्च न स्युस्तावत्पर्यन्तं ते राष्ट्रहिताय कार्यं कर्तुं न प्रभवेयुः। स्वस्थाः, चरित्रवन्तः सबला एव नागरिकाः राष्ट्रविकासे समर्था भवन्ति।

मालवीयमहोदयैः हिन्दीभाषायाः विकासाय अपि अविस्मरणीयं कार्यं कृतं, यतो हि ते जानन्ति स्म यत् स्वीया-भाषा स्वराष्ट्रस्य राष्ट्रियतायाश्च संवाहिका भवति इति। अद्यत्वे आङ्गलभाषां ये अधीतवन्तः ते वाग्व्यवहारे आङ्गलभाषायाः प्रयोगे गौरवम् अनुभवन्ति। किन्तु भारतस्य अस्मिता संस्कृतभाषायां ततपुत्रीभूतासु हिन्दीप्रभृतिषु भरतीयभाषासु निहिता वर्तते। अतः तस्याः अस्मितायाः रक्षणार्थं हिन्दीप्रभृतीनां भारतीयभाषाणां समुन्नतिरपि आवश्यकी इति महामनसां दृढ मतमासीत् ।

अस्माकं राष्ट्रं सहिष्णुतायाः मूर्तिरूपं वर्तते। यत्र सर्वेषां धर्माणां सम्प्रदायानां च समानः समादरो भवति। महामनसां जीवने इयं भारतीया सहिष्णुता सम्यक् परिलक्ष्यते। 1931ख्रीष्टाब्दे कर्णपुरे हिन्दूनां यवनानां च मध्ये सञ्जातस्य संघर्षस्य अनन्तरं सर्वान् हिन्दून् यवनाँश्च सम्बोध्य मालवीयमहोदयैरिदम् उक्तमासीत् यद **''अहं मनुष्यतायाः पूजकोऽस्मि मनुष्यतामितिरिच्य नाहं कामपि जातिं भेदं वा स्वीकरोमि।''** एवं तदानीं महामनसा राष्ट्रियैकतायाः कृते यः प्रयत्नः कृतः स नूनमनुकरणीयः।

भारतीयतायाः संरक्षणार्थं भारतीयसाहित्यस्य संरक्षणमावश्यकम् । तदर्थं संगठनमपि आवश्यकम्। ते कथयन्ति स्म भारतीयगौरवरस्य संरक्षणम् अस्माकं परमं कर्तव्यं वर्तते। भारत-वर्षस्य पूर्णं स्वाराज्यमन्तरा भारतीयतायाः साहित्यस्य च यद् गौरवं तस्य रक्षा न भवितुमर्हतीति ते सम्यग् जानन्ति स्म। भारतीयतायाः संरक्षणार्थमेव मालवीयमहोदयैः एवंविधस्य एकस्य विश्वविद्यालयस्य सङ्कल्पः कृतः यत्र भारतीयतायाः संरक्षणमपि स्यात् । आधुनिकविद्यानां संरक्षणमपि भवेत्। एतदर्थं मालवीयमहोदयैः काशीहिन्दूविश्वविद्यालयस्य स्थापना कृता। यस्मिन् विश्वविद्यालये प्राच्यप्रतीच्ययोः सम्यक् समन्वयो वर्तते। प्रसिद्धैः वैज्ञानिकैः ''डा0 शान्तिस्वरूप- भटनागर'' (Dr. Shananti Swaroop Bhatnagar) महोदयैः विरचिते विश्वविद्यालयस्य कुलगीते एतत् सुस्पष्टतया प्रोक्तम्-

''प्रतीचि-प्राची का मेल सुन्दर,
यह विश्वविद्या की राजधानी''॥ इति।।

अत्र विश्वविद्यालये एकतः पाम्परिकविद्यानां संरक्षणाय संस्कृतमहाविद्यालस्य (यो हि सम्प्रति संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसङ्कायनाम्ना विख्यातोऽस्ति), संगीतमञ्चकलासङ्कायस्य, दृश्यकलासङ्कायस्य, कलासङ्कायस्य च स्थापना कृता, अपरतः विज्ञानसङ्कायस्य, कृषिविज्ञानसङ्कायस्य प्रद्यौगिकीसंस्थानस्य च स्थापना विहिता। एवमेव एकतः पारम्परिकचिकित्साविज्ञानस्य संरक्षणार्थम् आयुर्वेदसङ्कायस्य अपरतः नवीतमचिकित्साविज्ञानस्य (I.M.S.) परिज्ञानार्थं चिकित्साविज्ञानसंस्थानस्य स्थापना कृता। ते जानन्ति स्म यत् राष्ट्रस्य विकासाय भारतीयशास्त्राणां संरक्षणं संवर्धनं च परमावश्यकम् । विश्वविद्यालयस्य स्थापनायाः उद्देश्येषु

भारतीयशास्त्राणां संरक्षणं संवर्धनं तेषु निहितस्य ज्ञानराशेः प्रचारः प्रसारश्च इदंप्रथमतया उल्लिखितः। श्रीमद्भगवद्गीता, श्रीमद्भागवतं चेति ग्रन्थद्वयं महामनसाम् अत्यन्तं प्रियमासीत्। यतो हि अत्र राष्ट्रियतायाः सर्वेऽपि गुणाः निहिताः सन्ति।

''स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः संसिद्धिं लभते नरः''।
''कर्मण्येवाधिकारस्ते मा फलेषु कदाचन''।
''उद्धरेदात्मनात्मानं नात्मानमवसादयेत्''।
''समः शत्रौ च मित्रे च तथा मानापमानयोः''।

इत्यादयः भारतीया उपदेशाः श्रीमद्भगवद्गीताया एव वर्तन्ते। अत एव महामनसा स्वयं गीतासमितेः स्थापना कृता। प्रतिरविवासरं गीताप्रवचनस्य व्यवस्था कृता। ते स्वयमपि गीताप्रवचनं कुर्वन्ति स्म। ते छात्रान् कर्मचारिणश्च उद्बोधितवन्तः यत् सप्ताहे एक-होरात्मकः कालः गीताप्रवचनस्य कृते देयः। यतो हि ते जानन्ति स्म अध्यात्मविद्यायाः परिज्ञानमन्तरा छात्राणां सर्वांगीणो विकासः नैव सम्भवति। छात्राणां विकासमन्तरा राष्ट्रिय-भावनाभावितानां नागरिकाणां निर्माणं न स्यात् । राष्ट्रियभावनाभरितैः नागरिकैर्विना राष्ट्रनिर्माणस्य कल्पनापि न शक्या। अत एव महामनसा इदमपि उपदिष्टम् –

''सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया।
देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव॥ इति ।।

इत्येवं महामनसा छात्राः देशभक्त्या आत्मत्यागाय प्रबोधिताः। एतेन राष्ट्रनिर्माणायैव महामनसा छात्रा आहूता इति वक्तुं शक्यते। ते इदमपि कथयन्ति स्म-

''यद्यत् चेच्छेत स्वस्मै तत्परस्यापि चिन्तयेत्''
(महाभारतम् शा0प0 59.22)

किञ्च-

''आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत्''
(विष्णुधर्मोत्तरपुराणम् 3.255.44)

ते एकमेवाद्वितीयं ब्रह्म इति सिद्धान्तं स्वीकुर्वन्ति स्म। अत एव महर्षिवदेव्यासस्य उक्तिरियं तैः आत्मसात् कृता—

''ज्योतिरात्मनि नान्यत्र समं तत्सर्वजन्तुषु'' इति।

अर्थात् ब्रह्मज्योतिः सर्वेषु प्राणिषु समानरूपेण वर्तते। अत एव ते श्रीमद्भगवद्गीतायाः श्लोकमिमं वारं-वारं श्रावयन्ति स्म।

''आत्मौपम्येन सर्वत्र समं पश्यति योऽर्जुन ।
सुखं वा यदि वा दुःखं स योगी परमो मतः॥
(गीता 6.32)

एतैरुपदेशैरिदं सुस्पष्टं यन्महामनसा राष्ट्रस्य अखण्डतायै एकतायै च सर्वेषु प्राणिषु एकमेव ब्रह्मज्योतिः समानरूपेण वर्तते इति कृत्वा सर्वत्र समभावेन राष्ट्रियमैक्यं साधयितुं सार्थकः प्रयत्नः कृतः।

◆

चरित्रनिर्माणे महामनसां दृष्टिः

मधुसूदनमिश्रः *

शीलतः शोभते रूपतो राजते, शर्करासम्मितं यद्वचो भ्राजते।
विद्यया भूष्यते कर्मणा स्मर्यते मालवीयस्सदा भूतले राजते॥

भारतदेशोऽयमनादिकालात् विभिन्नानां धर्माणां सम्प्रदायानां जातीनां विभिन्नदेशीयमनुजानां तत्संस्कृतीनाञ्च पोषको वर्तते। अस्मादेव कारणादनादिकालाज्जगतीतले भारतभूमिरियं 'विश्वगुरुः' इति विशेषेण प्रतिष्ठिता वर्तते। परन्तु एकविंशत्यां शताब्द्यामस्यां वैश्वीकृतसमाजे जनाः भौतिकसाधनैस्सम्पन्नाः सन्तोऽपि मानसिकरूपेणाशान्ताः व्यथितेन्द्रियाश्च सन्ति। समाजस्य कृते राष्ट्रस्य कृते किं कर्त्तव्यमित्यपि ते विस्मृतवन्तः । नैतिकशिक्षायाः ह्रासत्वेन समाजे चरित्रहीनता किंकर्त्तव्यविमूढता कलुषिता च मानसिकीभावना सर्वत्र दरीदृश्यते। 'धनेभ्यः परो बान्धवः नास्ति लोके' इति विचारधारा सर्वत्र प्रवहमाना वर्तते। आधुनिकच्छात्राणां कृते विद्या सैव या नियुक्तियोग्याव्यवसायिनां कृते केनापि प्रकारेण लाभार्जनमेव परमलक्ष्यम्। राजनेतृणां कृते सत्ताप्राप्तिरेव प्रधानतमा नीतिः। अतः धनलोलुपान् पदलोलुपान् जनान्नाचारहीनान् छात्रॉश्च दृष्ट्वेदं प्रतिभाति यत् स्वतन्त्रमपि राष्ट्रमिदं पाश्चात्यसंस्कृत्याः कुप्रभावेण आबद्धमतः परतन्त्रमेव । गुरुशिष्ययोः पितापुत्रयोर्भ्रातरोर्वा सम्बन्धो भवतु सर्वत्र चरित्रस्य ह्रासमेव दरीदृश्यते । इयमेव स्थितिमवलोक्य केनचित् नीतिकारेणोक्तं यत् –

गीता कथं विगतर्थिता केशव! त्वदीये भारते ।
आत्मैव अत्र विहन्यते वपुषा हतानां का कथा[1] ?

अतः एतादृशे चरित्रशून्ये समाजे कथं सा रामराज्यकल्पना पूर्णा भवेत्, इमाः भावनाः प्रसृज्येत यत् ''ईशावास्यमिदं सर्वम्[2]'' ''सर्वे भवन्तु सुखिनः'' ''वसुधैव कुटुम्बकञ्चेति'' विचिन्तनीयम् । एतादृशेषु विचारप्रवाहेष्वेव महामनसां चरित्रनिर्माणविषयिणी दृष्टिरावश्यकी। तेषामिदं मतमासीद्यद् छात्रा एव राष्ट्रस्य संरक्षकाः, अतः कथं तेषां चरित्रं समुज्ज्वलं भवेत् तेभ्यो ज्ञानमिदमुपपद्येद्यत् विद्या न हि धनार्जनवस्त्वपितु विनयदायिनी मुक्तिदायिनी च। अस्यामेव स्थितावस्माकं दृष्टिः तेषां महापुरुषाणां जीवनचरिते पतति येषां ध्येयमिदमासीद्यत् –

एतद्देशप्रसूतस्य सकाशादग्रजन्मनः।
स्वं-स्वं चरित्रं शिक्षेरन् पृथिव्यां सर्वमानवाः[3] ॥

पुण्यभूमावस्यां यदा कदापि सङ्कटः सञ्जायते तदा महापुरुषाः महात्मनः मनीषिणश्चावतीर्य लोकोपकाराय धर्मव्यवस्थां निर्दिशन्ति ,उपदिशन्ति च सर्वेभ्यो मानवेभ्यो धर्ममूलकं कर्ममूलकञ्च कल्याणमार्गम्। धर्मसंस्थापनार्थमेव युगे-युगे धरातलेऽस्मिन् भगवानपि जन्म गृह्णाति। तेष्वेव भगवदंशयुक्तेषु महापुरुषेष्वन्यतमाः धन्यतमाश्च महामनापण्डितमदनमोहनमालवीयाः, यैः सा धर्ममूला कर्ममूला च शिक्षापद्धतिः प्रसारिता संस्कृतिपरा चरित्रनिर्माणदृष्टिश्च प्रदत्ता या खलु सनातनधर्मव्यपदेशेन श्रुतिस्मृतिपुराणादिषु प्रतिपादिता वर्तते। आविर्भूते मालवीयमहोदये पारतन्त्र्यरज्जुभिर्बद्धोऽयं भारतदेशः आध्यात्मशक्त्या बहिर्मुखः कुशिक्षया च ग्रस्तः। एतेषां सर्वा अपि क्रियाः भारतीयसंस्कृतेः सर्वानपि पक्षान् परिपुष्टानकार्षुः। महात्मनां यल्लक्षणं भर्तृहरिणा निर्णीतं यत् –

विपदि धैर्यमथाभ्युदये क्षमा सदसि वाक्पटुता युधि विक्रमः।
यशसि चाभिरुचिर्व्यसनं श्रुतौ, प्रकृतसिद्धमिदं हि महात्मनाम्[4] ॥

एतैः सर्वैरपि गुणैः युतानां महामनसां चरित्रविषयिणी दृष्टिः विलक्षणा अप्रतिमा च।

चरित्रपरिचयः तन्महत्त्वञ्च

चर् गतिभक्षणयोः इत्यस्माद्धातोः अर्तिलूधूसूखनसहचर इत्र[5] इति सूत्रेण इत्र प्रत्यये कृते चरित्रमिति पदं निष्पद्यते। चरित्रं नाम स्वभावः इति कल्पद्रुमः। वस्तुतस्तु व्यक्तेः आचारविचारव्यवहाराणां नैसर्गिकगुणानाञ्च समष्टिरूपेण सम्मिश्रणमेव चरित्रपदवाच्यं भवति । सच्चरित्रे हि प्राधान्यत्वेन जितेन्द्रियत्वं संयमः दमः वागादिनिग्रहः सत्याहिंसयोर्पालनं ब्रह्मचर्यसेवनं सत्कर्मप्रवृत्तिः दुरितनिवृत्तिश्च समायाति। चरित्रवान् एव सदाचारशिक्षणेन शीलविनियोगेन विनयसम्पादनेन धृतिदाक्षिण्यादिगुणसंवर्द्धनेन शारीरिक-बौद्धिकमानसिकोन्नतिप्रदानेन च जगदिदं बिर्भति। अतः सदाचार एव चरित्रम्। धर्म एव चरित्रस्य मूलं भारतीयसंस्कृतौ स्वीक्रियते। अत एव वेदोऽखिलो धर्ममूलमित्युद्घोष्य 'आचारहीनान्न पुनन्ति वेदाः' इति महर्षिभिः प्रतिपादितम्। मनुनापि इत्थमेव प्रतिपादितं यत् 'आचारः प्रथमो धर्मः'। अतः सर्वेषां धर्मशास्त्राणां नीतिग्रन्थानां महापुरुषाणाञ्चेदमेवोद्घोषण-मासीद्यज्जीवने यदि विद्यते किञ्चन शाश्वतं तत्त्वं तत्तु सच्चरित्रमेव। चरित्रमेव पुरुषस्य सर्वस्वम्। महामनोभिरपि प्रतिपादितं यत् चरित्ररक्षणेनैव मानवत्वं देवत्वञ्च, तदभावे दानवत्वं पिशाचत्वञ्च। यथा हि प्रतिपादितं वर्तते –

धर्मो हि तेषामधिको विशेषो धर्मेण हीना पशुभिस्समानाः।

अतः चरित्रं सर्वथा संरक्ष्यम्। अत एवोक्तं तेन यत् –

वृत्तं यत्नेन संरक्षेद् वित्तमायाति याति च।
अक्षीणो वित्ततः क्षीणो वृत्ततस्तु हतो हतः[6] ॥

चरित्रनिर्माणे महामनसां दृष्टिः

महामनसां चरित्रविषयिणी दृष्टिः कीदृशी आसीदिति तेषां वचनेनैव परिलक्ष्यते **–काशीहिन्दूविश्वविद्यालयोऽयं तादृशो भवेद्यत्रोच्चस्तरीयशिक्षया सह भारतीयनवयुवकानां चरित्रनिर्माणं स्यात्, तेषु देशप्रेमदेशसेवयोः भावनायाः सञ्चारो भवेत्। तेषां भारतीयसंस्कृतेः संस्कृतस्य च समुचितं ज्ञानं भवेत् तथा च सहैव आधुनिकानां सर्वासां विद्यानां ज्ञानमवाप्य देशसमृद्धौ समुचितं योगदानं कर्त्तुं प्रभवेयुः। तैः प्रतिपादितं यत् नैतिकमूल्यानां धर्मसंस्कृतीनाञ्च समुचितमध्ययनमेव विश्वविद्यालयस्यास्य प्रधानं लक्ष्यं भविष्यति[7]।**

---

* शोधच्छात्रः (ज्योतिषविभागः), सं0वि0ध0वि0सङ्कायः, काशी हिन्दू विश्वविद्यालय, वाराणसी।

तेषां विचाराणां मूर्त्तरूपोऽयं विश्वविद्यालयः। तै इदृशः विश्वविद्यालयः स्थापितः यत्र भारतीयसंस्कृतिसदाचारैस्सह विभिन्नज्ञानविज्ञानानामध्ययनाध्यापनस्य व्यवस्था भवेत्, यत्र प्राकृतिके रम्यपरिसरे तथैवाचार्यैस्सह निवसन्तः छात्राः शिक्षां प्राप्नुयुः यथा प्राचीनकाले गुरुकुले आसीत्। अनेनैव तेषां समुचितं चारित्रिकोत्थानं सम्भविष्यति, अतः महामनसां चरित्रपरा दृष्टिः स्पष्टा। भारतीयसंस्कृतेः प्राणभूतस्य धर्माचरणेनैव चरित्रोन्नतिरिति तेषामभिमतम्। अतः चरित्रनिर्माणार्थं सर्वेषां कृते तेषामयमेव धर्ममूलकः सन्देशः आसीद्यद् –

अभयं सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्यं धृतिः क्षमा।
सेव्यं सदामृतमिव स्त्रीभिश्च पुरूषैस्तथा॥

एषा धर्ममूला भावना एव मानवचरित्रस्य दुर्गुणानपनयति चेतः प्रसादयति विश्वबन्धुत्वभावनाञ्चोत्पादयति । चरित्ररूपभवनस्य निर्माणार्थं निम्नलिखिताः स्तम्भाः महामनोभिस्स्थपिताः –

1) धर्मनिष्ठता धर्माचरणञ्च –

सच्चरित्राय सर्वप्राथम्येन तैः धर्मनिष्ठाचरणं प्रतिपादितम्। अत्र धर्मशब्दस्य न हि कश्चन संकुचितार्थः, भारतीयदर्शने यतोऽभ्युदयनिःश्रेयससिद्धिः स धर्मः[8]। अतः तेषां मतं यज्जगन्मूलत्वेन संसृतिनियामकानि तत्त्वानि धर्म इति व्यपदिश्यन्ते। यत्र जगद्धारकत्वं तत्र धर्मत्वम्। अतस्तैर्निगदितं यत् –

धर्मेण विश्वस्य जगतः प्रतिष्ठा, लोके धर्मिष्ठं प्रजा उपसर्पन्ति।

धर्मः सनातनः सार्वभौमिकः सार्वकालिकश्च। यैर्गुणैरिहलोके परलोके चोत्तमा गतिर्भवति चारित्रिकगुणानां विकासो भवति स एव धर्मः। अतः सच्चरित्रमूलं मनुप्रतिपादितमेव एतद्धर्मलक्षणं तैरनुमोदितम् –

धृतिः क्षमा दमोऽस्तेयं शौचमिन्द्रियनिग्रहः।
धीर्विद्या सत्यमक्रोधो दशकं धर्मलक्षणम्[9]॥

जनानां मनसि धर्मस्यैषा भावना यदोद्गमिष्यति तदा नूनमेव चरित्रिकोन्नतिः भविष्यतीति महामनसामभिमतम्। अत एव धर्माचरणविषये तेषामियमेव दृष्टिरासीद्यत् –आत्मनः प्रतिकूलानि परेषां न समाचरेत् । तथैव यद्यदात्मनि चेच्छेत् तत्परस्यापि चिन्तयेत्। अर्थाद्यत्कर्म आत्मनः प्रतिकूलं प्रतिभाति तत्कर्म कस्मैचिदप्यस्माभिर्न विधेयम्। धर्म एव प्राणिमात्रे दानं दया मार्दवं कारुण्यं ब्रह्मचर्यमिन्द्रियाणां वशीकरणं सत्यानुपालनं परदुःखनिवारणं धैर्यञ्चोत्पादयति। एतान्येव चत्रिनिर्माणस्य मूलतत्त्वानि सन्ति। अतः सम्पूर्णे चरित्रे एते धार्मिकगुणाः अवश्यमेव भवेयुः-

सत्यं दया तपः शौचं तितिक्षेक्षा शमो दमः।
अहिंसा ब्रह्मचर्यञ्च त्यागः स्वाध्याय आर्जवम्॥

महामनोभिस्सर्वथोक्तं यदयं धर्म एव भारतीयसंस्कृतेः प्राणाः। तेषां जीवने पश्यामो वयं प्रतिदिनं गायत्र्युपासनं श्रीमद्भगवद्गीतापुराणादीनामध्ययनं छात्राणां कृते धर्ममूलकं प्रवचनं शौचाचारपालनञ्च। तैस्सर्वदोक्तं यत्विद्या तपः ब्राह्मणयोणौ जन्म चेति त्रयाणामपि ब्राह्मणत्वप्राप्तौ कारणं भवति। एभिर्हीनैपुरूषो ब्राह्मणत्वच्युतो भवति, तैयच्युते स्म –

शौचेन सततं युक्तः सदाचारसमन्वितः।
सानुक्रोशश्च भूतेषु तद्विजातीषु लक्षणम्॥

अतः कदाचिदपि धर्मत्यागं न कर्त्तव्यम्। यतो हि धर्मो रक्षति रक्षितः। उक्तमपि तैर्यत् –

नाहं कामान्न संरंभान्न द्वेषान्नार्थकारणात्।
न हेतुवादाल्लोभाद्वा धर्मं जह्यां कथञ्चन[10]॥

अत एव तैर्विश्वविद्यालये अनिवार्यतया छात्राणां कृते सर्वप्राथम्येन धर्मशिक्षायाः व्यस्वथा कृता। उद्देश्यस्यास्य पूर्त्तये एवादौ काशीहिन्दूविश्वविद्यालये संस्कृतविद्याधर्मविज्ञानसंकायस्य स्थापना कृता ।

2) संस्कृतिसंरक्षणं तदनुरूपाचरणञ्च

अस्माकं सदाचारस्य सर्वाण्यपि मूलतत्त्वानि संस्कृतभाषायामेव निबद्धानि सन्ति। सम्पूर्णे वैदिकवाङ्मये स्मृतिनीतिधर्मेतिहासग्रन्थाः भारतीयसनातनपरम्परायामुपलभ्यन्ते। अतः धर्मशास्त्रैर्नीतिशास्त्रैश्चानुप्रणितास्मदीया संस्कृतिरस्माभिः रक्षणीया पालनीया च। मनसः परिष्करणं संस्करणं दुरितव्यपोहनं दुर्भावदहनमेव संस्कृतिः। उच्यते हि –

सत्याहिंसागुणैः श्रेष्ठा विश्वबन्धुत्वशिक्षिका।
विश्वशान्तिसुखाधात्री, भारतीया हि संस्कृतिः॥

इयं संस्कृतिरेवात्मनो मनसो लोकस्य चरित्रोत्कर्षं विदधाति, दुर्गुणानपनयति, मनोऽमलीकरोति, पापान्यपाकरोति दुःखादिद्वन्द्वान्निर्दहति चेतः प्रसादयति सुखं साधयति धृतिं धारयति सत्यं स्थापयति शान्तिं समादधाति च। अत एव महामनसां मतमिदमासीद्यत् संस्कृतिमिमां धृत्यैव वयं जगति स्वकीयं गौरवपदं प्राप्स्यामः। अत एव तैर्प्रतिपादितं यत्सर्वेभ्यः छात्रेभ्यः भारतीयसंस्कृतेः वाङ्मयस्य च गौरवपूर्णोपलब्धीनां परिचयं दातव्यं येन स्वयमेव तेषां चारित्रिकविकासो भवेत्। अतः संस्कृतिरेवास्मासु नैतिकगुणान्नुद्धायति। तैस्सर्वथा स्वीये भाषणे उक्तं यत् –

अनाथाः विधवाः रक्ष्याः मन्दिराणि तथा च गौः।
धर्म्यसंघटनं कृत्वा देये दानं च तद्धितम्[11] ॥

छात्राणां मनसि सद्विचाराः उद्भवन्ति एतदर्थं स्वयमेव महामनोभिः छात्रेभ्यः गीतोपदेशं क्रियते स्म। विश्वविद्यालयोद्देश्ये तेनोक्तं यत् छात्राणां कृते सच्चरित्रनिर्माणमेव विश्वविद्यालयस्यास्य परमलक्ष्यम् । विश्वविद्यालयोऽयं भारतीयसंस्कृतेः प्रतिबिम्बरूपम् एव। विश्वविद्यालयभवनानां निर्माणं हिन्दूशिल्पशास्त्ररीत्या भवेत्। भागीरथ्याः पश्चिमे तटे विश्वविद्यालयस्य स्थापना, केन्द्रे हि भगवतो विश्वनाथस्याधिष्ठानं स्वत एव महामनसां चरित्रविषयिणीं धर्मकेन्द्रिकां दृष्टिं प्रतिपादयति। तैरूक्तं यत् गङ्गागोगीतानां सांस्कृतिकप्रतीकानां संरक्षणमस्माभिर्कत्तव्यम्। गीतां प्रति महामनसां श्रद्धा तु प्रसिद्धा एव। ते अकथयन् यत् गीताज्ञानेनैव सत्कर्मप्रेरणा समायाति। इत्थं स्वसंस्कृतेरनुपालनं संरक्षणञ्च चरित्रनिर्माणस्य द्वितीयं सोपानम् ।

3) चरित्रनिर्माणे शिक्षायाः महत्त्वम्

चरित्रनिर्माणे शिक्षा अनिवार्यतमा। अशिक्षितो जनः कदापि चरित्रोन्नतिं कर्त्तुं न पारयति। अतः सर्वेभ्यो धर्मसमन्वयात्मिका शिक्षा दातव्या। विद्यायाः परमलक्ष्यं विनयाचारसम्पादनम् –

विद्या ददाति विनयं विनयाद्याति पात्रताम्।
पात्रत्वाद्धनमाप्नोति धनद्धर्मस्ततः सुखम्[12] ॥

अर्थाद् विद्या नाम अमृतपायिनी विनयप्रदायिनी च । अविनीतो वा यया

न सा विद्या। आत्मनः तत्त्वतः परिचयेनैवाज्ञानमोक्षः, अज्ञानमोक्षाद्बन्धनमुक्तिः ततो अमृतलाभः परमविनयश्च। एषा विद्यैव सत्यपथप्रदर्शिनी आत्मत्यागप्रेरिका सम्मानप्रदा च। अत एव महामनसां कामनेयमासीद्यद् संस्कृतिसंस्कृतभाषायाश्च अध्ययनाध्यापनक्रमः एतावान् विस्तृतो भवेद्यन्माध्यमेनैव विद्यार्थिनः चरित्रोत्थानं कृत्वा राष्ट्रविकासे योगदानं कर्तुं शक्नुयुः[13]।

परतंत्रताकालीनां दोषपूर्णां देशभावनाभक्तिरहितां दास्यभावनायुक्तां भारतीयशिक्षानीतिं विलोक्यैषामतीवक्लेश आसीत्। अत एव राष्ट्रिय-चेतनाधायकः ब्रिटिशशासनतन्त्रप्रभावमुक्तः भारतीयादर्शदर्शकः प्राच्यपाश्चात्यो-भयज्ञानविज्ञानसमन्वितः विश्वविद्यालयोऽयं सांस्कृतिकराजधान्यां विंशति-शताब्द्याः द्वितीयदशके स्थापितः। एतदृष्ट्वैव केनचिदुदीरितं विश्वविद्यायाः लयं दृष्ट्वा विश्वविद्यालयं स्थापितः।

(अ) चरित्रनिर्माणे स्त्रीशिक्षायाः महत्त्वम्

चरित्रनिर्माणे स्त्रीशिक्षाविषयेऽपि ते दत्तावधानाः आसन्। तेषां विचारोऽयमासीद्यत् पुरुषाणामपेक्षया स्त्रीणां शिक्षा महत्त्वपूर्णा यतो हि ता एव मातृरूपेण सर्वेषां प्रथमाः शिक्षिकाः भवन्ति। महाभारते उक्तमप्यस्ति यत् ''नास्ति मातृसमः शिक्षकः कोप्यन्यः''। अतः स्त्रीणां शिक्षणार्थं महामनोभिः महिलामहाविद्यालयः स्थापितः। तेषां कामनेयमासीद्यत् – स्त्रियः विद्योतमेव विदुष्यः, गांधारीलक्ष्मीबाई इव वीराङ्गनाः, सीता इव सत्यः, सावित्री इव गुणशीलाश्च स्युः। तासां सम्पूर्णं आचारव्यवहार-वेशभूषावार्तालापादिकं भारतीयसंस्कृत्यनुकूलं भवेद्येन बाल्यकालादेव जनाः सच्चरित्रकाः भवेयुः। अत एव तैरुक्तं यत् ''स्त्रीणां समादरः कार्यः''। अपि च –

ग्रामे ग्रामे सभा कार्या, ग्रामे ग्रामे कथा शुभा।
पाठशाला मल्लशाला प्रतिपर्वमहोत्सवः॥

(ब) समन्वयात्मिका शिक्षापद्धतिः

विदाङ्कुर्वन्तु तत्र भवन्तः आसीत्किल महामनसां सूक्ष्मेक्षणमयी दृष्टिः। महामनोभिः चिन्तितं यत् परिस्थितीनां चरित्रनिर्माणे महत्त्वपूर्णं स्थानं भवति। बुभुक्षितः दरिद्रश्च समाजः कथमपि चरित्रसंरक्षणं कर्तुं न प्रभवति। तेषामेव वचनमिदमासीद्यदस्माकं प्रथमं कर्त्तव्यं सर्वेषां कृते अन्नवस्त्रादीनां समायोजनं वर्तते। अतः प्राचीनभारतीयसंस्कृतिपोषकैः महामनस्कैः प्राचीनज्ञानविज्ञानानां शिक्षणेन सह समाजस्यार्थिकविकासाय अत्याधुनिकचिकित्साधातुकृषिखननविज्ञानानां वैद्युदभियान्त्रिकीत्यादि-विषयाणामुच्चशिक्षायाः प्रबन्धः विश्वविद्यालये कृतः। अनेनैव ज्ञायते यच्चरित्रनिर्माणे परम्परया सह अर्वाचीनतायास्सद्गुणानामपि समर्थका आसन्। इत्थं चरित्रनिर्माणे शिक्षायामुभयोर्मिश्रणं वांछितम् ।

4) चरित्रनिर्माणाय नैतिकगुणानां समावेशः

चरित्रोन्नयने दया-दान-सदाचार-परोपकार-दृढता-त्याग-मैत्री-भाव-सत्यधैर्यप्रभृतीनां नैतिकगुणानां समावेशोऽपेक्षते । समेषामेतेषां नैतिकगुणानां विकासमूलं धर्माचरणमेव । महामनोभिः प्रतिपादितं यत् – भारतीयगृहस्थैः पञ्चयज्ञाः दैनिककर्त्तव्यत्वेनानुष्ठेयाः । सर्वैः सर्वतोभावेन एते गुणाः धारणीयाः–

(क) सत्याचरणम् –

मनसा वाचा कर्मणा सर्वदा सत्यं समाचरणीयं नानृतं यत् सर्वलोकहितसम्पादने प्रभवति, समाजस्य संरक्षणं विदधाति तत्सत्यम्। जीवने सर्वदा तैः राजनीतिज्ञरूपेण अधिवक्तृरूपेण च सत्यस्यैव पक्षः गृहीतः। तेषां वचनमासीद्यद् –

यतः सत्यं यतो धर्मो यतो ह्रीरार्जवं यतः।
ततो भवति गोविन्दो यतो कृष्णस्ततो जयः॥

बाल्यकालेऽपि स्वकीयां दैनिचर्यां मातरं प्रतिदिनं मालवीयमहोदयाः कथयन्ति स्म। सत्यवचनादेव नैकेभ्यः दोषेभ्यः मदीयं रक्षणं जातमिति मालवीयमहोदयानां वचनम्। कस्यामपि परिस्थितौ सत्येतराचरणं न विधेयमिति। स्वजीवनेऽहर्निशमनुपालितं तैरिदम्–

चलेद्धि हिमवाच्छैलो मेदिनी शतधा भवेत्।
द्यौः पतेत सन्नक्षत्राः न मे मोघं वचो भवेत्॥

अपि च –

सत्याधारस्पस्तैलं दया वृत्तिं क्षमा शिखा।
अन्धकारे प्रवेष्टव्ये दीपो यत्नेन धार्यताम्॥

(ख) दृढता –

जीवने स्वकीये सङ्कल्पे दृढता स्यादिति महामनसां दृष्टिः। दृढतां च प्रतिपादयतां महामनसां कथनमासीद्यत् सङ्कल्पो शीर्षतमो भवेत् प्रवृत्तिश्च दृढतमा भवेत्, यावत्पर्यन्तञ्चलक्ष्यप्राप्तिर्न स्यात्तावद्यत्नो विधेयः। यतो हि–

मनस्येकं वचस्येकं कर्मण्येकं महात्मनाम।

ते सर्वदोद्बोधयन्ति स्म ''अर्जुनस्य प्रतिज्ञे द्वे न दैन्यं न पलायनम्''। सर्वेषां कृते गीतायाः, मामनुस्मर युद्ध्य चेति भगवद्वचनमिदमुद्धृत्य स्वकर्मणि प्रेरयन्ति स्म।

(ग) प्राणिमात्रेषु मैत्रीभावः-

सामाजिकत्वात् समाजे सर्वेभ्यो मित्रवदाचरणं भवेत् सौहार्द्रञ्चोत्पद्येदिति तेषामभिमतम्। मैत्रीभावनेयमेव राष्ट्रभक्तिप्रेरिका आत्मोन्नतेश्चाधारशिला। समाजे न हि कश्चन श्रेष्ठः न वाधमः यथा ब्राह्मणः अध्ययनाध्यापनेन पूज्यः क्षत्रियः प्रशासनेन श्रेष्ठः तथैव कृषिकार्यकौशलेन अर्थव्यवस्थसञ्चालनेन च वैश्यशूद्रयोरपि समाजे स्वानुगतं वैशिष्ट्यं वरीवर्ति। अतः सर्वदा ध्यातव्यम् –

स्वे-स्वे कर्मण्यभिरताः संसिद्धिं लभते नरः।

प्राणिमात्रेषु बन्धुत्वभावना स्यादेतदर्थमेवोपदेशः कृतः –

सनातनीयाः समाजाः सिक्खाः जैनाश्च सौगताः।
स्वे स्वे कर्मण्यभिरताः भावयन्तः परस्परम्॥

चरित्रवता पुरुषेण सर्वदेयं भावना मनसि विद्यया यत् ''सर्वे भवन्तु सुखिनः''। चरित्रस्य विकासः एतादृशो भवेत् येन जनानां व्यवहारे एते गुणाः उद्भवन्तु –

विश्वासः दृढता स्वीय, परनिन्दाविवर्जनम्।
तितिक्षा मतभेदेष, प्राणिमात्रेषु मित्रता॥

(घ) परोपकारभावना

परोपकारेणैव समष्टेर्व्यष्टेर्वा समुत्कर्षो जायते। विश्वबन्धुत्वं समाजसेवित्वं देवत्वञ्च विकसति। स्वत्वपरत्वभावपरित्यागेनैवोदारचरितत्वं महात्मत्वं चरित्रोन्नतिः च सिद्ध्यति। स्वजीवनस्य लक्ष्यमेव महामनोभिरुद्घोषितं यत्–

न त्वहं कामये राज्ये न स्वर्गं नापुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनामार्तिनाशनम् ॥

छात्रेभ्योऽपि तेषामुपदेश आसीत् –

परोपकारशून्यस्य धिड्.मनुष्यस्य जीवनम् ।

त्यागभावनया एव चरित्रोन्नतिर्भविष्यति । यत्र हि प्राणिनां दुःखोन्मूलने परोपकारमूला प्रवृत्तिर्नास्ति तत्र हि चारित्रिकगुणानामुन्नतिः कदापि भवितुं नार्हति। अत एव महामनसां दृष्टिरियं यत् –

दया बलवता शोभा न त्याज्या धर्मचारिभिः।

5) छात्राणां कृते चरित्रविषयिणी दृष्टिः–

पूर्वोक्तसद्गुणैः युक्तेषु सत्स्वपि छात्राणां विशेषदायित्वं वर्तते। त एव राष्ट्रविकासस्य सूत्रधाराः, विद्यार्थिणां कृते मुख्यतयोद्बोधनमासीद्यत्–

सत्येन ब्रह्मचर्येण व्यायामेनाथ विद्यया ।
देशभक्त्यात्मत्यागेन सम्मानार्हः सदा भव ॥

अर्थात् नैतिकगुणैस्सह छात्रैश्शारीरिकविकासोऽपि कर्त्तव्यः तदर्थं ब्रह्मचर्यानुष्ठानञ्च कर्त्तव्यम्। ब्रह्मचर्यं नाम मनसा वाचा कायया धर्मसंस्कृत्योर्पालनम्। ब्रह्मचर्येणैव व्यवहारे कुशलता मनसि स्थिरता बुद्धावेकाग्रता आचारे शुचिता कर्मणि तत्परता चोत्पद्यते। भारतीयसंस्कृतेर्प्राणभूतस्य धर्मस्य बीजमिदं ब्रह्मचर्यम् । एवमेव देशभक्तिपूर्वकं स्वार्थरहितं जीवनं यापनं विधाय छात्राः सम्मानयोग्याः भविष्यन्ति ।

6) महामनसां सामाजिकरराजनीतिकचरित्रविषयकं चिन्तनम् –

चरित्रवता पुरुषेण समाजे कथमाचरितव्यमिति महामनसां जीवनेनैव ज्ञायते। ते स्वयमेव कुशलाध्यापकाः राजनीतिज्ञाः, धर्मज्ञाः न्यायवादिनश्चासन्। भारतीयसंस्कृत्यनुसारं जीवनमिदं न केवलं भोगार्थमेवापित्वात्मोन्नतेः प्रमुखं साधनम्। सर्वेषां मनसि वसुधैव कुटुम्बकस्य भावना भवेदिति तेषां विचारः। समाजसुधारकैः मालवीयैः समाजस्य ह्रासमूलानां व्याप्तकुप्रथानामुन्मूलनाय 1916तमे इस्वीये वर्षे प्रतिज्ञाबद्धकुलिप्रथायाः विरोधः कृतः, बालविवाहस्य अन्तर्जातीयविवाहस्य बलिप्रथायाः धनप्रथायाश्च सर्वदा विरोधः कृतः। हिन्दूनां धर्मपरिवर्तने क्षुब्धैरेभिः शूद्राणामुद्धाराय अंत्यजोद्धारनामकः कार्यक्रमः प्रचालितः। सामाजिचरित्रविकासार्थं समाजे सरसतायाः भावना तैः प्रसारिता। अत एव समाजस्य चत्वारो वर्णाः स्तम्भरूपाः तैर्प्रतिपादिता—

चातुर्वर्ण्यं यत्र सृष्टं गुणकर्मविभागशः।
चत्वार आश्रमाः पुण्याश्चतुर्वर्गस्य साधकाः॥

समाजे कीदृशमाचरितव्यमिति तैरुपदिष्टं यत् –

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत्।
आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः[14]॥
स्त्रीणां समादरः कार्यो दुःखितेषु दया तथा।
अहिंसका न हन्तव्या आततायी वधार्हणः॥

तैर्निगदितं यत् – यदैषा मानवतावादिविचारधारा जनानां मनसि समागमिष्यति तदा समाजे विद्यमानानां सर्वासां समस्यानां निराकरणं स्वयमेव भविष्यति किञ्च चरित्रनिर्माणमपि उत्कृष्टतया भविष्यतीत्यत्र न कश्चन संदेहावसरः।

राजनैतिकधर्मराजनीत्योः विषये ते स्पष्टमाहुः यद्धर्मं विना राजनीतिरूच्छृंखला एव। सम्प्रति व्यवस्थां नियन्त्रितुमक्षमेयं राजनीतिः किंकर्त्तव्यविमूढतया विषीदन्ती तिष्ठन्तीति पश्यामो वयम्। अतः धर्मयुक्ता सच्चरित्रयुता राजनीतिरेव राष्ट्रस्य कल्याणाय प्रजासु सुखशान्त्योः प्रवर्तनाय च कल्पिता महामनोभि।

7) राष्ट्रभक्तिः-

अस्माकं सर्वेषां चारित्रिकविकासानां परमलक्ष्यं राष्ट्रोन्नतिरेव। यत्र देशभक्तिर्नास्ति तज्जीवनं शुष्कमेव। अतः सर्वदा माता भूमिः पुत्रोऽहं पृथिव्याः इति सर्वदा मनसि ध्येयम्। महामनोभिरुक्तं यत् राष्ट्रभक्तिं विना शून्यमिदं जीवनम्, तद्यथा –

न यत्र देशोद्धृतिकामनास्ते न मातृभूमेर्हितचिन्तनञ्च।
न राष्ट्ररक्षा बलिदानभावः श्मसानतुल्यं नरजीवनं तत्॥

तेषां जीवने पश्यामो वयं तैः राष्ट्रसेवायै स्वपदवी त्यक्ता । देशभक्तेर्भावना अस्माकं मनसः स्वार्थत्वमपनयति। स्वार्थं परित्यज्य देशभक्त्यामेव स्वकीयोन्नतिः, देशसेवायां न हि कश्चन प्रमादः कर्त्तव्यः। सर्वेऽपि जनाः मातृसेवकाः –

पारसीयैर्मुसल्मानैरीसाईयैर्यहूदिभिः।
देशभक्तैर्मिलित्वा च कार्या देशसम्मुन्नतिः॥

एषा राष्ट्रभक्तिः संस्कृतिसंरक्षणेन धर्मानुपालनेनैव सम्भवति। यथा सर्वाः नद्यः सागरे शान्तिमुपयान्ति तथैव सर्वेषां नैतिकगुणानां राष्ट्रहितौ एव पारमार्थिकत्वम्। अतः –

मातृभूमिः पितृभूमिः कर्मभूमिः सुजन्मनाम्।
भक्तिमर्हति देशोऽयं सेव्यः प्राणधनैरपि॥

8) चरित्रनिर्माणे महामनसां सदुपदेशाः -

चरित्रनिर्माणे महामनसां केचन प्रमुखाः सूत्रात्मकाः विचाराः एते सन्ति–

- मनुष्येषु श्रद्धा भवेत्। इयं श्रद्धैव भक्तिः। एषा भक्तिः राष्ट्रं प्रति मातृपितृगुरुन् प्रति प्राणिमात्रकल्याणाय च भवेत् ।
- दुर्व्यसनरहितं जीवनं यापनीयम्। मनुष्यविवेकघातकं व्यसनं कदापि सच्चरित्रपोषकं भवितुं नार्हति।
- स्वभावे कर्त्तव्यपरायणता भवेत्। स्वधर्मानुसारं कर्माचरणेनैव जनाः संसिद्धिमाप्नुवन्ति।
- स्वकीयं कर्म स्वयमेव कर्त्तव्यम्। स्वावलम्बनं चरित्रस्य विशिष्टमेकं गुणम्। पराश्रितः जनः कदाप्यात्मोन्नतिं राष्ट्रोन्नतिञ्च कर्तुं न प्रभवति।
- सर्वेषां दुगुर्णानां मूले लोभ एव, अतः चरित्रनिर्माणार्थमिन्द्रियाणां वशीकरण्मत्यावश्यकम्। लोभादेव क्रोधः, तस्माद्मोहः प्रवर्तते, एष मोह एव सर्वेषां चारित्रिकदुर्गुणनां मूलम्। अतः, सन्तोषमवधेयम्।

- राष्ट्रधर्मः, राष्ट्रभूषा, राष्ट्रभाषा च सदानुपालनीया तेनैव स्वकीयायाः, परम्परायाः गौरवानुभूतिर्भविष्यति।
- दानभोगनाशरूपा त्रिविधा धनस्य गतिः,अतः दानानुपूर्वको भोगः कर्त्तव्यः। एषा त्याागभावना एव सच्चरित्रस्यलक्षणम्।
- स्वस्थशरीरे एव स्वस्थचित्तं निवसति,अतः योगाभ्यासव्यायामादिभिः स्वस्थशरीरमवाप्तव्यम्।
- सर्वतोन्मुखी प्रतिभोत्पादनीया। राष्ट्रभाषया सह विश्वस्तरीया भाषापि ज्ञातव्या। प्राचीनैस्सहार्वाचीनज्ञानविज्ञानमप्यध्येतव्यम्। इत्थं चरित्रस्य सर्वाङ्गीणविकासः सम्भविष्यति।

इत्थं स्पष्टतया ज्ञायते यत् कीदृशी धर्मपरम्परा उदारकल्पनादृष्टिश्च चरित्रनिर्माणे महामनसामासीत्। चरित्रनिर्माणस्य विभिन्नेषु पक्षेषु विलक्षणा दृष्टिः महामनोभिः प्रदत्ता। वस्तुतः भागीरथ्याः पश्चिमतटे सांस्कृतिकराजधान्यां काश्यां प्राचानार्वाचीनज्ञानविज्ञानयोः अप्रतिमे केन्द्रे काशीहिन्दूविश्वविद्यालये भगवतो विश्वनाथस्यावस्थितिः, विश्वविद्यालयीयभवनेषु भारतीयशिल्पकलायाः विन्यासः, गुरुशिष्ययोः गुरुकुलसदृशी आवासव्यवस्था प्रकृतेः मनोहरत्वञ्च स्वयमेव महामनसां धर्मनिष्ठवैज्ञानिकचिन्तनपरम्परायाः द्योतकं वर्तते। महामनसां धर्मोपदेशमिदमासीद्यत् - पृथ्वीमण्डले यद्वस्तु मह्यं सर्वाधिं रोचते तद्वस्तुधर्मोऽस्ति, स च सनातनो धर्मः। अतः समाजेऽपि धर्माचरणेनैव स्वकीया चरित्रोन्नतिः राष्ट्रस्य प्रगतिश्च भविष्यति।[15]

महामनसाः साक्षाद्धर्ममूर्त्तयः आसन् । भगवदंशभूतानां राष्ट्रनिर्मातृणां लोकनेतृणां, धर्मनेतृणां, चरित्रपोषकानाञ्च महामनसां चरित्रविषयिणी दृष्टिः केषुचित्पृष्ठेषु प्रतिपादने असमर्थास्मदीया लेखविद्येति प्रकाश्य विरम्यते लेखप्रयासेन।

सन्दर्भाः

1. नीतिसंग्रहः
2. ईशावास्योपनिषद् –श्लो0सं-01
3. मनुस्मृतिः -2/20
4. नीतिशतकम् श्लो सं0-63
5. पाणिनीयाष्टाध्यायी-3/2/184
6. सुभाषितम् -2/15/12
7. महामनसां भाषणे
8. कणादकृतवैशेषिकसूत्रे प्रथमाध्याये प्रथमाह्निके
9. मनुस्मृतिः -6/92
10. महामनसां भाषणे
11. महामनसां सदुपदेशाः – पृ0 14 का0हि0वि0वि0प्रकाशने
12. सुभाषितरतनभाण्डागारे-विद्याप्रशंसाप्रकरणम्
13. महामनसां लेखाः -क्रमांक-18,पृ 156
14. चाणक्यनीतिः -3/22
15. महामनसां भाषणे।

◆